एचडी–06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

हिन्दी भाषा एवं प्रयोजन मूलक हिन्दी

एचडी–06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

हिन्दी भाषा एवं प्रयोजन मूलक हिन्दी

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रोफेसर (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक एवं सदस्य

प्रो.(डॉ.) कुमार कृष्ण
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग
हिमांचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

डॉ. मीता शर्मा
सहायक आचार्य एवं संयोजक,, हिन्दी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो.(डॉ.) सुदेश बत्रा**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो.(डॉ.) नन्द लाल कल्ला**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,जोधपुर
- **डॉ. नवलकिशोर भाभड़ा**
  प्राचार्य राज. कन्या महाविद्यालय, अजमेर
- **प्रो.(डॉ.) जवरीमल पारख**
  अध्यक्ष, मानविकी विद्यापीठ
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय, नईदिल्ली
- **डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा**
  पूर्व प्राचार्य,
  राजकीय महाविद्यालय,सरदार शहर, चुरू

सम्पादन एवं पाठ्यक्रम-लेखन

संपादक

डॉ. मीता शर्मा
सहायक आचार्य एवं संयोजक , हिन्दी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई-लेखक	इकाई-संख्या
डॉ. मीता शर्मा सहायक आचार्य एवं संयोजक, हिन्दी वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	1,9
डॉ. सत्यनारायण व्यास वरिष्ठ व्याख्याता, हिन्दी विभाग **राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़**	2
डॉ. सत्यनारायण मीणा व्याख्याता, हिन्दी विभाग राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बूंदी	3
डॉ. पल्लव व्याख्याता, हिन्दी विभाग **माणिक्यलाल वर्मा श्रमजीवी महाविद्यालय,उदयपुर**	4
डॉ. मनोज पण्ड्या व्याख्याता, हिन्दी विभाग **श्री गोविन्द गुरु राजकीय महाविद्यालय, बांसवाड़ा**	5,6,7,14
डॉ. अनिता वर्मा व्याख्याता, हिन्दी विभाग राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा	8
डॉ. शची सिंह व्याख्याता, हिन्दी विभाग राजकीय पी.जी. महाविद्यालय, सिरोही	10
डॉ. संध्या दुबे व्याख्याता, हिन्दी विभाग राजकीय पी.जी. महाविद्यालय, सिरोही	11
डॉ. रामगोपाल सिंह एसोसियेट प्रोफेसर गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद	12,15
डॉ. मीता कौशिक व्याख्याता, हिन्दी विभाग राजकीय महाविद्यालय, चण्डीगढ़	13
डॉ. सुधीर सोनी वरिष्ठ व्याख्याता, हिन्दी विभाग राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चिमनपुरा (जयपुर)	16,17,18

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया
निदेशक
अकादमिक

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

हिन्दी भाषा एवं प्रयोजन मूलक हिन्दी

खण्ड	इकाई संख्या	खण्ड/इकाई विवरण	पृष्ठ संख्या
क	**हिन्दी भाषा, बोली व लिपि**		
	इकाई-1	भाषा की अवधारणा : हिन्दी का उद्भव व विकास	9–32
	इकाई-2	देवनागरी लिपि की विशेषताएँ और मानकीकरण	33–49
	इकाई-3	हिन्दी भाषा की प्रमुख बोलियाँ	50–73
	इकाई-4	राजस्थानी भाषा और उसकी प्रमुख बोलियाँ	74–83
ख	**प्रयोजन मूलक हिन्दी**		
	इकाई-5	सामान्य हिन्दी, साहित्यिक हिन्दी तथा प्रयोजन मूलक हिन्दी	84–101
	इकाई-6	प्रयोजन मूलक हिन्दी की आवश्यकता और उसके विविध रूप	102–113
	इकाई-7	हिन्दी की प्रयोजनमूलक शैलियाँ	114–123
	इकाई-8	प्रयोजन मूलक हिन्दी का प्रमुख तत्व - अनुवाद : परिभाषा एवं प्रकार	124–148
	इकाई-9	अनुवाद की प्रक्रिया क्षेत्र और महत्व	149–163
ग	**प्रयोजन मूलक हिन्दी की प्रयुक्तियाँ भाग - I**		
	इकाई-10	संविधान में हिन्दी व राजभाषा अधिनियम	164–182
	इकाई-11	राजभाषा हिन्दी का स्वरूप एवं कार्यान्वयन	183–205
	इकाई-12	कार्यालयी हिन्दी की भाषी प्रकृति एवं प्रशासनिक शब्दावली	206–216
	इकाई-13	प्रशासनिक पत्राचार के विविध रूप एवं टिप्पणी लेखन	217–228
	इकाई-14	मसौदा लेखन, बैठक, प्रतिवेदन, संक्षेपण एवं पल्लवन	229–251
घ	**प्रयोजन मूलक हिन्दी की प्रयुक्तियाँ भाग - II**		
	इकाई-15	वैज्ञानिक व तकनीकी हिन्दी भाषा	252–261
	इकाई-16	जनसंचार माध्यम तथा विज्ञापन में हिन्दी	262–277
	इकाई-17	वाणिज्य/व्यवसाय मे हिन्दी एवं बैंकिंग प्रणाली में हिन्दी	278–285
	इकाई-18	रक्षा, सेना/विधि/न्याय क्षेत्र एवं रेल विभाग में हिन्दी	286–293

खंड-परिचय

जैसे-जैसे हिन्दी के व्यावहारिक प्रयोग का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे हिन्दी के अध्ययन क्षेत्र की सीमाओं में भी विस्तार हो रहा है । तकनीक तथा प्रौद्योगिकी के विकास ने भी हिन्दी के प्रयोग को नये आयाम दिये हैं । अब हिन्दी साहित्य का शिक्षण ही पाठ्यक्रमों में पर्याप्त नहीं रह गया है । इस प्रश्न पत्र में विद्यार्थियों के लिए हिन्दी भाषा तथा उसकी प्रयोजनमूलकता पर पाठों का संयोजन किया गया है ।

इस प्रश्न-पत्र में कुल 4 खण्ड हैं - **खण्ड 'क'** (हिन्दी भाषा, बोली और लिपि) में चार इकाइयाँ हैं जिसमें इकाई संख्या 1 हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास की यात्रा का ज्ञान कराया जाएगा । इस खण्ड की इकाई संख्या 2 में देवनागरी लिपि के विकास, उसकी विशेषताओं तथा उसकी वैज्ञानिकता पर विचार करते हुए उसमें अपेक्षित सुधारों का विवेचन है । इस खण्ड की इकाई 3 में हिन्दी की विभिन्न बोलियों - जैसे ब्रज, अवधी कन्नौजी, कौरवी आदि का परिचय प्राप्त कराया जाएगा जबकि इकाई संख्या 4 में राजस्थानी भाषा का विस्तृत परिचय तथा उसकी विभिन्न बोलियों - जैसे हाड़ौती, मेवाती, ढूंढाड़ी आदि का परिचय दिया गया है ।

खण्ड 'ख' (प्रयोजन मूलक हिन्दी) में कुल 5 इकाइयाँ हैं । इस खण्ड का सम्बन्ध प्रयोजनमूलक हिन्दी से है । इकाई संख्या 5 में सामान्य हिन्दी और प्रयोजनमूलक हिन्दी में अन्तर स्पष्ट किया गया है जबकि इकाई 6 में वर्तमान समय में प्रयोजनमूलक हिन्दी की आवश्यकता का विवरण स्पष्ट किया गया है । इकाई संख्या 7 में प्रयोजनमूलक हिन्दी की विभिन्न शैलियों - जैसे बोलचाल की शैली, पत्र-लेखन आदि का परिचय दिया जाएगा जबकि इकाई 8 में प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रमुख तत्वों - अनुवाद का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाएगा । इकाई 9 अनुवाद के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्तों, उसके गुणों तथा उसकी उपादेयता को समझाया गया है । आज ज्ञान के अनुशासनों की आवाजाही बढ़ गयी और इसका प्रमुख माध्यम अनुवाद ही है इसलिए इस इकाई में अनुवाद की प्रक्रिया का समग्र ज्ञान विद्यार्थियों को कराया गया है ।

खण्ड 'ग' (प्रयोजन मूलक हिन्दी की प्रयुकियाँ भाग - I) में प्रयोजनमूलक हिन्दी की प्रयुक्तियों अर्थात् व्यवहार क्षेत्रों का ज्ञान कराया जाएगा । यह ज्ञान कुल 5 इकाइयों में विभक्त है । इकाई संख्या 10 में हिन्दी की संवैधानिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए राष्ट्रीय जीवन में हिन्दी के स्थान को रेखांकित किया गया है जबकि इकाई 11 में राजभाषा हिन्दी के स्वरूप ओर उसके क्रियान्वयन की दिशाओं को विद्यार्थियों को समझाया गया है । इकाई 12 में हिन्दी के कार्यालयी प्रयोग की दिशाओं पर विचार किया गया है तथा प्रशासनिक शब्दावली के प्रयोग का महत्त्व स्पष्ट किया गया है । इकाई 13 में प्रशासनिक स्तर पर हिन्दी में पत्राचार की विभिन्न शैलियों तथा उसके रूपों की जानकारी दी गई है तथा इसी इकाई में फाइलों पर टिप्पणी-लेखन की विधियों को स्पष्ट किया गया है । इकाई 14 में कार्यालयों में होने वाले दैनंदिनी कार्यों की प्रणालियों - मसविदा लेखन, बैठक विवरण, प्रतिवेदन, संक्षेपण, पल्लवन आदि को व्यावहारिक दृष्टि से किस प्रकार प्रयोग किया जाए, समझाया गया है ।

खण्ड 'घ' (प्रयोजन मूलक हिन्दी की प्रयुक्तियाँ भाग - II) में प्रवोजनमूलक हिन्दी की प्रयुक्तियों के अन्य रूपों की चर्चा होगी । वस्तुत: यह खण्ड इससे पहले खण्ड का पूरक है जिसमें कुल 4 इकाइयाँ हैं । इकाई 15 में वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रयोग के विविध रूपों की प्रस्तुति होगी । वस्तुत: वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्रों के अनुरूप शब्दावली का विकास हिन्दी में किया जा रहा है तथा उसके प्रयोग पर पूरा बल दिया जा रहा है । इकाई 16 में जनसंचार माध्यमों तथा विज्ञापन के क्षेत्र में हिन्दी के प्रयोग की महत्ता और सम्भावनाओं पर विचार किया गया है । इस इकाई में समाचार-पत्र, कम्प्यूटर, इंटरनेट में हिन्दी के बढ़ते प्रयोग तथा उसकी क्षमताओं का रेखांकन है । ये सभी नये माध्यम हैं और हिन्दी इनकी आवश्यकताओं के अनुरूप अपने स्वरूप तथा अपनी प्रकृति में परिवर्तन करने का प्रयास कर रही है । यह इकाई व्यावहारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । इकाई 16 में वाणिज्य और व्यवसाय के क्षेत्र में हिन्दी के प्रयोग को जो प्रश्रय मिल रहा है और हिन्दी किस प्रकार बैंकिंग क्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुसार अपने को ढाल रही है, उसका विवरण दिया गया है । इकाई 18 में सरकारी विभागों में - रक्षा, सेना, विधि, न्याय, रेल आदि में हिन्दी के प्रयोग की स्थिति और सम्भावनाओं पर प्रशिक्षण दिया गया है ।

स्पष्ट है कि हिन्दी के विभिन्न स्तरों पर व्यावहारिक प्रयोग की दृष्टि से यह खण्ड बहुत महत्वपूर्ण है तथा आज के जीवन की जरूरतों के अनुरूप हिन्दी शिक्षण को अधुनातन करने की दृष्टि से इस खण्ड में प्रस्तावित शिक्षण विषयों का बहुत महत्त्व है ।

प्रिय विद्यार्थीगण! आपके लिए विस्तृत व गहन अध्ययन के लिए सहायक व उपयोगी संदर्भ ग्रन्थ सूची दी. गई है । आप इन्हें भी देखें व अध्ययन करें । उज्जवल भविष्य की कामना सहित यह पाठ्यक्रम आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है ।

इकाई -1

भाषा की अवधारणा : हिन्दी का उद्भव व विकास इकाई की रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 भाषा की परिभाषा व स्वरूप
1.2.1 भारतीय विद्वानों के मत
1.2.2 पाश्चात्य विद्वानों के मत भाषा के लक्षण
1.3 भाषा के लक्षण
1.3.1 यादृच्छिकता
1.3.2 अनुकरणशीलता
1.3.3 सृजनात्मकता
1.3.4 परिवर्तनशीलता
1.3.5 बहु घटकता या विच्छिन्नता
1.3.6 अभिरचना की द्वैतता
1.3.7 वक्ता-श्रोता की दोहरी भूमिका
1.3.8 दिशा और काल की अंतरणता
1.3.9 असहजवृत्तिकता
1.4 भाषा और भाषिक व्यवहार
1.5 हिन्दी भाषा का भौगोलिक विस्तार
1.6 हिन्दी भाषा के विकास के क्षेत्र
1.6.1 पश्चिमी हिन्दी
1.6.2 पूर्वी हिन्दी
1.6.3 बिहारी हिन्दी
1.6.4 राजस्थानी हिन्दी
1.6.5 पहाड़ी हिन्दी
1.7 सारांश
1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
1.9 संदर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- भाषा की परिभाषा के स्वरूप को समझ सकेंगे ।

- भाषा के अभिलक्षण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- भाषा और भाषिक व्यवहार को समझ सकेंगे ।
- हिन्दी भाषा के भौगोलिक विस्तार की जानकारी ले सकेंगे ।
- हिन्दी भाषा के विकास को समझ सकेंगे ।

1.1 प्रस्तावना

मनुष्य अपने भाव विचार के आदान-प्रदान हेतु जिस दूसरे साधन को अपनाता है उसे भाषा कहते हैं । इसके अन्तर्गत मानव और मानवेत्तर सभी प्राणियों की बोलियों का समावेश होता है । मुख साधन में वाक् का प्रयोग होता है । पुन: इसके व्यक्त वाक् और अव्यक्त वाक् दो विभाग किये जा सकते हैं । मानव की अपेक्षा मानवेत्तर भाषा में बहुत अन्तर तो होता है, लेकिन मूलभूत अन्तर यह है कि - प्राणियों की भाषा अनिश्चित और स्पष्ट होती है; अत: उसे अव्यक्त वाक् या वाणी कहा गया है । मानव द्वारा जिस मुखर साधन का प्रयोग किया है उसे व्यक्त वाणी अर्थात् निश्चित स्पष्ट वाणी कहा जाता है । मानव द्वारा प्रयुक्त बोली की निश्चितता एवं स्पष्टता के पीछे उसका चिंतन है । एक सुव्यवस्थित चिंतन, प्रयत्न के परिणाम स्वरूप निःसृत होने के कारण ही वह स्पष्ट एवं निश्चित होती है । उसका अध्ययन विश्लेषण किया जा सकता है यह इसकी भाषा है ।

1.2 भाषा की परिभाषा व स्वरूप

मनुष्य की भाषा ही उसके भावों, विचारों को स्पष्टता, पूर्णता एवं सुनिश्चितता प्रदान करती है । यहां एक बात और समझ लेना जरूरी है कि मनुष्य द्वारा प्रयुक्त वाणी आवश्यक नहीं हमेशा सार्थक ही हो । मानव कृत ध्वनियाँ सार्थक भी हो सकती है और निरर्थक भी । भाषा विज्ञान केवल सार्थक ध्वनियों का विश्लेषण करता है । भाषा के संबंध में एक और बात महत्त्वपूर्ण है वह यह है कि भाषा के द्वारा हमेशा अपने भावों की शत प्रतिशत अभिव्यक्ति नहीं होती है । कभी कभार भावातिरेक की स्थिति में भाषा असमर्थ हो जाती है तब भंगिमा के द्वारा भाव की अधिक सुन्दर अभिव्यक्ति होती है । साहित्य में विरह, मिलन आदि विविध स्थितियों में साहित्यकार नायक नायिकाओं की भाव-भंगिमा का सुन्दर अंकन करता है ।

ऐसी मानव भाषा को निश्चित सीमा में बांधना अर्थात् उसकी परिभाषा देना उतना आसान नहीं हैं। आदिकाल से मानवभाषा को परिभाषित करने का उपक्रम भारत एवं पश्चिम में अनेक विद्वानों ने किया है तथापि किसी परिभाषा को पूर्ण स्वरूप का उद्घाटन करने वाली परिभाषा का नाम नहीं दिया जा सकता है । भाषा की निश्चित परिभाषा तक पहुंचने के लिये भारतीय एवं पश्चिमी विद्वानों के द्वारा भाषा के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये गये है उन्हें जानना आवश्यक है।

1.2.1 भारतीय विद्वानों के मत

1. "भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली-भाँति प्रकट कर सकता है ओर दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकता है।"

-पंडित कामता प्रसाद गुरू

2. "मनुष्य और मनुष्यों के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं।"

-डा. श्याम सुन्दर दास

3. "भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चारित मूलत: प्राय: यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा किसी भाषा समाज के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं ।

-डा. भोलानाथ तिवारी

4. "जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार विनिमय या सहयोग करते हैं उस यादृच्छिक रूढ़ ध्वनि संकेत प्रणाली को भाषा कहते हैं । "

-डॉ. देवेन्द्र नाथ शर्मा

5. "अर्थवान् कण्ठ से निःसृत ध्वनि समष्टि ही भाषा है । "

-सुकुमार सेन

6. "भाषा मनुष्य की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिसमें मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से उच्चारण किये गये वर्णात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।"

-डा. मंगला देवी शास्त्री

7. "ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा हृदयगत भावों तथा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।"

-डा. पी. डी. गुणे

'भाषा' शब्द 'भाष' धातु से बना है, जिसका अर्थ है कहना या बोलना। भाषा का सहारा हम अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने के लिये तथा हरसे की बात खुद समझने के लिये लेते हैं।

प्राचीन संस्कृत विद्वानों में भाषा संबंधी चिंतन देखने को मिलता है । महर्षि पंतजलि ने भाषा के संबंध में कहा है 'व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्त वाच: "अर्थात् जो वाणी वर्णो में व्यक्त होती है उसे भाषा कहते हैं। भाषा के इस व्यक्त भाव को आगे चलकर कई विद्वानों ने विश्लेषित किया है।

आचार्य भतृहरि ने 'वाक्य पदीय' में शब्द की उत्पत्ति और ग्रहण के सम्बन्ध में लिखा है -

"शब्दकारणमभर्धस्य स हि तेनोपजन्यते
तथा च बुद्धिविषयाददथाच्छब्द: प्रतीयते।
बुद्धयर्थादेव बुद्धयर्थे जाते तदानि दृश्यते।

अर्थात् आशय यह है कि - "शब्द-व्यापार या भाषण-प्रक्रिया वृद्धियों के बीच आदान-प्रदान का माध्यम है"

इस प्रकार देखा जा सकता है कि - भारतीय संस्कृत विद्वानों तथा भाषाविदों के द्वारा तथा पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा भाषा को परिभाषित करने का यत्न समय-समय पर होता रहा है तथापि भाषा की अपनी प्रकृति परिवर्तनशीलता एवं सृजनात्मकता का मद्देनजर रख प्रत्येक

समय पर भाषा नया रूप धारण करती है अत: किसी एक परिभाषा को समीचीन या उपयुक्त कहना ठीक नहीं है। ही यह जरूर है कि - कुछ परिभाषाएँ भाषा के स्वरूप को अधिक करीबी एवं स्पष्टता से उजागर करने में सहायक सिद्ध होती है ।

भाषा का स्वरूप

भाषा के स्वरूप को निम्नलिखित मुद्दों में व्यक्त किया जा सकता है -

1. भाषा प्रतीकात्मक होती है अर्थात् ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ प्रत्येक स्तर पर भाषा में प्रतीक ही हैं । भाषा प्रतीकों की व्यवस्था है ।
2. भाषा का प्रमुख प्रकार्य सम्प्रेषण है अर्थात् भावों विचारों का आदान-प्रदान । दुनिया में अभी तक इससे अधिक समर्थ और सक्षम साधन नहीं बना है । यदि सृष्टि परमात्मा द्वारा रचित सुन्दर सृजन है तो इस सृष्टि में भाषा सबसे महत्वपूर्ण विचार-विनिमय साधन है । भाषा के माध्यम से सामान्य से लेकर विशेष प्रकार के भाव-विचारों का आदान-प्रदान होता है । दुनिया में मानव समाज, संस्कृति, सभ्यता या विविध क्षेत्रों में हुए विकास और उस विकास को जन-जन तक पहुँचाने का माध्यम एकमात्र भाषा है ।
3. भाषा का प्रयोग निश्चित मानव-समुदाय या समाज विशेष में होता है। भाषा के प्रयोक्ताओं का वर्ग तथा उसका निश्चित क्षेत्र होता है। जैसे - मराठी का महाराष्ट्र, गुजराती का गुजरात, असमिया का असम आदि। वैसे भाषा प्रयोग की दृष्टि से किसी सीमांकन की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि एक वक्ता और श्रोता अर्थात् दो समान भाषा-भाषी मिलने पर दुनिया में कहीं भी किसी भी भाषा को बोला-समझा जा सकता है वह जैसा कि - बताया गया कि - वहाँ वक्ता श्रोता के समान भाषा-भाषी होना जरूरी है जबकि, भाषा के निश्चित क्षेत्र में आप भाषा का प्रयोग किसी से भी सहज रूप से कर सकते हैं । इस दृष्टि से भाषा बोलने वालों का निश्चित समुदाय, वर्ग एवं क्षेत्र होता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि - "भाषा मानव उच्चारण अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा समुदाय विशेष के लोग परस्पर विचार-विनिमय करते हैं।"

4. भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था होती है । भाषा में प्रयुक्त प्रतीक ध्वन्यात्मक होते हैं मानव उच्चारण अवयवों से उच्चरित-वाक् प्रतीक होते हैं । अन्य साधनों से अन्य प्रकार की ध्वनियों जैसे - ताली बजाना, चुटकी बजाना आदि से जो ध्वनि उत्पन्न होती है वह ध्वनि भाषा के अन्तर्गत नहीं आती है भले ही उससे काम चलाऊ विनिमय होता हो ।
5. भाषा में प्रयुक्त ध्वनि प्रतीक यादृच्छिक होते हैं।

Arbitrary Vocal Symbols - अर्थात् ध्वनि, शब्द, रूप आदि सभी स्तर पर भाषा की व्यवस्था यादृच्छिक होती है । यादृच्छिक अर्थात् 'माना हुआ' । भाषा में प्रयुक्त प्रतीक भाषा-भाषी समाज द्वारा. माने हुए होते हैं, व्यक्ति द्वारा नहीं । समष्टि भाषा में ध्वनि-समष्टि या शब्द का जो अर्थ होता है वे यों ही, बिना किसी तर्क, या नियम व्याकरण आदि के माना

हुआ होता है । यदि यह सम्बन्ध सहजात, तर्कपूर्ण, स्वाभाविक या नियमित होता तो सभी भाषाओं में साम्य मिलता । उदाहरण के रूप में अंग्रेजी में जिसे 'वॉटर' कहते हैं उसे हिन्दी में 'पानी' या अन्य भाषाओं में अलग-अलग शब्द प्रतीकों से पहचाना जाता है । अगर यह संबंध यादृच्छिक नहीं होता तो संसार की सभी भाषाओं में एक वस्तु के लिए एक ही शब्द प्रतीक का प्रयोग होता । ऐसी स्थिति में भाषा भी एक ही होती । लेकिन ऐसा नहीं है ।

1.2.2 पाश्चात्य विद्वानों के मत

1. भाषा यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके जरिए एक सामाजिक समुदाय के लोग जो एक की संस्कृति के सहचर हैं, भाव विनिमय या संवाद करते हैं ।

   -इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका

2. भाषा संचरित होती है, अर्थात् प्रत्येक भाषिक उक्ति सिद्धान्तों के आधार पर संघटित होती है । ये सिद्धान्त प्रयुक्त शब्दों के रूप, शब्द क्रम आदि का निश्चय करते हैं ।

   -जे. पी. एलेन और एस. पिट काडर

3. अर्थात् भाषा उन वाचिक प्रतीकों की यादृच्छिक व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज विशेष के सदस्य परस्पर व्यवहार और क्रिया-प्रतिक्रिया में संलग्न होते हैं । (स्त्रुत्वां)
4. अर्थात् भाषा वाक् प्रतीकों के माध्यम से विचारों की अभिव्यक्ति है। (स्वीट)
5. भाषा का सार तत्व यह है कि - वह एक मानवीय सक्रियता है, मनुष्य-मनुष्य के बीच पारस्परिक बोध के लिए सक्रियता, ताकि वक्ता के मन की बात को श्रोता समझ सके।

   -येस्पर्सन

6. अर्थात् विचारों, भावनाओं और इच्छाओं को स्वेच्छा से उत्पन्न प्रतीकों के माध्यम से सम्प्रेषित करने की विशुद्ध मानवीय और यत्नज पद्धति को भाषा कहते हैं । उच्चारण अवयवों से उत्पन्न माध्यम-प्रतीक प्राथमिकत: श्रावणिक होते हैं ।

   -एडवर्ड सपीर

7. "भाषा यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके सहारे कोई सामाजिक - समुदाय परस्पर सहयोग करता है।"

   -ब्लाक तथा ट्रेगर

8. भाषा सीमित ध्वनियों से संयोजित व्यवस्था है, जिसका उद्देश्य अभिव्यक्ति होता है ।

   -क्राचे एयथेस्क्सि

9. भाषा एक व्यवस्थित ध्वनि योजना है, जिसका प्रयोग वास्तविक सामाजिक स्थितियों में किया जाता है। दूसरे शब्दों में भाषा को संदर्भ जनित, व्यवस्थित ध्वनि योजना, कहना समीचीन होगा ।

   -ए. मैकिनटोश - एम. के. हैलिड

10. चॉम्सकी भाषा को परिभाषित करते हुए उसे असीम और सीमित वाक्य समूहों का समुच्चय मानते हैं ।

1.3 भाषा के लक्षण

'जब भाषा के अभिलक्षण की बात की जाती है तो उससे आशय यह है कि भाषा (मानव भाषा) की विशेषता या मूलभूत लक्षण कौन से हैं जो उसे मानवेत्तर भाषा से अलग करते हैं। ऐसी कौन सी बात है जिससे मानव भाषा मानवेत्तर भाषा या अन्य भाषा रूपों से अलगाती है।

मानव अपनी भाषा के माध्यम से नये या पुराने भावों को असीमित रूप से अभिव्यक्ति दे सकता है जबकि मानवेत्तर भाषा में अभिव्यक्ति की शक्ति सीमित होती है, दूसरी बात यह कि - मानवेत्तर भाषा प्राय: उद्दीपन-अनुप्रक्रिया के रूप मे ही होती है जबकि मानव भाषा नहीं । तीसरी प्रमुख बात यह कही है कि मानव भाषा किसी भी अनुमानित, अज्ञान या नये से नये संदर्भ को अभिव्यक्ति देने में समर्थ होती है जबकि मानवेत्तर भाषा में यह क्षमता नहीं होती है।

मानव और मानवेत्तर भाषा को अलगाने की इस प्रक्रिया से ही भाषा के अभिलक्षणों का जन्म हुआ । अलग-अलग भाषा वैज्ञानिकों ने इन अभिलक्षणों की चर्चा अलग-अलग संख्या में गिनाते हुए की है जैसे हॉकेट ने सात अभिलक्षणों का उल्लेख किया है तो हिन्दी भाषा वैज्ञानिकों ने भी अलग-अलग नाम देकर उसकी चर्चा की है । संख्या या नाम के चक्कर में पड़े बिना भाषा की प्रकृति को समझना आवश्यक है । अत: यहां हिन्दी के प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक भोलानाथ तिवारी द्वारा चर्चित भाषा के प्रमुख अभिलक्षणों की चर्चा प्रस्तुत है -

1.3.1 यादृच्छिकता

यादृच्छिकता का अर्थ है - 'जैसी इच्छा हो' या 'माना हुआ' । भाषा का यह प्रमुख अभिलक्षण है । भाषा में यादृच्छिकता सभी स्तर पर पायी जाती है । भाषा में जो ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य या अर्थ होता है वह किसी भाषा-भाषी समाज द्वारा माना हुआ होता है । यादृच्छिकता वैयक्तिक नहीं समाज, भाषा-भाषी द्वारा माना हुआ वैशिष्ठ्य है । जैसे कोई एक व्यक्ति कहे कि मैं 'किताब' को 'ताकिब' कहूँगा ऐसा मान लेता है तो वह भले ही माने पर इससे संप्रेषण नहीं होगा । जब तक यह समाज द्वारा स्वीकृत या समाज द्वारा माना नहीं जाता तब तक वह यादृच्छिक नहीं होगा । जब तक यह समाज द्वारा स्वीकृत या समाज द्वारा माना नहीं जाता तब तक वह यादृच्छिक नहीं होगा । दूसरी बात यह कि यादृच्छिकता से आशय यह है कि - वह तर्कप्रसूत नहीं होता । शब्द प्रतीक एवं शब्द प्रतीक से जिस वस्तु का अर्थ बोध होता है उसके बीच कोई तार्किक या वैज्ञानिक संबंध नहीं होता है और न ही कोई सहजात संबंध होता है । जैसे 'किताब' शब्द प्रतीक और उस शब्द प्रतीक से मानसिक प्रत्यय के द्वारा जिस वस्तु का बोध होता है उनसे बीच का संबंध माना हुआ होता है । हिन्दी भाषा-भाषी समुदाय द्वारा उस वस्तु के लिए 'किताब' शब्द माना हुआ है स्वीकृत है । अत: 'किताब' शब्द बोलते ही जैसे कोई हिन्दी भाषा-भाषी सुनता है तो उसके मस्तिष्क में..... ऐसा नहीं है हिन्दी

भाषा में 'किताब' है अंग्रेजी भाषा में Book, तो गुजराती में चौपड़ी या 'पुस्तक' । वस्तु एक है पर उस वस्तु या भाव के लिए प्रयुक्त शब्द प्रतीक अलग-अलग होते हैं । यह यादृच्छिकता के कारण ही है।

1.3.2 अनुकरणशीलता

भाषा अर्जित संपत्ति है । मनुष्य को भाषा जन्म से या पैतृक संपत्ति के रूप में प्राप्त नहीं होती है । मनुष्य जिस परिवार, समाज में जन्म लेता है वहीं से भाषा का अर्जन करता है । भाषा सीखी जाती है । भाषा सृजन की प्रक्रिया अनुकरण के द्वारा होती है । प्रत्येक मनुष्य अनुकरण करके ही भाषा सीखता है । अनुकरण की यह प्रक्रिया दो रूपों में होती है । बालक अपने माता-पिता, परिवार, पास-पड़ोस या अपने आस-पास के वातावरण से जाने-अनजाने भाषा सीखता है । लोग बोलते हैं, वह सुनता है । बार-बार सुनने पर उच्चरित ध्वनियों का अनुकरण कर उच्चारण करता है । साथ में अमुक बीच, वस्तु, पदार्थ आदि को इस नाम से पहचाना जाता है, यह भी सब सीख लेता है जैसे किसी विशेष प्राणी के लिये 'गाय' शब्द बार-बार सुनने पर उसे बोध हो जाता है कि - इसे 'गाय' कहा जाता है साथ ही 'गाय' ध्वनियों का उच्चारण । ऐसे ही समस्त पदार्थो, भावों, व्यवहार आदि की जानकारी प्राप्त करता है । इस प्रकार से भाषा अधिगम की प्रक्रिया को अनौपचारिक अनुकरण के द्वारा भाषा अर्जन की प्रक्रिया कहा जाता है।

जबकि बालक एक उस के बाद स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय या अनौपचारिक रूप से शिक्षा देने वाली संस्थाओं से जो भाषा अर्जन करता है, उसे अनौपचारिक भाषा अधिगम प्रक्रिया कहा जाता है। संभव है कि बालक औपचारिक रूप से भाषा सीखने के क्रम में गलत उच्चारण, अपूर्ण जानकारी के कारण या अनुकरण में खामी के कारण भाषा का अर्जन दोषपूर्ण रूप में करता है । इन सारे भाषा संबंधी दोषों का उपचार एवं निदान औपचारिक भाषा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के अन्तर्गत हो जाता है । एक बात ओर भी ध्यान रहे कि - मनुष्य जीवनभर अनौपचारिक रूप से भाषा का अर्जन करता ही रहता है, औपचारिक शिक्षा उसे भाषा सीखने-सिखाने के लिए व्यवस्थित दिशा निर्देशन करती है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी सामाजिक, आर्थिक आदि व्यावहारिक कार्यो में भाषा ही माध्यम के रूप में काम करती है । अत: मनुष्य जीवन के हर कदम पर भाषा का अर्जन करता रहता है - अनुकरण के द्वारा और भाषा के माध्यम से उसके व्यक्तित्व का विकास भी होता है । भाषा सीखने योग्य होती है अत: उसी अधिगम्यता के रूप में समाज के विविध क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त होती है इसी को सांस्कृतिक संप्रेषणीयता या परम्परानुगामिता भी कहा जाता है । कुल मिलाकर कहें तो भाषा मनुष्य को मानवेत्तर पशु-पक्षी, जीवों की भांति जन्मजात या आनुवांशिक रूप में नहीं मिलती उसे सीखना-अर्जित करना पड़ता है यह अर्जन अनुकरण के रूप में होता है ।

1.3.3 सृजनात्मकता

मानव और मानवेत्तर भाषा को अलगाने वाला यह अभिलक्षण है प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक चॉम्सकी ने सृजनात्मकता को आधार बनाकर भाषा के असीमितता के तत्व की चर्चा की है ।

भाषा में सीमित ध्वनियाँ, शब्द रूप होने के बावजूद मानव अपनी आवश्यकता अनुसार नित्य-नवीन वाक्यों का प्रयोग करता रहा है और भाव विचार के आदान-प्रदान की श्रृंखला अविरत रूप से बरसों से जारी है । उसमें कहीं कोई अवरोध या बाधा उपस्थित नहीं हुई है । सब से महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हमेशा नये वाक्यों के प्रयोग के उपरान्त ही वक्ता श्रोता के बीच सम्प्रेषण सहजता, सरलता से हो जाता है दोनों की भाषिक क्षमता के अनुरूप वाक्य निरन्तर संप्रेषण का प्रकार्य पूरा करते हैं । मानवेतर भाषा में यह संभव नहीं है । एक पशु वर्षो से जैसा बोल रहा है वैसा ही आज भी बोलता है । इसी कारण मानवेत्तर भाषा में सृजनात्मकता या नया नहीं है । मानव भाषा में सृजनात्मकता होने के कारण ही बरसों से सभी भाषा मे भाषा-भाषी भाषा का प्रयोग अपनी इच्छा और आवश्यकता अनुसार करते आ रहे हैं तथापि भाषा हर प्रयोक्ता को हर समय नयेपन या ताजगी की अनुभूति कराती है जैसे मैं, तुम, वह, मिलना इन चारों शब्दों से - 'मुझे', तुमसे वह बात कहने के लिये मिलना है । 'चह तुमसे मुझे मिलवाने की इच्छा है', तुम मुझसे मिलो, उसमें उसकी खुशी है', 'मुझे तुमको उससे मिलवाना है । आदि अनेक वाक्यों की रखता रचना हो सकती है ।

1.3.4 परिवर्तनशीलता

भाषा परिवर्तनशील होती है । भाषा की जीवन्तता का यह प्रमाण है । भाषा और समाज का अन्त: सम्बन्ध होता है । समाज भी परिवर्तनशील होता है । समाज के परिवर्तन से आशय है कि समाज में रहनेवाले लोग-मनुष्य आदि का परिर्वतन । यह परिर्वतन भौतिक और मानसिक दोनों स्तर पर होता 'है परिस्थितियाँ बदलने पर भाषा भी मानव और समाज के अनुरूप अपना रूप बदलती है मनुष्य अपनी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भाषा-प्रयोग में बदलाव लाता है । परिवर्तन कभी स्वयं होता है तो कभी परिस्थिवश । भाषा परिवर्तन के कई कारण होते हैं । भाषा परिवर्तन द्दतगति से नहीं अपनी गति से होता है । संस्कृत, पानी, प्राकृत, अपभ्रंश से अनेक आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के विकास का इतिहास इसका प्रमाण है । केवल हिन्दी भाषा की ही बात करें तो सौ साल पहले की हिन्दी और आज की हिन्दी में निश्चित रूप से परिवर्तन आया है । संचार एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्र के विकास, भूमंडलीकरण के चलते परिस्थितियों में आये परिवर्तन ने अनेक नये शब्दों को जन्म दिया है जो कुछ का परिवर्तन भी किया गया । भाषा-व्यवस्था के ढाँचें में - नये वाक्य, अर्थ परिर्वतन आदि स्पष्ट नजर आते हैं । उदाहरण के रूप में - संगणक, मोबाईल, इंटरनेट आदि नये शब्द तथा उससे सम्बन्धित नयी संकल्पना प्रस्तुत करने वाले पारिभाषिक शब्द, अवधारणा आदि को लिया जा सकता है । पुराने उदाहरण में देखें तो संध्या का सांझ, सूर्य का सूरज होना शब्द स्तरीय परिवर्तन है तो वैसे ध्वनि, रूप, अर्थ स्तर पर परिवर्तन के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं ।

भाषा में आनेवाला परिवर्तन ही भाषा को सृजनात्मक क्षमता प्रदान करता है साथ ही नयापन भी। इस अभिलक्षण के कारण ही मानवभाषा पशु-पक्षियों, अन्य जीव-जन्तुओं की भाषा से अलग पड़ती है । मानवेत्तर भाषा में परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं होती है । भैंस, बैल, सिंह आदि पशुओं की भाषा वैसी ही है जैसी सालों पहले थी । आज भी कौआ-काय-काय ही

करता है, कोयल भी ठीक वैसे ही कुहुकती है जैसे बरसों पहले कुहुकती थी । सृजनात्मकता के पीछे अनुकरणग्राह्यता और परिवर्तनशीलता जैसे अभिलक्षण काम करते हैं ।

1.3.5 बहुघटकता या विच्छिन्नता

भाषा अनेक स्तरीय व्यवस्था होती है । मानव भाषा की यह विशिष्टता है कि विभिन्न भाव एवं विचार की अभिव्यक्ति मनुष्य जिस भाषा के माध्यम से करता है वह अनेक घटकों से निर्मित होती है । जैसे कई ध्वनियाँ मिलकर शब्द, कई शब्दों के योग से वाक्य बनता है । मानव अपनी भावाभिव्यक्ति जिस प्रकार भाषा के माध्यम से करता है वैसे मानवेत्तर भाषा से पशु-पक्षी या अन्य जीव-जन्तु नहीं कर सकते और न ही उनकी अभिव्यक्ति को भाषिक विश्लेषण से स्पष्ट कर सकते हैं । उदाहरण के रूप में नर-मादा पशु की आपसी भावोत्तेजक ध्वनियों का विश्लेषण संभव नहीं है जबकि मानव भाषा में हुई बातचीत को वाक्य, पद, शब्द, ध्वनि आदि में विभाजित किया जा सकता है । इस प्रकार मानव भाषा की एकाधिक इकाईयों के योग से निर्मित होने को ही बहुघटकता या विच्छिन्नता कहा जाता है ।

1.3.6 अभिरचना की द्वैतता

मानव भाषा में द्विस्तरीय अभिरचना होती है । जैसे एक स्तर पर भाषा सार्थक होती है तो दूसरे स्तर पर यह अर्थभेदक होती है । भाषा की दो स्तरीय व्यवस्था को ही अभिरचना की द्वैतता कहा जाता है । उदाहरण के रूप में एक वाक्य लें - 'सोहन स्कूल जाता है' ' यह वाक्य स्तर है जिसका एक सुनिश्चित अर्थ है । वाक्य को विभाजित करने पर 'सोहन, स्कूल जाता है' इकाईयाँ मिलती हैं जिन्हें रूपिम कहा जायेगा । रूपिम स्तर पर भाषा सार्थक होती है - परन्तु जैसे उसका आगे विभाजन करते हैं जैसे सोहन का स+ओ+ह+अ+न+अ वैसे ही अन्य रूपिमों का विभाजन करने पर जो ध्वनियाँ प्राप्त होती हैं वह सार्थक नहीं होती हैं, और न ही उसे निरर्थक कहा जा सकता है । क्योंकि निरर्थक होने पर भला ये सार्थक शब्दों का निर्माण कैसे कर सकती है । इस स्तर पर ये अर्थभेदक होती है । अर्थात् सार्थक न होने के बावजूद एक ध्वनि दूसरी ध्वनि के साथ मिलकर सार्थक शब्द का निर्माण करती है । जैसे 'क' और 'ल' का कोई स्वतंत्र अर्थ नहीं होता है पर दोनों के योग से कल सार्थक शब्द का निर्माण होता है । निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भाषा की अभिरचना द्वैतता में एक स्तर पर भाषा सार्थक होती है जैसे - वाक्य, पद, शब्द तो दूसरे स्तर पर अर्थभेदक होती है जैसे ध्वनि स्तर पर ।

1.3.7 वक्ता-श्रोता की दोहरी भूमिका

मानव भाषा में कम से कम दो मनुष्यों के बीच आदान-प्रदान की, संप्रेषण की प्रक्रिया घटित होती है । भाषा बोली जाती है अत: वहाँ वक्ता आ जाता है । भाषा सुनी जाती है अत: वहाँ श्रोता की भूमिका होती है । वक्ता-श्रोता के बीच बोलने-सुनने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है अर्थात् उदाहरण के रूप में सोहन बोलता है और रमेश सुनता है तब सोहन वक्ता है और रमेश श्रोता है । पर जब सोहन की बात सुनकर रमेश बोलता है और सोहन सुनता है तब सोहन श्रोता हो जाता है और रमेश वक्ता । भाषा - व्यवहार में वक्ता श्रोता की भूमिका हमेशा

बदलती रहती है अत: भाषा में वक्ता हमेशा वक्ता या श्रोता हमेशा श्रोता नहीं रहता । भूमिकाओं का बदलाव ही वक्ता-श्रोता की दोहरी भूमिका का निर्देश करता है ।

1.3.8 दिशा और काल की अंतरणता

मानवेत्तर भाषा से मानव भाषा को अलग करने वाला या एक अन्य अभिलक्षण है । मानव भाषा के लिये स्थान और काल का बंधन नहीं होता है । जैसे मानव भाषा वर्तमान काल की सूचना तो देती है पर उसी भाषा से हम अतीत और भविष्य में भी बातचीत कर सकते हैं । उदाहरण के रूप में खड़ी बोली वर्तमान की भाषा है पर इस वर्तमान की भाषा से हम अतीत की सभी भाषाओं, परिस्थितियों के बारे में बात कर सकते हैं । ऐसा नहीं कि खड़ी बोली 12 वीं सदी में नहीं थी तो उस समय की बात नहीं कर सकते हैं । ठीक वैसे ही सौ साल के बाद क्या होगा उसके विषय में वर्तमान की भाषा मे सूचना दे सकते हैं ऐसा नहीं कि उस समय वर्तमान भाषा होगी या नहीं यह तय न होने के कारण हम नहीं बता सकते । इस प्रकार भाषा कालांतरति होती है ।

कालांतरण की भांति भाषा स्थानान्तरण के बंधन से भी मुक्त होती है । जैसे - हिन्दी, हिन्दी भाषी प्रदेशों में तो भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यह अन्य प्रदेशों या विदेशों में नहीं बोली जा सकती । दो समान भाषा-भाषी मिलने पर भाषा का प्रयोग विश्व में कहीं भी किसी भी स्थान पर किया जा सकता है । भाषा को काल की तरह स्थान का बंधन नहीं होता है ।

1.3.9 असहजवृत्तिकता

मानवेत्तर भाषा सहजवृत्तिक होती है अर्थात पशु-पक्षियों में जो वृत्ति जगती है तदनुसार ध्वनियाँ निकालते हैं । वहाँ कोई बात छिपाने या ढंकने की नहीं होती है । मानव भाषा के माध्यम से मानव अपने भावों एवं विचारों का आदान-प्रदान करता है परन्तु हमेशा भाव एवं विचारों की सहज अभिव्यक्ति नहीं होती है । कभी-कभार मानव अपने भाव या विचार को छिपाने के लिए भी भाषा का प्रयोग करता है । अर्थात् भाषा का कृत्रिम, सहज-वृत्तिक प्रयोग संभव है । उदाहरण के रूप में घर में पति-पत्नी के बीच झगड़ा होता है, परस्पर अत्यन्त गुस्से में होने पर भी उसी समय आकस्मिक किसी मेहमान के आने पर. प्रसन्नता की मुद्रा में खुशी की अभिव्यक्ति करते हैं । जबकि, वे वास्तव में गुस्से में होते हैं और आकस्मिक आये अतिथि के विषय में मन में न जाने क्या सोचते हैं पर भाषा में प्यार मोहबत की अभिव्यक्ति करते हैं । किसी भाषा वैज्ञानिक ने कहा है कि भाषा से जहां एक ओर सत्य का उद्घाटन हो सकता है वहीं भाषा से मनुष्य सत्य को छिपा भी सकता है ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि - निश्चित रूप से मानव भाषा ऐसी विलक्षण विशेषताओं से युक्त होती है जिसके परिणामस्वरूप वह जहां एक मानवेत्तर भाषा से अलग तो होती ही है पर साथ में मानव एवं मानव समाज के विकास एवं प्रगति की कहानी भी कहती है।

1.4 भाषा और भाषिक व्यवहार

भाषा की प्रचलित परिभाषा के अनुसार यह विचारों को संप्रेषित करने का जरिया है, लेकिन इस संप्रेषण के माध्यम द्वारा मनुष्य केवल पारस्परिक वार्तालाप ही नहीं करता, विचार करता है, भाषण देता है, अभिनय एवं विनय करता है तथा स्वागत वार्तालाप जैसे अनेक कार्य कलापों में भाषा का सहारा लेता है । भाषा के विविध प्रयोगों और उपयोगों को भाषिक व्यवहार कहा जाता है।

मनुष्य के भाषिक व्यवहार को तीन भागों में बांट सकते हैं -

1. स्वागत या आत्मालाप
2. बातचीत या वार्तालाप
3. भाषण (एक वक्ता द्वारा बड़े समुदाय को संबोधित करना)

1. **स्वागत या आत्मालाप:** इसका आशय है अपने जीवन में विविध स्थितियों में स्वागत वार्तालाप करता है । विशेषकर विचार करते समय किसी आवेश अथवा उत्तेजना के क्षणों में परीक्षा आदि के लिये किसी सूत्र को कंठस्थ करते हुए अथवा पठित अंश को दोहराने के लिये और प्रार्थना तथा ईश्वर के सामने आत्मनिवेदन करते हुए - इन सबके अतिरिक्त नहाते हुए गुनगुनाना, बहुत छोटे शिशुओं से बातें करना । सुसुप्तावस्था में कुछ-कुछ बोलना आदि इसके अंतर्गत आते हैं । इस प्रकार का भाषिक व्यवहार कमोबेश हर वर्ग के लोगों में लक्षित किया जाता है ।

2. **बातचीत या वार्तालाप:**भाषिक व्यवहार का सबसे सशक्त व्यापक और महत्त्वपूर्ण पक्ष है बातचीत या वार्तालाप । इसमें वक्ता और श्रोता दोनों की अवस्थिति होती है और वक्ता श्रोता का स्थान बदलता रहता है । यह सिलसिला काफी देर तक चलता रह सकता है । कभी-कभी यह बातचीत दो या अधिक लोगों के बीच भी होती है । संभाषण की अनेक स्थितियाँ इस वर्ग में आती हैं । जिनमें आज्ञा, अनुज्ञा, निर्देश, प्रश्न उत्तर, भावाभिव्यक्ति आदि अनेक रूप परिलक्षित हो सकते हैं ।

3. **भाषण (एक वक्ता द्वारा बड़े समुदाय को संबोधित करना) :** भाषिक व्यवहार का यह पहलू एक वक्ता का अपेक्षाकृत बड़े समुदाय से रूबरू होना है । इसमें वक्ता मुखर होता है जबकि श्रोता निष्क्रिय । कुछ अपवादों को छोड़ दें तो विद्यालयों, महाविद्यालयों की कक्षाएँ, राजनीतिक नेताओं की जनसभाएं, संतों और महात्माओं के प्रवचन, आकाशवाणी और दूरदर्शन की वार्ताएँ, समाचार बुलेटिन, रेलवे स्टेशनों और हवाई अड्डों की घोषणाएँ, एक पक्षीय भाषण के विविध उदाहरण हैं ।

भाषा के दो पक्ष हैं जैसा कि हम पहले बता चुके हैं मानसिक और भौतिक । स्थूल अर्थो में ध्वनियों का समूह भाषा कहलाता है । ध्वनियों के मेल से शब्द, शब्दों के मेल से पद और पदों के मेल से वाक्य बनते हैं । वाक्य भाषा की सबसे छोटी, सार्थक इकाई है जिसके द्वारा मानव मन में स्थित विभिन्न भावों और विचारों को प्रकट किया जाता है । किन्तु भाषा का यह स्वरूप केवल भौतिक है इसके अलावा भाषा का एक

सूक्ष्म रूप भी है जिसे भाषा का मानसिक पक्ष भी कहा जा सकता है । उदाहरण के लिये जब कोई कहता है कि अलका बंगला जानती है तो तात्पर्य यह होता है कि अलका के मस्तिष्क में मौजूद उन भाषिक संस्कारों के बारे में बात की जा रही है जिसकी मदद से वह बंगला भाषा बोलती और समझती है।

एक संगीतकार के दिमाग में संगीत संस्कार के रूप में मौजूद रहता है । जब वह कोई वाद्ययंत्र बजाता है तो उससे संगीत के स्वर सुनियोजित रूप में प्रस्फुटित होते हैं, लेकिन एक ऐसा व्यक्ति जो संगीत नहीं जानता वह वाद्ययंत्र को छेड़कर केवल बेहतरीन ध्वनियाँ या शोर ही उत्पन्न कर सकता है । स्वर लहरियों से पूर्ण संगीत नहीं । इससे स्पष्ट होता है कि जिस तरह संगीत मानसिक संस्कार है उसी तरह भाषा भी मानसिक संस्कार है और मानसिक संस्कारहीन व्यक्ति न वह भाषा बोल सकेगा और न ही वह समझ सकेगा ।

तेजपाल चौधरी लिखते हैं "किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि भाषा का भौतिक पक्ष नगण्य या कम महत्वपूर्ण है । जिस प्रकार अच्छे वाद्य यंत्रों के बिना अच्छा संगीत उत्पन्न नहीं किया जा सकता उसी प्रकार स्वास्थ्य वागवयवों के बिना निर्दोष भाषा नहीं बोली जा सकती । जब हम संभाषण करते हैं, तो हमारे भाव और विचार भाषिक संस्कारों की सहायता से वाक्य रूप में परिवर्तित हो जाते हैं, वागवयव उन्हें उच्चारित भाषा का रूप देते हैं और श्रोता अपने भाषिक संस्कारों के कारण उन्हें अविकल रूप से ग्रहण कर लेता है । वस्तुत: वक्ता और श्रोता के बीच जितना ज्यादा भाषिक तालमेल होगा उनका संभाषण उतना ही सफल होगा । आयु, शिक्षा, सामाजिक और बौद्धिक स्तर मिलकर भाषिक तालमेल को निर्धारित करते हैं । "

भाषा के मानसिक और भौतिक पक्षों की बात फर्दिना द सस्युर ने भी कही है । वे मानते हैं कि भाषा के दो रूप होते हैं भाषा और वाक् । भाषा संस्कार रूप में विद्यमान अमूर्त वस्तु है ओर वाक् उसका स्थूल भौतिक रूप । इतना ही नहीं भाषा सामाजिक वस्तु है और वाक् वैयक्तिक । सस्युर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि भाषा समाज के संस्कारों में अमूर्त रूपं में विद्यमान रहती है और वाक् व्यवहार में प्रयुक्त होता है । भाषा का भौतिक रूप वक्ता की योग्यता शिक्षा-दीक्षा और परिवेश के अनुसार बदलता रहता है परन्तु मानसिक रूप अपेक्षाकृत स्थिर रहता है । हां, जब कोई भाषिक परिवर्तन बहुत व्यापक जन समुदाय द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वह भाषा के अमूर्त संस्कारों को भी प्रभावित करता है ओर समयान्तर में भाषा विकास का रूप ले लेता है।

निर्दोष संप्रेषण के लिये वक्ता और श्रोता के मध्य तालमेल का होना अति आवश्यक है उदाहरण के लिये यदि एक मनोविज्ञान की प्रवक्ता अपने निरक्षण नौकर को मनोविज्ञान की बारीकियां समझाए तो या तो वह ऊब कर वहां से भाग जाएगा अथवा अपने स्वामी के प्रति आज्ञानुवर्तिता प्रदर्शित करते हुए झूठमूठ सिर हिलाता रहेगा । बौद्धिक स्तर की यह असमानता तो टाली जा सकती है लेकिन यदि श्रोता वक्ता की भाषा से ही अनभिज्ञ हो तो परस्पर संभावना एक निष्फल चेष्टा बन कर रह जायेगी ।

मनुष्य का जीवन आज से पहले की तुलना में कहीं अधिक जटिल, संश्लिष्ट और तेज गति वाला हो गया है । हमें अपने दैनिक काम में भी कई भाषाओं की जरूरत पड़ती है । घर में हम अपनी मातृभाषा बोलते हैं घर के बाहर स्थानीय भाषा और कई स्थानों पर हिन्दी अथवा अंग्रेजी

। व्यावहारिक जरूरत के कारण लोग एकाधिक भाषाओं में भाषिक तालमेल और संप्रेषण में सक्षम सिद्ध हो रहे हैं ।

1.5 हिन्दी भाषा का भौगोलिक विस्तार

डॉ. दंगल झाल्टे ने अपनी पुस्तक 'प्रयोजनमूलक हिन्दी : सिद्धान्त और प्रयोग' में विश्व के 12 भाषा परिवारों का नामोल्लेख किया है जिनमें भारतीय परिवार की भारतीय आर्यभाषा शाखा से आधुनिक युग (1000 ई.) आधुनिक आर्य भाषाओं (यथा सिंधी, लहँदा, गुजराती, पंजाबी, हिन्दी, मराठी, बिहारी, असमी, राजस्थानी, उड़िया, बंगला आदि) का विकास हुआ ।

1500 ई. पू से 500 ई. पू तक भारत भूखण्ड में वैदिक और लौकिक संस्कृत का प्रसार था जिसे भारतीय आर्य भाषाओं का प्राचीनकाल कहा जाता है । 500 ई. पू से 1 सदी तक पालि और 1 सदी से 500 ई. तक प्राकृत भाषा का विकास हुआ । 500 ई. से 1000 ई. तक अपभ्रंश भाषा का विकास हुआ । इसी दौरान अपभ्रंश भाषा की विभिन्न बोलियों का विकास हुआ जिनसे आधुनिक भाषाओं का जन्म हुआ जिसकी सूची' निम्नलिखित है -

1. अपभ्रंश बोलियाँ	उससे निकलने वाली आधुनिक भाषाएँ
2. शौरसेनी अपभ्रंश	पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी,. गुजराती, पहाड़ी
3. पैशाची अपभ्रंश	पंजाबी, लहँदा
4. ब्राचड अपभ्रंश	सिंधी
5. महाराष्ट्री अपभ्रंश	मराठी
6. अर्धमागधी अपभ्रंश	पूर्वी हिन्दी
7. मागधी अपभ्रंश	बिहारी, बंगला, उड़िया, असमिया ।

हिन्दी भाषा भारत के विशाल भू-भाग की भाषा है । विस्तृत तौर पर यह भाषा हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, उत्तराखंड, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, झारखण्ड, बिहार में बोली जाती है । भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इसे पाँच उपभाषाओं में विभक्त किया जाता है । वे हैं - पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, बिहारी हिन्दी और पहाड़ी हिन्दी । प्रत्येक उपभाषा की अपनी बोलियाँ हैं एवं उनकी अपनी पदात्मक और ध्वन्यात्मक विशेषताएँ हैं ।

1.6 हिन्दी भाषा के विकास के क्षेत्र

1.6.1 पश्चिमी हिन्दी

पश्चिमी हिन्दी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश से तथा शौरसेनी अपभ्रंश का विकास शौरसेनी प्राकृत से हुआ है । इसका क्षेत्र वस्तुत: प्राचीन मध्यदेश है अर्थात पश्चिम से सरस्वती में लेकर प्रयाग तक इसकी सीमा है । बोलचाल की दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी उत्तरप्रदेश के पश्चिमी भाग, दिल्ली, पंजाब के पूर्वी भाग, पूर्वी राजस्थान, ग्वालियर, बुन्देलखण्ड तथा मध्यप्रदेश के उत्तरी-पश्चिमी भाग में बोली जाती है । पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत खड़ी बोली

ब्रजभाषा, हरियाणवी, बुन्देलखण्डी व कन्नौजी बोलियाँ सम्मिलित हैं जिनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है-

खड़ी बोली

यह कुरू प्रदेश की बोली है । अत: इसका दूसरा नाम कौरवी है । खड़ी बोली प्रमुख रूप से गंगा-जमुना के दोआब वाले क्षेत्र में बोली जाती है । देहरादून के मैदानी क्षेत्र, सहारनपुर, मुजफ्फर, मेरठ, पानीपत. गाजियाबाद, दिल्ली आदि खड़ी बोली का क्षेत्र है । साथ ही बिजनौर, मुरादाबाद, रामपुर, हरियाणा के अम्बाला और कुरूक्षेत्र आदि क्षेत्रों तक खड़ी बोली बोली जाती है।

पंजाब के प्रभाव से खड़ी बोली में द्वित्व का प्रयोग जैसे धोत्ती, बेट्टा आदि पाया जाता है । राजस्थान की तरह णत्व की प्रवृत्ति भी व्यापक है जैसे कौण (कौन), अपणा (अपना) आदि । श ष और स में से केवल दंत्य 'स' विद्यमान है, जैसे सरीफ (शरीफ), सहर (शहर) आदि ।

ब्रजभाषा

मध्यकाल में अपने साहित्यिक महत्त्व और व्यापकता के कारण बोली के रूप में उठकर यह भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई । ब्रजभाषा के साहित्य का इतिहास 16 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अष्टछाप के भक्त कवियों द्वारा गोवर्धन के मंदिर में आयोजित कीर्तनगान से आरंभ होता है । इनमें सूरदास, नंनदास, चतुर्भुजदास, कुंभनदास गोविंददास, छीतस्वामी, कृष्णदास अधिकारी आदि भक्त कवि थे । मीराबाई और तुलसीदास ने भी सहर्ष रूप में ब्रजभाषा का कुछ अंशों में प्रयोग किया । रीतिकालीन प्रमुख कवियों में केशव, रसखान, सेनापति, रहीम, बिहारी, देव, मतिराम, भूषण, घनानंद, भिखारीदास, पद्माकर आदि ने भी ब्रजभाषा को साहित्यिक भाषा के रूप में चुना । यहाँ तक कि आधुनिक काल में भी भारतेन्दु युग के अधिकतर महत्त्वपूर्ण कवियों ने ब्रजभाषा में अपनी रचनाओं को प्रस्तुत किया ।

डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार ध्वनि संबंधी विशेषताओं में ब्रजभाषा पश्चिमी हिन्दी का सही मायने में प्रतिनिधित्व करती है । ब्रजभाषा में ओकार की बहुलता है । खड़ी बोली और मानक हिन्दी की आकारान्त संज्ञाओं सर्वनाम, विशेषण और क्रियाओं का प्रयोग ब्रजभाषा में ओकारान्त रूप में होता है। उदाहरणार्थ - छोरो (लड़का) बड़ो (बड़ा), आयो (आया) आदि । ब्रजभाषा में अधिकांश ध्वनियाँ मानक हिन्दी से मिलती-जुलती है जैसे ब्रजभाषा . के ए-ओ अधिक विवृत्त है जो समान स्वर ऐ-ओ के समान सुनाई पड़ते है उदाहरणार्थ करैगो (करेगा), आयो (आया) आदि । ब्रजभाषा में ड की जगह र, ण के स्थान पर न का प्रयोग मिलता है श और ष, स की तरह बोला जाता है । उदाहरणार्थ - गिर परो, खुस, सरबत, बान आदि ।

रूपों में मानक हिन्दी से ब्रजभाषा में काफी भिन्नता है, जैसे संज्ञा शब्दों का स परसर्ग बहुवचन कहीं मानक हिन्दी की तरह ओ लगकर बनता है, जैसे 'घरो में' तो कहीं पूर्वी हिन्दी की तरह 'अन' लगकर उदाहरणार्थ लरिकन कूँ (लड़को को) । स्त्रीलिंग शब्दों में 'अन' प्रत्यय का अधिक प्रयोग होता है जैसे गलियन में (गलियों मे), सखियन सों (सखियों से) ।

परसर्गों में कूँ कैं (को), ते, तें (से), माँह, माँझ (में), लौं (तक), नाई (की तरह), के काज (के लिए) आदि का प्रयोग किया जाता है । ब्रजभाषा के सर्वनाम खड़ी बोली से भिन्न है । उत्तमपुरूष में ही (मैं), मो (मुझ), हमारी (हमारा) तथा मध्यम पुरूष के तूँ (तू), तैं (तू), तो (तुझ) और तिहारो (तुम्हारा) आदि प्रयुक्त होते हैं । अन्य सर्वनामों में वो (वह), वा (उस), यो (यह), या (इस), कौ (कौन), का (किस), जा (जिस) आदि का प्रयोग मानक हिन्दी से भिन्न हैं।

क्रिया के रूपों में हुतो (था), हुते (थे), हुती (थी), भयो (हुआ), भये (हुए), भई (हुई) का प्रयोग होता है । क्रियार्थक' संज्ञा के देखनो चलनो के साथ देखिबो, चलिबी जैसे रूप मिलते हैं ।

अवयवों में इत (यहाँ), उन (वहाँ), जित (जहाँ), कत (कही), जिमि (जैसे), किमि (कैसे), मनहूँ (मानो), अजहूँ (अभी), तेकु (तनिक), जनि (नहीं) आदि का प्रयोग किया जाता है।

हरियाणवी बोली

हरियाणी का विकास उत्तरी शौरसेनी अपभ्रंश के पश्चिम रूप से हुआ है । इस बोली के चारों ओर खड़ी बोली, अहीरवाटी मारवाड़, पंजाबी आदि बोली जाती है । कुछ विद्वानों इसे पंजाबी भाषा से प्रभावित खड़ी बोली का रूप मानते हैं । ग्रियर्सन ने इसे बांगरू नाम से अभिहित किया । हरियाणी में बाँगर का अर्थ है हरा-भरा उपजाऊ प्रदेश । हरियाणा वास्तव में भारत का हरा-भरा प्रदेश है । अत: बाँगर प्रदेश की बोली होने के कारण इसे बाँगरू' कहा गया ।

यह दक्षिणी-पूर्वी पटियाला, पूर्वी हिसार, रोहतक, नाभा, दिल्ली के कुछ अंश में बोली जाती है ।

बुदेलखण्डी

बुंदेला राजपूतों की भूमि बुदेलखण्डी कहलाती है । बुंदेली या बुदेलखण्डी, बुंदेलखण्ड की प्रधान जाति बुंदेलों की बोली मानी जाती है । इसका विस्तार जालौन, हमीरपुर, झाँसी, बाँदा, ग्वालियर, ओरछा, सागर, दमोह, नरसिंहपुर, सिवनी, जबलपुर तथा होशंगाबाद तक है । कवि ईसुरी के फाग' और गंगाधर की श्रृंगारिक रचनाएँ बुंदेली की अनमोल निधि है ।

व्याकरण - जब ए तथा ओ हस्व रूप में उच्चरित होते हैं तो वे क्रमश: 'ह' तथा सु' में परिणत हो जाते हैं जैसे और स्त्रीलिंग के अंत में आता है जैसे घुरवा, घोड़ा बेटी, बिटिया । हिन्दी में पुल्लिंग आकारांत शब्द बुंदेली में ओकारान्त हो जाते हैं जैसे हिन्दी - घोड़ा - बुंदेली घोरों । बुंदेली में कारक और अनुसगाँ का क्रम निम्नलिखित है -

जिस प्रकार हिन्दी की अन्य बोलियाँ ओकारान्त बहुला है ठीक वैसे ही बुंदेली भी ओकारान्त बहुला भाषा है अर्थात् हिन्दी, संज्ञा, सर्वनाम, कृदन्त के रूपों में जहाँ अनय 'आ' ध्वनि मिलती है, वहाँ बुंदेली में ओ मिलता है जैसे - गला (हिन्दी) - गरो लुंदेली), बुरा (हि) - बुरओ छे आदि ।

कन्नौजी

कन्नौजी का नामकरण कन्नौज नगर के आधार पर हुआ । यह नगर वर्तमान समय में गंगा के तट पर ।फर्रुखाबाद जिले में स्थित है । कन्नौजी शौरसेनी अपभ्रंश से निकली है । वास्तव में कन्नौज शब्द कान्यबुब्ज का विकसित रूप है । प्राचीनकाल में यह एक समृद्ध और वैभवशाली नगर था । आजकल शुद्ध कन्नौजी इटावा, फर्रुखाबाद एवं गंगा के उत्तर, शाहजहाँपुर जिले, कानपुर, हरदोई, पीलीभीत जिले में बोली जाती है । कन्नौजी के पश्चिम तथा उत्तर में ब्रजभाषा और दक्षिण में बुंदेली का क्षेत्र है । चूंकि कन्नौजी का क्षेत्र ब्रज और अवधि के बीच में पड़ता है इसलिए इसे ब्रज और अवधी दोनों की विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं ।

कन्नौजी का क्षेत्र बहुत विस्तृत नहीं है और सीमावर्ती इलाकों में यह पड़ोस की बोलियों से पर्याप्त रूप में प्रभावित है । कन्नौजी में भिन्नताएँ भी कम है ।

गंगा के उत्तर तथा कानपुर की कन्नौजी में व्यंजनांत पदों में एक 'इ' जोड़ दी जाती है जैसे देत को देति और बाद को बादि कहा जाता है । हरदोई के पूर्वी भाग मैं बोली जाने वाली कन्नौजी में इतना अधिक सम्मिश्रण है कि यह तय करना कठिन हो जाता है कि यह कन्नौजी है या ब्रज । कन्नौजी में लोक साहित्य मिलता है जिसका कुछ अंश प्रकाशित भी हो चुका है । उस क्षेत्र के अधिकांश प्रसिद्ध कवियों जैसे चिंतामणि, मतिराम आदि ने ब्रज को ही अपनी साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । व्याकरणिक दृष्टि से कन्नौजी और ब्रजभाषा में अधिक अंतर नहीं है । कन्नौजी ओकारान्त प्रधान भाषा है ।

उदाहरण के लिए -

हिन्दी	कन्नौजी
छोटा	छोटो
बड़ा	बड़ो
दिया	दयो
लिया	लयो

ब्रजभाषा में जहाँ, आयौ, गयौ जैसे उच्चारण मिलते हैं, वहाँ कन्नोजी वे आयो, गयो जैसे उच्चारण किए जाते हैं । यहाँ 'य' श्रुति के अभाव में 'गयो' का उच्चारण 'गओ' जैसा होता है । कन्नौजी में ऐ-औ पूर्ण रूप से संयुक्त स्वर के भाव में प्रयुक्त होते हैं और अइ, अउ बोले जाते हैं यथा - पइर (पैर), कउन (कौन) । अवधी की भाँति 'ब' का उच्चारण 'सु' जैसा होता है जैसे साउन माँ (सावन में) । कन्नौजी में दो स्वरों के बीच के ड' क्य लोप हो जाता है यथा कहिहौ - कैहयौं । हिन्दी के संकेत अथवा उल्लेख वाचक सर्वनाम यह' तथा 'यह' के लिए क्रमश: वह, बी और यहू जी रूप मिलते हैं ।

दक्खिनी हिन्दी

पश्चिमी हिन्दी की बोलियों में दक्खिनी हिन्दी को भी शामिल किया जा सकता है । इसे महाराष्ट्र आंध्रप्रदेश और कर्नाटक के विस्तृत भू-भाग में बसे उत्तर भारतीय, मुस्लिम परिवार के लोग बोलते हैं । दक्खिनी हिन्दी को खड़ी बोली का ही एक रूप माना जाता है ।

खड़ी बोली में न पाई जाने वाली - दन्त्यीकरण दक्खिनी का निजी वैशिष्ट्य है जैसे लूटना (टूटना) थंडा (ठंडा), तेढा (टेढ़ा), हात (हाथ), मूक (भूख) आदि । न्द और न्ध संयुक्त व्यंजन ध्वनियाँ न और न्ह में बदल जाती है जैसे बान्धना (बन्धना), चाँदनी (चाननी) आदि ।

दक्खिनी में स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन 'ऑ' प्रत्यय के योग से बनाया जाता है जैसे औरत से औरताँ और बात से बाताँ आदि । परसर्गों में खडी बोली से कर्म का 'कूँ' ब्रजभाषा के करण का 'सूँ अवधी से संबंध का 'कैरा' दक्खिनी हिन्दी में लिए गये लगते हैं । सम्पदान में 'के तई' का प्रयोग नया है । सर्वनामों में तुजे, मुजे आदि में, अन्य महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति उल्लेख है । 'हमन' या हमना 'तुमन' या 'तुमना खास प्रयोग हैं ।

क्रियारूपों में विशेष नवीनता नहीं दिखाई पड़ती । भूतकाल के रूप चल्या देख्या आदि खड़ी बोली की तरह ही हैं । चलैं, करै, आवै-जावै आदि । तिडन्त रूप भी खड़ी बोली से मिलते हैं ।

1.6.2 पूर्वी हिन्दी

पश्चिमी हिन्दी और बिहारी हिन्दी के बीच पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र है । पूर्वी हिन्दी के अंतर्गत अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी नामक तीन बोलियाँ हैं ।

पूर्वी हिन्दी की उत्पत्ति अर्धमागधी अपभ्रंश से हुई है । पूर्वी हिन्दी बोलियों यथा अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी का विस्तृत विवरण निम्नलिखित है -

(क) अवधी

पूर्वी हिन्दी की सबसे महत्त्वपूर्ण बोली अवधी है । तुलसी का 'रामचरितमानस' और सूफी कवियों का प्रेम-काव्य अवधी में रचा गया । अवधी, लखीमपुर, खीरी, सीतापुर, लखनऊ, उन्नाव, फतेहपुर, बहराइच, बाराबंकी रायबरेली, फैजाबाद, सुल्लानपुर, इलाहाबाद, जौनपुर और मिर्जापुर जिलों में बोली जाती है ।

इसकी ध्वनियाँ मानक हिन्दी से काफी भिन्न हैं । अवधी का 'अ' अर्धवर्तुल है और यह 'ह' से -पहले भी अर्धवर्तुल ही रहता है । इ, उ मानक हिन्दी की तुलना में अति हस्व है । यह हस्वता गति, पशु, स्थिति आदि शब्दों के उच्चारण में स्पष्ट रूप से लक्षित होती है । ऐ-औ संयुक्त स्वर हैं और क्रमश: 'अइ', 'अउ' उच्चारित होते हैं । व्यंजनों में ण, व और ष क्रमश: न, ब और ख के रूप में उच्चरित होते हैं । यथा गुन (गुण), करूना (करूणा) विकास (विकास), हरख (हर्ष) आदि । शब्द के आदि में वे हो तो उ उच्चारण किया जाता है यथा उकील-वकील।

मानक हिन्दी की तुलना में य एवं व श्रुतियों का प्रयोग कम किया जाता है जैसे सिआर (सियार), गुआल (ग्वाल)। आकारान्त शब्दों में अन्त्य अ का अवधी में स्पष्ट उच्चारण होता है । रूप की दृष्टि से बहुवचन का औ अवधी में 'अन' या जपित 'इ' के साथ 'अनि' हो जाता है जैसे लरिकन का (लड़को का) । सेशा और विशेषण के लिंग संबंधी नियम अवधी में थोड़े शिथिल है । व्यंजनान्त संज्ञापदों के कर्ता एकवचन के रूपों में 'उ' लगता है जैसे घरू, बनु आदि ।

परसर्गो में कर्ता कारक में ने' का अभाव है जो निश्चित रूप से अवधी की उल्लेखनीय विशेषता है। इस दृष्टि से अवधी और बिहारी में समानता है । कर्म का परसर्ग का, करण के सन, सेती संप्रदान के बरे, बदे, संबंध के कर और केर और अधिकरण का परसर्ग मे है ।

(ख) बघेली

यह बघेलखण्ड की बोली है । ध्वनि और रूप रचना की दृष्टि से अवधी से काफी समानता होने के कारण कुछ विद्वान इसे स्वतंत्र बोली के रूप में मान्यता मिलनी ही चाहिए । बघेली उत्तरप्रदेश की दक्षिणी सीमा से लेकर बालाघाट तक और पश्चिम में दमोह से लेकर बिलासपुर तक बोली जाती है । मध्यप्रदेश के पश्चिम में बुंदेलीखण्ड और पूर्व में बघेली का विस्तार है । बघेले राजपूतों के कारण इसका नाम बघेली पड़ा । रीवा बघेलखंड का मुख्य स्थान होने के कारण इसका एक और अन्य नाम रीवाई भी है ।

(ग) छत्तीसगढ़ी

यह सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ की बोली है । बिलासपुर, रायपुर, खैरागढ़, दुर्ग आदि क्षेत्रों मैं बोली जाती है । छत्तीसगढ़ी में केवल लोक साहित्य ही है । इसकी प्रमुख उपबोलियाँ - सुरगुजिया, सदरी, बैगानी, बिसवाली आदि है । बालाघाट जिले में बोली जाने वाली छत्तीसगढी का 'खेलोटी कहते हैं। इसका एक और नाम लरिया भी है ।

व्याकरणिक विशेषताएँ -

संज्ञा, सर्वनाम, में 'ऐ', औ ध्वनियों का क्रमश: अइ ओर उउ मिलता है । जैसे बैल-बइल, जौन-जउन,? कौन-कउन आदि । शब्द के मध्य में 'ड़' ध्वनि का लोप हो जाता है उदाहरण - लड़िका-लरिका । संज्ञा के प्राचीन रूप में 'अन' प्रत्यय तथा आधुनिक रूप में 'मन' प्रत्यय का प्रयोग होता है यथा - लडिकामन । उत्तमपुरूष सर्वनाम एकवचन में - में, मैं, तिर्यक मो, मोर तथा बहुवचन हम, हममन आदि रूप प्रयुक्त होते हैं । क्रियाओं में वर्तमानकालिक हूँ आदि का उत्तम पुरूष एकवचन में हवउं, मध्यमपुरूष 'हव', एकवचन में हवैं और बहुवचन में हवन', हवै आदि का प्रयोग किया जाता है । भूतकाल एकवचन में रहेऊँ, रहमौ, रहे, रहै और बहुवचन में रहेन, रहैय आदि प्रयुक्त होते हैं । वर्तमानकालिक कृदंत - 'अत' प्रत्यय (उदा-देखत), भूतकाल में एं' (उदा-देखे) क्रियार्थक संज्ञा के रूप देख, देखन, देखब आदि मिलते हैं ।

छत्तीसगढ़ी में व्यापक रूप से अल्पप्राण व्यंजनों को महाप्राण रूप में उच्चरित किया जाता है । जैसे कछेरी (कचहरी), झन (जन) आदि । 'न्य' का उच्चारण 'छ' जैसा होता है उदाहरणार्थ - छाँप (साँप), छब (सब) आदि । कुछ शब्दों में घोष को अघोष कर दिया जाता है । जैसे खराप । परसर्गो का क्रम निम्नलिखित है -

कर्म सम्प्रदान	-	का, ला, बर
करण - अपादान	-	ले, से
संबंध	-	के (यह लिंग के अनुसार परिवर्तित नहीं होता)

अधिकरण - माँ

अवयवों में इहाँ (यहाँ), उहाँ (वहाँ),एती (इधर), ओती (उधर), आजकल (आजकल), काहे के (क्योंकि) आदि का प्रचलन होता है ।

1.6.3 बिहारी हिन्दी

डॉक्टर ग्रिर्यसन ने पश्चिमी बोलियों का बिहारी नामकरण किया है जिसके अंतर्गत मगही, मैथिली ओर भोजपुरी - ये तीन बोलियां हैं ।

(क) भोजपुरी

पश्चिमी बिहार की बोली है । उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों में भी भोजपुरी बोली जाती है । बनारस, गाजीपुर बलिया, गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ़, मिर्जापुर, जौनपुर, बस्ती, शाहबाद, छपरा जिले तथा चम्पारन, राँची, पलामू की तहसीलें भोजपुरी बोली के क्षेत्र हैं। भोजपुरी को डी. तेजपाल चौधरी ने हिन्दी की सबसे बड़ी बोली कहा है । शाहबाद जिले के उत्तर-पश्चिम में 'भोजपुर' परगने के आधार पर भोजपुरी का नामकरण हुआ है ।

भोजपुरी का गद्य साहित्य विकसित हो रहा है । राहुल सांकृत्यायन ने इसमें आठ नाटक लिखे जो प्रकाशित किए हैं । श्री अवधबिहारी सुमन भोजपुरी के प्रसिद्ध कहानीकार है । लोक कथाओं का भी समृद्ध साहित्य इसमें उपलब्ध है । हिन्दी के कवियों जैसे बिहारी, धर्मदास, धरणीदास भीखा साहब आदि ने भोजपुरी का जहां जहां प्रयोग किया है । डॉ. कृझा देव उपाध्याय ने भोजपुरी लोकगीतों और डॉ. उदयनारायण तिवारी ने भोजपुरी के उद्गम और विकास पर गहन अध्ययन और विस्तृत कार्य किया है ।

व्याकरणिक विशेषताएँ - भोजपुरी में 'र' का लोप व्यापक रूप में देखा जाता है जैसे लइका (लरिका) न्द और न्ध क्रमश: 'न' और 'न्ह' रूप में उच्चरित होते है । जैसे चानन (चन्दन), नींन (नींद), बान्ह (बांध) आदि । इसी प्रकार 'म्ब' और 'म्म' को क्रमश: 'म' और न्द' रूप में उच्चरित किया जाता है । जैसे - तागा (ताम्बा), खम्हा (खंभा) आदि ।

कुछ शब्दों के अंत में 'वा', 'वना' प्रत्यय लगाया जाता है जैसे घोड, घोडवा, घोडवना । विदेशी शब्दों में भी यह प्रथा प्रचलित है जैसे फोन, फानवा फानवना आदि । मानक हिन्दी के अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द भोजपुरी में इकारान्त रूप में प्रयुक्त होते हैं । जैसे बहिनि (बहन), आगि (आग) । मूल बहुवचन में कई बार रूप अपरिवर्तित ही रहते हैं परन्तु स्पष्टता के लिए 'लोग' शब्द को जोड़ दिया जाता है । परसर्गो में अवधी की भाँति कर्ता में 'ने' का अभाव रहता है ।

भोजपुरी के सर्वनामों में विभिन्नता दृष्टिगत होती है यथा हमनीका (हम), तोहनीका (तुम), मोर (मेरा), तीर (तेरा), हमार (हमारा), तोहर (तुम्हारा) आदि । क्रिया के रूपों में आटे, बाटे (है), रहिल रहिले (था, थे) आदि का प्रयोग किया जाता है । क्रिया के रूप काफी संश्लिष्ट हैं जैसे भविष्यत काल के रूप 'ह' और 'व' लगकर बनते हैं यथा देखब जाइब, रहब या देखिहै, देखिहै आदि । भोजपुरी के नागपुरी रूप में बंगला भाषा के प्रभाव से अकारान्त का ओकारान्त

होता है यथा - कल - कोल । संज्ञा और विशेषण के तीन रूप माली, मलियाँ और मलियनवा आदि मिलते हैं ।

(ख) मगही

यह मगध प्रदेश में बोली जाती है । इसका केन्द्र पटना है । इसके अंतर्गत गया, हजारीबाग जिले ओर पलामू मुंगेर और भागलपुर की कुछ तहसीलें आती है । मगही के एक ओर भोजपुरी और दूसरी ओर मैथिली है । अत: इन दोनों का मगही पर गहरा प्रभाव है । मगही के कुडमाली, खोण्टाली बोली रूप भी मिलते हैं । इसका कोई विशेष साहित्य उपलब्ध नहीं है ।

1.6.4 राजस्थानी हिन्दी

यह राजस्थान प्रदेश की भाषा है । इसके उत्तर में पंजाबी, दक्षिण में मराठी और पूर्व में ब्रज भाषा बोली जाती है । राजस्थान शब्द भाषा के लिए समूहवाची रूप में प्रयुक्त हुआ है । इसके अंतर्गत राजस्थान के विस्तृत प्रांत में बोली जाने वाली विविध बोलियों यथा जयपुरी, जोधपुरी, मालवी और मेवाती की गणना की जाती है । जिनकी जानकारी निम्न प्रकार है -

मारवाड़ी

राजस्थानी की केन्द्रीय बोली मारवाड़ी है । अत: कई विद्वान इसे राजस्थानी नाम से भी अभिहित करते हैं । यद्यपि इसका केन्द्र मारवाड़ प्राप्त है पर जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर आदि जिलों के अतिरिक्त यह भारत के हर प्रांत में बसे व्यापारियों द्वारा बोली जाती है । बीकानेरी, शेखावाटी, मेवाड़ी, बागड़ी आदि कई उपबोलियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं । मारवाड़ी में लोक-साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया है । मीराबाई के पद इस बोली में हैं।

मारवाड़ी ओकार बहुला होती है । मानक हिन्दी के आकारान्त पुल्लिंग शब्द मारवाड़ी में ओकारान्त हो जाते हैं और उनके बहुवचन परसर्ग रूप आकारान्त होते हैं जैसे घोड़ो (एकवचन), घोड़ा (बहुवचन) । मारवाड़ी में कर्म का परसर्ग 'ने' है। संबंध कारक के लिए रो, रा, री का प्रयोग होता है । सर्वनामों में कूँ (मैं), आपाँ (हम), म्हारी (हमारा), धूँ (तू), तमे या थें (तुम), थारो (तुम्हारा) का प्रयोग होता है ।

अवयवों में जद या जदै (जब), कद या कदै (कब), अठी या अठै (यहाँ), उठी या उठै (वहाँ), जठै या जठी (जहाँ), कठै या कठी (कहीं) का प्रयोग होता है ।

जयपुरी

इसका परम्परागत नाम 'ढुढारी' है । यह जयपुर के आस-पास के इलाकों में बोली जाती है । कोटा-बूँदी की हाड़ौती भी इसी की उपबोली मानी जाती है । अनेक शब्दों में 'इ' के स्थान पर 'अ' का प्रयोग होता है जैसे पडत (पंडित), कसान (किसान), दन (दिन) । मारवाड़ी की भाँति जयपुरी में भी 'ह' का लोप और व्यंजनों की क्षीण महाप्राणता की प्रवृत्ति देखने को

मिलती है जैसे सैर (शहर), रैणो-सैणो (रहना-सहना), भूक (भूख) आदि । मारवाड़ी की तरह 'न' का 'ण' उच्चारण होता है जैसे घणा (अधिक), पाणी (पानी) आदि ।

सर्वनामों में आपाँ (हम). मूँ (मुझ), म्हा (सपरसर्ग, हम), म्हारी (हमारा), थे (तुम), थी (तुम, सपरसर्ग), थारी (तुम्हारा), वो (वह), वा (उस ...) वै (वे), वीं (उन), यो (यह), ई (इस...) का प्रयो गहोता है । 'होना' क्रिया के 'छ' वाले रूप जयपुरी की विशेषता है यथा - छै (है), छो (हो), छूँ (हूँ।

शौरसेनी अपभ्रंश के उपनगर रूप से विकसित इस बोली में केवल लोक-साहित्य ही उपलव्य है । तोरावाही काठैड़ी, चौरासी आदि इसकी उपबोलियाँ हैं ।

मेवाती

यह बोली उत्तर-पूर्व राजस्थान के मेव लोगों द्वारा बोली जाती है । अलवर इसका केन्द्र है । इसके अतिरिक्त भरतपुर और गुड़गाँव के क्षेत्र में मेवाती का विस्तार है । इस बोली पर खड़ी बोली और ब्रजभाषा का व्यापक प्रभाव है । शौरसेनी अपभ्रंश के उपनगर रूप में विकसित मेवाती बोली में केवल लोक-साहित्य उपलब्ध है ।

ध्वनियों की दृष्टि से मेवाती और जयपुरी में काफी साम्य है । अन्तिम व्यंजनों में अल्पप्राणता जैसे हात (हाथ), जीब (जीभ) और विधान (बहण-बहन, थण-थन) मिलता है । चवर्ग में 'य' का आगम देखने को मिलता है जैसे व्यार (चार), पच्चास (पचास) । बाँगरू के समान कर्ता और कर्म दोनों कारकों के लिए 'ने' परसर्ग करण - अपादान के लिए ते, तें, संबंध के लिए को, का, की का प्रयोग होता है । जैसे वर्तमान काल, चले, चलूँ चलो, भूतकाल चल्यों, चल्या, चली और भविष्यत काल - चलैगो चलाँगा आदि ।

मालवी

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से राजस्थानी बोलियों में मालवी का विशेष महत्त्व है । इसके एक छोर पर बुदेलखण्डी बोली जाती है तो दूसरे छोर पर गुजराती और खानदेशी बोलने वाली आबादी बसती है। इसकी प्रमुख उपबोलियाँ, रतलामी, मन्दसौरी, देसवाली और नेमाड़ी हैं ।

मालवी की ध्वनियाँ केन्द्रीय राजस्थान से साम्य रखती है । मालवी के शब्द भण्डार पर मराठी भाषा का व्यापक प्रभाव है । जैसे संख्यात्मक शब्द ग्यारा, बारा, पंदरा, इकवीस, बावीस तेवीस आदि मराठी से साम्य रखते हैं । परसर्गो में कर्म-सम्पदान केर के', 'खे', करण का से', 'सूँ, संबंध रो, रा, री और अपादान का 'ऊँ' का प्रयोग होता है । शौरसेनी अपभ्रंश के उपनगर रूप से इस बोली का विकास हुआ है । इस बोली में पर्याप्त लोक साहित्य उपलब्ध है ।

1.6.5 पहाड़ी हिन्दी

हिमालय की उपत्यका में हिन्दी की ध्वनि एवं व्याकरण संबंधी कुछ समानता रखने वाली बोलियाँ नेपाली, गढ़वाली और कुँमाउनी हैं । डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने इन बोलियों का विकास खल्ल-अपभ्रंश से माना है तथा वे शौरसेनी और गुर्जर अपभ्रंश से प्रभावित हैं । प्रमुख बोली कुमायँनी गढ़वाली का वर्णन इस प्रकार है:

कुमायूँनी

यह कुमायूँ की बोली है । नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, चमोली और उत्तर काशी जिलें इसके क्षेत्र में आते हैं ।

कुमाँयूनी की ध्वनियाँ भी राजस्थानी से मिलती-जुलती हैं । कुमायूँनी से 'च' को श रूप में उच्चरित किया जाता है जो इसकी विशेषता है यथा - शाला (साला), शशुर (ससुर), शव (सब) आदि । ए-ओ की जगह क्रमश: या-वा का उच्चारण किया जाता है जैसे व्यालो (चेलो), क्याआ (कौआ) आदि ।

राजस्थानी और ब्रजभाषा की भाँति कुमायूँनी भी ओकारान्त भाषा है । जैसे लड़को (लड़का), रागो (राम), कालो (काला) आदि । परममें का क्रम निम्नलिखित है -र

कर्ता	-	ले
कर्म-संप्रदान	-	ले
करण	-	थे, थै
संबंध	-	क्रो, का, की
अधिकरण	-	मैं, मो ।

क्रिया के रूप जटिल है । उदाहरणार्थ सामान्य वर्तमान काल में मैं जानू भूतकाल में 'मैं गयूँ और भविष्यतकाल में 'मैं जूल' का प्रयोग होता है । अवयवों में इनकै (यहाँ), उनकै (वहाँ), जिनके (जहाँ), किनकै (कहीं), अयल (अब), अयलीं (अभी), कथली (कभी) आदि शब्दों का प्रयोग होता है। स्थानवाचक अवयवों में याँ, वाँ, जी, की का प्रयोग किया जाता है ।

जिया, कुमैयाँ, मंगोला आदि कुमायूँनी की उपबोलियाँ हैं ।

गढ़वाली

गढ़वाली बोली उत्तरप्रदेश और उत्तराखंड राज्य के मैदानी भागों के साथ-साथ पहाड़ी भागों में बोली जाती है । यह बोली गढ़वाल और टिहरी जिले, उत्तरकाशी के दक्षिणी भागों, देहरादून, नैनीताल, बिजनौर जिलों की उत्तरी बस्तियों में प्रयुक्त होती है ।

खड़ी बोली और गढ़वाली की ध्वनियों में काफी समानता है । मराठी वत्स्र्य चवर्ग से गढ़वाली के च, ज में साम्य है । मानक हिन्दी की तुलना में ये ध्वनियाँ अधिक संघर्षी हैं । पंजाबी और खड़ी बोली के समान अल्पप्राणीकरण और. आघोषीकरण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है यथा - फ्तेत (खेत). व्हत (छत), खूपसूरत (खूबसूरत), अंताज (अंदाज) । रूपों का क्रम काफी जटिल है ।

1.7 सारांश

व्यूत्पति की दृष्टि से सम्पूर्ण देश की भाषाओं के लिये उपयुक्त संज्ञा मानी जा सकती है । प्राचीन भाषाओं के इतिहास पर नजर डालने से भी ज्ञात होता है कि जनसाधारण के बीच अधिक व्यापक होने के कारण इसी भाषा का विशेष महत्व रहा है और इसी वजह से इसे उक्त संज्ञा से संबोधित किया गया लेकिन आज उसका अर्थ केवल उत्तरप्रदेश तथा उसके आसपास के

अन्य हिन्दी प्रदेशों की भाषाओं के लिए रूढ़ हो गया है । हिन्दी का जो रूप राष्ट्रीय भाषा एवं राजभाषा के रूप में गृहीत हुआ है वह रूप उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा की तलहटी तक और ग्रहीत में भागलपुर से लेकर पश्चिम में अमृतसर तक पठन पाठन से साहित्यिक और बोलियों से कार्यालयीन भाषा तक फैला है । इस विस्तृत भू-भाग का हिन्दी दरअसल बोलियों का एक समुच्चय है जिसे ध्वनि-रूप-वाक्य और शब्द संसाधन गत संरचना की दृष्टि से पश्चिमी, पूर्वी बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी वर्गो में बांट कर उनका विश्लेषण किया गया है । इन सभी के समस्त रूप एक-दूसरे के भाषा रूप तथा साहित्य को समझने में सहायक सिद्ध हुए हैं ।

संप्रेषण के सभी साधनों में से भाषा ही सर्वश्रेष्ठ साधन है । मानव एवं मानव समाज की सर्वोत्कृष्ट साधना के परिणाम स्वरूप भाषा का जन्म हुआ है । भाषा से जहाँ भावों एवं विचारों का परस्पर आदान-प्रदान होता है वहीं भाषा के द्वारा मानव का चिंतन मनन एवं सोचने का कार्य भी सम्पन्न होता है । भाषा के अभाव में मानव एवं समाज के विविध क्षेत्रों के विकास एवं प्रगति की कल्पना भी नहीं की जा सकती है । मानव-भाषा की कुछ अपनी निजी विशेषताएं एवं अभिलक्षण हैं जो उसे मानवेत्तर भाषा से अलगाते हैं ।

भाव एवं विचारों की अभिव्यक्ति का सबल माध्यम होने के बावजूद भाषा के माध्यम से मनुष्य अपने भाव या विचार छिपाने का कार्य भी कर सकता है । भाषा की प्रकृति को असहजवृतिकता कहा जाता है । भाषा में वक्ता और श्रोता की भूमिका हमेशा समान नहीं रहती । वह बदलती रहती है । बोलने पर वक्ता और सुनने पर श्रोता । बातचीत में यह भूमिकाएं बदलती रहती है । निष्कर्षत: भाषा मनुष्य का अनुपम सृजन है । अभी तक भाषा से अधिक श्रेष्ठ भाव-विचार विनिमय का साधन आविष्कृत नहीं हुआ है । वह भाषा मानव समुदाय में प्रयुक्त होती है । अत: उसका क्षेत्र समुदाय की दृष्टि से निश्चित होता है । भाषा का प्रमुख प्रकार्य संप्रेषण है अर्थात् भावों एवं विचारों का आदान-प्रदान करना ।

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भाषा संबंधी भारतीय विद्वानों के मतों पर प्रकाश डालिये ।
2. भाषा संबंधी पाश्चात्य विद्वानों के मतों पर प्रकाश डालिये ।
3. प्रमुख भाषिक अभिलक्षणों की सोदाहरण चर्चा कीजिये ।
4. पश्चिमी हिन्दी के उद्भव और विकास की संक्षिप्त जानकारी देते हुए उसकी बोलियों का विस्तृत परिचय दे ।

1.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. तेजपाल चौधरी; **भाषा और भाषा विज्ञान**, विकास प्रकाशन, प्रथम सं., 2002. कानपुर ।
2. उदयनारायण तिवारी, **हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, लोकभारती प्रकाशन,** 1998, इलाहाबाद ।
3. भोलानाथ तिवारी, **भाषा विज्ञान ।**
4. भोलानाथ तिकरी; **मानक हिन्दी का स्वरूप,** प्रभात प्रकाशन, 2004 ।

5. राम प्रकाश; **मानक हिन्दी: स्वरूप और संरचना ।**

6. डॉ. झाल्टे दंगल; **प्रयोजनमूलक हिन्दी: सिद्धाना और प्रयोग,** वाणी प्रकाशन, 2006, नई दिल्ली

7. सरयूप्रसाद अग्रवाल; **भाषा विज्ञान और हिन्दी,** लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

8. बाबूराम सक्सेना; **सामान्य भाषा विज्ञान,** हिन्दी साहित्य सम्मेलन - प्रयाग ।

9. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा; **हिन्दी भाषा का इतिहास,** हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद ।

इकाई - 2

देवनागरी लिपि की विशेषताऐं और मानकीकरण

इकाई की रुपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 देवनागरी लिपि का उद्भव और विकास

2.2.1 देवनागरी की उत्पत्ति व नामकरण

2.2.2 क्रमिक विकास

2.2.3 देवनागरी का वर्तमान स्वरूप

2.3 देवनागरी की प्रमुख विशेषताएँ और मानकीकरण

2.3.1 देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

2.3.2 देवनागरी लिपि की सीमाएँ

2.3.3 देवनागरी लिपि में सुधार के प्रयास और इसका मानकीकरण

2.4 शब्दावली

2.5 सारांश

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.7 संदर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको देवनागरी लिपि की प्रमुख विशेषताओं एवं मानकीकरण के प्रयासों से अवगत कराना है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि --

- देवनागरी लिपि की उत्पत्ति और नामकरण को जान सकेंगे ।
- देवनागरी लिपि की प्रमुख विशेषताएँ जान सकेंगे ।
- देवनागरी लिपि में सुधार और मानकीकरण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

2.1 प्रस्तावना

आप जानते हैं कि किसी समुदाय के व्यक्ति आपसी विचार-विनिमय के लिए जिन ध्वनि-संकेतों का प्रयोग करते हैं, उसे भाषा कहते हैं । आप यह भी जानते हैं कि भाषा को लिखित रूप में परिवर्तित करने का साधन लिपि है। अत: "भाषा को दृश्य रूप में स्थायित्व प्रदान करने वाले यादृच्छिक वर्ण-प्रतीकों की परम्परागत व्यवस्था लिपि कहलाती है ।" लिपि के विकास के बाद ही मनुष्य भाषा में अभिव्यक्त अपने ज्ञान को संचित कर अपनी भावी पीढ़ी को हस्तांतरित करने में सफल हुआ (हालांकि वेदों की श्रुति-परंपरा एक अपवाद है) । अत: लिपि का विकास किसी सभ्यता के विकास का भी सूचक है ।

भारत में सबसे प्राचीन लिपि-चिह्न सिंधु सभ्यता की मुहरों पर प्राप्त हुए हैं किंतु आज तक इन्हें पढ़ा नहीं जा सका है । इसके बाद भारतीय उपमहाद्वीप में विभिन्न स्थानों में स्थित प्राकृत भाषा में अशोक के शिलालेख ईसापूर्व तीसरी शती में उस विकसित ब्राह्मी लिपि के व्यापक प्रचलन के प्रमाण हैं जो उत्तर से दक्षिण तक पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में समझी जाती थी ।

यही बाहमी लिपि भारत की तमिल, तेलुगु, बांगला समेत सभी आधुनिक भारतीय लिपियों एवं सिंहली, माल्दीवी, हिंदेशियाई, खमेर, बर्मी, स्वामी जैसी विदेशी लिपियों की जननी है । देवनागरी लिपि भी इसी बादमी लिपि से विकसित हुई है जो आज हिंदी, संस्कृत, मराठी, नेपाली आदि अनेक भाषाओं की लिपि है । हमारे संविधान में भी इसी देवनागरी को राजभाषा हिंदी की लिपि स्वीकार किया गया है । इस इकाई में अब हम देवनागरी लिपि की उत्पत्ति, उसके नामकरण के बारे में जानने का प्रयास करेंगे, साथ ही यह भी जानेंगे कि इस लिपि ने कैसे अपना वर्तमान स्वरूप प्राप्त किया ।

2.2 देवनागरी लिपि का उद्भव और विकास

देवनागरी लिपि जिस ब्राह्मी लिपि से निकली है वह पूरे भारतीय भारतीय उपमहाद्वीप में थोडे-बहुत स्थानीय भेद के साथ प्रचलित थी । सन् 350 ई० के बाद इसकी स्पष्ट रूप से दो शैलियाँ हो जाती हैं- (1) उत्तरी शैली, (2) दक्षिणी शैली । ब्राह्मी की उत्तरी शैली से ही कालांतर में देवनागरी का विकास हुआ ।

2.2.1 देवनागरी की उत्पत्ति और नामकरण

चौथी सदी ईस्वी में ब्राह्मी की उत्तरी शैली से गुप्त लिपि का विकास हुआ । चौथी और पांचवीं सदी ईस्वी में गुप्त राजाओं के समय में प्रचलित होने के कारण इसका नाम गुप्त लिपि पडा । गुप्त लिपि से छठी सदी ईस्वी में कुटिल लिपि का विकास हुआ । इस कुटिल लिपि से आठवीं सदी ईस्वी के लगभग नागरी लिपि के पुराने रूप 'प्राचीन नागरी' का विकास हुआ । दक्षिणी भारत में नागरी लिपि कुछ स्थानीय विशेषताओं के साथ नदि नागरी' के नाम से प्रचलित थी । 'प्राचीन नागरी' से ही आधुनिक नागरी लिपि के साथ-साथ गुजराती, महाजनी, कैथी, मैथिली, असमिया, बंगला आदि लिपियाँ विकसित हुईं । कुछ विद्वान् मानते हैं कि कुटिल लिपि से प्राचीन नागरी तथा शारदा के अतिरिक्त एक और लिपि का विकास हुआ, जिससे कालांतर में असमिया, बंगला, मणीपुरी आदि पूर्वी अंचल की लिपियाँ विकसित हुईं । शारदा लिपि कश्मीर मे प्रचलित थी । ब्राह्मी लिपि की दक्षिणी शैली से दक्षिणी भारत की आधुनिक लिपियाँ जैसे - तमिल. तेलुगु, कन्नड आदि विकसित हुई हैं । आधुनिक देवनागरी लिपि का ब्राह्मी लिपि से उद्भव किस प्रकार हुआ? यह निम्नांकित आरेख से और अधिक स्पष्ट हो जाएगा-

ब्राह्मी लिपि → ब्राह्मी लिपि की उत्तरी शैली → गुप्त लिपि → कुटिल लिपि → प्राचीन नागरी लिपि → आधुनिक नागरी या देवनागरी लिपि

अब प्रश्न यह उठता है कि इस लिपि के 'नागरी' या 'देवनागरी' नामकरण का आधार क्या है ?

इस संबंध में विद्वानों की एक राय नहीं है । विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत इस प्रश्न को और अधिक उलझा देते हैं । ख्याति प्राप्त पुरातत्ववेत्ता और इतिहासकार पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, जो प्राचीन लिपियों के ज्ञान में भी विशेषज्ञता रखते हैं, कहते हैं कि 'नागरी' नाम कब से प्रसिद्धि में आया, यह निश्चित नहीं; परंतु तांत्रिक-काल में 'नागर नाम प्रचलित था । 'नित्याशोडशिकार्णव की 'सेतुबंध' नामक टीका का कर्ता भास्करानन्द एकार का त्रिकोण रूप 'नागर' (नागरी) लिपि में होना बताता है - "कोणत्रयवदुदभवो लेखो यस्य तत्। नागरलिप्या सांप्रदायिकैरेकारस्य त्रिकोणकार तयैव लेखनात ।"

राधेश्याम शास्त्री का मत है कि " देवताओं की मूर्तियाँ बनने के पूर्व उनकी उपासना सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी, जो कई त्रिकोण तथा चक्रों आदि से बने हुए यंत्र के, जो 'देवनगर' कहलाता था - मध्य में लिखे जाते थे । 'देवनगर' के मध्य लिखे जाने वाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालान्तर में उन-उन नामों के पहले अक्षर माने जाने लगे और 'देवनगर' के मध्य उनका स्थान होने के कारण उनका नाम 'देवनागरी' हुआ । परंतु ओझा जी इस मत को ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में अस्वीकार करते हैं ।

कुछ विद्वान् 'नागरी' लिपि का संबंध 'नागर ब्राह्मणों' से जोडते हैं । उनका मत है कि सर्वप्रथम नागर ब्राह्मणों के मध्य प्रचलित होने के कारण इस लिपि का नान 'नागरी' पड़ा । इस मान्यता का कोई ऐतिहासिक आधार या प्रमाण नहीं है, अत: इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता, यह एक अटकल मात्र है ।

कुछ विद्वान् नागलिपि शब्द से नागरीलिपि शब्द का उद्भव मानते हुए अनुमान करते हैं कि प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ 'ललितविस्तर' में उल्लिखित नागलिपि नागरी लिपि से अभिन्न है । किंतु, डॉ. एल. डी. वार्नेट के अनुसार उक्त दोनों लिपियों में कोई संबंध नहीं है । साथ ही, नागलिपि शब्द से 'नागरी लिपि' शब्द की रचना को सिद्ध नहीं किया जा सका है ।

एक अनुमान यह भी है कि अपने प्रारंभिक काल में नागरी लिपि का प्रयोग नगरों में होने के कारण यह लिपि 'नागरी' कहलाने लगी । यह मत तर्कसंगत तो प्रतीत होता है किंतु इस प्राक्कल्पना को सिद्ध करने हेतु कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं ।

कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि जब 'देववाणी' संस्कृत इस लिपि में लिखी जाने लगी, तभी से इस लिपि का नाम 'देवनागरी' पड़ गया । इस मान्यता से 'देक् शब्द की सार्थकता पर तो रोशनी पड़ती है, मगर 'नागरी' शब्द की सार्थकता सिद्ध करने में कोई सहायता नहीं मिलती ।

एक मत यह भी है कि 'देवनगर' काशी में प्रचलित होने के कारण यह लिपि 'देवनागरी' कहलाई । एक अन्य मत स्थापत्य की शैलियों पर भी आधारित है । इस मत के अनुसार स्थापत्य की 'नागर शैली' में चतुर्भुजी आकृतियाँ प्रधानत: होती हैं; इसी प्रकार 'नागरी लिपि' में

भी चतुर्भुजी अक्षरों (प, भ, म, ग) की समानता के कारण इसे 'नागरी' कहा गया । यह मत भी एक अनुमान मात्र है ।

इस संबंध में डॉ. अनंत चौधरी का मत है कि आठवीं-नवीं सदी ई० में कुटिल लिपि का सर्वप्रथम परिष्कार पाटलिपुत्र नगर के नागरों अर्थात् चतुर पंडितों के द्वारा हुआ होगा । उस युग में 'नगर' शब्द पाटलिपुत्र के लिए पर्याय बन गया था । इस प्रकार पाटलिपुत्र नगर के नागरों अर्थात् चतुर पंडितों ने कुटिल लिपि का जो परिष्कृत रूप प्रस्तुत किया होगा, उसे कुटिल लिपि के विपरीत सब प्रकार से सुंदर, पूर्ण एवं लेखन के उपयुक्त समझकर जनसमाज ने 'नागरी' (अर्थात् 'नगर' के नागरों की सर्वगुण आगरी लिपि) कहकर सम्मानित किया होगा । फिर जब पंडितों ने देववाणी संस्कृत के आर्षग्रथों को प्राचीन लिपि से हटाकर, इस नवीन लिपि में ढाला होगा, तो 'देववाणी के साम्य पर इस लिपि को भी 'देवनागरी' कहा जाने लगा होगा । यह मत पाँचवे और छठे मत को ही नए ढंग से प्रस्तुत करता है ।

इन अटकलबाजियों और ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में असिद्ध अनुमानों से परेशान आधुनिक विद्वान् किसी ठोस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाते । डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इस लिपि के लिए 'देवनागरी' या 'नागरी' नामकरण के कारण वस्तुत: अनिश्चित हैं । इसी प्रकार डॉ. बाबूराम सक्सेना भी मानते हैं कि 'नागरी' नाम की व्यूत्पति का अभी तक निश्चय नहीं हो सका है ।

देवनागरी लिपि को कई बार नागरी, नागर, देवनागर और हिंदी लिपि भी कहा जाता है । दक्षिण भारत में संस्कृत लिखने के लिए प्रयुक्त देवनागरी लिपि की एक विशेष शैली को 'नन्दिनागरी भी कहा जाता है । देवनागरी को 'हिंदी लिपि' कहना भ्रामक प्रयोग है क्योंकि इरा लिपि में हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत, मराठी, नेपाली आदि कई भाषाएँ लिखी जाती हैं । देवनागरी लिपि के लोक में व्यापक प्रचलन को रेखांकित करते हुए आचार्य विनोबा भावे ने इसे लोकनागरी नाम दिया । इन सभी नामों के बावजूद 'नागरी'. एवं 'देवनागरी' नाम सबसे अधिक प्रचलित हैं ।

2.2.2 क्रमिक विकास

आप पूर्व में पढ़ चुके हैं कि देवनागरी लिपि का मूल ब्राह्मी लिपि में है । ब्राह्मी लिपि से ही गुप्त लिपि और कुटिल लिपि जैसी लिपियाँ विकसित हुईं । तदनंतर प्राचीन नागरी और फिर आधुनिक नागरी का विकास हुआ । आधुनिक नागरी पर भी फारसी लिपि और अंग्रेजी का बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पडा है । सबसे पहले हम नागरी लिपि के विकास के प्रथम चरण का अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार एवं किन-किन रूपों से गुजरते हुए ब्राह्मी लिपि के अक्षरों एवं अंकों से नागरी लिपि के अक्षर और अंक विकसित हुए हैं । छापाखाने के आविष्कार से पहले लिपि में क्रमश: हुए ये परिवर्तन स्वाभाविक भी थे । केवल 14 अक्षरों वाले पिपरिया के छोटे से अभिलेख को अगर छोड़ दें तो ब्राह्मी लिपि के प्राचीनतम प्रमाण अशोक के शिलालेख हैं; इसलिए नागरी वर्णमाला के अक्षरों और नागरी अंकों के विकास के अध्ययन की हमारी यात्रा की शुराआत अशोक के शिलालेखों से होती है ।

ब्राह्मी से नागरी में विभिन्न अक्षरों के रूपांतरण को दर्शाने वाली अग्रांकित तालिका का अध्ययन करने पर आप पायेंगे कि अशोक के शिलालेखों के अक्षर वर्तमान नागरी लिपि-चिह्नों की अपेक्षा अधिक सरल थे । उनमें शिरोरेखा का अभाव था । आगे चलकर तरापूर्ण, धारावाहिक लेखन तथा अक्षरों को नेत्राकर्षक बनाने के निरन्तर प्रयास के कारण मूल अक्षरों की आकृति में धीरे-धीरे अनेक प्रकार के परिवर्तन होते गए; इसी कारण एक ही मूल लिपि ब्राह्मी से स्थान-भेद से सभी आधुनिक भारतीय लिपियों का विकास हुआ जिनमें देवनागरी भी एक है ।

जैसा कि आपको पूर्व में बताया जा चुका है कि लगभग इन सभी अक्षरों का प्रथम रूप वह है जो अशोक के शिलालेखों में मिलता है । इनके विकास के आगामी रूपों को भी अन्य परवर्ती शिलालेखों, ताम्रपत्रों हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर बनाया गया है । इनमें से हम एक अक्षर 'क' के विकास की कहानी को समझने का प्रयास करते हैं

नागरों-अक्षरों के विकास-कूम को तालिका

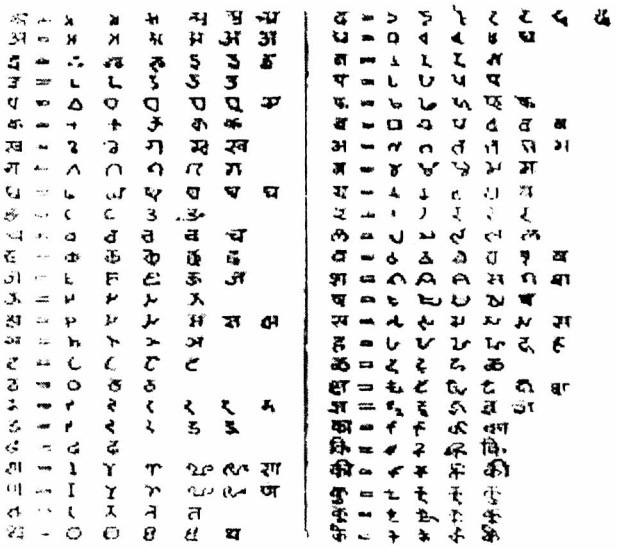

'क' - प्रथमत: जो अंग्रेजी के धनात्मक चिह्न से मिलता-जुलता ब्राह्मी लिपि का चिह्न है; उसे अशोक के शिलालेखों से ग्रहण किया गया है । इसी अक्षर के रूपांतरण से बने दूसरे रूप में शिरोरेखा बनाने का प्रयास किया गया है तथा बीच की आड़ी लकीर को झुका दिया गया है । तीसरे रूप में बीच की लकीर को कुछ और अधिक झुका दिया गया है । यह रूप कलचुरी राजा कर्णदेव के ताम्रपत्र के लेखों से गृहीत है । चौथा और पाँचवां रूप भी अनेक परवर्ती शिलालेखों और हस्तलिखित पुस्तकों में पाया जाता है । आखिरी रूप आधुनिक नागरी का आपका चिरपरिचित अक्षर है ।

देवनागरी लिपि के अक्षरों के समान ही इसके. अंकों का विकास भी ब्राह्मी (लिपि के प्राचीन अंकों से ही हुआ है । अंको के विकास को दो चरणों में बांटा जा सकता है - इनमें से प्रथम चरण में व्यवहृत अंक आधुनिक अंकों से आकृति में तो भिन्न थे ही; उस समय शून्य का भी प्रयोग नहीं होता था । दहाई, सैकड़ा, हजार आदि के लिए पृथक्-पृथक् चिह्न थे । द्वितीय चरण में अंकों के प्रयोग की नवीन शैली प्रचलित हुई जिसमें सबसे क्रांतिकारी बात

शून्य का प्रयोग था; जिसने केवल भारत ही नहीं पूरी दुनिया के गणित-शास्त्र को लाभान्वित किया । दशमलव अंक-प्रणाली का मूल आधार शून्य ही है । अंको की इस नवीन शैली का प्रचलन कब से आरंभ हुआ? इसकी कोई निश्चित तिथि तो ज्ञात नहीं है किंतु प्राचीन शिलालेखों तथा दानपत्रों में छठी शताब्दी ईस्वी के आस-पास तक प्राचीन शैली के अंक ही मिलते हैं । साथ ही एक रोचक तथ्य यह भी है कि 505 ई० के वराहमिहिर द्वारा रचित पंचसिद्धांतिका जैसे ग्रंथों में शून्य सहित नवीन शैली के अंकों का प्रयोग हुआ है । भारत में ब्राह्मी लिपि के अंकों से विकसित नवीन शैली के अंकों को अरबों ने भी अपनाया और अरबों के माध्यम से इनका प्रचार पूरे यूरोप में हो गया । भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप को ही आज भारत सरकार द्वारा मान्यता दी गई है । देवनागरी अंकों के विकास को आप निम्न तालिका द्वारा आसानी से समझ सकते हैं -

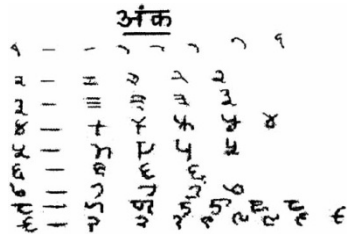

2.2.3 देवनागरी का वर्तमान स्वरूप

अभी तक आप यह जान चुके हैं कि किस प्रकार ब्राह्मी लिपि से देवनागरी लिपि के अक्षरों का विकास हुआ है? अक्षरों के पूर्व में उल्लिखत रूपांतरणों के अतिरिक्त भी अन्य भाषाओं के प्रभाव से देवनागरी लिपि में उल्लेखनीय प्रभाव पड़े हैं । उनमें से कुछ प्रमुख तथ्य निम्नानुसार हैं-

1. फारसी लिपि के प्रभाव से देवनागरी लिपि में भी नुक्ते का प्रयोग होने लगा है । जैसे - ड-ड़, ढ-ढ़, क-क़, ख-ख़, ग-ग, ज-ज, फ-फ़ ।
2. परंपरागत रूप से लिखे जाने वाले अ वर्ण के स्थान पर अ का प्रयोग, 'ल' का प्रयोग, 'अई', 'मु' जैसे स्वर-प्रयोग 'मराठी' का प्रभाव है ।
3. कभी-कभी कुछ लोगों द्वारा शिरोरेखा के बिना देवनागरी अक्षरों का लिखा जाना गुजराती लिपि का प्रभाव है ।
4. अंग्रेजी भाषा की ध्वनियों के स्पष्ट अंकन के लिए चंद्राकार चिह्न का प्रयोग अंग्रेजी भाषा का स्पष्ट प्रभाव है । जैसे - आफिस, कॉलेज आदि।
5. पूर्ण-विराम को 'छोड़कर आधुनिक देवनागरी के सभी विराम-चिह्न अंग्रेजी से लिए गए हैं । कुछ व्यक्ति एवं कई हिंदी समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ तो पूर्ण-विराम की जगह परंपरागत रूप 'खडी पाई' का प्रयोग न का अंग्रेजी की तरह बिंदु का ही प्रयोग करते हैं ।.
6. उच्चारण के प्रति अतिसतंर्क कुछ व्यक्ति हस्व ए, हस्व ओ के लिए एँ, ऑ का भी प्रयोग करने लगे हैं ।

इस प्रकार विभिन्न भाषाओं एवं उनकी ध्वनियों के प्रभाव से देवनागरी लिपि प्रभावित हुई है । टंकण की सुविधा और अन्य भाषा-भाषियों के लिए लिपि को सरल बनाने के लिए भी आधुनिक काल में इस लिपि में अनेक परिवर्तन हुए हैं; जिनके बारे में हम आगे विस्तार से अध्ययन करेंगे । आधुनिक देवनागरी की सर्वस्वीकृत वर्णमाला है -

अ,आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अ:

क, ख़, ग., घ, ड़, च छ, ज़, झ, त्र, ट; ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म

य र, ल, व, श, स, ह, ड़, ढ़, ल, क्ष, त्र, ज्ञ, श्र

2.3 देवनागरी की प्रमुख विशेषताएँ और मानकीकरण

देवनागरी लिपि की प्रामाणिक वर्णमाला से आप परिचित हो चुके हैं । आप यह भी जान चुके हैं कि इस विकास मान लिपि ने किस प्रकार फारसी और अंग्रेजी जैसी अन्य भाषाओं में प्रयुक्त विशेष ध्वनियों की प्रकट करने के लिए भी अपने आपको समर्थ बना लिया है । अत: विभिन्न भाषाओं की ध्वनियों को प्रकट करने में समर्थ इस लिपि को विद्वान सबसे वैज्ञानिक लिपि स्वीकार करते हैं । आइजक पिटमैन स्वीकार करते है कि "संसार की कोई लिपि यदि सर्वाधिक पूर्ण है तो वह एकमात्र देवनागरी ही है । "आचार्य विनोबा भावे और महापंडित राहुल सांकृत्यायन जैसे विद्वान् भी देवनागरी को सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि मानते हैं । आगे हम इस संबंध में विस्तृत अध्ययन करेंगे ।

2.3.1 देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

आप जानते हैं कि विद्वानों ने देवनागरी को सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि माना है । अब हम देवनागरी लिपि की उन विशेषताओं की चर्चा करेंगे जिनके कारण इसे वैज्ञानिक माना जाता है ।

1. देवनागरी लिपि मे एक ध्वनि के लिए एक हे चिह्न है। उदाहरणत: इसमे 'क़' उच्चारण मे एक ही लिपि-चिह्न 'क' द्वारा लिखा जाता है चाहे वह शब्द में आदि मध्य या अंत कहीं भी प्रयुक्त हो; जैसे- कमल, मकड़ी, चमक में । इसके विपरीत रोमन लिपि में इसके लिए K,C,Ch,Ck,X,Q आदि अनेक लिपि-चिह्न प्रयुक्त होते हैं ।
2. वैज्ञानिक लिपि की दूसरी विशेषता यह है कि उसमें एक लिपि-चिह्न के लिए एक ही ध्वनि हो। उदाहरणत: देवनागरी के 'उ' लिपि-चिह्न का उच्चारण सदैव ह्रस्व 'उ' ही किया जाता है जबकि रोमन लिपि के लिपि-चिह्न 'न्' का उच्चारण स्थान-भेद से क-हीं अ, कहीं 'उ', कहीं 'यू' अनेक प्रकार से किया जाता है; जैसे- cut, put और unity मे।
3. देवनागरी के लिपि-चिह्न सदैव एकरूप रहते हैं, चाहे वे वाक्य या शब्द में कहीं भी प्रयुक्त हों; जबकि रोमन में 'केपिटल' और स्माल दो रूपों में चिह्न लिखे जाते हैं ।
4. देवनागरी लिपि में जितनी ध्वनियाँ हैं उन्हें व्यक्त करने के लिए इसमें पर्याप्त लिपि-चिह्न हैं। जैसा आप पूर्व में जान चुके हैं कि ज, फ़, ऑ जैसी विदेशी ध्वनियों को भी

व्यक्त करने के लिए इसने अपने लिपि-चिह्न विकसित कर लिए हैं । इसके विपरीत रोमन लिपि में 'ख', 'घ', 'छ', 'त' जैसी महाप्राण ध्वनियों के लिए पृथक लिपि-चिह्न न होने के कारण 'h' का अल्पप्राण के साथ लिखने की व्यवस्था की गई है । जैसे - kh,gh,ch,th,dh आदि में ।

5. वैज्ञानिक लिपि के रूप में देवनागरी लिपि की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी स्पष्टता है जबकि रोमन लिपि में घसीट कर लिखे जाने पर अस्पष्टता के कारण भ्रम उत्पन्न हो जाता है । पहले 'ख' और 'रव' में जैसे कुछ अक्षरों में कुछ भ्रम हो जाता था; किंतु अब उसे सुधार लिया गया है ।
6. विभिन्न वर्णों का पाणिनि ने प्रयत्न, स्थान, मुखरता, मात्रा, घोषत्व की दृष्टि से जो वर्गीकरण किया है, वह पूर्णत: वैज्ञानिक है ।
7. आशु-लेखन (शॉर्टहैंड) के लिए भी हिंदी-नागरी सर्वथा उपयुक्त है ।
8. देवनागरी लिपि वर्णात्मक न होकर आक्षरिक है । अर्थात् इसमें व्यंजन और स्वर वर्ण में संयुक्त रूप से विद्यमान रहते हैं । वर्णात्मक न होते हुए भी इसमें विश्लेषण आसानी से संभव है। जैसे - 'चन्द्र' =च अ न् द र अ।
9. देवनागरी की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें प्रत्येक वर्ण का एक निश्चित मूल उच्चारण है । उदाहरणत: 'अ' के लिए केवल 'अ' है, जबकि रोमन में 'अ' के लिए 'ए','व' के 'डब्ल्यू में एक साथ पाँच वर्णों के उच्चारण वाला लिपि-चिह्न है ।
10. देवनागरी लिपि की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें जो लिखा जाता है, वही पढ़ा जाता है; और जो उच्चारण किया जाता है वही लिखा भी जाता है । अत: अनुमान या अटकल लगाने की आवश्यकता नहीं होती । जबकि रोमन में एक ही लिखित शब्द का उच्चारण स्थान-भेद से अलग-अलग होने से कई बार भ्रम की स्थिति हो जाती है; जैसे - तमक स्थान भेद से वर्तमान काल और भूतकाल दोनों रूपों में प्रयुक्त होता है जिनका उच्चारण क्रमश: 'रीड' और 'रेड' है ।
11. देवनागरी लिपि के वर्ण-विन्यास से संबंधित कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार हैं -
    - इसमें स्वर और व्यंजन पृथक्-पृथक् हैं ।
    - इसमें स्वर प्रारंभ में हैं और व्यंजन बाद में ।
    - स्वरों का क्रम तथा व्यंजनों का क्रम पूर्णत: उच्चारण स्थान के क्रम से है ।
12. देवनागरी लिपि में प्रयुक्त शिरोरेखा से पूरे शब्द को एक इकाई के रूप में देखने और उच्चरित करने में स्पष्टता और सुविधा रहती है ।
13. देवनागरी लिपि की मात्राओं की आकृति में भी वैज्ञानिकता है । इसमें हस्व स्वरों की मात्राएं बाएं हाथ की ओर चलती हैं और दीर्घ स्वरों की मात्राएं सीधे हाथ की ओर ।
14. इसमें संयुक्त वर्णों की रचना करने की अद्भुत क्षमता है । जिन संयुक्त वर्णों की आवृत्ति अधिक है, उन्हें स्वतंत्र रूप प्रदान कर दिया गया है; जैसे - क्ष, त्र, ज्ञ । साथ ही इन्हें वर्णमाला के अंत में जोड़ लिया गया है ।

15. इसकी वर्णमाला और वर्तनी सीख लेने पर अलग से हिज्जे (स्पेलिंग) याद करने की आवश्यकता नहीं होती है ।
16. ब्राह्मी लिपि से उद्भूत होने के कारण इसकी सभी आधुनिक भारतीय लिपियों से कुछ समानताएँ हैं । जैसे इन सभी लिपियों में वर्णमाला का क्रम समान है ।
17. इसमें प्रत्येक स्वर वर्ण के लिए अलग से स्वतंत्र मात्रा-चिह्न निश्चित हैं, जिनके प्रयोग के द्वारा स्वरयुक्त व्यंजनों अर्थात् अक्षरों को उच्चारण के अनुरूप ही स्वतंत्र अक्षरों में लिपिबद्ध किया जा सकता है ।
18. उपर्युक्त गुण के कारण इसमें कम स्थान में अधिक शब्द लिखे जा सकते हैं ।
19. देवनागरी लिपि में लिखे गए शब्दों के प्रत्येक वर्ण का उच्चारण अनिवार्य है ।
20. इसी कारण लिखने और पढ़ने में यह स्पष्टता लिए हुए है ।
21. इसके अक्षर सुघड़ होने से नेत्राकर्षक हैं ।
22. भारत का प्राचीन वैभवशाली साहित्य इसी लिपि में लिपिबद्ध है ।
23. यह लिपि वैज्ञानिक पद्धति से निर्मित होने के कारण सरलता से सीखी जा सकती है ।
24. थोड़े-बहुत परिवर्तन से ही संसार की कोई भी भाषा इस लिपि में लिखी जा सकती है ।
25. इसी कारण यह भारत की सभी भाषाओं को जोड़ने वाली लिपि के रूप में भारत की सांस्कृतिक एकता की वाहक बन सकती है और विभिन्न भाषा-भाषियों के मध्य पुल का काम कर सकती है ।
26. इसी गुण के कारण यह विदेशी भाषाओं के लिए भी आसानी से अपनाई जा सकती है और अंतर्राष्ट्रीय लिपि बनने की भी योग्यता रखती है ।
27. यह केवल हिंदी भाषा की लिपि के रूप में ही सीमित नहीं है, वरन् संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, नेपाली आदि अनेक भाषाओं की लिपि के रूप में सफलतापूर्वक प्रयुक्त हो रही है ।
28. इस लिपि में विभिन्न स्थानीय अनुनासिक ध्वनियों के लिए अलग-अलग स्वतंत्र वर्ण हैं जैसे -ङ.,ण,न्,म् आदि जो किसी भी अन्य लिपि में इतनी संख्या में नहीं हैं । विभिन्न मात्रा में स्वरों के नासिक्यीकरण (नेजलाइज़ेशन) के लिए, अनुस्वार और चंद्रबिंदु जैसे चिह्नों का होना इसको और अधिक वैज्ञानिक बना देता है ।
29. यह ध्वन्यात्मक तथा स्वनिमात्मक प्रतिलेखन तथा लिप्यंतरण के लिए पर्याप्त अनुकूल है ।
30. संस्कृत और हिंदी साहित्य में कुछ ऐसे अलंकार हैं जो केवल देवनागरी लिपि में ही लिखे जा सकते हैं । उदाहरणत: चित्रालंकारों के पद्मबंध, खड्गबंध, मुरजबंध, गोमूत्रिकाबंध आदि रोमन समेत किसी भी अन्य लिपि में नहीं लिखे जा सकते । जैसे केशवदास का निम्नलिखित छंद बाएँ से दाएँ या दाएँ से बाएँ किसी भी ओर से पढ़ा जा सकता है; जबकि इसके रोमन लिप्यंतरण में यह विशेषता नहीं मिलेगी -

    मा सम मोह सजै बन बीन नवीन बजै सह मोम समा ।
    मार लतानि बनावति सारि रिसाति बनावनि ताल रमा ।।

मानव ही रहि मोरद मोद दमोदर मोहि रही वनमा ।
माल बनी बल केसवदास सदा बसकेल बनी बलमा ।।

31. प्राविधिक और वैज्ञानिक उपयोग की दृष्टि से भी देवनागरी लिपि सर्वथा समर्थ है ।

2.3.2 देवनागरी लिपि की सीमाएँ

देवनागरी लिपि के वैज्ञानिक गुणों का विरोध करने वाले व्यक्ति प्राय: हिंदी-विरोधी और अंग्रेजी-रोमन समर्थक शिविर के है जो टंकण आदि में देवनागरी के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का हवाला देकर अंग्रेजी को ही एकमात्र राजभाषा के रूप में प्रचलित रखना चाहते हैं । फिर भी कुछ ऐसी व्यावहारिक कठिनाइयाँ अवश्य हैं जिनके कारण देवनागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि होते हुए भी शत प्रतिशत वैज्ञानिक नहीं बन पाई है । देवनागरी लिपि के विरुद्ध दिए गए प्रमुख तर्क निम्नानुसार हैं -

1. देवनागरी रोमन की अपेक्षा क्लिष्ट लिपि है ।
2. इसके माध्यम से लिखने में रोमन की अपेक्षा त्वरा कम है और अधिक समय लगता है क्योंकि इसमें बार-बार प्रवाह भंग होता है ।
3. देवनागरी में वर्णो की संख्या अधिक होने से, इसे सीखने एवं इसके टंकण, मुद्रण आदि में कठिनाई होती।
4. इस लिपि में शिरोरेखा का प्रयोग करने से लेखन में अतिरिक्त श्रम करना पडता है ।
5. इसमें अनेक अनावश्यक वर्ण हैं जिनका शुद्ध उच्चारण संभव नहीं है । जैसे - ऋ, लृ, न, - श आदि ।
6. देवनागरी लिपि के कई वर्णों के रूपों में बहुत अधिक समानता होने से उनमें परस्पर भ्रम हो जाता है । जैसे - 'ख' और 'रव' में, 'ध' और 'घ' में, 'भ' और 'म' में । इस अस्पर्शता के कारण देवनागरी को वैज्ञानिक लिपि नहीं कहा जा सकता ।
7. संयुक्ता वर्णों के लिए स्वतंत्र वर्ण अनावश्यक है । इससे वर्णों की संख्या बढ़ती है । जैसे - वश के लिए क्ष, त्र के लिए त्र, ज्य के लिए ज्ञ, श्र के लिए 'श्र' आदि के प्रयोग में ।
8. देवनागरी में अ झ, ण, क्ष आदि वर्णों को लिखने के दो-दो रूप प्रचलित हैं जिससे उलझनें उत्पन्न होती हैं और यह तथ्य वैज्ञानिकता के विरुद्ध है ।
9. इस लिपि में अनुस्वार और चंद्रबिंदु के प्रयोग का कोई निश्चित नियम नहीं है । ऐसा ही अनुस्वार अनुनासिक व्यंजनों के प्रयोग में भी है ।
10. देवनागरी लिपि में 'र' के चार रूप हैं - र,^,/, और '। जबकि किसी भी वैज्ञानिक लिपि की विशेषता यह होती है कि उसमें एक ध्वनि के लिए एक ही लिपि-चिह्न हो ।
11. देवनागरी लिपि में वर्णों के संयोग दर्शाने की कोई निश्चित पद्धति नहीं है । कभी तो वर्णों का संयोग आमने-सामने होता है, जैसे - क्क, च्च, क्क आदि में कभी यह संयोग ऊपर-नीचे होता है, जैसे - तु, द्ध, ट्ट, प्र आदि में कभी-कभी तो इसका उल्टा भी हो जाता है, जैसे - कर्म, धर्म आदि में पूर्व वर्ण 'र' दूसरे वर्ण के ऊपर चला जाता है ।

12. देवनागरी लिपि में स्वरों के लिए दो- लिपि-चिह्नों का प्रयोग किया जाता है - एक तो वर्ण के रूप में, दूसरा मात्रा के रूप में । जैसे - आ -।, इ -, ई -, उ -, ऊ -, ऋ - हु, ए -ए, ऐ - एए, ओ - ', औ - ' आदि में ।
13. देवनागरी लिपि में मात्राएँ वर्ण के आगे, पीछे, ऊपर, नीचे सभी ओर लगती हैं जिससे टंकण और मुद्रण में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं । अत: यह अवैज्ञानिक है ।
14. देवनागरी लिपि में 'इ' -की मात्रा () वर्ण से पहले लगती है, जो ध्वनि-विज्ञान की दृष्टि से उचित नहीं है क्योंकि यह ध्वनि बोली तो पहले जाती है ।
15. इस लिपि में सभी स्वरों के लिए स्वतंत्र वर्णों का प्रयोग किया जाता है; जबकि 'अ' के अतिरिक्त अन्य स्वरों के लिए यह अनावश्यक है । अन्य स्वरों का काम 'अ' में विभिन्न मात्राएँ लगाने से भी चल सकता है, जैसे - आ, अइ, अई, अउ, अऊ, अए, अएए, ओ, ओ आदि में ।
16. देवनागरी लिपि ध्वनि-विश्लेषण की दृष्टि से रोमन लिपि के समान वैज्ञानिक नहीं है ।
17. देवनागरी लिपि में लिखते समय बार-बार हाथ उठाना पड़ता है, कभी मात्राओं के अंकन के लिए, कभी अनुस्वार और चंद्रबिंदु के -प्रयोग के लिए, सबसे अधिक शिरोरेखा लगाने के लिए और विराम-चिह्नों के प्रयोग के लिए भी । अत: इस लिपि में लिखते हुए गति कम रहती है और मेहनत भी अधिक पड़ती है।
18. देवनागरी में पारंपरिक रूप से कई हिंदीतर भारतीय भाषाओं एवं विदेशी भाषाओं की कई ध्वनियों का अभाव है, जैसे अंग्रेजी के ' और 'थ' की ध्वनि का ।
19. देवनागरी लिपि का स्वरूप कोड-वर्ड्स, शॉर्ट-हैंड, तार के मोर्स-कोड एवं टेलीप्रिंटर के अनुकूल नहीं है।
20. देवनागरी -लिपि में मुद्रण के लिए कंपोजिंग के लिए अधिक समय लगता है क्योंकि एक पंक्ति के लिए तीन-तीन पंक्तियाँ कंपोज करनी पडती हैं। इससे श्रम, समय स्थान और धन का अपव्यय होता है ।
21. देवनागरी लिपि के टंकण' में भी रोमन की अपेक्षा अधिक समय लगता है । इसके टंकण-यंत्र में अधिक कुंजियाँ लगानी पड़ती हैं । टंकण-यंत्र में सभी प्रकार के संयुक्ताक्षरों के लिपि-चिह्नों की कुंजियाँ तो आ भी नहीं पातीं ।

2.3.3 देवनागरी लिपि में सुधार के प्रयास और इसका मानकीकरण

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता पर प्रश्न उठाने वाले उपर्युक्त आक्षेपों में से अधिकांश इस लिपि की वैज्ञानिकता पर आक्षेप नहीं हैं वरन् उसके टंकण और मुद्रण में आने वाली कठिनाइयों का लेखा-जोखा मात्र है । आज कंप्यूटर के बढ़ते अनुप्रयोग से टंकण और मुद्रण से संबंधित उपर्युक्त कठिनाइयाँ अब लगभग अप्रासंगिक हो चुकी हैं । फिर भी आजादी के पहले भी और विशेषत: बाद में टंकण, मुद्रण की सुविधा और 'हिंदीतर भाषा-भाषियों को हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि को सीखने में सरलता के लिए समय-समय पर इसमें सुधार के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं; इनमें सरकारी और गैर-सरकारी दोनों तरह के प्रयास सम्मिलित हैं ।

हमारे स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रभाषा हिंदी के साथ-साथ देवनागरी लिपि का भी प्रचार-प्रसार पूरे देश को एकसूत्र में बांधकर उसे एक राष्ट्र के रूप में खड़ा करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता थी । अत: पूरे देश द्वारा सीखने में इसे सरल बनाने और सरलता से मुद्रण के योग्य बनाने का कार्य कांग्रेस एवं अन्य राष्ट्रप्रेमी संस्थाओं की प्राथमिकता बन गया था । देश के अहिंदी-भाषी प्रांतों में भी देवनागरी लिपि के प्रचार-प्रसार का प्रयत्न किया गया । देवनागरी लिपि के प्रचार-प्रसार के उस समय दो उद्देश्य थे - एक तो राष्ट्रभाषा हिंदी की लिपि के रूप में और दूसरे स्तर पर हिंदीतर भाषाओं के लिए प्रस्तावित सार्वदेशिक लिपि के रूप में क्योंकि सभी भारतीय भाषाओं के बीच आदान-प्रदान में उनकी भिन्न-भिन्न लिपियाँ प्रमुख बाधा के रूप में महसूस की जा रहीं थी ।

भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय ने स्वयं बंगाल के होते हुए भी राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी और इसकी लिपि के रूप में देवनागरी के प्रयोग को प्रोत्साहित किया । इसी कड़ी में हिंदीतर भाषा-भाषी प्रांत के दूसरे महापुरुष स्वामी दयानंद सरस्वती थे जिनकी मातृभाषा गुजराती होते हुए भी उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश' हिंदी भाषा में और इसे देवनागरी लिपि में प्रकाशित करवाया । इनके बाद में केशवचंद्र सेन, भूदेव मुखर्जी, लाला हंसराज, स्वामी श्रद्धानंद, लोकमान्य तिलक, पं. मदनमोहन मालवीय, कृष्ण स्वामी अय्यर, महात्मा गांधी, काका कालेलकर, पुराषोत्तमदास टंडन, विनोबा भावे जैसे राष्ट्रसेवियों ने हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के सुधार और प्रचार-प्रसार का कार्य राष्ट्रीयता के प्रचार-प्रसार के कार्य के रूप में किया । उल्लेखनीय बात यह है कि इन महापुरुषों में से अधिकांश मूलत: हिंदीतर भाषा-भाषी प्रांतों के थे । राष्ट्र की एकता के एक घटक के रूप में देवनागरी लिपि की भूमिका को रेखांकित' करते हुए महात्मा गांधी ने 'नवजीवन' (दिनांक 21.07.1927 ई०) में लिखा था "सचमुच मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भारत की तमाम भाषाओं के लिए एक ही लिपि का होना फायदेमंद है और वह लिपि देवनागरी ही हो सकती है । "

राष्ट्रीयता से सीधे तौर पर जुडे होने के कारण हिंदी भाषा- के साथ-साथ देवनागरी लिपि के प्रचार-प्रसार के लिए कई स्वतंत्र संस्थाओं की स्थापना हुई एवं कई पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया गया । इन संस्थाओं में काशी की 'नागरी प्रचारिणी सभा' सबसे पुरानी और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है । इसकी स्थापना जुलाई 1893 ई० में हुई । इसका उद्देश्य तो इसके नाम से ही स्वत: स्पष्ट है । इसके अतिरिक्त 10 अक्टूबर 1910 ई० में 'हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' की स्थापना हुई । सन् 1918 ई० में स्थापित 'हिंदी प्रचार सभा' (मद्रास), सन् 1936 ई० में स्थापित राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' (वर्धा) जैसी संस्थाओं ने भी देवनागरी लिपि के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया । हिंदी भाषा की लिपि के रूप में तो देवनागरी लिपि में सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ । किंतु विभिन्न हिंदीतर भाषाओं की लिपि के रूप में देवनागरी का प्रचार करने की दृष्टि से शारदाचरण मित्र द्वारा 19०7 में आरंभ मासिक पत्रिका देवनागर विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इसी प्रकार बाबू रामानंद चटर्जी द्वारा प्रकाशित पत्र 'चतुर्भाषी' में हिंदी, गुजराती, मराठी और बँगला, इन चारों भाषाओं के लेख देवनागरी लिपि में

प्रकाशित किए जाते थे । दुर्भाग्य से इन पत्रिकाओं का जीवनकाल अल्प रहा । स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश के प्रथम राष्ट्रपति डी. राजेन्द्र प्रसाद के संरक्षण में 'देवनागर' का त्रैमासिक पत्रिका के रूप में पुन: प्रकाशन का प्रयत्न हुआ, किंतु यह प्रयत्न भी दीर्घजीवी न हो सका ।

ऊपर आप पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार विभिन्न विद्वानों और संस्थाओं ने देवनागरी का प्रचार-प्रसार किया । अब हम यह जानेंगे कि इनके द्वारा देवनागरी के सुधार और मानकीकरण के लिए क्या प्रयास किए गए? इनमें कुछ प्रमुख प्रयास निम्नानुसार हैं -

1. देवनागरी में सुधार का पहला प्रयत्न महाराष्ट्र के सावरकर भाइयों द्वारा किया गया । इन्होंने अ आ, इ ई, उ ऊ आदि विभिन्न स्वरों के लिपि-चिह्नों के स्थान पर अ में विभिन्न मात्राएँ लगाकर 'अ' स्वर की बारहखड़ी (अ आ, अइ, अई, अउ, अऊ) आदि प्रचलित करने का प्रस्ताव रखा ।
2. महात्मा गाँधी की अध्यक्षता में 'हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' के इन्दौर में हुए 24 वें अधिवेशन में गाँधी जी द्वारा दी गई प्रेरणा के फलस्वरूप काका कालेलकर के संयोजन में, देवनागरी लिपि- सुधार-उपसमिति संगठित हुई । इस समिति ने व्यापक शोध के बाद 5 अक्टूबर 1941 ई० की अपनी बैठक में 14 प्रस्ताव पारित किए जिनमें से प्रमुख निम्न हैं -
    - लेखन में शिरोरेखा का प्रयोग आवश्यक नहीं है किंतु मुद्रण में इसका प्रयोग चलता रहे।
    - प्रत्येक वर्ण ध्वनि के उच्चारण-क्रमानुसार लिखा जाए इसके लिए मात्राओं को अक्षर के बाद ही दाहिनी ओर जरा हटा कर लगाने का प्रस्ताव किया गया; जैसे देवता औरत आदि में । किंतु जब तक कोई संतोषजनक रूप सामने नहीं आता तब तक 'इ' की मात्रा () वर्तमान पद्धति सं ही लिखी जाए ।
    - स्वरों और मात्राओं में समानता तथा सामंजस्य के लिए सभी स्वरों को अ में मात्राएँ लगाकर उसकी बारहखड़ी के रूप में व्यक्त की जाएँ ।
    - पूर्ण अनुस्वार के स्थान पर ' ० ' लगाया जाए और अनुनासिक के लिए केवल बिंदु (.)।
    - मुद्रण में, अक्षरों के बाँयीं ओर बिंदी लगाने पर उस अक्षर की मूल ध्वनि से भिन्न ध्वनि को व्यक्त किया जाए; जैसे - ज, फ आदि में ।
    - विराम-चिह्न का प्रचलित रूप ही बना रहे । पूर्ण विराम का चिह्न खड़ी पाई ' । ' रहे ।
    - अंकों का स्वरूप इस प्रकार रहे - 1, 2, 3, 4, 5 6 7, 8 9, ० ।
    - वर्तमान रब के स्वरूप में परिवर्तन आवश्यक है ।
    - इस समिति ने अ, 'झ' 'ण' को मान्यता दी; बजाए इनके पुराने रूपों के । 'क्ष' का रूप ' मा ' रखा जाए ।

- मराठी, गुजराती, कन्नड, तेलुगु आदि भाषाओं में विशिष्ट ध्वनि के लिए ' ल ' का प्रयोग किया जाए ।
- 'ज्ञ' को यथारूप रखा जाए ।
- संयुक्त अक्षरों के निर्माण के लिए, जिन वर्णों के अंत में खड़ी पाई है; जैसे - ख, ग च आदि का संयोज्य रूप खड़ी पाई हटा कर बनाया जाए जैसे - ख, ग, च । अन्य अक्षरों का संयोज्य रूप संयोजक चिह्न (--) लगा कर बनाया जाए।
- 'भ' और 'था' को 'म' और 'घ' -से पृथक करने के लिए उनमें गुजराती की तरह घुंडी लगाई जाए ।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा समेत कई विद्वानों ने इन प्रस्तावित सुधारों को अव्यावहारिक कहते हुए विरोध किया । फिर भी राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति वर्धा से प्रकाशित पुस्तकों में इसके अनेक सुझावों पर अमल का प्रयास किया गया ।

3. सन् 1937-38 ई० में पं. राहुल सांकृत्यायन ने भी नागरी लिपि में सुधार के कुछ प्रस्ताव रखे किंतु ये व्यावहारिक प्रचलन में नहीं आ सके ।
4. सन् 1945 ई० में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने भी देवनागरी लिपि में सुधार की आवश्यकता अनुभव करते हुए एक लिपि-उपसमिति का गठन किया । इस समिति ने इस दिशा में अनेक व्यक्तियों और संस्थाओं से सुझाव प्राप्त किए । इन परामर्शदाताओं में श्री श्रीनिवास, डी. पन्नालाल, डी. गोरख प्रसाद, विनोबा भावे, कामता प्रसाद जैसे विशिष्ट व्यक्ति भी शामिल थे । प्राप्त सुझावों में से अधिकांश मुख्यत: टंकण-मुद्रण में सुविधा से ही संबंधित थे; देवनागरी की ऐतिहासिक परंपरा और उसके अक्षरात्मक स्वरूप को नहीं । श्री श्रीनिवास ने प्रचलित देवनागरी वर्णमाला से नितांत भिन्न वर्णमाला प्रस्तुत की । इसमें प्राप्त कई सुझाव काका कालेलकर समिति के प्रस्तावों के समान ही थे ।
5. 31जुलाई1947 ई० में उत्तर प्रदेश सरकार ने आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक देवनागरी-लिपि- सुधार-समिति का गठन किया । पं. भी नारायण चतुर्वेदी इस समिति के मंत्री बनाए गए । इस समिति के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रस्तावित सुझावों पर विचार करना भी सम्मिलित था । आमूल परिवर्तन के प्रस्तावों को अस्वीकार करते हुए भी इस समिति ने मुद्रण और टंकण की सुविधा को ध्यान में रख कर काका कालेलकर समिति के कुछ प्रस्तावों को २चीकार किया । 21 मई सन् 1959 ई० को इस समिति ने अपनी रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत की । स्वर वर्णों के स्वरूप को छोड़ कर अन्य अधिकांश बातों में इस समिति के अधिकांश प्रस्ताव काका कालेलकर समिति के प्रस्तावों के समान थे ।
6. इसके पश्चात् उत्तर प्रदेश सरकार ने 29 नवम्बर 1953 को विभिन्न राज्यों के मंत्रियों तथा विशिष्ट विद्वानों की लखनऊ में एक सभा की जिसके अध्यक्ष तत्कालीन उपराष्ट्रपति डी. राधाकृष्णन थे । उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री गोविंद वल्लभ पंत इसके स्वागताध्यक्ष थे । उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल कन्हैयालाल माणिक्य

लाल मुंशी ने इसका उद्घाटन किया । इस सभा का उद्देश्य आचार्य नरेंद्र देव समिति के प्रस्तावों पर निर्णय लेना और देवनागरी लिपि के लिए एक सर्वमान्य रूप उपस्थित करना था । जिन सुझावों को इस सभा ने मान्यता प्रदान की उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं -

- नागरी के सभी परंपरागत स्वर-वर्ण ज्यों के त्यों रहें, केवल मराठी अ के रूप का प्रयोग किया जाए ।
- छोटी 'इ को छोड़ कर शेष मात्राएँ पूर्ववत् रहें । 'इ' की मात्रा दाहिनी ओर लगाई जाए और उसकी पाई की लंबाई ' ' से आधी हो ।
- नौ के लिए 9 का प्रयोग किया जाए । शेष अंक पूर्ववत् रहें ।
- पूर्ण विराम के अतिरिक्त सभी विराम-चिह्न अंग्रेजी के समान रहें । पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई का प्रयोग किया जाए ।
- अनुस्वार और चंद्रबिंदु के रूप परंपरागत ही रहें, जैसे - ' ' और ' ' ' ।
- विवादास्पद व्यंजनों के दो रूपों में ख, छ, झ, ण, ध, भ, ल, क्ष और त, रूप का प्रयोग हो । 'र' का रूप सदैव 'र' ही रहे ',' या ' ' नहीं, शेष व्यंजन पूर्ववत् रहें ।
- मराठी का 'ल' वर्ण माला में सम्मिलित कर लिया जाए ।
- शिरोरेखा का प्रयोग हो ।
- संयुक्ताक्षर दो प्रकार से बनाए जाएँ - (क्) जहाँ तक संभव हो खड़ी पाई को हटा कर या (ख) संयोज्य वर्ण में हलन्त चिह्न (,) का चिह्न लगाकर । क, फ, और ह के संयोज्य रूप पूर्ववत् रहे।

7. सन् 1955 ई० में भारत सरकार ने लखनऊ सभा के उपर्युका सुझावों को स्वीकार कर लिया और राज्य सरकारों से भी देवनागरी के इस संशोधित रूप को प्रयोग में लाने का आग्रह किया किंतु अधिकांश राज्यों ने इसके प्रति उदासीनता दर्शायी । इन सुझावों में सर्वाधिक विरोध छोटी 'इ' की मात्रा और सर्वत्र 'र' के ही प्रयोग का हुआ । अत: उत्तर प्रदेश सरकार ने अक्टूबर 1957 ई० में एक और सम्मेलन बुलाया, जिसने पूर्व में प्रस्तावित सुधारों में कुछ परिवर्तनों की सिफारिश की।
8. अगस्त सन् 1959 ई० में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने देवनागरी लिपि के उक्त संशोधनों को अंतिम रूप देने के लिए इसके विशेषज्ञों और शिक्षा-शास्त्रियों के दो सम्मेलन बुलाए । इन सम्मेलनों में देवनागरी की वर्णमाला निम्नानुसार मानकीकृत की गई -

स्वर - अ आ इ ई उ ऊ ऋ ल ए ऐ ओ ओ अं अ: ।

मात्राएँ -

व्यंजन - क ख ग घ ड च छ ज झ त्र ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श श स ह ड ढ़ ल क्ष त ज्ञ श्र. ।

अंक - १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०

अन्य प्रस्ताव - हिंदी में ऋ-ल का प्रयोग नहीं होता अत: स्वरों में शामिल नहीं करना चाहिए । खड़ी पाई वाले व्यंजनों के संयुक्ताक्षर खड़ी पाई हटाकर ही बनाए जाएँ । क और फ के संयुक्ताक्षर परंपरागत तरीके से बनाए जाएँ । शेश में हल चिह्न का प्रयोग किया जाए । र के परंपरागत सभी रूपों का प्रचलन जारी रहे । संस्कृत में संयुक्ताक्षर-निर्माण की पुरानी शैली का भी प्रयोग किया जा सकता है । शिरोरेखा का भी प्रयोग हो । पूर्ण विराम के अतिरिक्त अन्य सभी विराम-चिह्न अंग्रेजी के अनुसार प्रयुक्त हों । पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई का प्रयोग हो । अनुस्वार और अनुनासिक के लिए प्राचीन चिह्नों का ही प्रयोग हो और दोनों प्रचलित रहें ।

भारत सरकार द्वारा देवनागरी के इस मानक रूप का ही प्रयोग किया जाता है । इसमें 'त्र' के स्थान पर 'त्र' प्रयोग भी होता है ।

आज मुद्रण और टंकण में कंप्यूटर का प्रयोग बढ़ता जा रहा है जिसने इस क्षेत्र में उपर्युक्त वर्णित कठिनाइयों को अतीत की वस्तु बना दिया है एवं मुद्रण और टंकण को बहुत आसान बना दिया है। देवनागरी लिपि के लिए भी विभिन्न फोंट विकसित हो चुके हैं जिनमें से kurti dev और Devls सबसे अधिक लोकप्रिय है।

2.4 शब्दावली

1. यादृच्छिक - स्वतंत्र रूप से; यहाँ भाषा विज्ञान के संबंध में अर्थ है - सामूहिक इच्छा से मान्य।
2. नुक्ता - अधोबिंदु ' ।
3. मानकीकरण - एकरूपता ।

2.5 सारांश

इस इकाई में आप जानु चुके हैं कि देवनागरी लिपि की उत्पत्ति कैसे हुई? इस समेत भारत की लगभग सभी लिपियाँ और सिंहली आदि विदेशी लिपियों का भी आदि स्रोत ब्राह्मी लिपि है जिसके सबसे महत्त्वपूर्ण और प्राचीन साक्ष्य प्राकृत भाषा के अशोक के शिलालेख हैं । ब्राह्मी लिपि से गुप्त लिपि और कुटिल लिपि विकसित हुई । कुटिल लिपि से ही प्राचीन नागरी लिपि और प्राचीन नागरी से ही आधुनिक नागरी या देवनागरी लिपि विकसित हुई । देवनागरी लिपि के नामकरण से जुड़े हुए विभिन्न मतों से भी आप परिचित हो चुके हैं । नामकरण का यह विवाद आज तक अनिर्णीत है । आप यह भी जान चुके हैं कि किस प्रकार ब्राह्मी के सरल अक्षर देवनागरी के जटिल और सुंदर अक्षरों में परिवर्तित हो गए । इस परिवर्तन में लिखने के आधार और साधनों के परिवर्तन का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा । इस इकाई के दूसरे भाग में आप ने देवनागरी लिपि की उन प्रमुख विशेषताओं के बारे में जाना जिन्होंने इसे सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि के रूप में सर्वत्र प्रशंसा का पात्र बनाया है । देवनागरी लिपि जैसी बोली जाती है वैसी ही लिखी जाती है । इस लिपि में पर्याप्त लिपि-चिह्न विद्यमान हैं जिनसे न सिर्फ विभिन्न भारतीय भाषाओं बल्कि कई विदेशी भाषाओं की ध्वनियों को भी सरलता से अभिव्यक्त किया जा सकता है । इसे हिंदीतर क्षेत्र में सरलता से प्रचलन-योग्य बनाने के लिए भारतीय

नवजागरण और स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान व्यापक रूप से व्यक्तिगत और संस्थागत रूप से प्रयत्न किए गए । हिंदी के साथ-साथ संस्कृत, मराठी, नेपाली भाषाओं की लिपि के रूप में भी देवनागरी का प्रयोग होता है । राष्ट्रभाषा हिंदी की लिपि होने के कारण देवनागरी भारतीय राष्ट्रीयता का एक प्रतीक बनकर उभरी । इस लिपि के टंकण और मुद्रण में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ अवश्य हैं; जिन्हें सुधारने के लिए स्वाधीनता से पहले नागरी प्रचारिणी सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग जैसी संस्थाओं ने विभिन्न सुधार प्रस्तावित किए । महात्मा गाँधी, काका कालेलकर और विनोबा भावे जैसे राष्ट्रीय नेताओं ने भी इस क्षेत्र में योगदान दिया । स्वाधीनता के बाद भारत सरकार और राज्य सरकारों विशेषत: उत्तर प्रदेश राज्य की सरकार द्वारा इस दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास किए गए । इसके अतिरिक्त देवनागरी वर्णमाला के मानक रूप से भी आप इस इकाई में परिचित हो चुके हैं ।

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ब्राह्मी लिपि से देवनागरी लिपि की उत्पत्ति कैसे हुई? किस प्रकार ब्राह्मी के वर्णों ने परिवर्तित होकर आधुनिक रूप ग्रहण किया? उदाहरण सहित समझाइए ।
2. देवनागरी लिपि की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए । क्या देवनागरी लिपि पूर्णत: वैज्ञानिक लिपि है? अपने मत को तर्क सहित प्रस्तुत कीजिए ।
3. देवनागरी लिपि के टंकण और मुद्रण में आने वाली कठिनाइयों का उल्लेख कीजिए ।
4. देवनागरी लिपि में सुधार के लिए अब तक किए गए प्रयासों का वर्णन कीजिए ।

2.7 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया, **हिंदी भाषा**
2. डॉ. भोलानाथ तिवारी; **भाषा विज्ञान**
3. डॉ. अनंत चौधरी, **नागरी लिपि और हिंदी वर्तनी**
4. देवेन्द्रनाथ शर्मा, **राष्ट्रभाषा, समस्याएँ और समाधान**
5. डॉ. ना. चि. जोगलेकर, डॉ. भगवानदास तिवारी, **देवनागरी लिपि : स्वरूप, विकास और समस्याएँ**

इकाई - 3

हिन्दी भाषा की प्रमुख बोलियाँ

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 हिन्दी मामा की प्रमुख बोलियाँ

3.2.1 पश्चिमी हिन्दी की बोलियाँ

3.2.2 पूर्वी हिन्दी की बोलियाँ

3.2.3 राजस्थानी हिन्दी की बोलियाँ

3.2.4 बिहारी हिन्दी की बोलियाँ

3.2.5 पहाड़ी हिन्दी की बोलियाँ

3.3 शब्दावली

3.4 सारांश

3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.6 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई की मूल विषय वस्तु हिन्दी की बोलियों का विस्तृत अध्ययन है । अत: हम इस इकाई में हिन्दी शब्द के व्यूत्पतिगत् अर्थ से लेकर आज तक इसके अर्थ विकास को जानते हुए हिन्दी की बोलियों का अध्ययन करेंगे । बोलियों की उत्पत्ति, बोलचाल-क्षेत्र, वर्गीकरण एवं भाषा वैज्ञानिक परिचय तथा उसकी स्थिति आदि के बारे में अध्ययन से आप जान पायेगें कि

1. हिन्दी शब्द के विविध अर्थो के बारे में जान सकेगें ।
2. हम जान सकेंगे कि हिन्दी की उपभाषाएँ कौन-कौनसी है तथा उनका विकास किन अपभ्रंश रूपों से हुआ है ।
3. इसमें हम हिन्दी की बोलियों के भाषा वैज्ञानिक वर्गीकरण व उसके बोलचाल-क्षेत्र का अध्ययन भी कर करेंगे ।
4. प्रत्येक बोली के भाषा वैज्ञानिक व व्याकरणिक रूपों का भी अध्ययन कर करेंगे ।
5. बोलियों का अध्ययन करने से हमें उनके शब्द-भण्डार का भी ज्ञान होगा ।
6. इस अध्ययन से हम भाषा और बोली के संबंध को जान सकेंगे
7. इस अध्ययन से हम बोलियों की. विशेषताओं और विशिष्टताओं के बारे में भी जान सकेंगे ।

3.1 प्रस्तावना

हिन्दी शब्द को प्राचीन अर्थ से अपने नवीन प्रचलित अर्थ को ग्रहण करने में कई शताब्दियों की सुदीर्घ अवधि लगी है । यह शब्द अपनी विकास यात्रा में निरन्तर अर्थ संकोच की ओर बढ़ा है । हिन्दी शब्द हिन्दी भाषा या खड़ी बोली का नहीं है । इसकी उत्पत्ति सिन्दु-सिन्ध-हिन्द से हुई है। सिंधु पुराने भारत की (उस भाग की जो अब पाकिस्तान कहलाता है) एक प्रमुख नदी है । फारसी में 'सिन्धु' को 'हिन्दु' उच्चारण करते हैं । सिन्धु (हिन्दु) नदी का देश 'हिन्द या हिन्दुस्तान ' कहलाया और इस प्रकार हिन्द या हिन्दी शब्द अस्तित्व में आया ।

हिन्दी शब्द का प्रयोग :

प्रारम्भ में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग हिन्दुस्तान से सम्बन्धित किसी भी वस्तु या हिन्दुस्तान के निवासियों के लिए प्रयुक्त किया जाता था । उदाहरणार्थ ईरान की प्राचीन पुस्तक "दसातीर" में लिखा है "चूँ व्यास हिन्दी बलख आमद। गुस्तास्य जरदुश्ता बखांद:।" "इसमें हिन्दी शब्द का प्रयोग है; जो हिन्दुस्तान के निवासियों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। फारसी में संस्कृत के अनुदित ग्रंथ 'पंचतंत्र' के अनुवाद के विषय में जबाने हिन्दी' का प्रयोग हुआ है । ये 8वीं - 9वी शताब्दी के अनुवाद हैं । ईरान के कवि अब्दुल कासिम फिर्दोसी ने 'शाहनामा' में "कैद हिन्दी" शब्द का प्रयोग एक भारतीय राजा के अर्थ में किया है । बाद में मुसलमानों के भारत आगमन व प्रशासक बन जाने पर "हिन्दी" शब्द का व्यापक प्रयोग होने लगा । यहाँ यह स्मरणीय है कि "हिन्दी" शब्द के उक्त प्रयोग "भारतीय" के अर्थ में ही हैं ।

भाषा के अर्थ में प्रयोग :

ईसा की पाँचवी शताब्दी के अन्त में ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनमें भारत की भाषाओं (संस्कृत, मराठी आदि) को जबान-ए--हिन्दी कहा जाता था । पंचतंत्र और महाभारत के अनुवाद फारसी में प्रस्तुत किये गये । तब अनुवादकों ने लिखा कि ये अनुवाद 'जबाने हिन्दी' से किये गये हैं । 'तरीखे फरिस्ता में भी हिन्दी शब्द प्रयुक्त है । इसी प्रकार 1933 ई. में इब्नबतूता का एक लेख मिलता है जिसमें लिखा है कि "किताबत अला बाद अलजदरात बिल 'हिन्दी' अर्थात दिवारों पर हिन्दी में लिखा । यहाँ हिन्दी से तात्पर्य भारत की भाषा से है । मराठी के लिए भी 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग इब्राहीम आदिलशाह के जमाने में होता था । अमरी खुसरों की खालिकबारी में हिन्दी तथा हिन्दवी शब्दों का प्रयोग मिलता है । अधिकांश मुस्लिम ग्रंथों में 'हिन्दी' शब्द भारतीय भाषा अथवा भारत के मध्यभाग की भाषाओं के लिए प्रयुक्त किया गया है । कहने का तात्पर्य यह है कि जबाने हिन्दी या हिन्दी भारतीय भाषाओं के लिए आता था, आधुनिक हिन्दी के लिए नहीं ।

विशेष भाषा के अर्थ में :

सन् 1424 ई. में शरफुद्दीन यजदी ने तैमूर लंग और उसके परिवार का इतिवृत्त 'जफरनामा' नामक ग्रंथ में देते हुए "हिन्दी" शब्द का प्रयोग उस भाषा के लिए किया है; जो पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण पश्चिम में खंडवा तक

जा पहुँची है । इसके अन्तर्गत बिहारी, राजस्थानी, बांगरू कन्नौजी, बुन्देली, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, पहाड़ी बोलियाँ सभी शामिल हो जाती है ।

अमीर खुसरो 'तुर्क हिन्दुस्तां' नियमन हिन्दीवीं गोयम जवाब कहते हैं अर्थात मैं हिंदुसतानी तुर्क हूँ हिन्दी में जवाब देता हूँ । इस समय तक उर्दू का झमेला खड़ा नही हुआ था । इसलिए मुल्ला वजही, सौदा, मीर आदि ने अपने शेरों को 'हिन्दी शेर' कहा है ।

1812 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज के वार्षिक विवरण में कैप्टन टेलर ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि "मैं केवल हिन्दुस्तानी या रेख्ता का जिक्र नहीं कर रहा हूँ जिसकी अपनी लिपि है जिसमें अरबी, फारसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता और मुसलमानी आक्रमण से पहले जो भारतवर्ष के उत्तर में पश्चिम प्रांत की भाषा थी।" इस कथन से स्पष्ट है कि 'हिन्दी' भाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जो अरबी-फारसी शब्दों से अछूती है तथा रेख्ता रग उर्दू वह भाषा थी जिसमें अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग होता था । इसी हिन्दी को हिन्दुई या हिन्दवी कहा गया । अमीर खुसरों, जायसी से लेकर इंशा अल्ला खाँ तक 'हिन्दवी या हिन्दुई' शब्द का प्रयोग इसी 'हिन्दी' के लिए कर रहे थे जो बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान दिल्ली, पंजाब, हिमाचल प्रदेश की प्रचलित जनभाषा थी, जिसकी लिपि देवनागरी थी ।

एक और तथ्य है कि मुसलमान और अंग्रेज हिन्दी कहते थे किन्तु भारत के मूल निवासी और साहित्यकार इस जनभाषा को भाषा या भाखा कहा करते थे । कबीर, तुलसी, केशव आदि संस्कृत साहित्यिक भाषा के अतिरिक्त जनभाषा को भाषा (भाखा) ही कहते हैं यथा- संस्कृत है कूप जल भाषा बहतो नीर (कबीर); भाषा बोलि न जान ही, जिनके कुल के दास (केशवदास); का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए सांच (तुलसी) । भाषा के संदर्भ में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश में 'हिन्दी' शब्द नहीं मिलता क्योंकि इस शब्द का प्रयोग मुसलमानों ने ही अपनी ओर से किया था । मुसलमानों के भारत-प्रवेश से पूर्व भाषा (भाखा) शब्द प्रचलित था । संस्कृत के अनेक ग्रंथों की जनभाषा टीका को भाषा टीका कहा जाता था ।

आधुनिक काल में हिन्दी शब्द का प्रयोग तीन अर्थो में हो रहा है :-

(क) **हिन्दी शब्द** अपने विस्तृत अर्थ में हिन्दी क्षेत्र में बोली जाने वाली 17 से 19 बोलियों का द्योतक शब्द है । हिन्दी साहित्य के इतिहास में हिन्दी शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता है । इस अर्थ का अपना सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक महत्व है । इस दृष्टि से हिन्दी में 5 उपभाषाएँ तथा उनकी 17- 19 बोलियाँ आती है । आगे हम इन्हीं बोलियों का अध्ययन करेंगे ।

(ख) **भाषा वैज्ञानिक अर्थ:-** इस अर्थ का आधार ग्रियर्सन का भाषा-सर्वेक्षण है । भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्वी हिन्दी तथा पश्चिमी हिन्दी को मिलाकर हिन्दी की संज्ञा दी जाती है ।

(ग) **सीमित अर्थ में:-** हिन्दी शब्द का संकुचित अर्थ है - खड़ी बोली से विकसित हिन्दी । जो आज हिन्दी प्रदेशों की सरकारी भाषा है और पूरे भारत की राजभाषा । समाचार पत्रों, फिल्मों में जिसका प्रयोग होता है; हिन्दी प्रदेश में जो शिक्षा का माध्यम है; जिसे परिनिष्ठित हिन्दी या मानक हिन्दी आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है ।

हिन्दी भाषी प्रदेश- हिन्दी भाषा का क्षेत्र हिमाचल प्रदेश, पंजाब का कुछ भाग, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश तथा बिहार है, जिसे हिन्दी भाषी प्रदेश कहते है । इस पूरे क्षेत्र में हिन्दी की पाँच उपभाषाएँ हैं जिसके अन्तर्गत 17 से 18 बोलियाँ बोली जाती है।

हिन्दी की उपभाषा व बोलियों का वर्गीकरण :-

हिन्दी जिस भाषा-धारा के विशिष्ट देशिक और कालिक रूपक का नाम है, भारत में उसका प्राचीनतम रूप संस्कृत है । संस्कृत का काल मोटे रूप में 1500 ई.पू से 500 ई.पू तक माना जाता है । संस्कृत कालीन बोलचाल की भाषा विकसित होते-होत 500 ई.पू के बाद प्रवृतित: काफी बदल गयी जिसे 'पालि' की संज्ञा दी गयी है । इसका काल 500 ई.पू से पहली ई_ तक है । पहली ई. तक आते आते यह बोलचाल की भाषा और परिवर्तित हुई तथा पहली ई. से 500 ई. तक का इसका रूप "प्राकृत" नाम से अभिहित किया गया । इस काल में क्षेत्रीय बोलियाँ कई थी; जिनमें मुख्य शौरसेनी, पैशाची, ब्राचड, महाराष्ट्री, मागधी और अर्धमागधी थी । प्राकृतों से ही विभिन्न क्षेत्रीय अपभ्रंशों का विकास हुआ । अपभ्रंश भाषा का काल मोटे रूप में 500 ई. से 1000 ई. तक माना जाता है । विभिन्न प्राकृतों से विकसित अपभ्रंशों को कोई नये नाम नहीं दिये गये अपितु उन्हें शौरसेनी अपभ्रंश, मागधी अपभ्रंश, अर्धमागधी अपभ्रंश आदि नामों से ही जाना जाता है । 1000 ई. के बाद इन्हीं अपभ्रंश रूपों से आधुनिक आर्य भाषाओं, उपभाषाओं का जन्म हुआ । जिसे हम निम्न तालिका से अच्छी तरह समझ सकते हैं-

अपभ्रंश	आधुनिक भाषाएँ तथा उपभाषाएँ
शौरसेनी	पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, पहाड़ी, गुजराती
पैशाची	लहंदा, पंजाबी ।
ब्राचड	सिंधी ।
महाराष्ट्री	मराठी ।
मागधी	बिहारी, बांगला, उडिया असमिया ।
अर्धमागधी	पूर्वी हिन्दी ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा का उद्भव अपभ्रंश के शौरसेनी, अर्धमागधी और मागधी रूपों हुआ है । यदि हम अपभ्रंश, अपभ्रंश से उत्पन्न हिन्दी की पाँच उपभाषाओं तथा उपभाषाओं की विभिन्न बोलियों -जिनकी संख्या लगभग 17 से 19 है । (डॉ. भोलानाथ तिवारी ताजुज्बेकी तथा निमाडी को जोडकर 19 मानते हैं।) को एक तालिका में रखकर देखें तो आपको समझने में ज्यादा आसानी होगी:-

अपभ्रंश	हिन्दी उपभाषाएँ	बोलियाँ
शौरसेनी अपभ्रंश	1. पश्चिमी हिन्दी	खड़ी बोली,ब्रजभाषा, हरियाणी, बुन्देली, कन्नौजी
	2. राजस्थानी	मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी
	3. पहाड़ी	पश्चिमी पहाड़ी, मध्यवर्ती पहाड़ी (कुँमाउनी, गढ़वाली)

मागधी अपभ्रंश	1. बिहारी	भोजपुरी, मगही, मैथिली
अर्धमागधी अपभ्रंश	1. पूर्वी हिन्दी	अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी

3.2 हिन्दी भाषा की प्रमुख बोलियाँ

जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं कि हिन्दी की उप भाषाओं की संख्या पाँच है (पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, पहाड़ी हिन्दी, बिहारी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी।) इन उपभाषाओं की कुल 17 से 19 तक बोलियाँ मानी गई है । अब हम आगे इन बोलियों का अध्ययन करेंगे । जिससे हम उनके क्षेत्र अर्थात जहाँ वह बोली जाती है, उनके उद्भव, व्याकरणिक विशेषताओं तथा भाषा वैज्ञानिक स्वरूप को जान पायेंगे । सबसे पहले हम पश्चिमी हिन्दी को लेते हैं ।

3.2.1 पश्चिमी हिन्दी की बोलियाँ :

पश्चिमी हिन्दी-क्षेत्र में जो बोलियाँ आती है, उनमें खड़ी बोली, हरियाणी, ब्रज, बुन्देली, कन्नौजी, निमाड़ी तथा ताजुज्बेकी प्रमुख है ।

खड़ी बोली :

पश्चिमी हिन्दी की यह महत्वपूर्ण बोली है । इसे कौरवी, नागरी, सरहिन्दी एवं हिन्दुस्तानी भी. कहते हैं। कुरू जनपद की भाषा होने से इसे कौरवी कहा जाता है । खड़ी बोली नाम लल्लू लाल जी का दिया हुआ है । खड़ी का अर्थ है- परिनिष्ठित, प्रकृत, ठेठ, शुद्ध या जिसके उच्चारण में खडापन या शब्दान्त में आरोही स्वर हो । इसका क्षेत्र रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून का मैदानी भाग, अम्बाला का पूर्वी भाग, कलासिया और पटियाला का पूर्वी भाग तक फैला है । यह बाँगरू, ब्रज एवं पहाड़ी हिन्दी से घिरी हुई है । बिजनौर में इसका परिनिष्ठित रूप मिलता है । इसमें लोक साहित्य काफी मात्रा में रचा गया है । यह बोली शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से विकसित है । इसकी उपबोलियाँ है- बिजनौरी पश्चिमी कौरवी, पूर्वी कौरवी एवं पहाडवाली ।

ध्वनियाँ :- आकार बहुला इस बोली में दस स्वर है, अ आ, इ ई, उ ऊ, ए, ऐ, ओ औ । ए, ऐ एवं औं मूल स्वर रूप में उच्चरित होते हैं । 'ऋ' का उच्चारण 'रि' होता है । इसमें 'ल' 'श' एवं 'ष' व्यंजन नहीं है, पर कुछ व्यंजनों के महाप्राण रूप मिलते हैं - ण्ह,न्ह,न्ह,ल्ह, । स्वर मध्यम न्, ।, क्रमश: ण, ल, हो जाते हैं। जा बाणु (जाना, बाल) खडी बोली में द्वित्व की प्रवृत्ति है, जिजा झ जिज्जा, रोटी झ रोट्टी । शब्द के प्रथम अक्षर का 'इ' अ हो जाता है । यथा(मठाई, सकारी।

रूप :- इसमें स्त्री प्रत्यय - ई, अन, आनी, नी और आई मिलते हैं (चमारी, मालन, जेठानी, लुगाई)। बहुवचन के प्रत्यय-ए, आन्, -न्,- ओं- तथा-ऊँ है यथा (फोड़े, डाकून, सेठों, मरदू आदि । सर्वनामों में मे, मुज, तम, थारा, जोणा, कोणा आदि मिलते हैं । परसर्ग हिन्दी के समान ही है, केवल स्वर भेद है, करण-अपादान में तें सेती उल्लेखनीय है । खडी बोली में वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ संस्कृत के लॉ लकार से विकसित है । उसके रूप है - मारूं, मारें, मारो । संभावनार्थक वर्तमान में भी कृदन्तीय रूप नहीं है । इस

प्रकार इसका भूत अपूर्ण निश्चयार्थ भी हिन्दी से भिन्न मारूं या, मारे का रूप मिलता है । इसके कृदन्तीय प्रत्यय हैं- वर्तमान कालिक-'ता', त्ता, भूतकालिक-आ,-या, क्रियार्थक संज्ञा-ना,-णा, पूर्णकालिक-के- आदि । भविष्य कालिक प्रत्यय-ग है । सहायक क्रिया है, था आदि है, पर 'है' का उच्चारण 'सै'-वत् भी होता है । इसका भविष्यत् कालिक रूप है- हूंगा, हुँडा । इसके क्रिया विशेषण के कुछ शब्द उल्लेखनीय हैं- कुक्कर (कैसे), उक्कर (पैसे), इदर उदर, होर (और) आदि ।

हरियाणी:-

हरियाणा की बोली हरियाणी है । 'हरियाणा' शब्द हरिण्यारण्य हरर्यण्य हर्रया, हरियान आदि से व्यूत्पन्न माना जाता है, पर डॉ. हरदेव बाहरी इसे अहीर > हीर (जाति-विशेष) से निर्मित मानते हैं। इसे बांगर या बांगड़ (बाढ़ से ऊँची भूमि वाला प्रदेश) से बने दांगरू से भी अभिहित किया जाता है । जाटू इसका अन्य नाम है । इसका क्षेत्र दिल्ली (ग्रामीण क्षेत्र), करनाल, हिसार, रोहतक, पटियाला, नाभा, जींद तक फैला हुआ है । इसमें साहित्य नहीं है, पर लोक साहित्य काफी है । पश्चिमोत्तरी शौरसेनी अपभ्रंश से इसका विकास हुआ है । हरियाणी, जादू चमरबा, बागड़ी इसकी उपबोलियाँ हैं, इसकी लिपि नागरी है ।

ध्वनियाँ :- हरियाणी में स्वर दस है(अ आ, इ ई, उ ऊ, ए, ऐ, ओ औ व्यंजनों में >,ष श, नहीं मिलते, पर 'ल' मिलता है । स्वरों में आनुनासिकता हैं यथा (नाम स्वरों का उच्चारण अस्थिर है- जुवाबा/जवाब, बहुत/बौहत । 'न्' के स्थान पर-'ण' प्राय: मिलता है- पाणी, सोणा । द्वित्व की प्रवृति खड़ी बोली से अधिक है- राज्जी (राजी), भीत्तर (भीतर)। महाप्राण ध्वनियों के स्थान पर उसी के अल्पप्राण का संयोग मिलता है- लाट्ठी, कोट्ठा, । ध्वनि लोप की प्रवृत्ति अधिक है- कट्टा (इकट्ठा), कहत्तर (इकहत्तर)। ड़ के स्थान पर 'ड' मिलता है- बडा (बड़ा), पेड (पेड़) ।

रूप - संज्ञा के तिर्थक बहुवचन के प्रत्यय - 'आ' या-'यां है- लोग- लोग्गां, खेत-खेता । स्त्रीलिंग के प्रत्यय- ई-णा, णी,-न हैं- (घोड़ी, घोबण, हत्थणी, मालण) । परसर्ग 'ने' का प्रयोग कर्त्ता के अतिरिक्त कर्म-सम्प्रदान-कारकों में भी होता है । तो, ते, सी परसर्ग अपादान के हैं । 'सिते' करण कारक का परसर्ग है । सर्वनामों में बहुवचन के रूप हैं- तम्ने, थमने, थानै, थारै आदि । कुछ पर राजस्थानी प्रभाव प्रतीत होता है । सहायक एवं अस्तिवाचक क्रिया 'इ' एवं-'स'-दोनो से बनती है- है, सै, पर बहुवचन में था, थे ही है । कर्मवाचयभज की सहायता से बनता है । सामान्य वर्तमान संस्कृत के 'लट' लकार से बना है, न कि हिन्दी की तरह वर्तमान कालिक कृदन्त एवं सहायक क्रिया के योग से। कृदन्तीय रूप इन प्रत्ययों के योग से बनते हैं (वर्तमान कालिक-त से, भूतकालिक-या से क्रियार्थक संज्ञा-णा,-ना से एवं पूर्वकालिक-कै क्यै से । क्रिया विशेषणों में इधानै, इतहोड़ (इधर), जडै (जहाँ), कैंठे (कही) आदि उल्लेखनीय है ।

3. निमाड़ी

मध्यप्रदेश के निमाड क्षेत्र की बोली होगे- से इसे निमाडी कहते हैं । क्षेत्र विशेष का निमाड नाम पडने के अनेक कारण बताये जाते हैं । कुछ के अनुसार निमाड शब्द नीम (आधा) से बना है जिससे नर्मदा नदी के आधे प्रदेश का बोध होता है । कुछ नीम (पेड़ू-विशेष या 'नीवार' (घास-विशेष) के प्रदेश को निमाड कहते हैं तथा अन्य इसके व्यूत्पति के मूल में सं. निम्र शब्द को पाते हैं । निम्न या नीचे वाला, जो मालवा का दक्षिणी भाग है, निमाड़ कहलाया । पर इन चारों में कोई व्यूत्पति संतोषजनक प्रतीत नहीं होती । परिनिष्ठित निमाड़ी खरगोन एवं खंडवा के बीच बोली जाती है । यह आस-पास की भाषाओं से प्रभावित है डॉ. ग्रियर्सन इसे राजस्थानी की बोली मानते हैं, पर डॉ. भोलानाथ तिवारी 'ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य तथा अर्थ की दृष्टि से बुन्देली-ब्रज के अधिक निकट मानते हैं । अत: यह पश्चिमी हिन्दी की बोली है । इसके बजारी निमाड़ी कुन्दी निमाड़ी, गूजरी निमाड़ी तथा नागरी निमाड़ी आदि रूप मिलते हैं । इसमें लोक साहित्य प्रचुर मात्रा में है ।

ध्वनियाँ :- इसके स्वर हैं- अ आ, ई, ई, उ ऊ, ए, ऐ, ओ औ तथा हस्व एँ एवं ओ । व्यंजनों में न्ह,म्ह,ल्ह,रह,'ल' विशिष्ट व्यंजन है। अल्पप्राणीकरण की प्रवृति दिखाई देती है-हाथ-हात, भूख- भूक l ल का ल हो जाता है - बाल- बाल । ष, श, के स्थान पर 'स' प्रयुक्त होता है । धोशीकरण के अनेक उदाहरण है यथा(षाक् - साग, लोक्- लोग । अकारण अनुनासिकता 'चाँवल' जैसे शब्दों में मिलती है ।

रूप :- संज्ञा शब्दों में ओकारान्तता मिलती है । बहुवचन बनाने में प्राय: 'न' प्रयुक्त होता है । स्त्रीलिंग के प्रत्यय है- ई-नी-एणना आणी, घोड़ी, शेरनी चमारेण, भांगन सेठाणी शब्दों में इनका प्रयोग दृष्टव्य है । परसर्गो में कर्त्ता के लिए-न, कर्म व सम्प्रदान के लिए ख,क उल्लेखनीय है । निमाडी में समान वर्तमान काल में अस्तिवाचक सहायक क्रिया का प्रयोग नहीं होता, पर 'ज' प्रत्यय जुड़ता है - चलैज (में चलता हूँ, भूतकाल के लिए 'थो' का प्रयोग- चल्यो थो (चला था) । वर्तमान काल में गुजराती के प्रभाव से 'छे' भी सहायक क्रिया रूप में आती है । इसका कृदन्तीय प्रत्यय-विधान इस प्रकार है (वर्तमान कालिक-तो तीं, भूतकालिक-यो, पूर्वकालिक-ईन या इन तथा क्रियार्थक संज्ञा-नो जिनके क्रमश: उदाहरण है- चलतो चल्या, चलीन एवं चलनो ।

ब्रजभाषा :

'ब्रज' शब्द का अर्थ है (चरागाह या पशुओं का समूह । इसका प्रकार पशु-पालन-स्थल चरागाह की यह भाषा है । इसके अन्य नाम है- अन्तर्वेदी, ब्रिजकी, माधुरी, ग्वालियरी आदि । यह मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धोलपुर भरतपुर, ग्वालियर (पश्चिमी भाग) तक विस्तृत है । इसका आंशिक विस्तार तो हरियाणा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश के सीमावर्ती भू-भागों में भी है । इसकी अनेक बोलियाँ हैं- गाँववारी ढोलपुरी, भरतपुरी, जादोबारी, सिकरबाड़ी कठोरिया डाँगी माधुरी आदि । साहित्यिक दृष्टि से अतीत में यह अत्यन्त समृद्ध रही है । सूर, तुलसी, बिहारी, धनानन्द, पद्माकर, रत्नाकर आदि इसके प्रमुख कवि हैं । पर खड़ी बोली के विकास के साथ

इसमें साहित्य-सर्जना रुक गई । अत: यह अब भाषा से पुन: बोली बन गई । यह शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित है ।

ध्वनियाँ :- इसके स्वर हैं- अ आ, इ ई, उ ऊ, एँ, ऐ, ओं, ओ एवं औ । इसमें अ का उदासीन रूप शब्दान्त में मिलता है तथा इ,-उ के जपित रूप भी सुनाई पड़ते हैं । ऐ, औ संयुक्त स्वर क्रमश: आएँ, अआं रूप में उच्चरित होते हैं । इसमें ष, श व्यंजन को छोडकर हिन्दी के सभी व्यंजन मिलते हैं । इसमें ड़ का 'र' हो जाता है- लडका झ लरका, साड़ी झ सारी । 'यू' एवं 'व' श्रुतियां मिलती हैं । 'हू' ध्वनि प्राय: लुपा हो रही है- बारा (बाग्ह), बऊ (बहे, साहूकार (साऊकार) । ब्रजभाषा अपनी कोमलकान्त पदावली के लिए विख्यात है ।

रूप :- ओकारान्तता ब्रजभाषा की विशेषता है । पुल्लिंग, एकवचन के रूप उकारान्त भी होते हैं । स्त्रीलिंग, एकवचन में 'इ' मिलता है । बहुवचन का तिर्यक् रूप-'न' प्रत्यय से सम्पन्न होता है । कारकों में विभक्ति रूप भी मिलते हैं -रामहि, जगति द्वारै आदि । परसर्ग हैं- कर्त्ता-ने, नै, कर्म-को, कौ, लूं के, करण-आपादान-सो सौ ते, तै, अधिकरण- मे, मैं, मांझ पे, पर आदि । सर्वनामों में उत्तम पुरूष का 'हौ' और उसके तिर्थक रूप- मोहि, मुजकी तथा याहि (इसको) काहू (किसी को) ध्यातव्य है । सहायक क्रिया के वर्तमान काल के रूप हौं, हौ, हैं तथा भूत के हतो, हुँतो है । विभिन्न कृदन्तीय रूप इस प्रकार है- वर्तमान कालिक-मारत-मारतु भूतकालिक मारयौ लीनों संज्ञार्थक क्रिया-- देखन, देखनी, पूर्वकालिक- मारि, मारिकै । प्रेरणार्थक रूप-आ-वा-प्रत्यय से सम्पन्न होता है । इसका भूतकाल, भूतकालिक कृदन्तीय रूपों से सम्पन्न होता है । वर्तमान काल एवं भविष्यत्काल संस्कृत कालों से विकसित हुए है, कृदन्तीय रूप से नहीं ।

कन्नौजी :

कन्नौज क्षेत्र की बोली कन्नौजी कहलाती है । 'कन्नौज' शब्द संस्कृत शब्द 'कान्यकुब्ज' से बना है। यह इटावा, फरूखाबाद, शाहजहाँपुर, कानपुर (कुछ भाग) हरदोई एवं पीलीभीत में बोली जाती है। इसमें साहित्य स्वल्प है, लेकिन लोक साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है । इसकी उपबोलियाँ हैं- तिरहारी इटावी, शाहजहाँजपुरी, पछरूआ, भुक्सा आदि । इसका अपना साहित्य नहीं है, जो कुछ है वह ब्रजभाषा का है । डा. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार वास्तव में कन्नौजी कोई स्वतन्त्र उपभाषा नहीं है, बल्कि ब्रजभाषा का ही उपरूप है । इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है ।

ध्वनियाँ :- इसकी ध्वनियाँ ब्रजभाषा के समान हैं । इसमें दस स्वरों के अतिरिक्त अ का उदासीन रूप तथा इ, उ के जपित रूप मिलते हैं। ऐ, औ की अपेक्षा ए, ओ के प्रयोग व्यापक है । स्वर मध्यम 'ह' का लोप कन्नौजी में हो जाता है- कहिहौ - कैहयों, जाहि- जाइ । शब्दारम्भ में ही ल्ह, रह, म्ह जैसे महाप्राण व्यंजन मिलते हैं- ल्हसुन, रहटा, म्हंगाई । अनय महाप्राण अल्पप्राण बन जाता है - हात (हाथ), हाती (हाथी) । अकारण

अनुसासिकता भी मिलती है । समीकरण की क्रिया व्यापक रूप से कार्य करती प्रतीत होती है- करना > कन्ना ।

रूप - यह बोली ओकारान्त है । स्त्रीलिंग प्रत्यय है- ई, न, रनी, इन, इया है जिनसे क्रमश: घोड़ी, धोबिन, मास्टरनी, जाटिन चमरिया शब्द बनते हैं । इसमें स्वार्थे प्रत्यय पुल्लिंग में 'वा' तथा स्त्रीलिंग में इया है- बच्चा, बचवा, छोकरी-छोकरिया । इन प्रत्ययों से हेयता का बोध भी होता है । ओकारान्त एक वचन का विकारी रूप आकारान्त हो जाता है और विकल्प से एकारान्त भी । बहु वचन के विकारी रूप में -अन प्रत्यय है । इसके परसर्गो में कर्म-सम्प्रदान में कौ, कँ, कइहां, का तथा अधिकरण में महिआ, मइहा, लो सामान्य से अतिरिक्त एवं पृथक हैं । सर्वनाम में ब्रज से समानता है । इसकी सहायक एवं अस्तिवाचक क्रिया के रूप हैं - हूं हो, हैगो हइ, हैंगे (वर्तमानकाल में), हतो, रहो, रहउथे आदि (भूतकाल में) और हु इहौ, है हूं हु इहइ आदि (भविष्यत् में) । इसके कृदंतीय प्रत्यय हैं - वर्तमान कालिक - त्, तू, (चलत, चलतु, भूतकालिक ओ (चलो), क्रियार्थक संज्ञा-न्-,नु- नो-इबो (चलनु, चलिबो) एवं पूर्वकालिक-के इके (चल्के-चलिके) । कर्मवाच्य-जा- के रूपों. में सम्पन्न होता है और प्रेरणार्थक धातुएँ - आ-वा के योग से बनती हैं ।

बुन्देली :

बुन्देलखण्ड की बोली बुन्देली या बुन्देलखण्डी कहलाती है । बुन्देले राजपूतों के आधिपत्य के कारण यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड कहलाया । इसका क्षेत्र है (झांसी, जालोन, हमीरपुर, ग्वालियर, भोपाल, सागर, ओडछा, नृसिंहपुर, सिवनी एवं होंशगाबाद । और मिश्रित रूप में पन्ना, चरखारी, बालाघाट एवं छिंदवाड़ा तक के भू-भागों में बोली जाती है । इसमें साहित्य मिलता है । लालकवि ने 'छत्रप्रकाश' इसमें लिखा, पर केशव, मतिराम, ठाकुर, पद्माकर, पजनेश ने ब्रज में ही लिखा । वैसे इसुरी की फागे, यगाधर का प्रेमकाव्य एवं आल्हखण्ड इसकी चर्चित रचनाएँ हैं । इसकी उपबोलियाँ हैं- बनाफरी, पंवारी, खटोला, भदावरी, कुडगी सहेरिया लोधी, कोश्टी, नागपुरी, आदि । इसका विकास शैरसेनी अपभ्रंश के दक्षिणी रूप से हु आ है ।

ध्वनियाँ :- बुन्देली में दस स्वर हैं - अ आ, इ ई, उ ऊ, ए, ऐ, ओ औ । इनमें से 'ए' एवं 'औ' का उच्चारण कभी मूलस्वर रूप में और कभी संयुक्त स्वर रूप में होता है । सभी स्तरों के आधुनिक रूप भी मिलते हैं, जैसे- मुइँयां, न्यों, रॉड, आदि । व्यंजनों में ण, ल, ष, एवं श का अभाव है । महाप्राण स्पर्श अलाप्राण हो जाते हैं- हाड़ (हाथ), जीइ (जीभ) । स्वर माध्यम 'हू' लुप्त हो जाता है(कहीं झ कई, घोशीकरण की प्रवृत्ति भी मिलती है- हकीकत > हकीगत, शूकर> संघरवा, हठ > हैड्स । च का स हो जाता है - शौच > सौंस, सांचे > सांसे ।

रूप :- संख्या के तीन रूप मिलते हैं(हस्व, दीर्घ एवं अति दीर्घ - चमार, चमरा, चमरवा संज्ञा शब्द आकारान्त एवं ओकारान्त मिलते हैं (घोरो-घुरवा स्त्री-प्रत्यय न, नी, -इन, -आनी तथा-ई है, जो काछिन, ऊंटनी सुनारिन जिठानी, काकी शब्द में मिलते है । बहु वचन के प्रत्यय(ए (धोरे) और विकारी रूपों में अन है- घोरन् कुरतिन । परसर्गो में संयुक्त परसर्ग

उल्लेखनीय है- के लानै (के लिए), खे लाने (के लिए) खों (को), खो (का) ब्रजभाषा से भिन्न है । उत्तम पुरूष सर्वनामों में मे, मै, मोरो मोओ, मोनो मिलते हैं । अन्य पुरूष में बौ, बो, बा (स्त्रीलिंग) ऊ को मिलते है, पर बहुवचन में वकार वाले रुप मिलते हैं । कृदन्तीय क्रिया रूप इस प्रकार है- वर्तमान कालिक करत् (-त् प्रत्यय), भूतकालिकगओ (-ओ प्रत्यय), (पूर्व-कालिक मारके (के, कें, कै प्रत्यय) तथा क्रियार्थक संज्ञा- जानै, मारनै (-न प्रत्यय) मारवो (-वो प्रत्यय) सहायक क्रिया रूपों में ह धातु के रूप प्रयुक्त होते हैं । इसके वर्तमान काल में तीन प्रकार के रूप मिलते हैं(हौ, रै आदि, आँ,आईं आए आदि तथा आँही, आहै आदि)। इसमें भूतकालिक रूप हतो, हती है और भविष्यत् कालिक हुहौ, होउगो आदि । कर्म वाक्य के रूप जा धातु के योग से सम्पन्न होते हैं ।

ताजुज्बेकी:

यह नाम डॉ. भेलीनाथ तिवारी द्वारा दिया गया है । उनका मानना है कि सोवियत संघ में ताजिकिस्तान तथा उज्बेकिस्तान की सीमा पर हिसार, शहरेनव रेगार, सुर्ची आदि में बोली जाने वाली यह बोली हिन्दी की बोली है । इसके बोलने वाले दिल्ली के आस पास से 13 वीं सदी के लगभग चलकर पंजाब, अफगानिस्तान होते हुए उस क्षेत्र में पहुँचे जहाँ आज हैं । प्रवास यात्रा में इनकी भाषा पंजाबी तथा अफगानी से भी प्रभावित हुई किन्तु वह अब भी स्पष्ट रूप से हिन्दी की बोली है । मूलत: यह बोली ब्रज, हरियाणी तथा राजस्थानी के बीच की है । इस बोली के मुख्य परसर्ग हैं. कर्त्ता- ने; कर्म- त, ते, को; करण- ते, से, चे, नल; संप्र. - ति, को; अपा - ते, से, चे; संबंध. - का, कि, के, क तो ति, ते; अधि. - में, मो, पर, परे । सर्वनाम के रूप हैं : मे, मि हम, मिज (मैंने), हमन (हमने), मत (मुझे), हमत (हमें) आदि । वर्तमान कालिक किया है(छूँ (हूँ, छ (हैं) छे (है) छो (हो), किया विषेशण(हूंगा (यहाँ), उंगा(वहाँ), किंग (कहाँ) कद (कब), जबे (जब), अबे (अब) ।

3.2.2 पूर्वी हिन्दी की बोलियाँ :

पूर्वी हिन्दी की तीन बोलियाँ है- अवधी, मैथिली और छत्तीसगढ़ी । इनमें अवधी को काफी महत्व एवं गौरव प्राप्त हुआ है । रामचरितमानस' के साथ समस्त उत्तरी भारत में फैल गई, पर जिव्हा पर तो अपने क्षेत्र में ही चढ़ी रही ।

अवधी :

अवध प्रदेश की बोली होने से यह अवधी कहलाई । 'अवध' शब्द अयोध्या > ओध से बना हैं । इसे कोसली भी कहा जाता है; क्योंकि अयोध्या प्रदेश कोसल के अन्तर्गत है । बैसवाडी तथा पुरविया इसके अन्य नाम है । इसका क्षेत्र विस्तृत है । यह लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, फैजाबाद, सुल्तानपुर, सीतापुर, खीरी, बहराइच, प्रतापगढ़ एवं बाराबंकी आदि जिलों में बोली जाती है । इसके उत्तर में पहाडी भाषाएँ, पश्चिम में कन्नौजी, दक्षिण में बघेली-छत्तीसगढ़ी एवं पूर्व में भोजपुरी बोलियों के क्षेत्र हैं । इसमें मुल्ला दाऊद, ईसरहास कुतुबन, जायसी, तुलसी, उस्मान, आलम, द्वारिका प्रसाद मिश्र आदि कवि हुए हैं । इसका विकास

अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है (ग्रियर्सन)। पर डॉ. बाबूराम सक्सेना इसे सीधे पालि से विकसित मानते है । डॉ. उदयरानारायण तिवारी इसकी उत्पत्ति किसी बोल-चाल की भाषा से मानते हैं । इसकी उपबोलियाँ है- तिरहरी गहोरा ओ जूडर ।

ध्वनियाँ :- अवधी में अ आ, इ ई, उ ऊ, ए, ऐ, ओ औ दस स्वरों के अतिरिक्त ए, ओ के हस्व रूप तथा इ, उ, ए, के जपित रूप भी मिलते हैं । 'ऋ' के लिए 'रि' का प्रयोग होता है । 'ऐ' एवं औ संध्यक्षर है । जिनका उच्चारण अई, अउ होता है । 'इआ' एवं 'उआ' के बीच 'य' श्रुतियां नहीं मिलती- सिआर, गुआल । व्यंजनों में ष, श नहीं है, इनके स्थान पर 'स' प्रयुक्त होता है । क्, क्, ल्ह, रह महाप्राण व्यंजन भी मिलते हैं । 'ण' के स्थान पर न् हो जाता है- लछमन (लक्ष्मण) संस्कृत के शब्दों के 'ण' का उच्चारण 'ड़' की तरह होता है । 'ल' का 'र' हो जाता है- अंजुरी (अंजलि), मूसर (मूसल) । इसमें शब्द के मध्य में 'ह' का आगम होता है यथा- रहीस (रईस) । अकारण अनुनासिकता पाई जाती है- सांप (सर्प), हाँत (हाथ) ।

रूप :- अवधी में संज्ञा-शब्दों के तीन रूप मिलते हैं (लघु, दीर्ध एवं दीर्घतर- घोडा, घोडवा, धोड़ोना कुत्ता, कुतवा, कुतडना । कुछ शब्दों के वैकल्पिक रूप है यथा- नदी/नदिया, नाउ/नउवा । स्त्री-प्रत्यय हैं (ई-इनि-इनी,आनी-नी और-इया, जो घोड़ी, लालाइनि लरिकिनी जिठानी, मास्टरनी एवं बछिया शब्दों में देखे जा सकते हैं । बहुवचन के प्रत्यय ए, एं हैं । एकवचन के तिर्यक रूपों में-हि-इं प्रत्यय मिलते हैं और बहुवचन में न,-न्ह-नि-न्हि प्रत्यय मिलते हैं । कर्ता परसर्ग रहित प्रयुक्त होता है । कर्म-सम्पदान का, क कां, करण-अपादान सड, सों, सेति हुँत आदि, सम्बन्ध- के, कर, केर आदि परसर्ग उल्लेखनीय है । सर्वनामों में ए, इ ओ उ के, से, जे, ते, जैसे एकक्षरीरूप मिलते हैं, विशेषण अकारान्त या व्यंजनान्त होते हैं और स्त्री-प्रत्यय अपनाते हैं । अवधी सहायक क्रियापदों का वैविध्य हैं, जो है(आटे, बाटेहै, अहै, भए, रहे तथा अछ । वर्तमान काल में भा, भइ, भयेउ रहा, रहे, हते, हता आदि भूतकाल में तथा होव, होवइ, होइहि भविष्यकाल में । कृदन्तीय रूप इस प्रकार है-

क्रियार्थक संज्ञा-आ-अब जोड़कर-करन, करब

वर्तमान कालिक- त जोडकर- करत, करति

भूतकालिक-आ-ए, ई यथा- चला, चले, चली

पूर्व कलिक (इ प्रत्यय से चलि, करि

क्रिया में लिंग, वचन एवं पुरूष का बोध रहता है ।

बघेली :

बघेली उस क्षेत्री की बोली है जो बघेला राजपूतों द्वारा शासित रहा था । 12 वीं सदी में सोलंकी राजपूत व्याघ्रदेव ने बघेल वंश की नींव डाली, जिससे प्रदेश का नाम बघेल खंड पड़ गया । इसका केन्द्र रीवां है । अत: इसे रीवाई भी कहते हैं । इसका क्षेत्र रीवां के अतिरिक्त दमोह, जबलपुर, मांडला, बलाघाट, बांदा, फतेहपुर, हमीरपुर आदि जिलों में फैला हुआ है । इसमें

लोक साहित्य है । कैथी लिपि प्रचलन में थी, पर अब अधिकांश में नागरी लिपि प्रयुक्त होती है । इसकी उपबोलिया मुरगुजियां, बैगानी, बिंझवाली, कलगा पुलियां, हलबी आदि हैं । विद्वान बघेली को अवधि का ही एक रूप मानते है । उसके रूप प्राय: अवधी के समान हैं ।

ध्वनियाँ :- इसकी स्वर ध्वनियां अवधी के समान हैं, यथा(अ, आ, इ ई, उ ऊ, ए, ऐ, आ, ओ तथा ए, ओ के हस्व रूप । और इ, उ,ए के जपित रूप ऐ और औ संध्यक्षर है । 'ष' एवं श व्यंजन बघेली में नहीं है । इसके स्थान पर 'स' प्रयुक्त होता है । व का ब उच्चारण भी मिलता है (गवा झ गबा आवा झ आबा । इसमें अर्द्धस्वर को उसी वर्ग की स्वर ध्वनियों के स्थान पर प्रयुक्त होने के उदाहरण मिलते हैं, यथा- पेट झ प्यार, घोडझ धाड, मोर ल प्यार, देत झ घात। ग और 'ह' मिलकर 'घ' बन जाते हैं (जगह > जाघा)। अकारण अनुसाकिता मिलती है- हात (हाथ)। समीकरण की प्रवृश्ति है (सूरज सुरुज) ।

रूप - इसमें शब्दों के दीर्घ एवं दीर्घतर रूप मिलते हैं, जो-कौना वा जोड़कर बनाये जाते हैं । छोट- छोटका- छोटकौना लहुस- लहुरवा विशेषणों को भी दीर्घ रूप में प्रयोग किया जाता है । इसके लिए-हा-जोड़ा जाता है यथा नीक-निकहा। बहुवचन के विकारी रूप अन जोडकर बनाये जाते हैं । विभक्ति रूप भी प्रचलन में है ध्वाडई (घोडे को), घरे (घर में) । उत्तम एवं मध्यम पुरुष सर्वनामों के म्वहि, म्यां म्वाहि, त्वाहि, त्वा, त्वारे विकारी रूप मिलते हैं । परसर्ग अधिक नहीं है- कर्म सम्प्रदान का, कहा, करण- अपादान से, ते, तार, सम्बन्ध-कर एवं अधिकरण-में । इसके सामान्य वर्तमानकाल के रूप हिन्दी के समान हैं(चलत ऑ चल त्ये है)। आज्ञार्थ के रूप होते हैं (चल-स, चलब)। सहायक एवं अस्तिवाचक किया रूप 'ह' या रह' धातु से निश्पन्न होते हैं । रह धातु के रूप भूतकाल में मिलते हैं और वर्तमान एवं भविष्य में हू के रूप मिलते हैं । इसके कृदन्तीय रूप इस प्रकार है- वर्तमान कालिक त्- देखत्, भूतकालिक-आ, अ (चल अ)ए,-ई (चली) पूर्वकालिक-कै-कइ (चलकै, खाकई) क्रियार्थक संज्ञा-ब (चलब, करब) ध्वनि-प्रवृति से क्रिया विशेषणों के रूपों में विशेषता मिलती है- इहंवां, ओहे कैत जेहै कैत जेहै कयोत तेहै, केती आदि ।

छत्तीसगढ़ी :

इस बोली का केन्द्र छत्तीसगढ़ होने से इसे छत्तीसगढ़ी कहा जाता है । छत्तीसगढ़ नामकरण विषयक अनेक मत हैं । कनिंघम के अनुसार यह 'अधिष्ठ्रि' प्रदेश था । इसका 'अधिष' 'छत्तीस' बन गया । चेदिवन्शी हैहयों के कारण वह 'चेदीशगढ' कहलाया । 36 चमारों के बिहार से यहां आकर बसने की कल्पना इसके साथ जुड़ी हुई है और इसे छत्तीसगढ़ों (राज्यों) का समूह मानकर भी नामकरण का समाधान खोजा गया है । यह बोली रामपुर, बिलासपुर, सम्भलपुर के पश्चिमी भाग कांकेर, नन्दगांव, सरगुजा, चांदा के उत्तरी-पूर्वी भाग, बालाघाट के पूर्वी भाग तथा सांरगढ जयपुर, बस्तर और बिहार के कुछ भागों में प्रचलित है । इसमें लोक साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है । ललित साहित्यकार के रूप में शुकलाल प्रसाद पांडेय ने

आधुनिक युग में प्रतिश्ठा पाई है । इसका विकास अर्धमागधी से हुआ है । इसकी लिपि नागरी है ।

ध्वनियाँ :- इसके स्वर हैं अ आ, इ ई, उ ऊ, ए, ऐ, ओ एवं औ । अ,इ,उ,क जपित रूप मिलते हैं तथा ऐ, ओ के उच्चारण अइ, उइ, रूप में होते हैं। बइल (बैल) कउन (कौन) । इसमें 'ऋ' 'का रि' हो जाता है । ए, ऐ, ओ, औ के हस्व रूप भी मिलते है । 'ण' का 'न्' हो जाता है । 'ष' का 'स' एवं श, 'छ' का 'स' अथवा 'ख' हो जाता है यथा (वर्षा, बरसा, बरखा)। 'क्' महाप्राण बन जाता है (इलाका ल इलाखा । सघोश 'ग' अघोश हो जाता है-बन्दगी झ बन्दकी ।

रूप :- इसमें संज्ञा शब्दों के तीन रूप मिलते हैं - घोड़ा, घोडवा एवं घोडवना । बहुवचन के प्रत्यय-ए,- अन्,- न, अइ है । स्त्री प्रत्यय हैं- ई-इया, निन-इन, आइन आनी, जिसके उदाहरण क्रमश: है-टूरी (लडकी), बछिया, ऊंटिनिन लोहारिन, तिवराइन देवरानी । कारक रूपों में विभक्तियाँ मिलती है । कर्त्ता परसर्ग- रहित प्रयुक्त होता है । कर्म सम्प्रदान- ला, का, लू करण अपदान- ले, से, सम्बन्ध के तथा अधिकरण मां में आदि परसर्ग है । अन्य पुरुष सर्वनाम के रूप इस प्रकार हैं ये, ए, इया (एकवचन में), इन, येमन (बहुवचन में) सर्वनामों में बहुवचन का प्रजय- मन है -तुमन, हमन, येमन। सहायक क्रिया वर्तमान में 'ह' से तथा भूत में रह से बनती है । इसके कृदन्तीय रूप इस प्रकार है(क्रियार्थक संज्ञा(न् एवं व से (होन, होव) वर्तमान कालिक -त् से होत । भूतकालिक-ए से देखे । पूर्वकालिक-के से होके ।

3.2.3 राजस्थानी हिन्दी की बोलियाँ

राजस्थानी अतीत में समृद्ध भाषा रही है । इसमें प्रचुर परिमाण में साहित्य सृजन हुआ । तब इसका मानक रूप बन गया था जिसमें समस्त राजस्थान के चारण, जैन व भक्त रचनाएँ कर रहे थे । अब इसकी बोलियों में छुट-पुट रूप में साहित्य लिखा जा रहा है, पर उसे व्यापक स्वीकृति नहीं मिल पाई है । राजस्थानी आन्दोलन के नाम पर विभिन्न रचनाकर उसके मानक रूप से हट कर अपनी-अपनी बोलियों में साहित्य सृजन कर रहे हैं । राजस्थानी की प्रमुख बोलियाँ है- मारवाड़ी, मालवी, जयपुरी, एव मेवाती ।

मारवाड़ी :

मारवाड़ की बोली होने के कारण इसे मारवाडी कहा गया । साहित्य में प्रयुक्त मारवाड़ी को डिंगल भी कहा जाता है । इसका क्षेत्र मारवाड़, मेवाड़, जैसलमेर, बीकानेर, दक्षिणी पंजाब तथा जयपुर का पश्चिमी-उत्तरी भाग है । इसमें प्रचुर मात्रा में साहित्य रचा गया है और लोक साहित्य भी उपलब्ध है । इसके कवि ईसरदास, बाकीदास आदि हैं । इसकी उपबोलियों में थली, मेवाड़ी, बीकानेरी, शेखावटी और बागड़ी उल्लेखनीय है । यह राजस्थानी की विस्तृत क्षेत्रव्यापी बोली है । इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है ।

ध्वनियाँ :- इसकी स्वर ध्वनियाँ हैं(अ आ, इ ई, उ ऊ, ए, ऐ, ओ औ । व्यंजनों में पांचों वर्गो के व्यंजन तथा य, र, ल, द्, स, ह्, के अतिरिक्त व । न्द, न्ह, रह, स्व विशेष

व्यंजन है। 'ड़' एवं 'ढ' भी मिलते हैं । श का उच्चारण 'ख' होता है । डॉ. बाहरी के अनुसार इसकी 'घ' एवं 'स' क्लिक ध्वनियां हैं । इनके उच्चारण में श्वास थोडा भीतर खींचना होता है, जैस धोवो (पशु), जास्यो । 'स' का उच्चारण तालव्य जैसा होता है । 'आ' तनिक वृतमुखी है- कॉम (काम) । कहीं-कहीं 'च' और 'छ' प्राय: 'स' रूप में अच्चरित होते हैं जाक-छाछ । 'इ' एवं अ परस्पर स्थान बदल लेते हैं(मिन्दर-मंदिर, पिंडत-पडित)। 'ल' 'ल' में परिवर्तित हो जाता है जल झ जल। अल्पप्राणीकरण एवं 'हू' लोप मिलता है- भूक (भूख), कयो (कहयो) ।

रूप :- मारवाड़ी ओकारान्त बोली है, जिसमें विकारी रूप एकवचन में आकारान्त एवं बहुवचन के आकारान्त हो जाते हैं (थोड़ी, घोड़ा, घोड़ो पर व्यंजनान्त का विकारी रूप केवल बहुवचन में आकारान्त रूप में मिलता है- घरा! कर्त्ता अपरसर्गीय है । सम्बन्ध कारक के परसर्ग रो,रा,री है । सप्तमी की विभक्ति घरे, घरा रूप में मिलती है । बहुवचन आ प्रत्यय से बनता है- घोड़ो, घोड़ा । उत्तम पुरूष एकवचन सर्वनाम हुं, चूं और बहुवचन में म्है, आया (श्रोत सापेक्ष) है। अम. पुरुष के विकारी रूप बुणा, वणी वां, वर्णा आदि है । नित्य सम्बन्धी सर्वनाम तिको तिणा, तिका है । सहायक क्रिया हू / ह धातु से सम्पन्न होती है जिसके भविष्यत् काल के रूप होसी एवं हेऊला मिलते हैं । वर्तमान कालिक कृदन्त- त (मारतो) भूतकालिक कृदन्त ओ ई (मारयो, मारियो, मारी), पूर्वकालिक कृदन्त-कर, अर, नै (मारकर, मार र, मार नै) तथा क्रियार्थक संज्ञा अणा, राणों, बो (मारणा मारणो मारबी) मिलते हैं । सामान्य वर्तमान हिन्दी से भिन्न संस्कृत र्ला से विकसित है- मारूं हं, मारै है । इसका स्वार्थ प्रत्य 'ड़' उल्लेखनीय है ।

मालवी :

मालवा की बोली मालवी नाम से जानी जाती है । उज्जैन के आस-पास का क्षेत्र मालवा कहलाता है । इसके अन्य नाम 'आवन्ती' या 'अवन्तिजा' महाकालवन मललई आदि भी मिलते हैं । इसके अन्तर्गत पश्चिम में परतापबगढ रतलाम, दक्षिण-पश्चिम में इन्दौर, दक्षिण में भोपाल ओर होशंगाबाद का पश्चिमी भाग तथा बेतल का उत्तरी भाग, उत्तरी भाग, उत्तर-पूर्व में गुना और उत्तर-पश्चिम में नीमच, उत्तर में खालियर, झालावाड़, टोंक तथा चितौड़गढ़ के कुछ भाग सम्मिलित है । यदि बोली के आधार पर इस भाग की सीमा निर्धारित की जावे तो नर्मदा के ऊपर और उत्तर में गुजरात की सीमा तक का भू-भाग मालवा जनपद कहा जाता है । शुद्ध मालवी उज्जैन, इन्दौर और देवास में बोली जाती है । लिपि तनिक विकृत नागरी है, पर बहीखातों में 'महाजनी' मिलती है । इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है ।

ध्वनियाँ :- मालवी की स्वर-ध्वनियां हैं(अ आ, इ ई, उ ऊ, ए, ऐ, ओ औ । पाँचों वर्गो में से 'ण' नहीं मिलता। ड़, ढ,न्ह,म्ह,ल्ह,रह,ल, अतिरिक्त व्यंजन भी है तथा य, र, ल, व, श, स, तथा हू भी। इसमें 'ऐ' का 'ए' हो जाता है (चैन-चेन तथा ओ का ओ-सौ-सो । अ इ उ में परस्वर परिवर्तन मिलता है- दन, ठाकर, हन्दारा कंवर (दिन, ठाकुर, अन्धेरा, कुंवर)) । मध्य एव अनय-अक्षर में 'ड़' के स्थान पर 'ड' मिलता है- लडकी,

घोडा। अल्पप्राणीकरण की प्रवति है-बी (भी), हात (हाथ)'।' के स्थान पर 'लू' प्रयुक्त होता है - काल (काल-मृत्यु) अ का 'आ' हो जाता है- पाड़ोसी बाँदरा, लाकड़ी । (पड़ोसी, बंदर, लकड़ी)

रूप :- मालवी की प्रवृत्ति औकारान्तता की है । औकारान्त संज्ञाएं बहुवचन में आकारान्त हो जाती है । विकारी रूप है-घोडो-घोड़ा-घोडा बहुवचन बताने के लिए होर, -होरणो-होनों का भी प्रयोग होता है । स्त्रीलिंग के प्रत्ययों में ई की प्रधानता है- घोडी लुवारी, (लुहारी) । कण, कणी कई के ऊ (वह) वे (वे), थाणो (तुम्हारा), म्हाणो (हमारा) विशिष्ट सर्वनाम-रूप हैं, परसर्गो में कर्ता-ने कर्म-के, खे, रे, करण अपादान- से, ती, भारे सम्प्रदान दो/के, सारू सम्बन्ध को, का की, रारोरी तथा थाको, थाका, थाकी, अधिकरण में आदि हैं । सहायक क्रिया तथा अस्तिवाचक क्रिया रूप हिन्दी के समान है । कृदन्तीय रूप है- वर्तमान कालिक-त (चलतो), भूतकालिक-ओ-ई (चल्यो, चलो) पूर्वकालिक (ने, ई ने (चलने, चलीने) तथा क्रियार्थक संज्ञा (नो (चलनो); सामान्य वर्तमान राजस्थानी के समान है, जो लट् लकार के विकास तथा सहायक क्रिया के योग से सम्पन्न होता है(चलूं इं, चली ही,) पर अपूर्ण भूत के रूपों में वर्तमान कालिक कृदन्त तथा सहायक क्रिया का योग रहता है(चलतो थो)।

जयपुरी :

जयपुरी तत्कालीन जयपुर राज्य की प्रमुख बोली है । जयपुर सन् 1798 में बसाया था, अत: यह नाम नया है । पुराना नाम ढूंढाड है, जिससे इसे ढूंढाड़ी भी कहते हैं । इसके पश्चिमी क्षेत्र पर ढूंड या भीटा है, जहाँ किसी युग में बड़े-बड़े यज्ञ हुए थे । जयपुरी का क्षेत्र कोटपुतली, बैराठ, आमेर, फुलेरा,दुदु, फागी, सांगानेर, चाक्दूसू लालसोट, दौसा सिकराय बसवा, रामगढ़ एवं बस्सी तहसीलों में फैला हुआ है । जयपुरी की तोरावाटी काठैड़ा चौरासी, नागरचाल तथा राजावटी उपबोलियाँ हैं । इसमें अनुदित साहित्य मिलता है । और लोक साहित्य पर्याप्त है । इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है । इसकी लिपि नागरी है ।

ध्वनियाँ :- इसके स्वर हैं अ आ, इ ई, उ ऊ, ए, ऐ एवं ओ औ । व्यंजनों में ड़, ढ़, न्ह, म्ह, ल्ह, रह एवं 'ल' अतिरिक्त है, पर 'ष', एवं 'श' का अभाव है । यह टकार-बहुला है । इसमें अ तथा 'आ' एवं 'इ' तथा 'उ' परस्पर परिवर्तित हो जाते हैं पंडित-पिंडत दिन-दन, मदिर-मिदर। 'ल' का 'ल' हो जाता है- बाल-बाल । 'न्' 'ण' रूप में मिलतों है यथा- कहानीझ खाणी । स्वर मध्यम-'ह' लोप की प्रवृत्ति है- साहब > साब। कहबो > कैबो । उच्चारण में अकारान्त शब्द व्यंजनान्त मिलते हैं- राम् काम ।

रूप :- जयपुरी ओकारान्त-प्रधान बोली है । ओकारान्त संज्ञा शब्द बहुवचन में आकारान्त मिलते हैं। तिर्थक रूपों में एक वचन आकारान्त एवं बहुवचन आकारान्त हो जाते हैं । घोड़ो, घोड़ा, घोड़ा । स्त्रीलिंग का प्रमुख प्रत्यय -ई है, जो संज्ञा के अतिरिक्त विशेषण.' एवं क्रिया-पदों की प्रभावित करता है । जयपुरी में कर्त्ता का परसर्ग शून्य है । कर्म-सम्प्रदान(नौ/कै करण-अपादान-सू/से, सम्बन्ध को, का, की और अधिकरण-में, मालै)।

सर्वनाम रूपों में उत्तम-मध्यम पुरुषों के सम्बन्ध कारकीय रूप माँवलो-थॉवलो, म्हांको-थॉको के अतिरिक्त हैं और ध्यातव्य है । सहायक तथा अस्तिवाचक क्रियापद 'छ' से सम्पन्न होते हैं- छत छै, छो पर भविष्यत् काल के रूप में यह ह से बनते हैं- हैला, होला, होऊँला । भविष्यत् काल-ग के ल प्रत्यय से सम्पन्न होता है- जासी, जावैलो। ग वाले रूप भी सुने जाते हैं (जावैगों)। कृदन्तीय रूप इस प्रकार है (भूतकालिक-यो ई-(चल्यो, चलो), वर्तमानकालिक-त-होती, पूर्वकालिक-अर,-(-रवार) 'ट' एवं 'ल' स्वार्थे प्रत्यय का प्रयोग बहुलता से होता है ।

मेवाती:

मेवाती 'मेवात' क्षेत्र की बोली है । यह क्षेत्र मेवों का निवास स्थान होने से मेवात कहलाया । इसके अन्य नाम अलवरी, बिघौता है । वर्तमान में मेवाती की सीमा इस प्रकार है- हरियाणा, जिला गुडगांव की तहसील झिरका-फिरोजपुर एवं नूह, उत्तरप्रदेश के जिला मथुरा को कोसी एवं छाता तहसीलों का पश्चिमी अंचल, राजस्थान के जिला अलवर की राजगढ़ तिजारा, किशनगढ़, अलवर, लक्ष्मनगढ़, गोविन्दगढ तहसीलें तथा जिला भरतपुर की कामा डीग (पश्चिमी भाग) नगर (पश्चिमी भाग-पहाड़ी क्षेत्र) तहसीलें आती है । मेवाती में लोक-साहित्य मिलता है । मेवाती की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है । खड़ी मेवाती, राठी मेवाती, नेहड़ा मेवाती, कठेर मेवाती आदि इसकी उप बोलियाँ हैं ।

ध्वनियाँ :- मेवाती मे अ आ, ई, उ ऊ, ए, ऐ, ओ एवं औ स्वर हैं । इसका प्रत्येक रबर अनुनासिक है । ऐ एवं औ स्वर का उच्चारण मूल स्वर रूप में होता है । व्यंजनों में ड़,ष,श,त्र, का अभाव है तथा व्ह, म्ह, क्, इसके अतिरिक्त महाप्राण व्यंजन है। दो महाप्राण व्यंजन पास-पास होने पर अंतिम की महाप्राणता लुपा हो जाती है- हात (हाथ)। 'ण' 'न्' का स्थान ले लेता है-पाणी (पानी)। शब्दान्त के व्यंजन की महाप्राणता का लोप हो जाता है- बतक (बतख), जीव (जीभ) । 'ल' 'ल' के स्थान पर प्रयुक्त होता है- बालक (बालक) ।

रूप :- यह औकारान्त प्रधान बोली है, आधुनिक मेवाती में बहुवचन-'न' या-आ जोड़कर बनाया जाता है- मेव, मेवन कचरा-कचरा । स्त्रीलिंग -ई-आणी,-आण, प्रत्ययों ये बनाये तो हैं (दादो-दादी, पण्डत-पण्डताणी, ऊँट-ऊंटनी । इसके प्रमुख परसर्ग हैं (कर्त्ता ने, नौ करण अपादान-से, ते,सूं सेवी कर्म-सम्प्रदान क कू को, सम्बन्ध-का, की, कै, अधिकरण-में, मै, पर, माही । उत्तम पुरुष सर्वनाम के एक वचनीय रूप है - मै, हूँ मोंकू म्हनै, मोलु आदि निश्चयवाचक सर्वनाम है- यो, ई, ऐ (विकारी), सम्बन्ध वाचक हैं (ई, अएए (विकारी) । सहायक क्रिया एवं आस्तिवाचक क्रिया है से बनती है जिसके वर्तमान, भूत के रूप है- है, हूं था, थो । इसके कृदन्तीय रूप हैं (वर्तमान कालिक-त-(चलतो), भूतकालिक यो,-ई, (होयो, हाई) क्रियार्थक संज्ञा बो-णु (होबो, हैगु पूर्वकालिक कर,-र (चलकर, होर) । वर्तमान काल संस्कृत लट लकार से विकसित है- चलै है, चलूं । भविष्यत् काल ग प्रत्यय के योग से सम्पन्न होता है- चलूंगों, चलैगो ।

3.2.4 बिहारी हिन्दी की बोलियाँ :

बिहारी उपभाषा की बोलियों में तीन प्रमुख हैं - भोजपुरी, मैथिली, मगही । इनमें से भोजपुरी पश्चिमी बिहारी की बोली है और मैथिली एवं मगही पूर्वी बिहारी की । साहित्य रचना की दृष्टि से मैथिली सम्पन्न बोली रही है।

भोजपुरी :

भोजपुरी का नामकरण भोजपुर नाम के छोटे से कस्बे के आधार पर पड़ा है । इसका अन्य नाम पूरबी भी है । उत्तर प्रदेश में बनारस, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, देवरिया और आजमगढ़ जिले और बिहार में छपरा, चम्पारन, पलामू आरा ओर रांची जिले इसके क्षेत्र है । भोजपुरी हिन्दी-क्षेत्र की सबसे बड़ी बोली है । इसकी प्रमुख बोलियाँ है- उत्तरी भोजपुरी, दक्षिणी भोजपुरी, पश्चिमी भोजपुरी, नगपुरियां आदि । डी. उदयनारायण तिवारी द्वारा इसको परिनिष्ठित रूप प्रदान किया गया । अत: अब इसमें साहित्य सृजन हो रहा है और भोजपुरी को सिनेमा की माध्यम-भाषा भी बनाया गया है । इसमें लोक साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । मागधी अपभ्रंश से इसका विकास हुआ है । इसकी लिपि कैथी है, पर देवनागरी का प्रचलन अधिक हो रहा है ।

ध्वनियाँ :- इसके स्वर हैं- अ आ, ई, उ ऊ, ए, ऐ, ओ एवं ओ । इसका 'अ' ईशत् वृतमुखी है । इसकी व्यंजन- ध्वनियों में ड़, ढ़, ड, म्ह, ल्ह, न्ह, एवं रह का प्रयोग होता है । इसके 'ड' की यह विशेषता है कि इसका स्वतंत्र असंयुक्त रूप में प्रयोग होता है जैसे- टाड (पैर), कडना (कंगन), अडिया (अंगिया) । इसका महाप्राणा रूप भी मिलता है- ओठडहावल (दरवाजा बन्दर करना), पेड्हा (चिडिया) । शब्द के मध्य आने वाले 'रि' के 'र' का लोप हो जाता है, केवल 'इ' रह जाता है- लरिका-लइका । इसमें ल का र हो जाता है- फल झ फर, बाल झ बार । 'न्' का 'ल' हो जाता है- नोट झ लोट, नंबरदार झ लबरदार, नोटिस झ लोटिस । इसमें महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति मिलती है- पेड झ फेड, महाभारत झ महाभारत ठंडा झ ठंढा । घोषीकरण भी मिलता है नकद झ नगद, डॉक्टर झ डगदर । 'श' एवं 'रस' का 'च' बनता है- शाबास झ चावस । 'ल' का 'र' हो जाता है (मछली झ मछरी ।

रूप :- इसमें संज्ञा-शब्दों के सामान्य, दीर्घ एवं दीर्घतर रूप मिलते हैं (चमार, चमरा, चमरवा) । क्रोध एवं व्यंग्य में-ऊ प्रत्यय मिलता है- चमरऊ । बहुवचन नि, न्ह, न आदि प्रत्ययों से बनता है (धरनि, धरन्ह, संभव) । स्त्रीलिंगीय प्रत्ययों ई, नी, आनी, इया आदि (लइकी, मास्टरनी, मिस्तरानी चिड़िया) । स्त्रीलिंग संज्ञाएँ- इकरान्त व ईकारान्त होती है- बहिनि लइकी । विशेषण संज्ञावत् तीनों रूपों में मिलते हैं । परसर्ग हैं- कर्त्ता-पर सर्ग रहित है, कर्म-संप्रदान-के के, को, ला, ले, लागि करण अपादान-से, सें, सो अधिकरण-में मो, पर, औन्मे । पुराषवाचक सर्वनामों में बहुवचन के रूप आकर्षण हैं (हमनीका, हमहन हमनीक तोहनीका तोहान आकरन उन्हन आदि । सम्बन्ध वाचक सर्वनामों के रूप जिन्हिला, जिन्हकाला आदि अनेक हैं । वर्तमान में सहायक क्रिया-वर्तमान काल में बाट धातु से

बनती है- बाटी, भूत में रह धातु से-रहली, रहे तथा भविष्यत् में हो धातु से-होई, होवा । कृदन्तीय रूप है-

वर्तमान कालिक-त-चलत् आवत ।

भूतकालिक-ल, लि-चलल, गइलि ।

क्रियार्थक संज्ञा-ल,-चलत् ।

पूर्वकालिक-के चलके, खाके ।

सामान्य वर्तमान काल वर्तमान कालिक कृदन्त तथा सहायक क्रिया के योग से हिन्दी के समान सम्पन्न होता है । भूतकाल भी कृदन्त रूपीय है । भविष्यत् काल-ब प्रत्यय के योग से बनता है - चलब, चलबे । कर्मवाव्य जा के योग से बनता है- किताब पढल जाले । प्रेरणार्थक क्रिया रूपों में- आव, वाद प्रत्यय मिलते हैं -चलल चलावल, चलवावल । कुछ क्रिया विशेषण हैं- केठेन केहिजा (कहां), जेहजून, जेबेरा (जब) तेठाई, तेठिन (तहां) आदि ।

मगही :

मगध की भाषा मागधी (प्राकृत-अपभ्रंश) थी । मागधी से ही मगही शब्द विकसित हुआ है । हिन्दी की बोलियों में केवल मगही को ही अपनी जननी का नाम किंचित् ध्वनि-परिवर्तनों के साथ प्राप्त हुआ है । यह पूरे गया जिले में तथा पटना, हजारी बाग, मुंगेर, पालामऊ, भागलपुर, रांची जिलों के कुछ भागों आदि में बोली जाती है । इसमें काफी लोक साहित्य मिलता है । इसका विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है । इसके लिए प्रमुख्यत: नागरी एवं कैथी लिपियों का प्रयोग होता है । इसकी प्रमुख उपबोलियाँ है- आदर्श पूर्वी, जंगली, टलहा और सोनतटी ।

ध्वनियाँ :- मगही में ये स्वर हैं - अ आ, ई, उ ऊ, ए, ऐ, ओ एवं औ । इन सभी स्वरों के अनुनासिक रूप भी मिलते है- संडसी, भूंजा आदि । ऐ, ओ के उच्चारण अई या अय और अउ एवं अव करने की प्रवृत्ति अपनाये हुए हैं । व्यंजन-ध्वनियों में पांच वर्गो के अतिरिक्त य, र, ल, व, स, एवं हू मिलते है । 'श','ष' का प्रभाव है, जिनके स्थान पर- 'स' प्रयुक्त होता है, पर श कभी-कभी 'ख' भी बन जाता है- देश > देस, मनुष्य ? मानुख । इसमें ल >र रूप में मिलता है- मछली >, मछरी, तलवार > तरवार । मगही में महाप्राणीकरण की प्रवृति मिलती है- पेडू, फेड । अकारण अनुनासिता मिलती है- हांथ (हाथ), संकड़ (सड़क) । विपर्यय के भी पर्याप्त उदाहरण मिल जाते हैं- बतुस, संकड़ (वस्तु, सड़क) ।

रूप :- अनेक संज्ञा शब्द दीर्घ रूप में मिलते है, जिनके साथ हीनता का भाव जुड़ा रहता है । सामान्य दीर्घ एवं दीर्घतर-तीनों रूपों को भी कभी-कभी देखा जा सकता है (घोड़ा, घोडवा, घोडववा । चौथा निर्बल व्यंजनान्त रूप भी मिलता है (घोड ,लोह । स्त्रीलिंग शब्दों का निर्माण-ई, इया, इत्र, आइन नी, एनी प्रत्ययों से होता है जैसे महरा-महरी, घोड़ा-घोडिया, जाट-जाटिन, गुरू-गुरूआहन, मेहतर- मेहतरनी, पडित-पंडितैनी । बहुवचन के प्रत्यय - न, सब- लोग है- घोडून, घर सब, माली लोग । कारक रूप सरल है । कभी विभक्तियां भी

मिलती हैं । इसके उल्लेखनीय परसर्ग इस प्रकार हैं- कर्म संप्रदान (ला, ले, लेल, लागी, अधिकरण-मो ने । कर्त्ता कारक बिना परसर्ग के रहता है । सर्वनाम के रूपों का आधिक्य है (जैसे उत्तम पुरुष बहुवचन कर्म-संप्रदान के रूप है- हमनी, हमनीके, हमरनी, हमरनीलेल, हमहरनी के । यह अनेकरूपता क्रिया पदों में भी मिलती है । अनेक क्रिया रूप हर पुरुष मैं चार प्रकार के होते है जिनमें कर्त्ता कर्म के आदरार्थी एवं अनादरार्थी के संयोग मिलते है जैसे- (1) ही, हां, हे, (2) हहिन (3) ह, हहो, दहू (4) हदुन, हखुन । ये सभी रूप अस्तिवाचक क्रिया के सामान्य वर्तमान काल के मध्यम पुरूष के रूप हैं । इसके कृदन्तीय रूप इस प्रकार है- वर्तमान कालिक-अत (चलत), इत (चलित) भूतकालिक अल (चलल), अलभेल (चललभेल) क्रियार्थक संज्ञा-अल (चलन), अब (चलब) । कर्तृवाचक-एवला (चलेवला), अनहार(चलनहार)

मैथिली :

बिहार के मिथिला क्षेत्र की बोली का नाम मैथिली है । मिथिला नाम प्राचीन है जिसे अनुमानों के आधार पर समझाने के प्रयत्न हुए हैं । इसके अन्य नाम हैं- देसिला बअना (विद्यापति) तथा तिरहुतिया । इसका क्षेत्र बिहार के उत्तरी भाग में पूर्वी चम्पारन, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर, दरभंगा, पुनिया तथा उत्तरी संथाल परगना में फैला है । इसमें लोक साहित्य तो है ही, वर्तमान में इसमें साहित्य-सृजन युद्ध स्तर पर किया जा रहा है । इसके कवि है उमापति, नन्दीपति मनबोध झा आदि । इसकी अपनी लिपि है जो मैथिली कहलाती है, पर आजकल नागरी लिपि लोकप्रिय होती जा रही है । मागधी अपभ्रंश से इसका विकास हुआ है । इसकी कुछ उपबोलियां ये है- उत्तरी मैथिली, दक्षिणी मैथिली, पूर्वी मैथिली, पश्चिमी मैथिली, छिकाछिकी, जोहला केन्द्रीय ।

ध्वनियाँ :- इसके स्वर हैं- अ आ, ई, उ ऊ, ए, ऐ, ओ एवं औ । अ का उच्चारण संवृत होता है । ए, ऐ, ओ औ के हस्व एवं दीर्घ उच्चारण मिलते हैं । अ इ उ के अति लघु उच्चारण होता है । मैथिली के शब्द स्वरान्त है । व्यंजनों में पाँचों वर्ग की ध्वनियों के साथ भ, र, ल, व, ष, र,स, ह, ड़, ढ़ तथा रह, ल्ह, ड़, ह्, न्ह, म्ह मिलते हैं । 'ड' का स्वतन्त्र रूप में प्रयोग मिलता है । इसमें 'ल' का 'न्' और 'न्' का 'ल' हो जाता है- सं. लवण > नून, नोट > लोट । महाप्राणीकरण की प्रवृति मिलती है- सं. भ्रमर > भरम्हरा, वेश > भेख ।

रूप :- मैथिली में संज्ञा शब्द सामान्य दीर्घ एवं दीर्घतर रूपों में मिलते हैं (घोड़ा, घोडवा, घोडउआ । कभी-कभी चार रूप भी मिलते हैं । चौथ रूप हस्व स्वरान्त होता है- घोड़ । स्त्रीलिंग-ई, इया, ईवा आइन आईनि प्रत्ययों से बनता है- (नेनी, नेनिया नेनउवा, पंडिताइन, पंडताइनि) । बहुवचन-अन, अनि प्रत्ययों से प्राय: बनता है- घरन, घोड़नि । कर्त्ता कारक में परसर्ग नही है, शेष कारकों में परसर्ग इस प्रकार है- कर्म-संप्रदान-के, के, लेल, लै, लागी; करणा-अपादान-से सै, सै, सों, सउं हौ; अधिकरण (में, मो, मं आदि । सर्वनाम रूपों का बाहुल्य है; मध्यम पुरुष के बहुवचन के रूप हैं- तोहनी, तोहे, सभ,

तू सभ, तो सभ, तोहरा सभ । अनिश्चयवाचक सर्वनाम के एकवचन के रूप भी अनेक है- केऊ, कोई केहु, कौनो, कुछु, किछिओं आदि । विशेषण के रूप भी संज्ञावत् है । इसके क्रियारूपों में वचन का भेद प्राय: कम-सा है और क्रिया के रूप कर्त्ता एवं कर्म में आदर-अनादर की भावना के अनुसार बदलते हैं । इसका परिणाम यह हुआ कि रूपों की अधिकता हो गई है । सहायक क्रिया तथा अस्तिवाचक क्रिया छ धातु से सम्पन्न होती है जिसके वचन तथा आदर-अनादर के आधार पर अनेक भेद मिलते हैं । सामान्य वर्तमान सं. लट् लकार से विकसित हुआ है और सहायक क्रिया के योग से बनता है- हम चलै छी (मैं चलता हूँ । इसके कृदन्तीय रूप इस प्रकार है- वर्तमान कालिक-त (देखत), भूतकालिक - ल (देखल) पूर्वकालिक- केकै (देखिके, खदेकै) ।

3.2.5 पहाड़ी हिन्दी की बोलियाँ.

पहाड़ी भागों में बोली जाने के कारण यह उपभाषा पहाड़ी कहलायी । पहाड़ी हिमाचल प्रदेश में भद्रवाह के उत्तर-पश्चिम से लेकर नेपाल के पूर्वी भाग तक फैली हुई है । इसके प्रधान रूप तीन हैं -

1 पश्चिमी पहाड़ी, 2. मध्यवर्ती पहाड़ी व 3. पूर्वी पहाड़ी ।

पूर्वी पहाड़ी में नेपाली आती है । अत: इसका अध्ययन हमारी सीमा में नहीं आता । पश्चिमी पहाड़ी के अन्तर्गत कई बोलियाँ है । मध्यवर्ती पहाड़ी की दो प्रमुख बोलियाँ है - कूमाउंनी तथा गढ़वाली ।

कुमाउंनी :

कुमाऊ प्रदेश की बोली होने के कारण इसे कुमाउंनी या कुमायूंनी कहते हैं । 'कुमाऊ' शब्द सं. कूर्माचल से विकसित है । इसका क्षेत्र नैनीताल का उत्तरी भाग, अल्मोडा, पिथौरागढ़, चमोली तथा उत्तरकाशी जिलों में फैला है । इसमें प्राचीन साहित्य नहीं मिलता, पर अब गुमानीपल, कृष्णदत्त पाँडे, शिवदत्त सत्ती द्वारा साहित्य सृजन हुआ है । यह राजस्थानी से अत्यधिक प्रभावित है और उससे अभिन्न-सी प्रतीत होती है । यह बोली शौरसेनी अपभ्रंश से विकासित हुई है । इसकी लिपि नागरी है । इसकी उपबोलियाँ खसपरजिया, कुमेया, फल्दकोटिया, पछाई आदि हैं ।

ध्वनियाँ :- इसमें स्वर 10 है - अ आ, ई, उ ऊ, ए, ऐ, ओ एवं औ । ए ओर ओ के हस्व रूप भी मिलते हैं । ऐ' का उच्चारण तत्सम शब्दों में वैदिक उच्चारण-आइ अइ जैसा होता है- (चैत्र-चा इत्र, चइत्र) । आ की मात्रा तथा विवृतता की दृष्टि से एकाधिक भेद है । व्यंजनों में ष, ल, ड़, ढ़, न्ह, म्ह, रह, ल्ह, भी मिलते हैं । अन्य व्यंजन हिन्दीवत् हैं । 'ल' राजस्थानी जैसा है । 'स' के स्थान पर 'ष' का प्रयोग अधिक होता है । सातझ शात, दस झ दश । 'न्' का ण हो जाता है (पानीझपाणी, होनाझहुणा । हिं. 'ल' भी 'ल' रूप में मिलता है- बादलझबादैंल । अकारण अनुनासिकता की प्रवृति है-पचास, चान । समस्त शब्द स्वरांत है । अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति है- 'सीखझसीक, जीमझजीब ।

रूप :- संज्ञा शब्द ओकारान्त है, पर जहाँ अवधी का प्रभाव है वहाँ व्यंजनान्त है (घोड़ो, घोड़) । स्त्रीलिंगीय प्रत्ययों में- ई की प्रधानता है । बहुवचन का प्रत्यय- न है तथा विकारी रूपों में-ओ भी है । इसके कुछ उल्लेखनीय परसर्ग हैं कर्त्ताकारक- ले, ल, करण -ले, ल, अपादान-ऐ हे, वे, थे, थै आदि (करण एवं अपादान परसर्गो की मित्रता असामान्य है) अधिकरण-मो लो, में आदि । सर्वनाम रूपों में अनेकरूपा है । सपरसर्ग कर्त्ता उत्तम पुरुष बहुवचन के रूप ये हैं (हमनले, हम ले, हमूल, हेमिनले हमुनले । निकटवर्ती निश्चवाचक सर्वनाम के बहुवचन के रूप भी उल्लेखनीय है- कले, इनूले यूनूकणी, इनथैं आदि ।

सहायक क्रिया रूप छ धातु रूपों से बनते हैं(छ, छु, छू छिये आदि । कृदन्तीय रूप इस प्रकार (हिरणा हिटणों एवं पूर्वकालिक (इ,-ऐ-इ बेर, ऐ-बेर (हिटि हिटै, हिटिबेर हिटैबेर) ।

गढ़वाली :

गढ़वाल की बोली गढ़वाली नाम से जानी जाती है । इस क्षेत्र में अनेक गढ़ होने के कारण मध्ययुग में इसे गढ़वाल कहा जाता था । गढ़वाल का अन्य नाम उत्तराखण्ड है । यह बोली टिहरी, देहरादून, सहारनपुर, बिजनौर (उत्तरी भाग), मुरादाबाद (उत्तरी भाग) में बोली जाती है । इसमें लोक साहित्य बहुत है । यह नागरी लिपि में लिखी जाती है । इसकी प्रमुख उपबोलियां है- श्रीनगरियां, राठी, लोहब्या, बधानी, टेहरी आदि । इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है ।

ध्वनियाँ :- गढ़वाली में स्वर-व्यंजन वे ही हैं जो हिन्दी में है । इसकी स्वर-ध्वनियां है - अ आ, ई, उ ऊ, ए, ऐ, ओ एवं औ । समस्त स्वर सानुनासिक रूप में भी मिलते हैं । व्यंजनों में श का अभाव है । क्, न्द, रह, त्सु तथा l व्यंजन सामान्य व्यंजनों से अतिरिक्त है । 'ल' व्यंजन 'ल' के निकट है । च-वर्गीय ध्वनियों के उच्चारण में संघर्षण अधिक है और उनका उच्चारण स्थान मुख में तनिक ओगे है, पर क-वर्गीय व्यंजन तनिक पीछे से उच्चरित होते हैं । 'ड' का उच्चारण ग-वत् होता है । 'छ' व्यंजन त्स, प्स तथा ष से बनता है- यथा सं. मत्स्य, अप्सरा, शनिचर से क्रमश: माछो, अछरा तथा छंछर । ह का लोप शब्द के मध्य एवं अंत में हो जाता है- शहर > शैर, जगत > जागा ।

रूप :- गढ़वाली संज्ञा शब्द अकारान्त है जो एकवचन अधिकारी में ओकारान्त । उकारान्त (नौनो-नोनु) तथा बहुवचन में आकारान्त (नौना) है । विकारी रूप एकवचन में अकारान्त (नौना) तथा बहुवचन में औकारान्त (नौनो) । ऐसा परिवर्तन अन्य स्वरांत शब्दों में नहीं मिलता । वे प्राय: अपरिवर्तित रहते हैं । केवल बहुवचन विकारी में औं लगता है - घोड्यू / घोड्यौं । घरू / औंघरौं । स्त्रीलिंग- ई, आ, -ण, णी,-ठी प्रत्ययों से बनता है -नौनी (नौना) ज्यठाण (ज्यठ) जोगीण (जोगी) मास्टरणी (मास्टर), बमणोटी (बमण) । (इसके परसर्गो की संख्या अत्यधिक है- कर्म-संप्रदान में 17 परसर्ग- क छणी, हणी, खुणी आदि । करण-अपादान में 14 परसर्ग- सिसी आउ विटे, बटि, तै, न् आदि हैं । कर्त्ता सपरसर्ग है- न, नअ, ने, ल । सर्वनाम रूपों में बहुलता है । सहायक

क्रिया एवं अस्तिवाचक क्रिया C धातु से बनती है- छौ, छऊ, छा-वर्तमानकाल, छौ, छयो, छवां, छो (भूतकाल) । कृदन्तीय रूप इरा प्रकार हैं- वर्तमानकालिक कृदन्त-द (चलदो, चलदी), भूतकालिक - योई (चत्यो, चली), पूर्वकालिक- इ,-इइ, इअ-इक (चलि, चलिइ चालिक आदि) । आसन्न भूत के वैकल्पिक रूप मिलते हैं- हम चाल्यू / हम चली छया (हम चलते हैं) । इसी प्रकार अपूर्ण भूत के रूपों तथा कुछ अन्य रूपों से दुहरी व्यवस्था है ।

पश्चिमी पहाड़ी :

यह 'पहाड़ी' की पश्चिमी बोलियों का एक सामूहिक नाम है । इसका भौगोलिक विस्तार पंजाब के उत्तरी-पूर्वी पहाड़ी भाग में भद्रवाह, चंबा, मंडी, शिमला, चकराता और लाहुल-स्थिति आदि में तथा इनके आस-पास है । पश्चिमी पहाड़ी की प्रमुख बोलियाँ जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, चमेआली तथा क्योंठली हैं । इनके अतिरिक्त सतलुज वर्ग की बोलियाँ (बाहरी, सिराजी शोदोची), कूलू वर्ग की बोलियाँ (कुलुई, भीतरीसिराजी), मंडी वर्ग की बोलियाँ (मंडेआली, मडेआली पहाड़ी, सुकेती) तथा भद्रवाह वर्ग की बोलियाँ (पाडरी, भलेसी, भद्रवाही) भी इसी के अंतर्गत आती है । ग्रियर्सन ने तो उल्लेख नहीं किया है किन्तु डॉ. भेलानाथ तिवारी ने लोहुली और हमीरपुरी का उल्लेख किया है । लोक साहित्य इन बोलियों में पर्याप्त मात्रा में है । इस क्षेत्र में 'टाकरी' लिपि तथा उसके विभिन्न रूपों का पर्याप्त प्रचार रहा है, किन्तु अब देवनागरी का प्रचार बढ़ता जा रहा है । टाकरी लिपि का प्रचार केवल दुकानदारों आदि में बहीखाता आदि लिखने तक ही सीमित है । कुछ लोग उर्दू लिपि का भी प्रयोग करते हैं । यद्यपि अब उनकी संख्या घट रही है ।

3.4 शब्दावली

खड़ी बोली	-	जिज्जा, राट्टौ, मठाई, सकारी होर (और), इदर, उदर;
हरियाणी	-	नीम, पाणी, सोणा सज्जी (राजी), भित्तर, कहत्तर (इकहत्तर);
निमाड़ी	-	हात (हाथ), भूक (भूख);
ब्रज	-	लरका (लड़का), सारी (साड़ी), बारा (बारह), काहू (किसी को);
कन्नौजी	-	ल्हसुन, रहटा, म्हंगाई, कन्ना (करना);
बुन्देली	-	जीब (जीभ), सौस (शौच), सांसे (सांचे);
अवधी	-	छमन, अंजुरी, मसूर (मूसल), हाँत (हाथ);
बघेली	-	सुराज (सूरज), जाघा (जगह);
छत्तीसगढ़ी	-	बइल (बैल), कउन (कौन), बंदकी (बंदगी), इलाखा (इलाका),
मारवाड़ी	-	जल, मिंदर
मालवी	-	दन (दिन), ठाकर (ठाकुर);
मारवाड़ी	-	खाँणी (कहानी), साब (साहब),
मेवाती	-	बतक (बतख), बालक (बालक),
भोजपुरी	-	टाड (पैर), पेडहा (चिड़िया), लइका (लड़का), लोट (नोट);

मगही	-	संडसी, भूंजा, मानुख (मनुष्य), मछरी, फेड (पेड़), संकड़ू (सड़क);
मैथली	-	नून (लवण), भरम्हरा (भ्रमर);
कुमाउंनी	-	शाता (सात), हुणा (होना), सीक (सीख);
गढवाली	-	शैर (शहर), माछो (मत्स्य), छंछर (शनिचर), आदि ।

3.3 सारांश

बोलियाँ भाषा को समृद्ध करती है । यदि हम बोलियों को भाषा की प्रयोगशाला कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी । जिस भाषा की जितनी बोलियाँ होती है; वह भाषा उतनी ही समृद्ध होती है । हिन्दी भी ऐसी ही भाषा है; जिसका विस्तृत भू-भाग है; जिसमें अनेक बोलियाँ हैं । ये बोलियाँ निरन्तर विकासमान रहकर अपनी भाषा को समृद्ध करती रही है । हमने देखा कि हिन्दी में पाँच उपभाषा (पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी, पहाड़ी, राजस्थानी और इनकी 17 से 19 बोलियाँ अपनी भाषिक क्षमता से युक्त है । उनका विविध रूपों से युक्त शब्द भण्डार है ।

हमने देखा कि हिन्दी भाषी क्षेत्र-जिसमें हिमाचल प्रदेश, पंजाब का कुछ भाग, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश तथा बिहार- में विविध बोलियाँ बोली जाती है तथा उनका अपना-अपना निजी रूप एवं विशिष्टता है; शब्द सम्पदा तथा ध्वनियां है पर फिर भी वे हिन्दी से जुड़ी हुई है ।

3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. खड़ी बोली का सामान्य परिचय दीजिये ।
2. पूर्वी हिन्दी में कौनसी बोलियाँ आती है, प्रत्येक के क्षेत्र एवं व्याकरणगत विशेषताएँ बताईये ।
3. हिन्दी शब्द की उत्पत्ति बताते हुए हिन्दी शब्द के विविध अर्थो के बार में बताइये ।
4. हिन्दी की प्रमुख बोलियों का संक्षिप्त परिचय दीजिये ।
5. निम्न लिखित पर टिप्पणी लिखिये ।
   (1) बुन्देली (2) जयपुरी (3) भोजपुरी (4) अवधी (5) बघेली (6) मारवाडी

3.6 संदर्भ ग्रंथ

1. सं. डॉ. नगेन्द्र, **हिन्दी साहित्य का इतिहास** : मयूर पेपर बैक्स-ए 95, सेक्टर-5, नोएडा-201301
2. डॉ. मालिक मोहम्मद, **राजभाषा हिन्दी : विकास के विविध आयाम,** प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली - 10030
3. डॉ. भोलानाथ तिवारी, **हिन्दी भाषा** : किताब महल 15, थार्नहिल रोड, इलाहबाद
4. डॉ. उमेश चन्द्र मिश्र; **हिन्दी भाषा : संरचना एवं प्रयोग,** साहित्य रत्नालय, 37750, गिलास बाजार, कानपुर-208001

5. डॉ. भोलानाथ तिवारी; **हिन्दी भाषा की संरचना** : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 110002
6. सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा; **हिन्दी साहित्य कोष भाग - 1** : ज्ञानमण्डल लि. वाराणासी
7. डॉ. कन्हैयालाल शर्मा; **हिन्दी भाषा एवं नागरी लिपि का विकास** : राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर ।

इकाई - 4

राजस्थानी भाषा और उसकी प्रमुख बोलियाँ इकाई की रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 राजस्थान और राजस्थानी भाषा

4.3 राजस्थानी भाषा की व्युत्पत्ति और उसका क्षेत्र

4.4 राजस्थानी की प्रमुख बोलियाँ

4.4.1 मारवाड़ी

4.4.2 मेवाड़ी

4.4.3 ढूंढाड़ी

4.4.4 हाड़ौती

4.4.5 मेवाती

4.4.6 वागडी

4.4.7 मालवी

4.5 सारांश

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 संदर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- राजस्थानी भाषा के इतिहास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- राजस्थानी भाषा के क्षेत्र संबंधी महत्वपूर्ण जानकारी से परिचित हो सकेंगे ।
- राजस्थानी भाषा की प्रमुख बोलियों के संबंध में उपयोगी तथ्य जान सकेंगे ।
- राजस्थानी भाषा और उसकी बोलियों के साहित्यिक अवदान की भूमिका समझ सकेंगे

4.1 प्रस्तावना

राजस्थान भौगोलिक दृष्टि से देश का सबसे बडा राज्य है । भारत की स्वतंत्रता से पूर्व इसे राजपूताना के नाम से जाना जाता था । कर्नल जेम्स टॉड ने पहली बार राजस्थान संज्ञा का प्रयोग किया और कालान्तर में यही नाम विख्यात भी हुआ । राजपूत शासकों के प्रान्त होने के कारण राजस्थान में वीर काव्य की समृद्ध परंपरा रही है । यहाँ के प्राचीन राज्यों यथा मारवाड़, मेवाड़, ढूँढाड वागड में बोली जाने वाली बोलियाँ मिलकर राजस्थानी भाषा का रूप ग्रहण करती

हैं । भारतीय साहित्य के इतिहास में अमर हो चुके पृथ्वीराज रासो से मीरा के मधुर गीतों तक राजस्थानी साहित्य की लंबी और गौरवपूर्ण परंपरा है ।

4.2 राजस्थान और राजस्थानी भाषा

राजस्थानी का सीधा तात्पर्य राजस्थान में बोली जाने वाली भाषा से लगाया जाता है लेकिन भाषा विज्ञान की दृष्टि से ऐसा सर्वथा उचित नहीं होगा क्योंकि राजस्थान में कुछ बोलियाँ ऐसी भी हैं जिनका राजस्थानी भाषा से कोई संबंध नहीं । 'ब्रज' इसका उदाहरण है । ठीक इसी तरह 'मालवी' ऐसी बोली है जो राजस्थान के बाहर भी बोली जाती है । इस तरह राजस्थान का राजनीतिक इकाई के रूप में जो अर्थ ध्वनित होती है वह राजस्थानी भाषा के भाषागत इकाई के रूप में नहीं । राजस्थानी का अपना स्वतंत्र भाषा वैज्ञानिक अर्थ है । ग्रियर्सन ने राजस्थान का भाषा सर्वेक्षण' की भूमिका में लिखा है- राजस्थानी का शाब्दिक अर्थ है राजपूतों के देश राजस्थान या राजवाड़ा की भाषा । एक भाषा का नामबोध कराने के लिए यह नाम इस दृष्टि से प्रकल्पित किया है, जिससे एक ओर पश्चिमी हिन्दी एवं दूसरी ओर गुजराती से इसकी भिन्नता स्पष्ट जाहिर हो जाय ।..... इसको बोलने वाली जनता भी इन भाषाओं के लिए किसी एक नाम का उपयोग नहीं करती, बल्कि मारवाड़ी जयपुरी, मालवी आदि बोलियों को उन नामों से पुकार कर ही सन्तोष मान लेती है ।'

भाषा विज्ञान के अध्येता डॉ. विमलेश कांति वर्मा ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक 'हिंदी और उसकी उप भाषाएं' में राजस्थानी को हिन्दी की उपभाषा मानते हुए गंभीर विश्लेषण किया है जो हमारे लिए उपयोगी है- आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण करते हुए ग्रियर्सन ने अपने भाषा सर्वेक्षण में राजस्थानी को भीतरी उपशाखा के केन्द्रीय अथवा भीतरी समुदाय के अन्तर्गत पंजाबी, गुजराती, पहाड़ी तथा पश्चिमी हिन्दी के साथ है । सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने पश्चिमी उपशाखा के अन्तर्गत राजस्थानी को गुजराती और पहाड़ी के साथ रखते हुए पश्चिमी हिन्दी से अलग किया है । उनका कहना है कि राजस्थानी हिन्दी के उतनी निकट नहीं है, जितनी कि यह गुजराती के निकट है । इस प्रकार ग्रियर्सन तथा चाटुर्ज्या दोनों ही राजस्थानी को हिन्दी भाषा वर्ग के अन्तर्गत न मानकर बिहारी तथा पहाड़ी के ही समान अलग भाषा समूह के अन्तर्गत मानते हैं । के लाग ने अपनी पुस्तक 'ए ग्रामर ऑफ हिन्दी लैंग्वेज' में राजस्थानी को हिन्दी की ही एक उपभाषा माना है । डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. उदय नारायण तिवारी, डॉ. हरदेव बाहरी और अन्य भाषाविद भी आज राजस्थानी हिन्दी को हिन्दी का ही एक रूप मानते हैं ।

4.3 राजस्थानी भाषा की व्युत्पति और उसका क्षेत्र

भाषा शास्त्री ग्रियर्सन ने राजस्थानी का उत्तम शौरसेनी अपभ्रंश के एक रूप 'नागर अपभ्रंश' से मानते हैं । इस मत से भिन्न डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या राजस्थानी का उद्गम 'सौराष्ट्री अपभ्रंश' से और मुनि जिनविजय, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, मोतीलाल मेनारिया 'गुर्जरी अपभ्रंश' से मानना उचित समझते हैं । भौगोलिक दृष्टि से गुजरात और राजस्थान पड़ोसी ही नहीं है अपितु दोनों की भाषा, संस्कृति और परिवेश में अनेक समानताएँ हैं यही

कारण है कि ग्रियर्सन और तेस्सितोरी 1 6वीं शताब्दी तक गुजराती और राजस्थानी को एक ही मानते हैं । यदि क्रमश: देखें तो राजस्थानी का उद्भव निम्न है -

भारोपीय आर्यभाषा
↓
भारत ईरानी आर्यभाषा
↓
संस्कृत भाषा
↓
शौरसेनी प्राकृत
↓
शौरसेनी (गुर्जरी रूप) अपभ्रंश
↓
राजस्थानी

राजस्थानी भाषा में पहले महाजनी लिपि का प्रयोग होता था अब यह देवनागरी लिपि में लिखी जाती है । इतिहासकार 9वीं शताब्दी से राजस्थानी का उद्भभव मानते हैं और इसमें साहित्य रचना के ठोस प्रमाण 10वीं शताब्दी से मिलने लगते हैं ।

राजस्थानी भाषा का क्षेत्र लगभग पूरा राजस्थानी प्रदेश है । धौलपुर-भरतपुर जिलों में ब्रज बोली जाती है अत: ये दो जिले राजस्थानी भाषी नहीं कहे जा सकते । राजस्थान रो बाहर बोली जाने वाली मालवी बोली भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से राजस्थानी की ही बोली है और यह मध्य प्रदेश के उज्जैन, इन्दौर, मन्दसौर,रतलाम, राजगढ़, देवास क्षेत्रों में बोली जाती है । मारवाड़ से व्यापार के लिए निकले मारवाड़ी भी अपने साथ यह बोली देश के अन्य भाषा-भाषी प्रांतों में ले गए । राजस्थानी बोलने वालों की संख्या लगभग 5 करोड़ है और यह भारतीय भाषाओं-बोलियों में सातवें और विश्व की भाषाओं में संख्या की दृष्टि से सोलहवें स्थान पर है ।

4.4 राजस्थानी की प्रमुख बोलियाँ

राजस्थानी की उपभाषाओं और बोलियों के संबंध में विद्वानों ने विस्तार से विचार किया है । जार्ज ए. ग्रियर्सन ने अपने विख्यात ग्रन्थ राजस्थान का भाषा सर्वेक्षण' में लिखा है- 'राजस्थानी की पाँच उपशाखाएँ हैं- पश्चिमी, मध्य-पूर्वी, उत्तर-पूर्वी एवं दक्षिण-पूर्वी के दो भेद । इनके अनेक उपभेद हैं यहाँ मुख्य बोलियों को संक्षेप में विवरण दिया जाता है । बोलने वालों की संख्या एवं विस्तार के क्षेत्रफल दोनों की दृष्टि से इसमें सबसे महत्वपूर्ण पश्चिमी उपभाषा है, जिसे साधारणतया ' मारवाड़ी ' कहा जाता है । यह अपने विभिन्न रूपों में मारवाड़, मेवाड़, पूर्वी सिन्ध, जैसलमेर, बीकानेर, दक्षिण पंजाब एवं जयपुर स्टेट के उत्तर-पश्चिमी हिस्से में बोली जाती है । अन्य सब राजस्थानी उपभाषाओं के क्षेत्रफलों को जोड़ देने पर भी अकेली मारवाड़ी का क्षेत्रफल उससे अधिक रहता हैं मध्य-पूर्वी उपभाषा दो मुख्य नामों से विख्यात है-जयपुरी एवं हाड़ौती; इनके अन्य विभेद भी हैं । हम जयपुर की भाषा को इनमें आदर्श मान सकते हैं । यद्यपि जयपुरी पूर्वी राजस्थान में बोली जाती है, फिर भी उसका गुजराती रवे घनिष्ठतर

सम्बन्ध है, जब कि मारवाड़ी में उसकी पश्चिम- 'स्थित सिंधी से अधिक साम्य है । उत्तर-पूर्वी राजस्थानी में अलवर, भरतपुर तथा गुड़गाँव की मेवाती तथा दिल्ली के दक्षिणी व दक्षिण-पश्चिमी अहीर-प्रदेश की अहीरवाटी शामिल हैं । राजस्थानी के इस रूप में मध्य समूह की शुद्धतम प्रतिनिधि पश्चिमी हिन्दी से अत्यधिक साम्य है, यहाँ तक कि कुछ लोगों की तो यह मान्यता है कि उत्तर -पूर्वी राजस्थानी कही जाने वाली भाषाएँ राजस्थानी की उपभाषाएँ न होकर पश्चिमी हिन्दी की उपभाषाएँ ही कहे जाने योग्य हैं । वास्तव में यह एक दोनों के बीच का समूह है । और इसका विवेचन विशेष महत्व नहीं रखता, तथापि लेखक के मतानुसार इसे राजस्थानी के अन्तर्गत रखना ही ठीक है ।'

इस वर्गीकरण की निम्न सूची में स्पष्टत: रेखांकित किया जा सकता है-

(1) पश्चिमी राजस्थानी - जोधपुर की परिनिष्ठित बोली या 'खड़ी' राजस्थानी अर्थात् शुद्ध पश्चिमी मारवाड़ी; ढटकी, तथा थली और बीकानेरी; बागड़ी, शेखावाटी, मेवाड़ी, खराड़ी, सिरोही की बोलियां ('आबू-लोक' की बोली या राठी, तथा साण्ठ की बोली इनमें हैं); गोडवाड़ी और देवडावाटी ।

(2) उत्तर-पूर्वी-राजस्थानी - अहीरवाटी और मेवाती ।

(3) मध्य-पूर्वी राजस्थानी (ढूँढाड़ी) - तोरावाटी 'खड़ी जैपुरी, काठैड़ा राजावाटी, अजमेरी, किशनगढ़ी, चौरासी (शाहपुरा), नागरचाल हाड़ौतो (रिवाड़ी के साथ) ।

(4) दक्षिण-पूर्वी राजस्थानी या मालवी-इसके कई रूप-भेद हैं, जिसमें रांगड़ी और सोंडवाड़ी है ।

(5) दक्षिण-राजस्थानी -इसमें निमाड़ी आती है ।

ग्रियर्सन के इस वर्गीकरण पर डी सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने आपत्ति करते हुए कहा कि मेवाती, मालवी और निमाडी पश्चिमी हिन्दी के निकट होने से वस्तुत: राजस्थानी की बोलियों में सम्मिलित नहीं की जा सकती । बाद में कुछ अन्य विद्वानों ने भी भिन्न भिन्न मत व्यक्त किए । तार्किक आधार पर राजस्थानी की बोलियों को निर्धारित किया जाए तो ये निम्न हैं- मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूँढाड़ी, हाड़ौती, मेवाती, वागड़ी और मालवी।

4.4.1 मारवाड़ी

पश्चिम राजस्थान में बोली जाने वाली राजस्थानी बोली मारवाड़ी है । इसका उल्लेख कुवलयमाला (778ई.) में मरुभाषा के नाम से हुआ है । मारवाडी का प्रचलन, जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, नागौर और आसपास के इलाकों में रहा है । मारवाड़ी वस्तुत: राजस्थानी की अन्य बोलियों की तुलना में अधिक व्यापक जनसमुदाय में प्रचलित है और इसमें प्राचीन काल से ही वीर, श्रृंगार, नीति और भक्ति का विपुल साहित्य मिलता है । जिसे डिंगल कहा जाता है वह मारवाड़ी का साहित्यिक रूप ही है । डिंगल शैली में चारण कवियों ने बड़ी मात्रा में साहित्य रचना की है । महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण ने 'वंश भास्कर' में लिखा है- 'डिंगल उपनामक कहुंक मरुबानी हु विधेय'। वहीं कवि बांकीदास की चर्चित पंक्तियाँ हैं-

डिंगलियाँ मिलियां करै, पिंगल तणौ प्रकास ।

संस्कृति दवै कपट सज, पिंगल पढियाँ पास । ।

मारवाड़ी ओजगुण सम्पन्न बोली है, जिसकी अनेक उपबोलियाँ-जोधपुरी, बीकानेरी, भली, ठटकी, नागौरी, ओसवाली हैं ।

मारवाड़ी की विशेषताएँ

1. ऐ और औ का उच्चारण अइ, अए और अउ, अओ जैसा होता है ।
2. शब्द के प्रारंभ में आए स की ध्वनी हू में होती है
3. जैसे- सड़क-हड़क, साथ-हाथ
4. न की जगह ण ओर ल की जगह ल का प्रयोग

   जैसे पानी- पाणी

   पीला-पीला

5. हकार का लोप - कह्यो-कयो, रह्यो-रयो
6. च का उच्च स - चूटियाँ-सूटियाँ

व्याकरण

विशेषण- जैसे का जिऊँ

उदाहरण -कालो घोड़ा हवा रा जिऊँ जाय है ।

सर्वनाम

यह- ओ,यो

वह- वो,ओ,उवो

प्रत्यय

ही के अर्थ में हीज ईज प्रत्यय

क्रिया

वर्तमान काल -है

भूतकाल -हो

भविष्यत् काल-स्यूँ लो

लिपि

प्राचीन समय में मारवाड़ी की लिपि महाजनी थी किंतु, अब इसे देवनागरी में ही लिखा जाता है ।

उदाहरण-

"खंखार थूक र कूदण बोलियो- ' 'खुराक री भली द्वी ठाकरां! धाप र रोटी तो रू आखी ऊमर में ई को खाई नी । सिरावण में म्हारी मा म्हनैं तीन रोटियां देवती गिणती री । गलै-तालंवै ई कोनी लागती । म्हनैं वा डाकी कैंवती । खा-पीं र बैरै जावतो परो अर भाता नैं उडीकतो, म्हे नैं उडीकै जिया । मिजन दोफारां बायली भातो ले र आवती-वैंत भरी रोटियां री जेट । भातो ई अरोग लेवतो पण धापणो कठै' ढीमडा रो एक गोल उतरतो जतरै तो आतड़ा 'ल्याव, ल्याव' करण ढूक जाता । लारलै पोर खोद खोद र गाजरां रा दोय ढिगला लगावतो गोडा

गोडा आणा-एक तो बलदां तांई अर अक म्हारै तांई । बलद तो धाप जावता पण म्हु कोनी धापतो । धापणो किण रो, सबूरी लेवणी ही । अर मालवै गया जद पांती आई गायां रो दूध काढता । डोढ मटकी भरीजती । आधेड़ी मटकी में तो टाबर-टूबरां नै सलटातो अर एक मटकी म्हु पी जावतो पण ठाकरा री सोगन, पाणी री गरज ई नी पलती ।

" डॉ नेमनारायण जोशी की चर्चित कृति 'ओलूं री अखियाता के कूदण बाबो' प्रसंग से ।

4.4.2 मेवाड़ी

मेदपाट (मेवाड़) क्षेत्र की बोली को मेवाड़ी कहा जाता है । यह मुख्यत: उदयपुर, राजसमन्द, चित्तौडगढ, भीलवाड़ा जिलों में बोली जाती हैं । ग्रियर्सन, डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या और मोतीलाल मेनारिया जैसे विद्वानों ने इसे मारवाड़ी की एक उपबोली के रूप में अभिहित किया है किंतु मारवाड़ी और मेवाड़ी में पर्याप्त भिन्नताएँ मौजूद हैं । अत: इसे एक स्वतंत्र बोली ही माना जाना चाहिए ।

विशेषताएँ

(1) ऐ तथा औ के स्वरों का प्रयोग नहीं, ऐ को ए और औ को ओ ही बोला जाता है ।

(2) सर्वनाम के बतौर 'वणी' का प्रयोग इसकी मौलिक विशेषता ।

(3) 'इ' स्वर के बहुधा आगमन जैसे-गियो(गया), जिमियो(खाना), मिलियो(मिलना)

उदाहरण

गद्य

मीरा रो प्रेम रंग मीरा ही जाण पाई । कोई दूजों जाण भी नी सके । वीं रै धोले कंवल जसा शरीर माथे कृष्ण रंग अस्यो चढ्यो के वा वींमें वींमें ही सुध बुध खोया रैवती । वीं रो रंग कठै नी पहुंच्यो? वा रंग बांटती पण जगत तो वीने कीचड़ ही देतो । कित्तो मूढ़ जगत हो । वींरो सालिगराम कित्तो अजीब और अलौकिक हो कि जद जद मीरा आपणा दुखड़ा माय आपणा होश हवास भूल जावती तद वो सागे साग वे वीं री सहाय करतो । एडो निराकार साकार निर्गुणियो सगुणियो वीं रो सालिगराम हो ।

सुपरिचित लोक साहित्य मर्मज्ञ डॉ. महेन्द्र भानावत की पुस्तक 'रंगरूड़ौ राजस्थान' के 'स्वाधीनता रौ रंग' प्रसंग से।

पद्य

1. पर घर पग नी मेलणो बना मान मनवार ।
   इंजिन आवे देखने सिगनल रो सत्कार । ।
2. रेट फरै चरख्यो फरे पण फरवा में फेर ।
   वो तो वाग हरयो करे यो छूता रो ढेर । ।
   (विख्यात लोक संत कवि बावजी चतरसिंह जी के प्रसिद्ध दोहे ।)

4.4.3 ढूँढाड़ी

ढूँढाड़ी शब्द का उद्भव ढूँढ अर्थात् टीले से हुआ है । ढूंढाड़ी जयपुर, अजमेर, दौसा टोंक जिलों में प्रचलित है । इसे ढूँढाडी कहने का एक कारण यह बताया जाता है कि जयपुर के पास

ढूँढ नामक स्थान से इसका नाम ढूँढाड़ी पड़ा । ढूंढाडी की उपबोलियों में तोरावटी काठौड़ी राजावाटी, किशनगढ़ी, अजमेरी, शाहपुरी, सिपाड़ी को सम्मिलित किया गया है । इसी बोली में दादू जैसे विख्यात संत का साहित्य मिलता है ।

उदाहरण

काया माँहै अनभै सार । काया माँहै करै विचार । ।
काया माँहै उपजै म्यान । काया माँहै लागै ध्यान । ।
काया माँहै अमर स्थान । काया माँहै आतम राम । ।
काया माँहै कला अनेक । काया माँहै करता एक । ।
काया माँहै लागै रंग । काया माँहै साई संग । ।
काया माँहै सरवर तीर । काया माँहै कोकिल कीर । ।
काया माँहै कछिप नैन । काया माँहै कुंजी बैन । ।
काया माँहै नाद कुरंग । काया माँहै जोति पतंग । ।
काया माँहै चात्रिग मोर । काया माँहै चन्द चकोर । ।
काया माँहै प्रीति करि, काया माँहै सनेह । ।
काया माँहै प्रेमरस, काया माँहै गुरमुशि एक । ।
(दादू दयाल ग्रन्थावली से)

4.4.4 हाड़ौती

कोटा-बूँदी-झालावाड़ जिलों को हाड़ौती क्षेत्र कहा जाता है और यहाँ की बोली भी हाड़ौती कहलाती है । माना जाता है कि यही हाड़ा राजपूतों का वर्चस्व रहा था । हाड़ौती और ढूंढाड़ी में बहुत समानताएँ पाई जाती हैं किंतु मध्यप्रदेश के सीमावर्ती होने से इस पर मालवी और मेवाड़ के निकट होने से मेवाड़ी का भी बड़ा प्रभाव है।

उदाहरण

गद्य

दसवारा (दशहरा) क घणा दन पहली सूँ काचा-पाका काचराँन की खसबोई आबा लाग जाती । ज्यांके ताई खाबो रोग नूँतबो मान्यो जातो । पण छोरा-छापरा कोई की नाँ मानता । आसोज का तावडा मे नदी प जाबो, अ र आख्याँ राती न्ह हो जावे व्हा ताणी नाँग-तणका होर न्हाबो । क्यूँ क पाणी मँ सूँ खडबो खुद का बस मँ थोड़ी ही छो । आप कहो,- ' न्हा ल्या भाया म्हीं तो।" चड्डी पहरबा लागो अतनी देर मँ तो आपक' नटताँ-नटताँ आपका रोबा की फकर कर्या बगर आपक' गारो चपोड देगो कोई -अर यो जा ऊ जा धमाक! खाड़ी मँ! अब आपन' भी डाँकणी पड़' ज्यां ताई काँपणी न्हे छूटज्या ।

गद्य

म्हाँको बखत
एक रूपाली छै-
जे सुधरबा बगैर
बन्द पड़ी छै ।

(सुपरिचित हिन्दी-हाड़ौती कवि अम्बिका दत्त के हाड़ौती काव्य संकलन सोरम का चितराम से दोनों उदाहरण ।)

4.4.5 मेवाती

राजस्थान के मेवात क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली मेवाती है । यह पश्चिमी हिन्दी और राजस्थानी के बीच एक पुल बनाती है जिससे दोनों भाषाएँ नजदीक आती प्रतीत होती हैं । इसकी उपबोलियों में राठी, महेड़ी और कठेर मुख्य है । मेवाती बोली अलवर, भरतपुर, तथा हरियाणा के गुड़गाँव जिलों में बोली जाती है । अहीरवाटी को भी मेवाती की ही एक उपबोली माना जाता है । वस्तुत: यह एक सीमावर्ती बोली है जो हरियाणवी, ब्रज, शेखावाटी, और डाँगी से घिरी है ।

उदाहरण

पद्य

सरपंची मेरा राजा लू मिली है मेरी माई
ई सरपंची मिली या लू अलबेली
सबसूं खावै नाती रुपया धेली
याने चढेण कू फटफट मंगवाई
सरंपची मेरा राजा लू मिली है मेरी माई
(मेवात क्षेत्र का एक प्रचलित लोकगीत)

गद्य

अरी बहन! ई तो तुम्हारी गलत सबाब है और नजर पाछै हो गई देखे तो बहन कुन्ता खड़ी है । छोटी-अरी मेरी बहन! ओर सपूत सबको साझो होय कपूत में काहि को नहीं है । आज मेरा एक सौ एक केरू तेरा पाँच है । तेराव तू कुछ भी नहीं बणे । आ तू भी इसपे ही चढ़ जा और आ के जल चढ़ा दे । तो इसके और कुन्ता माता के दिल पै इहोगो कि जाने बहीन घमंड की बात करी है। (18 वीं शताब्दी में रचित मेवाती महाभारत 'पंडुन को कड़ा' से कुंती ओर गांधारी संवाद से उद्धृत)

4.4.6 वागड़ी

मेवाड़ क्षेत्र के सीमावर्ती जिलों डूंगरपुर और बांसवाडा को वागड़ प्रदेश कहा जाता रहा है । यही की बोली वागड़ी कहलाती है । यह क्षेत्र गुजरात के बहुत निकट होने से वागड़ी पर गुजराती का प्रभाव देखा जा सकता है । वागड़ी की प्रमुख पहचान यह है इसमें भूतकालिक क्रिया (था) के लिए हतो का प्रयोग होता है और 'स' का उच्चारण 'ह' एवं 'च'- 'छ' का उच्चारण 'स' हो जाता है ।

उदाहरण

किसना : (मुलकाती थकी) दाता! आजै हौना नौ हूरज ऊग्यौ है गगन ना तारा धरती माथै उतरी आव्या है।

किसनदत्त : बेटी! हूं वात है आजै आटली मुलकाई कैम रई है? घणैं दाडै तनै आजै मुलकातै जोई नै म्हनै असल लाग्यू । आम नै आम मुलकाती रअएं तो कैटली न्हाली लागै रूपाली लागे ।

चम्पा : अन्नदातार खमा घणी । आजै वातज अएवी है कै किसना बाई सा ना हैया ना तार झनझनाई उठ्या है । आखा मअएं चमक आवी गई है, ओणियारौ खिलखिलाई पड्यौ है ।

किसनदत्त : पण म्हनै वताड़ौत खरी कै वात हूं है?

चम्पा : होकम । आजै अमै वगीसा मअएं घूमवा फरवा ग्या हतां, अएं अमनै वीरवर राव कल्ला जी नौ दरसण ध्या ।

(वागड़ी रचनाकार ज्योतिपुंज के चर्चित नाटक 'कंकू कबन्ध से ।)

4.4.7 मालवी

मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली मालवी कहलाई । नीमच, मंदसौर, इंदौर, भोपाल, रतलाम, झाबुआ, सीतामऊ और मेवाड़ के कुछ इलाके (चित्तौडगढ, प्रतापगढ़, निम्बाहेड़ा, इत्यादि) मालवी बोली क्षेत्र हैं । निमाड़ी, उमठवाडी, रतलामी, सौधवाड़ी इसकी उपबोलियाँ हैं ।

विषेशताएँ -

1. 'है के स्थान पर 'य' या व की ध्वनी- सोहन-सोवन, लुहार-लुवार
2. 'ऐ' का 'ए', औ का ओ मे परिवर्तन-चैन-चेन, सौ-सो पैसा-पेसा
3. 'इ सु' अ की ध्वनियाँ आपस में बदलती रहती हैं ।
4. भूतकाल के लिए था, थो आता है ।

उदाहरण

कालू बोला, ' 'हाँ माँगने को तो काम ही असो है । एक बार निकली जाओ, तो जब तक अंटी में थोड़ा-घणा दन को खर्चो जमा नी होय, आनो नी पुरे । "

"पर थारे ज्यादा खर्चो कमाने की जरूरत ही कँय है ?" गजानाथ ने कहा, ' 'थारे पाछे भी धारा टापरा में कोई कमी नी रेवे है । '

"याँ तक कि अब जारी कमी भी नी रेवे । " रतीनाथ उसकी तरफ सुलगती बीड़ी बढ़ाता बोला । कालूनाथ को लगा, रतीनाथ ने बीड़ी को सुलगता मुँह उसकी पलकों से छुआ दिया । वह चौंक उठा, आँखें फैलाता और माथे पर बल लाता बोला, ' तू कँय बोले है रती ?' '

"ठीक तो कहे हे रतीनाथ!" रतीनाथ का बचाव करता गजानाथ बोला,

"कालू अब तो डेरा को पोरियो-पोरिया जाणे है, आजकल तो थारो बहनोई बनानाथ थारा टापरा में ही सोवे । थारा छोरा हुण सरू खिलौने भी लावे । "

"याज तो हूँ भी की रयो । " रतीनाथ बोला, ' तूं बेकार में साँप के ली के गाँव-गाँव भटकतो फिरे, दो-दो महीना टापरे पर नी आवे ।"

"कालू इधर-उधर भटकने की बजाय, एक काम कर । ' गजानाथ ने सलाह देने के अन्दाज में कहा, " सिरफ थारे खाट टापरा का बाहेर कर ले और थोड़ो खाट्यो चढ़ा के मझे से लम्बी तान लेके सो "

(चर्चित हिन्दी कथाकार सत्यनारायण पटेल के कहानी संग्रह 'भेम को भेरू माँगता है कुल्हाड़ी ईमान' से मालवी मुहावरे का हिन्दी में प्रयोग ।)

4.5 सारांश

राजस्थानी का तात्पर्य राजस्थान में बोली जाने वाली भाषा से है । इसके अनेक रूप प्रचलित हैं जिन्हें तार्किक आधार पर राजस्थानी की निम्न बोलियों में विभाजित किया जाए तो ये निम्न हैं - मारवाड़ी, मेवाड़ी ढूँढाड़ी, हाड़ौती, मेवाती, वागड़ी और मालवी ।

प्राचीन काल से निरन्तर राजस्थानी साहित्य रचना होती रही है । डिंगल और पिंगल के काव्यों से आधुनिक राजस्थानी गद्य और पद्य के नमूने यही देखे जा सकते हैं ।

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. राजस्थानी भाषा के इतिहास के बारे में संक्षिप्त लेख लिखिए ।
2. राजस्थानी भाषा के व्याप्ति क्षेत्र के बारे में बताइए ।
3. राजस्थानी की प्रमुख बोलियाँ कौन-कौन सी हैं?
4. मारवाड़ी और मेवाड़ी का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए ।
5. किसी आधुनिक राजस्थानी रचनाकार के बारे में बताइए ।

4.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या; **राजस्थानी भाषा,** साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, द्वी.सं 1976
2. जार्ज ए. ग्रियर्सन, **राजस्थान का भाषा सर्वेक्षण,** राजस्थान भाला प्रचार सभा, जयपुर, 1974
3. डॉ. विमलेश वर्मा, कांति, **हिंदी ओर उसकी उप भाषाएं,** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली 1995

इकाई - 5

सामान्य हिन्दी, साहित्यिक हिन्दी तथा प्रयोजन मूलक हिन्दी

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 सामान्य हिन्दी
5.2.1 हिन्दी भाषा : स्वरूप
5.2.2 भाषा : सामान्य कार्य
5.2.3 हिन्दी भाषा : स्वरूप, संरचना
5.2.4 हिन्दी भाषा : विकास
5.2.5 हिन्दी भाषा : प्रयोग क्षेत्र
5.2.6 हिन्दी भाषा. विविध प्रकार्य
5.2.7 सम्पर्क भाषा हिन्दी और उसका अखिल भारतीय स्वरूप
5.3 साहित्यिक हिन्दी
5.3.1 साहित्यिक हिन्दी और भाषिक स्वरूप
5.4 प्रयोजन मूलक हिन्दी
5.4.1 तात्पर्य
5.4.2 स्वरूप और व्याख्या
5.4.3 विशेषताएँ
5.4.4 तत्व
5.4.5 प्रयोग क्षेत्र
5.4.6 विविध रूप
5.4.7 सीमाएँ, सम्भावनाएँ
5.5 शब्दावली
5.6 सारांश
5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
5.8 सन्दर्भ गन्ध

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप हिन्दी के विविध रूपों को समझते हुए प्रयोजन मूलक हिन्दी की संकल्पना को समझ सकेंगे -

- हिन्दी के विविध रूप बता सकेंगे ।
- सामान्य हिन्दी, साहित्यिक हिन्दी तथा प्रयोजन मूलक हिन्दी के अन्तर को समझा सकेंगे ।

- सामान्य हिन्दी के स्वरूप, भूमिका, संरचना, विकास, प्रयोग क्षेत्र को समझ सकेंगे ।
- प्रयोजन मूलक हिन्दी के तत्त्व, प्रयोग-क्षेत्र, रूप, सीमाओं की 'चर्चा कर सकेंगे ।

5.1 प्रस्तावना

हिन्दी भाषा के मौखिक एवं लिखित स्वरूप को आप भली-भाँति जानते हैं । प्रस्तुत खण्ड में हम हिन्दी - के विभिन्न स्वरूपों यथा-सामान्य हिन्दी, प्रयोजन मूलक हिन्दी, साहित्यिक हिन्दी तथा प्रयोजन मूलक हिन्दी पर ही विशिष्ट ध्यान केन्द्रित करेंगे । हिन्दी के विभिन्न रूपों से तात्पर्य है - अलग-अलग स्थितियों में हिन्दी का अलग-अलग रूप । जब हम अपने मित्रों, रिश्तेदारों से बातचीत करते हैं तब हम' हिन्दी के सामान्य स्वरूप का प्रयोग करते हैं । जब हम सृजनात्मक लेखन या अभिव्यक्ति करते हैं तब एक भिन्न शैली का प्रयोग करते हैं । इसमें हम अलंकार, शब्द शक्तियों के माध्यम से भाषा में सौन्दर्य पैदा किया जाता है ।

हिन्दी का वह रूप जिसका प्रयोग व्यक्ति किसी खास प्रयोजन के लिए करता है, विशिष्ट उद्देश्य को लेकर करता है, उसे प्रयोजनमूलक हिन्दी कहा जाता है । इस रूप का प्रयोग कार्यालयों, बैंकों, जनसंचार माध्यमों एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में किया जाता है । इसमें औपचारिकता अधिक होगी, भाव प्रधान शैली का अभाव होगा, सामान्य बोलचाल की भाषा की तुलना में विस्तार कम होगा ।

आइए, हम "सामान्य हिन्दी" "साहित्यिक हिन्दी" एवं "प्रयोजनमूलक हिन्दी" के रूपों की जानकारी प्राप्त करें ।

5.2 सामान्य हिन्दी

भाषिक प्रयोग के आधार पर इसके दो रूप होते हैं - औपचारिक और अनौपचारिक । रोजमर्रा के जीवन में हम जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, वह भाषा कां अनौपचारिक रूप होता है । इसका अभ्यास हम बचपन से ही करते हैं । इसके लिए व्यक्ति को विशिष्ट प्रयास नहीं करना पड़ता । इस स्वरूप की प्रमुख विशेषताएँ निम्न है. - इस अनौपचारिक रूप का प्रयोग दैनिक कार्यो में होता है ।

- चूँकि यह जीवन के सामान्य उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त होती है, अत: इसकी शब्दावली आम बोलचाल की होती है ।
- इसमें भाषा के मानक रूप-प्रति कोई आग्रह नहीं होता ।
- बालक अपनी शिशु अवस्था से इसे सीखता है ।
- इसका सहज अर्जन वातावरण द्वारा होता है ।
- इसमें अभिव्यक्ति की सीमाएँ अनन्त होती हैं ।

5.2.1 हिन्दी भाषा : स्वरूप

जिस हिन्दी शब्द का हम प्रयोग करते हैं वह अपेक्षाकृत नया शब्द है । यह शब्द 'फारसी का है । प्रारम्भिक देश मूलक शब्द कालांतर में भाषा-अर्थ का साधक हो गया । वर्तमान भारतीय सन्दर्भ में हिन्दी भारतीय संघ की राजभाषा, राष्ट्रभाषा है । हिन्दी ने अपनी यात्रा में विभिन्न सम्बंधों - भाखा, हिन्दवी, हिंदुई, दक्खिनी, रेख्ता, रेख्ती, गुजरी, उच्च हिन्दी, नागरी हिन्दी, शुद्ध हिन्दी, आर्य भाषा, शास्त्री व हिन्दुस्तानी आदि नामकरणों से गुजरना पड़ा । हिन्दी एक भाषा परंपरा के रूप में लगातार विकसित होती रही है ।

5.2.2 भाषा : सामान्य कार्य

भाषा सामाजिक वस्तु है और भाषा के माध्यम से ही सभी सामाजिक व्यवहार सम्पन्न होते हैं । भाषा के कारण ही सभी अभिव्यक्तियाँ सम्भव बनी हैं । भाषा मानव की आधारभूत आवश्यकता है । प्रमुख भाषा- वैज्ञानिक 'हैलीडे' ने भाषा के निम्न कार्यो की चर्चा की है -

1. भाषा साधन है । बालक बचपन से ही समझ जाता है कि वह भाषा के माध्यम से ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कब सकता है, अपने कार्य सम्पन्न कर सकता है ।
2. भाषा सामाजिक व्यवहार का नियंत्रक है । व्यक्ति का समाजीकरण भाषा द्वारा ही होता है ।
3. भाषा परस्पर सम्पर्क का साधन है । यह समाज के स्तरीकरण का आधार है ।
4. भाषा आत्म विकास का साधन है । समाज का हर व्यक्ति अपनी भाषिक क्षमता से विशिष्ट व्यक्तित्व का निर्माण करता है ।
5. भाषा ज्ञानार्जन का माध्यम है ।
6. भाषा कल्पना की उड़ान का माध्यम है ।
7. भाषा अभिव्यक्ति है, सन्देशों का माध्यम है ।

5.2.3 हिन्दी भाषा : स्वरूप, संरचना

भाषा का अस्तित्व पहले होता है, बाद में उसका व्याकरण निरूपित होता है । व्याकरण भाषा के स्वरूप को क्रमबद्ध एवं स्थिर करता है । किसी भी भाषा के गठन (व्याकरण) में लिंग, वचन, वाक्य, पद-विन्यास रूपिम, स्वनिम आदि का विशिष्ट एवं अनिवार्य स्थान होता है । यही भाषा की सरचना-प्रकिया है । इनके अतिरिक्त संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय, कारक, क्रिया आदि भी महत्त्वपूर्ण हैं ।

हिन्दी भाषा की सरंचना को संक्षिप्त रूप में हम निम्न आरेख से समझ सकते हैं :-

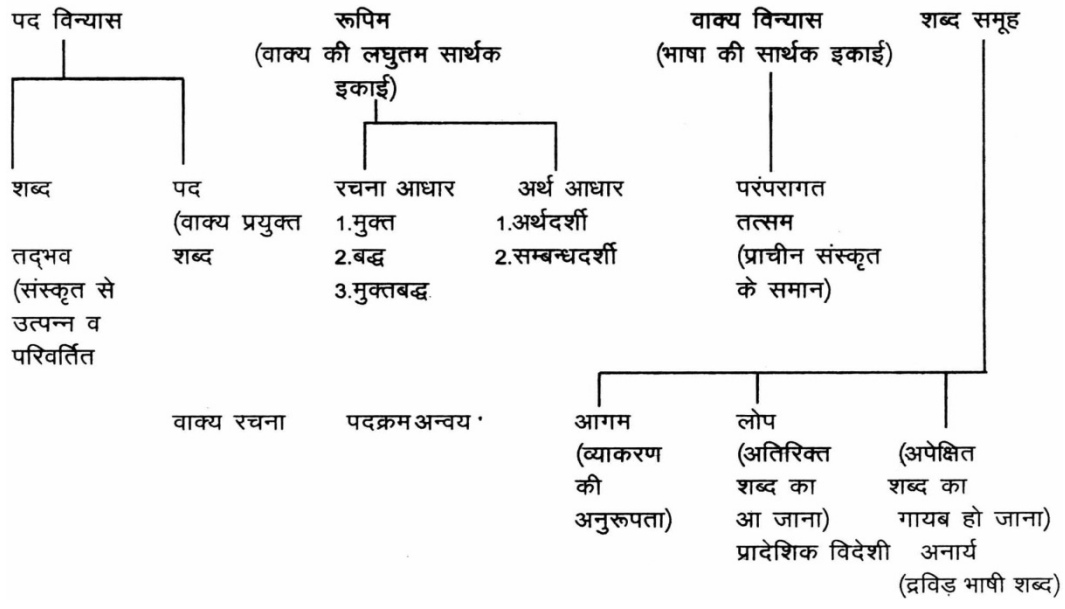

5.2.4 हिन्दी भाषा : विकास

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने आधुनिक आर्य भाषा हिन्दी के लगभग एक हजार वर्ष के इतिहास को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्न कालों में विभाजित किया :-

1. आदिकाल सन् 1000 से 1500 ई
2. मध्यकाल सन् 1500 से 1800 ई
3. आधुनिक काल सन् 1800 से वर्तमान काल तक

1. आदिकाल (सन् 1000 से 1500 ई.) :

राजनीतिक रूप से यह काल विदेशी हमलों और आंतरिक कलह से हिन्दू शासकों के पराभव का युग है । भाषा की दृष्टि से यह काल अपभ्रंश कथकारों, नाथों, सिद्धों, वीर-काव्य के रचनाकारों, चारणभाट व कवियों का युग था । अपभ्रंश समाप्ति पर थी, हिन्दी की जनपदीय जनभाषाओं, खड़ी बोली आदि का उदय होने लगा था । भाषा-विकास की दृष्टि से हिन्दी शौरसेनी अपभ्रंश से उत्पन्न हुई और इसी में चारण-भाटों द्वारा रासो ग्रन्थ लिखे गए । डिंगल के समान ब्रजभाषा के प्राचीन रूप 'पिंगल' भाषा में भी साहित्यिक अभिप्रायों की अभिव्यक्ति होने लगी थी । आदिकालीन नाथों-सिद्धों की भाषा दिल्ली-मेरठ की पंजाबी प्रभावित बोली जो अरबी-फारसी से प्रभावित थी, धर्म-प्रचार की भाषा बनी । इसी बोलचाल की भाषा हिन्दवी अथवा दक्खिनी हिन्दी में अमीर खुसरों ने रचनाएँ लिखीं ।

2. मध्यकाल (सन् व 500 ई. से 1800 ई. तक)

मुस्लिम शासन से राज्य में अनिश्चय और अशांति का वातावरण समाप्त हो गया' । जिसके कारण भारतीय जन भाषाओं ने अपने आपको अपभ्रंश से मुक्त कराया और अनेक बोलियाँ विकसित होनी लगी । इस काल में तीन प्रमुख बोलियों - ब्रज, अवधी और खड़ी बोली

में साहित्य- सृजन प्रारम्भ हुआ । अवधि में राम काव्य, सूफी काव्य लिखा जाने लगा । आधुनिक काल तक आते आते अवधी और ब्रज लोक संवेदना और व्यवहार को वहन करने में असमर्थ होने लगी ।

3. आधुनिक काल (सन् व 800 से आज तक)

राजनीतिक अस्थिरता, अंग्रेजी दासता का प्रभाव भाषा पर भी पड़ा । खड़ी बोली प्रधानता को प्राप्त हो रही थी । अंग्रेजी सरकार ने प्रशासन को दुरस्त रखने के लिए खड़ी बोली गद्य का सहारा लिया । नित-प्रति परिवर्तनों, ईसाई धर्म-प्रचारकों, प्रेस-पत्र-पत्रिकाओं व सांस्कृतिक जन-जागरण ने खड़ी-बोली को प्रतिष्ठित किया ।

5.2.5 हिन्दी भाषा : प्रयोग क्षेत्र

हिन्दी का प्रयोग बहुरूपी है । किन्तु मुख्यत: हिन्दी का प्रयोग तीन सन्दर्भो में किया जा रहा है:-

1. सामान्य अर्थ में हिन्दी से अभिप्राय उस भाषा से है जो सम्पूर्ण हिन्दी भाषी क्षेत्र- हरियाणा, उ.प्र, म.प्र, बिहार, राजस्थान, हिमाचल तथा दिल्ली की परिनिष्ठित भाषा है । यह खड़ी बोली का मानक रूप है । यही हिन्दी आज हिन्दी भाषी क्षेत्र में जीवन-व्यवहार, विचार-विमर्श, शासन, शिक्षा, साहित्य, पत्रकारिता व व्यापार की भाषा है ।
2. भाषा शास्त्रीय दृष्टि से हिन्दी का अर्थ खड़ी बोली के उस रूप से है जो देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली संस्कृत बहुत खड़ी बोली से है जो अपनी शब्द सम्पदा के लिए प्रधान रूप से तत्सम, तद्भव, देशी शब्दों की ऋणी है ।
3. संवैधानिक दृष्टि से 26 जनवरी 1950 उपरान्त अनुच्छेद 343 से 351 तक के प्रावधानों अनुसार हिन्दी भारतीय संघ की देवनागरी लिपि में लिखित राजभाषा है । दूसरे स्तर पर हिन्दी विभिन्न राज्यों- उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, बिहार की प्रादेशिक भाषा है । तीसरे स्तर पर पंजाब, महाराष्ट्र एवं गुजरात में अपनी प्रांतीय भाषाओं के साथ सहभाषा रूप में स्थापित हैं ।

5.2.6 हिन्दी भाषा : विविध प्रकार्य

आप हिन्दी का प्रयोग - क्षेत्र जान चुके' है । इनके अतिरिक्त भी हिन्दी आधुनिक भाषा के रूप में कुछ और सन्दर्भो में भी प्रयुक्त होती है

1. हिन्दी एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है

हिन्दी भाषा विश्व में अनेक देशों में बसे भारतीयों की सांस्कृतिक भाषा है । वे अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को बनाए रखने के लिए हिन्दी को सुरक्षित, संवर्द्धित करना चाहते हैं । आज वैश्वीकरण और भूमण्डलीकरण के दौर में हिन्दी विश्व की आवश्यकता बन गई है ।

2. हिन्दी भारतीय भाषाओं में अग्रगण्य है

विश्व की सारी भाषाएँ अपने विकास का मार्ग तय करती हैं । भारत की अन्य भाषाओं के लिए हिन्दी ने विकास के नए मानदण्ड बना लिए हैं । चाहे युगीन आवश्यकताओं की पूर्ति हो, या साहित्य-सृजन, हिन्दी अपनी अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में अग्रणी हैं ।

3. हिन्दी जन-जन की भाषा है

हिन्दी भाषा का अपना व्याकरण है, अपना साहित्य है, अपनी शब्द संपदा है, जिसे हर भारतीय ने इसे तहे-दिल से अपनाया है । अहिन्दी भाषी हिन्दी व्यवहार से परहेज नहीं करते तो अहिन्दी भाषियों ने हिन्दी-साहित्य को समृद्ध किया है । फिल्में, व्यापार, वाणिज्य में हिन्दी आम भारतीय की भाषा बन चुकी है ।

4. हिन्दी निजी क्षेत्र में प्रयोजनमूलक भाषा-रूप में

हिन्दी भाषा का विकास संस्थागत प्रयोग है । इसका उपयोग एवं प्रयोग प्रशासन के अलावा निजी क्षेत्रों- व्यापारिक संगठनों, वाणिज्यिक गतिविधियों, शिक्षण-प्रशिक्षण आदि में भी प्रभूत रूप से होने लगा हैं ।

5.2.7 सम्पर्क भाषा हिन्दी और उसका अखिल भारतीय स्वरूप

बहुभाषी देश में सम्पर्क भाषा का अत्यधिक महत्त्व होता है । वहाँ के लोगों को जीवन की, दैनन्दिन जरूरतों को लेकर एक ऐसी भाषा की आवश्यकता पड़ती है जो विभिन्न भाषा-भाषी से सम्पर्क का माध्यम बन सकें । इतना तो निश्चित है कि बहु-भाषा-भाषी वाले देश में अनेक कारणों से सम्पर्क भाषा की जरूरत अवश्य होती है ।

बहु आकांक्षाओं की पूर्ति भारत में हिन्दी द्वारा ही होती है । सम्पर्क भाषा के रूपं में प्रयुक्त होने के कारण इसके अनेक रूप विकसित हुए । निम्न कारणों से हिन्दी ही व्यापक सम्पर्क भाषा बनी हैं :-

1. व्यापक प्रसार -

हिन्दी का प्रसार देश में सर्वाधिक हैं । हिन्दी ही एक मात्र भाषा है जिसे बड़ी संख्या में बोलने वाले भारत के बाहर भी पाए जाते हैं । भाषा-वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार हिन्दी बोलने वालों की संख्या विश्व में दूसरे क्रम पर हैं ।

2. राजनीतिक कारण :

मध्यकाल में मुगलों की शासन व्यवस्था, हिन्दी की सर्वसमावेशी क्षमता के कारण यह भाषा अधिकांश भारत में प्रसारित हुई । ब्रिटिश शासन काल में भी कचहरी में हिन्दुस्तानी का प्रयोग इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

3. सामाजिक-सांस्कृतिक कारण :-

सामाजिक - सांस्कृतिक तत्त्व भाषा-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । इनका सम्बन्ध समाज के सभी वर्गो तक होता हैं । मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन, समाज, सुधार आन्दोलनों ने हिन्दी की व्यापकता को आधार बनाया । संगीत, सिनेमा, जनसंचार माध्यमों ने भी हिन्दी को सम्पर्क भाषा बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की

4. व्यापारिक कारण :-

मध्यकाल में आगरा बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र था । फलस्वरूप चारों दिशाओं के व्यापारी और पूंजीपति वर्ग वहाँ बसे और अपनी बोली उन क्षेत्रों में पहुँचाई । उद्योग- व्यापार ने श्रमिक वर्ग को रोजगार दिया । साथ ही भाषा - बोली का प्रसार भी बढ़ा ।

5. सीखने में सरलता :

कोई भी भाषा जन-सामान्य में तभी सम्पर्क भाषा का स्थान ग्रहण कर पाती है जब उसे सीखने में ज्यादा कठिनाई न हो । निश्चय ही यह गुण हिन्दी में रहा है । इसमें ध्वनियाँ सुनिश्चित हैं, भाषा में शब्द रूप अन्य भारतीय भाषाओं से साम्य रखते हैं ।

- सम्पर्क भाषा हिन्दी के विविध क्षेत्र -

1. सामाजिक - सांस्कृतिक जीवन के क्षेत्र में सम्पर्क :-

हिन्दी लम्बे अरसे से भारतीय जीवन-पद्धति की सम्पर्क भाषा रही है । आज भी हिन्दी, वाणिज्य-व्यापार, पर्यटन, धार्मिक-सांस्कृतिक यात्राओं, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा आदि में व्यापक रूप में प्रचलित आदान-प्रदान की भाषा है । कश्मीर से कन्याकुमारी तक हिन्दी सामाजिक जीवन की जन-भाषा सिद्ध होती है ।

2. प्रशासनिक क्षेत्र में सम्पर्क भाषा :-

राजकाज की भाषा राजभाषा का उपयोग सरकारी पत्र-व्यवहार, प्रशासन, न्याय-व्यवस्था, सार्वजनिक कार्यो के लिए होता है । राजभाषा भी तभी अधिक प्रसार पाती है जब उसे सम्पर्क भाषा का सहारा मिले । हमारा सौभाग्य है कि हमारी राजभाषा भी हिन्दी है और सम्पर्क भाषा भी हिन्दी है ।

3. शिक्षा क्षेत्र और सम्पर्क भाषा :-

शैक्षिक क्षेत्र में सम्पर्क की भाषा जीवन के अन्य क्षेत्रों में जन-सम्पर्क के लिए पृष्ठभूमि निर्मित करती है । जिस भाषा के माध्यम से आगे जीवन में व्यक्ति को जीवन्त सम्पर्क माध्यम बनाना है, उसकी शिक्षा उसे प्रारम्भ में ही मिल जाती है तो उसे आगे सुविधा हो जाती है । शिक्षा के क्षेत्र में भाषा की दो भूमिकाएँ होती हैं । भाषा-शिक्षण रूप और शिक्षण माध्यम (Medium) रूप। यद्यपि उद्देश्य पूर्ति में दोनों रूप सहायक हैं किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से प्रथम भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाती है । "त्रिभाषा-सूत्र" के अनुसार प्राथमिक स्तर पर शिक्षा-माध्यम मातृभाषा, माध्यमिक स्तर पर प्रादेशिक (मातृ भाषा), हिन्दी व अंग्रेजी भाषा पढ़ने-पढ़ाने की व्यवस्था है ।

5.3 साहित्यिक हिन्दी

साहित्यिक हिन्दी का सम्बन्ध साहित्य में प्रयुक्त होने वाली हिन्दी से है । भाषा भावों-विचारों की सम्यक् अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, किसी भी साहित्यिक सर्जना की सफलता का अधिक श्रेय भाषा को ही दिया जाता है । इसकी परिधि व्यापक है ।

भाषा का मूल प्रयोजन संप्रेषण है । इसी की नींव पर भाषा के सभी प्रयोजन टिके रहते हैं । किन्तु वक्ता-प्रयोक्ता की अनेकरूपता के कारण भाषा में एकरूपता नहीं आती । इसी अनेकरूपता को एक बनाने के लिए मानक भाषा द्वारा भाषा को व्यवस्थाबद्ध किया जाता है ।

यह मानक भाषा ही भाषा की शुद्धता और साहित्यिक भाषा के मूल्यांकन की कसौटी माना जाता है ।

चूँकि साहित्यिक भाषा साहित्य-सृजन की भाषा है, अत: इसका क्षेत्र व्यापक, विस्तृत, बहुआयामी एवं बहुरंगी है । साहित्य भाषा अन्तर्मुखी है । इसमें भावात्मक प्रयोजन की प्रधानता रहती है । रचनाकार साहित्यिक भाषा द्वारा काल्पनिक जगत की सृष्टि करता है ।

साहित्यिक भाषा कहानी, नाटक, एकाकी, कविता आदि विभिन्न साहित्यिक विधाओं में अपना स्वरूप ग्रहण करती है । इसका संबंध हमारी, सौन्दर्यपरक अनुभूतियों से होता है । यह भाषा पाठकों के मन में सौन्दर्यानुभूति जगाती है ।

ऐसा माना जाता है कि साहित्यिक भाषा में ही सामाजिक - सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का प्रतिबिम्बन दिखाई देता है ।

5.3.1 साहित्यिक हिन्दी और भाषिक स्वरूप :-

साहित्यिक हिन्दी की सबसे बड़ी विशेषता उसकी अभिधा, लक्षणा, व्यंजना शब्द शक्तियाँ हैं । जहाँ अभिधा द्वारा हम सामान्य अर्थ ग्रहण करते हैं, लक्षणा में लक्ष्यार्थ ग्रहण करते है तो 'व्यंजना' से हम भाषा की विशिष्ट संस्कृति, परम्परा, रीति-रिवाजों से अर्थ व्यंजित करते हैं ।

साहित्यिक भाषा की अन्य विशिष्टता उसका आलंकारिक प्रयोग भी है । साहित्य में हम साधारण ढंग से बात नहीं करते । इसे चमत्कारिक रूप देने के लिए अलंकारों का प्रयोग किया जाता है ।

पदक्रम परिवर्तन द्वारा भी कभी-कभी रचना को प्रभावी बनाया जाता है । इस भाषिक स्वरूप में वाक्य प्राय: लम्बे-लम्बे होते हैं जैसे -

"सामने पर्वत शिखरों को कुहरे की चादर ढक रही है और उधर श्याम मेघों के बीच बक पंक्ति लहराती हुई उड़ रही है । घाटी सहमी-सी है और वृक्ष उत्सुक मुद्रा में खड़े हैं।"

साहित्यिक भाषा में तत्सम शब्दावली का खूब प्रयोग होता है । साथ ही अल्पता वाक्यों "ठहरो, सुनो"।

आदि द्वारा भी अभिप्रेत व्यक्त कर दिया जाता है । सामान्यत: हम साहित्यिक रूप में निम्न रूप देखते हैं :-

1. संस्कृत निष्ठ रूप
2. अरबी-फारसी मिश्रित रूप
3. सामान्य बोलचाल का रूप
4. अंग्रेजी मिश्रित बोलचाल का रूप ।

5.4 प्रयोजन मूलक हिन्दी

'प्रयोजन शब्द का अर्थ है - उद्देश्य । जिस भाषा का प्रयोग किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए किया जाए, उसे 'प्रयोजन मूलक भाषा' कहा जाता है । हिन्दी में इसे

Functional Language के पर्याय रूप में प्रयुक्त किया जाता है । जिसका आशय है - जीवन के विविध विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लाई जाने वाली भाषा । इसका प्रमुख लक्ष्य जीविकोपार्जन है । इसका व्यवहार साहित्य के अलावा प्रशासन बैंक, पत्रकारिता, विधि आदि क्षेत्रों में हो रहा है । ये सभी क्षेत्र औपचारिक भाषा के क्षेत्र हैं ।

5.4.1 प्रयोजन मूलक हिन्दी: तात्पर्य

'प्रयोजन शब्द रवे तात्पर्य है - लक्ष्य या उद्देश्य। अर्थात् किसी उद्देश्य विशेष रवे संबंधित भाषा को 'प्रयोजनमूलक भाषा' कहा जाता है।

प्रश्न यह उठता है कि प्रयोजन क्या है? उत्तर है - जीवन के विविध कार्य-क्षेत्रों से संबंधित प्रयोजन । आप भली-भाँति जानते हैं कि रोजमर्रा के जीवन में हमारी विभिन्न भूमिकाएँ होती हैं । हमारा भाषा-व्यवहार इसी भूमिका पर आधारित होता है । हम अपने माता-पिता, संबंधियों से जिस प्रकार बातचीत करते हैं, उसी प्रकार सहकर्मियों से बातचीत नहीं करते । पहले व्यवहार में अनौपचारिकता होती है तो दूसरे में औपचारिकता ।

भाषा का प्रयोजन मूलक स्वरूप उस भाषा के मूल रूप, संरचना, शब्दावली, व्याकरणिक रूपों से पृथक् नहीं होता।

जीवन के विविध क्षेत्रों में व्यवहार में लाए जाने वाले भाषा रूप के कारण इसे व्यावहारिक भाषा भी कहा जाता है। प्रयोजन मूलक हिन्दी-रूप उतना पुराना नहीं है जितना साहित्यपरक रूप या बोली रूप। आधुनिक काल की आवश्यकताओं ने ही प्रयोजन मूलक स्वरूप को जन्म दिया है । जैसे-जैसे भाषिक प्रयोग बढ़ते हैं, वैसे-वैसे भाषिक प्रयुक्तियाँ विकसित होती रहती हैं ।

5.4.2 प्रयोजन मूलक हिन्दी : स्वरूप और व्याख्या

'प्रयोजन मूलक हिन्दी' भाषा-विज्ञान की महत्वपूर्ण शाखा 'अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान" के अन्तर्गत विकसित अत्याधुनिक बहुआयामी, बहुउपयोगी शाखा है । 'प्रयोजन मूलक' विशेषण अंग्रेजी के Functional या Specific Purpose पक्ष को अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य रवे किया जाता है कुछ विद्वान इसे 'कामकाजी हिन्दी' तथा 'व्यावहारिक हिन्दी' नामों से भी अभिहित करते हैं ।

कोश ग्रंथों के अनुसार Functional से तात्पर्य है - कार्यात्मक, क्रियाशील या वृत्तिमूलक । समानांतर रूप से 'व्यावहारिक हिन्दी' भाषा के सीमित व्यवहार को उजागर कर देती है । स्पष्ट है कि ' प्रयोजन मूलक' परिभाषिक शब्द भाषा की अनुप्रयुकतता व प्रायोगिकता को अभिव्यक्त कर देता है । ऐसी स्थिति में प्रयोजन मूलक हिन्दी की व्याख्या होगी -

"प्रयोजन मूलक हिन्दी से तात्पर्य है, हिन्दी का वह प्रयुक्तिपरक विशिष्ट रूप जो विषयगत, भूमिकागत, तथा सन्दर्भगत प्रयोजन के लिए विशिष्ट भाषिक सरंचना द्वारा प्रयुक्त किया जाता है और जो सरकारी प्रशासन तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के अनेकविध क्षेत्रों को अभिव्यक्ति प्रदान करने में सक्षम सिद्ध होता है । "

विद्वानों ने प्रयोजन मूलक हिन्दी का स्वरूप निर्धारित करते हुए निम्न भाषा प्रयुक्तियों की ओर संकेत किया है :-

1. वाणिज्य - व्यापार की हिन्दी - मंडी, सर्राफा, दलाल की भाषा
2. कार्यालय की हिन्दी - प्रशासन के भाषा रूप ।
3. ज्ञान - शाखाओं की हिन्दी - संगीत, दर्शन, योग, ज्योतिष
4. तकनीकी हिन्दी - इंजीनियरिंग, मेडिकल साईस
5. साहित्यिक हिन्दी - नाटक, कहानी, कविता आदि की भाषा

- वाक्य संरचना -

जिसका प्रयोग विशिष्ट सन्दर्भो में विशेष प्रयोजनों के लिए किया जाता है, उस प्रयोजन मूलक हिन्दी को यत्नपूर्वक सीखना पड़ता है । इस भाषिक स्वरूप की वाक्य रचना में निम्न विशेषताएँ होती हैं -

1. प्रयोजन मूलक हिन्दी की वाक्य रचना का आधार सामान्य हिन्दी वाक्य संरचना होती है
2. प्रयोजन मूलक हिन्दी की अलग-अलग प्रयोग-क्षेत्रों में शब्दावली बदलती रहती है । इसमें पारिभाषिक एवं तकनीकी शब्दावली का प्रयोग होता हैं ।
3. सामान्य हिन्दी में कर्तष्वाच्य वाक्यों का प्रयोग होता है किन्तु इसमें 'कर्मवाच्य' वाक्यों का प्रयोग होता है ।
4. प्रयोजनमूलक हिन्दी में लक्षणा, अभिव्यंजना व अलंकारों का प्रयोग निषिद्ध होता हैं एवं मात्र अभिधा द्वारा ही अभिव्यक्ति होती है ।
5. प्रयोजन मूलक भाषा सामान्यत: औपचारिक होती है।
6. चूंकि हमने अधिकांश प्रयुक्तियों को अंग्रेजी से ग्रहण किया है अत: इसके लिए हमें अनुवाद का सहारा लेना पड़ता है ।
7. प्रयोजन मूलक हिन्दी सूचना प्रधान होती है । इसका रूप लिखित होता है । बोलचाल में इसका प्रयोग नहीं होता ।

5.4.3 प्रयोजन मूलक हिन्दी : विशेषताएँ

प्रयोजनमूलक हिन्दी की संरचना, संकल्पना के विश्लेषण से निम्न विशेषताएँ उद्घाटित होती हैं -

1. अनुप्रयुक्तता
2. वैज्ञानिकता
3. सामाजिकता
4. भाषिक विशिष्टता

1. अनुप्रयुक्तता :-

प्रयोजनमूलक हिन्दी की सर्वप्रमुख विशेषता है उसकी अनुप्रयुक्तता या प्रयोजनीयता । जीवन के विभिन्न क्षेत्रों- वाणिज्य - व्यापार, बैंक, कार्यालय, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, प्रशासन आदि में हिन्दी का विशिष्ट रूप अनुप्रयुक्त होता है । अनुप्रयुक्तता से ही भाषा जीवित रहती है।

2. वैज्ञानिकता :

प्रयोजनमूलक हिन्दी अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के अन्तर्गत एक विशिष्ट अध्ययन क्षेत्र है । किसी भी विषय के तर्क-संगत, कार्य-कारण भाव से युक्त विशिष्ट ज्ञान पर आधारित प्रवृत्ति को वैज्ञानिक कहा जाता है । इस दृष्टि से प्रयोजनमूलक हिन्दी भी निम्न कारणों से वैज्ञानिक है -

- सम्बन्धित विषय-वस्तु का तर्क संगत विश्लेषण ।
- अध्ययन व विश्लेषण विज्ञान सम्मत होना ।
- प्रमुख आधार पारिभाषिक शब्दावली व तकनीकी प्रवृत्ति होना ।
- शब्दावली में स्पष्टता, विषय-निष्ठता तर्क संगतता की प्रवृति विद्यमान रहना।

3. सामाजिकता :-

हिन्दी की प्रयोजनमूलकता मूलत: सामाजिक विशिष्टता है । इसका निर्माण एवं परिचालन समाज एवं अन्य सम्बद्ध शाखाओं से होता है । सामाजिक परिस्थिति, सामाजिक भूमिका और सामाजिक स्तर के अनुरूप प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रयुक्ति-स्तर व भाषा रूप प्रयोग में आते हैं ।

4. भाषिक विशिष्टता :

यह वह विशिष्टता है जो प्रयोजनमूलक हिन्दी की स्वतंत्र सत्ता और महत्ता को प्रतिष्ठित करती है और उसे सामान्य हिन्दी और साहित्यिक हिन्दी से पृथक् करती है । सर्वग्राह्यता गुण के कारण प्रयोजनमूलक हिन्दी ने विविध भाषाओं से शब्द ग्रहण कर अपनी शब्द-सम्पदा को समृद्ध किया है। इसमें सटीक, सुस्पष्ट गंभीर, वाच्यार्थप्रधान, एकार्थक शब्दों का प्रयोग किया जाता है । इसमें कहावतों-मुहावरों, अलंकारों का प्रयोग वर्जित होता है । इस कारण इस भाषा में स्पष्टता, तटस्थता, निर्वैयक्तिकता अपने आप आ जाती है ।

5.4.4 प्रयोजनमूलक हिन्दी : तत्व

प्रयोजनमूलक हिन्दी के अध्ययन-अनुशीलन उपरान्त उसमें अन्तर्निहित तीन तत्त्व प्रकट होते हैं:-

1. पारिभाषिक शब्दावली
2. अनुवाद प्रकिया
3. भाषिक सरंचना

1. पारिभाषिक शब्दावली :

प्रयोजनमूलक हिन्दी में पारिभाषिक शब्दावली की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है । यह अंग्रेजी के ' टेक्निकल' (Technical) का हिन्दी पर्याय है । इसका तात्पर्य है - कला तथा शिल्प ।

विभिन्न परिभाषाओं के आलोक में यह कहा जा सकता है कि जो शब्द सामान्य व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त न होकर ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में विषय एवं सन्दर्भ के अनुसार विशिष्ट किन्तु निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें पारिभाषिक शब्द कहते हैं ।

पारिभाषिक शब्द 'परिभाषित (Defined) होता है अर्थात् ऐसे शब्दों को उनकी संकल्पना के अनुसार व्याख्या देकर समझाया जाता है । इसमें प्रमुख विचार, भाव व विशिष्ट संकल्पना का समावेश होता है । असामान्यतया इसकी विशिष्टता होती है अर्थात् ऐसे शब्द सामान्य लोक-जीवन में प्रयुक्त नहीं होते । ये शब्द विशिष्ट क्षेत्र यथा-विज्ञान, तकनीकी, उद्योग आदि में प्रयुक्त होते हैं, जैसे-अक्वाकल्चर (जल कृषि) सीरी-कल्चर (रेशम कीट पालन) आदि ।

पारिभाषिक शब्दावली का संबंध प्रयोजनमूलक हिन्दी से अनिवार्यत: जुड़ा हुआ है । हमारे देश में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ उसकी सटीक अभिव्यक्ति हेतु इसकी जरूरत महसूस हुई । फलत: हिन्दी में प्रशासन, विधि, विज्ञान, टेक्मोलोजी, दूरसंचार, अंतरिक्ष विज्ञान, कम्प्यूटर आदि से संबंधित पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण एवं प्रचलन हुआ ।

2. अनुवाद प्रकिया :-

प्रयोजन मूलक हिन्दी की संरचना का दूसरा आधारभूत तत्व है - अनुवाद । अनुवाद अनु + वद से व्युत्पन्न है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है - किसी के कहने के पश्चात् कहना । अनुवाद मूलत: स्रोत भाषा के मूल पाठ के अर्थ को लक्ष्य भाषा के परिनिष्ठित पाठ के रूप में रूपान्तरण है ।

वस्तुत: हमारे देश में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, प्रशासन एवं प्रौद्योगिकी का विकास पश्चिम की देन है । पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान उनकी अपनी भाषाओं-अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि में था । अत: उक्त ज्ञान-विज्ञान को अपनाने के लिए अनुवाद की अनिवार्यता उपस्थित हुई ।

आज के वैज्ञानिक युग में अनुवाद सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक जरूरत के साथ ही कार्यालयीन कामकाज की अत्यावश्यक शर्त बन गया है । वैश्विक संप्रेषण, वैचारिक आदान-प्रदान हेतु अनुवाद अहम् आवश्यकता बनकर उभरा है । अनुवाद का प्रयोजन संकीर्ण कटघरे से हटकर वैश्विक युग में बहुआयामी परिप्रेक्ष्य में प्रकट हो रहा है ।

3. भाषिक संरचना :-

कोई भी भाषा अपने सभी प्रयोगों में एक सी नहीं होती । विषय, सन्दर्भ एवं प्रयोग के अनुसार भाषा की संरचना बदलती रहती है । प्रयोजनमूलक हिन्दी भाषा का विशिष्ट प्रयुक्तिपरक रूप है जिसकी शब्दावली, संरचना अन्य भेदों से भिन्न है ।

प्रयोजनमूलक भाषा की प्रयुक्ति में विशेष प्रयास, प्रयुक्ति बोध व क्षेत्र विशेष का विशिष्ट ज्ञान प्रयोक्ता को होना आवश्यक है । यह भाषा अभिधापरक एकार्थक स्पष्ट होती है ताकि प्रयोक्ता की बात का निश्चित अर्थ ही अभिप्रेत हो सके । इसमें व्यंग्यार्थ, अलंकार की कोई गुंजाइश नहीं होती। इसलिए यह भाषा बोधगम्य, अधिक स्पष्ट होती है ।

प्रयोजनमूलक भाषा संरचना का एक 'मानक रूप' (Standard Form) निश्चित होता है जिसमें एकरूपता, निश्चितता तथा औचित्य का निर्वाह अनिवार्यत: किया जाता है । चूँकि इसमें

विज्ञान, तकनीकी, प्रशासन, व्यवसाय आदि की. पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग होता है, अत: इसमें विचारात्मकता, गम्भीरता एवं दुरूहता आना स्वाभाविक है ।

प्रयोजनमूलक हिन्दी का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान-विज्ञान एवं प्रशासन आदि बहुविध क्षेत्रों की प्रयोगित अभिव्यक्ति है और इसका सन्दर्भ उपयोगिता से जुड़ा हुआ है । इस अर्थ में इसका लक्ष्य व्यापक रूप से 'सेवा- माध्यम' (Service- Medium) के रूप में उपयोगी बन जाता है । इसलिए प्रयोजनमूलक की भाषिक संरचना अन्य रूपों-सामान्य हिन्दी एवं साहित्यिक हिन्दी से पृथक् बन जाना स्वाभाविक है । इन सबके बावजूद भाषिक संरचना की विशिष्टता जीवंत बनी रहती है ।

5.4.5 प्रयोजन मूलक हिन्दी: प्रयोग क्षेत्र

आप भली-भाँति जान चुके हैं कि 'प्रयोजन मूलक भाषा' किसी प्रयोजन विशेष के लिए प्रयुक्त होते वाली भाषा है । वैसे भी भाषा कुछ विचारों और भावों की अभिव्यक्ति तो करती ही है । किन्तु जीवन के विभिन्न कार्य क्षेत्र हमारी भूमिकाओं को निर्धारित करते हैं जिसमें हमारी भाषाई औपचारिकता, प्रयुक्त शब्दावली एवं वाक्यांश का अन्तर आ ही जाता है ।

भाषा का वह रूप जो किसी विषय या क्षेत्र विशेष में लगातार प्रयुक्त होता रहता है, उसे उस कार्य विशेष की 'प्रयुक्ति' कहा जाता है । भाषा के प्रयोग पर आधारित प्रयोग को ही प्रयुक्ति कहा जाता है ।

सामाजिक जीवन व्यवहार के हर क्षेत्र में भाषा की इन्हीं विशिष्टताओं को देखते हुए भाषा शास्त्रियों ने 'प्रयुक्ति' की संकल्पना निर्धारित की, जिसकी निम्न विशेषताएँ हैं :-

1. पारिभाषिक शब्दावली अर्थात् ऐसी शब्दावली जिसका आर्थिक प्रयोग सन्दर्भानुसार परिभाषित रहता है, का विशिष्ट प्रयोग किया जाता है।
2. इसमें भाषा के प्रयोग करने वाले - वक्ता, लेखक, श्रोता की विषय और सन्दर्भगत स्पष्ट भूमिका रहती
3. प्रयोग करने वाले का सम्बन्ध परिस्थिति एवं परिवेश पर निर्भर होता है ।
4. भाषा के दोनों माध्यमों - लिखित और मौखिक का इसमें प्रयोग किया जाता है ।

भाषा प्रयोग के प्रकार

विषय, भूमिका एवं सन्दर्भ ही भाषा-प्रयोग का आधार निर्धारित करते हैं । प्रसिद्ध भाषाविद् हैलिडे ने इस हेतु तीन आयामों को स्पष्ट किया है :-

1. क्षेत्र
2. प्रकार
3. शैली

1. क्षेत्र :-

इसका सम्बन्ध भाषा-प्रयोग की विषय-वस्तु एवं प्रसंग से है । भाषा के विभिन्न रूपों में तकनीकी और गैर तकनीकी प्रकारों के भेद के कारण ही बोलचाल, साहित्य, कार्यालय की भाषाएँ अपना स्वरूप बदल लेती हैं ।

2. प्रकार :-

मौखिक और लिखित दो प्रमुख प्रयुक्तियाँ मानी जाती हैं । इनमें बहुत अन्तर पाया जाता है । रेडियो, दूरदर्शन के कार्यक्रमों की भाषा एवं पत्रकारिता की भाषाई भिन्नता इसी का उदाहरण है ।

3. शैली :-

भाषा के प्रयोग करने वाले की राजनीतिक, सामाजिक पृष्ठभूमि भी भाषा में भिन्नता ला देती है, जिसे भाषा की शैली कहा जाता है । इसमें औपचारिकता, अनौपचारिकता, सामान्य एवं अन्त: रंग आदि अभिव्यक्तियाँ आ जाती हैं ।

5.4.6 प्रयोजनमूलक हिन्दी : विविधि रूप

आप यह जान चुके हैं कि प्रयोजन मूलक हिन्दी का विकास वर्तमान युग में ही हुआ । समाज का क्रमश: विकास होता गया, नई परिस्थितियों एवं आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भाषा ने अपने रूप बदले, निर्मित किए । वर्तमान में मुख्यत: प्रयुक्त क्षेत्र एवं स्वरूप निम्न प्रकार से हैं -

1. साहित्यिक रूप
2. वाणिज्यिक रूप
3. कार्यालयी रूप
4. राजभाषिक रूप
5. विज्ञापनिक रूप
6. विधिक रूप
7. वैज्ञानिक - तकनीकी रूप
8. सामाजिक विज्ञान रूप
9. संचार माध्यम रूप

1. साहित्यिक रूप

किसी भी भाषा की अनिवार्य आवश्यकता उसका साहित्यिक रूप ही होता है । यद्यपि यह स्वरूप विशिष्ट पाठकों तक ही सीमित रहता है किन्तु यह स्वरूप जन सामान्य को विविध विषयों का समवेत रसात्मक बोध कराता है । जैसे.

"झंझा है दिग्भ्रात रात्रि की मूर्च्छा गहरी
आज पुजारी बने ज्योति का यह लघु प्रहरी। "

2. वाणिज्यिक रूप

भाषा के इस रूप के अन्तर्गत व्यापार, वाणिज्य, व्यवसाय, परिवहन, शेयर बाजार, बीमा, बैंकिग एवं निर्यात-आयात आदि क्षेत्रों का समावेश किया जाता है । इसमें क्षेत्र एवं परिवेश की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है । भाषा के विशिष्ट प्रयोग व्यापारिक अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं, यथा:

"चाँदी टूटी, गिन्ती उछली।"

3. कार्यालयी रूप

किसी भी भाषा का कार्यालयी रूप उसका सर्वोपयोगी एवं आधुनिक रूप होता है । राजकाज की भाषा बनते ही कार्यालयी आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु निर्मित भाषिक व्यवस्था, कार्यालयी कही जाती है । इसकी शब्दावली, वाक्य-विन्यास, पद-रचना सामान्य एवं साहित्यिक भाषा के पृथक् होता है । कार्यालयी हिन्दी में मुख्यत: मसौदा लेखन, टिप्पणी, पत्राचार, संक्षेपण, प्रतिवेदन, अनुवाद आदि कार्य किया जाता है ।

4. राजभाषिक रूप

स्वाधीन होने के उपरान्त भारतीय भाषाओं को रचा-पचा कर देश को एक-सूत्र में बाँधने के लिए राज भाषा' का आविर्भाव हुआ । केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग, पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण, अनुवाद का कार्य, विशिष्ट भाषिक संरचना राजभाषिक रूप की प्रमुख विशेषताएँ हैं ।

5. विज्ञापनिक रूप

ज्यों-ज्यों विज्ञापन क्षेत्र तेजी से अग्रसर हो रहा है, भाषा की विज्ञापन प्रयुक्ति उसी गति से आगे बढ़ रही है । आकर्षक वाक्य-विन्यास, शब्दों का विशिष्ट एवं उचित प्रयोग न केवल जनसंचार माध्यमों द्वारा उत्पाद की बिक्री बढ़ा रहा है अपितु मोहक स्वरूप से लोगों में दीर्घजीवी भी बन रहा है ।

6. विधिक रूप

भाषा का विधिक रूप राज भाषा, अनुवाद-प्रक्रिया एवं तकनीकी शब्दावली से ही माना जाता है । कानूनी प्रक्रिया और अदालती मसलों से जुड़ा होने के कारण हालाँकि इसे नीरस, उबाऊ माना जाता है । किन्तु जहाँ तक हिन्दी की बात है, यह अनुवाद के आधार पर खड़ी है । इसमें मुख्यत: तकनीकी शब्दावली, विशिष्ट पद विन्यास लम्बे-संयुक्त वाक्य प्रधानता से पाए जाते हैं ।

7. वैज्ञानिक - तकनीकी रूप

हिन्दी की प्रयोजनमूलक प्रयुक्ति का यह सर्वथा नवीन रूप है जिसका सम्बन्ध विज्ञान एवं तकनीकी शब्दावली से होता है । इसका भाषिक व्यवहार सामान्य भाषी से भिन्न होता है । शब्दों की विशिष्ट, निश्चित अभिव्यक्ति, सार्वभौमिक अर्थवत्ता, एकार्थता पारिभाषिकता इस भाषिक रूप की विशिष्टताएँ होती हैं । हिन्दी की वैज्ञानिक प्रयुक्ति ने न केवल संस्कृत परम्परा के शब्दों को ग्रहण किया अपितु अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को भी ज्यों ता त्यों गृहीत किया । इसी कारण आज विज्ञान, गणित, अंतरिक्ष, दूरसंचार आदि क्षेत्रों में भी हिन्दी में अनेक ज्ञान-ग्रन्थों का निर्माण सम्भव बन सका ।

8. सामाजिक विज्ञान रूप

सामाजिक विज्ञान अपनी विषय-वस्तु के साथ-साथ अपनी भाषिक प्रकृति के कारण भी विशिष्ट रूप होते हैं । विशिष्ट शब्दावली, पारिभाषिकता सटीक वाक्य रचना इसकी प्रधान विशेषताएँ होती हैं । सामाजिक विज्ञान की विभिन्न प्रशाखाओं - इतिहास, राजनीति विज्ञान,

भूगोल, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र आदि की शब्दावली संकल्पनाओं व विचारधाराओं को प्रकट करने वाली होती है ।

9. संचार माध्यम रूप

विज्ञान और तकनीकी क्रांति के परिणाम स्वरूप जनसंचार के माध्यमों में आशातीत वृद्धि हुई । भाषा के इस माध्यम का प्रधान लक्ष्य होता है - त्वरित एवं प्रभावी संप्रेषण । जन संचार माध्यमों - रेडियो, टीवी., समाचार पत्र, सिनेमा, स्लाइड, विज्ञापन आदि में प्रयुक्त भाषा अपनी शब्दावली जीवन के सभी क्षेत्रों से ग्रहण करती है दूसरी भाषाओं के शब्दों का लिप्यंतरण भी स्वीकार करती है । चूंकि संचार माध्यमों में कोई विषयगत सीमा नहीं होती, ग्राहक वर्ग पूरा समाज होता है, अत: इसकी शब्दावली, वाक्य रचना सरल एवं प्रभावी होती है ।

5.4.7 प्रयोजनमूलक हिन्दी : सीमाएँ एवं संभावनाएँ

प्रिय छात्रों, ऐसा नहीं है कि भाषिक प्रयुक्ति स्तर, रूप, भेद, गठन आदि में प्रयोजनमूलक सर्वांगपूर्ण है । संरचनागत एवं तात्त्विक दोष जो प्रयोजनमूलक हिन्दी में दीख पड़ते हैं वे निम्न हैं :-

(1) प्रयोजनमूलक हिन्दी की सबसे बड़ी कठिनाई एवं समस्या उसकी विज्ञान एवं तकनीकी से सम्बन्धित अत्यंत जटिल एवं दुरूह पारिभाषिक शब्दावली है । वास्तव में कोई शब्द सरल या कठिन नहीं होता अपितु परिचित या अपरिचित ही होता है । यह मानव प्रकृति है कि अपरिचित शब्द कठिन लगता है । भौतिक, रसायन, गणित, विधि, अंतरिक्ष एवं मानविकी से सम्बन्धित अनेक नवीन शब्दों का निर्माण वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने किया है । यह भी सत्य है कि प्रयासजनित शब्द सहज नहीं हो सकता अत: ये शब्द कठिन, दुरूह लगते हैं, प्रचलन में समस्या आ सकती है । इसकी दुरूहता को तभी समाप्त किया जा सकता है जब इन शब्दों को सन्दर्भानुसार अधिकाधिक प्रचलित कराने के प्रयास किए जाएँ ।

(2) प्रयोजनमूलक हिन्दी की दूसरी प्रमुख समस्या उसके अनुवादित रूप के कारण संरचनागत क्लिष्टता और अटपटापन है । अनुवाद प्रयोजनमूलक हिन्दी का प्रमुख तत्त्व है. । विज्ञान एवं तकनीकी का प्रादुर्भाव एवं विकास पश्चिम की देन है । यह प्रदेय भारत तक अनूदित होकर ही पहुँची । समानान्तर रूप से हिन्दी भी स्वतन्त्रता उपरान्त राजभाषा पद पर आसीन हुई । इससे पहले हिन्दी कभी भी घोषित राजभाषा नहीं रही । मुगलों के काल में अरबी- फारसी राज-काज की भाषा रही तो ब्रिटिश काल मैं करीब डेढ़ शताब्दी तक अंग्रेजी प्रशासन की भाषा रही । ऐसी विरासत को जब हिन्दी ने अंगीकार किया' सब प्रशासनिक स्तर पर अभिव्यक्ति और प्रयुक्ति के लिए हिन्दी को अनुवाद का ही सहारा लेना पड़ा । राजभाषा अधिनियम 1963 " ने तो हिन्दी को पूर्ण रूपेण अनुवाद-आश्रित ही कर दिया । इसी कारण जब अनुवाद ही प्रमुख आधार बना और अनुवादक भी सूक्ष्म ज्ञान व अनुभव शून्य थे, तब पुस्तकीय अनुवाद क्लिष्ट और अटपटे लगने लगे । इससे प्रयोजनमूलक हिन्दी को आघात पहुँचा ।

चूँकि विधि, भौतिकी, रसायन, गणित, दूरसंचार, कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी की सम्पूर्ण संकल्पनाएँ पश्चिम से आयातित हुई और अनुवाद के आधार पर ही हम तक पहुँची, इसमें किए गए अनुवादों के कारण भाषिक संरचना में काफी क्लिष्टता आई । इसके कारण हिन्दी पर आरोप लगाया गया कि विशुद्ध वैज्ञानिक तकनीकी-प्रौद्योगिकी के ज्ञान क्षेत्रों में अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं है । वस्तुत: यह कठिनाई हिन्दी के कारण नहीं अपितु अनुवाद के कारण उत्पन्न हुई ।

उक्त समस्या के समाधान के लिए यह किया जा सकता है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित ग्रन्थों का निर्माण ही मूलत: हिन्दी में किया जाना चाहिए ताकि सहज, सरल भाषा द्वारा भाषाई अटपटापन दूर होगा । यदि अनुवाद की बाध्यता दूर हो तो भी अनुवाद हिन्दी की प्रकृति अनुसार किया जाए तो संभावनाएँ बनती हैं कि वह अनुवाद उतना कठिन नहीं होगा । अनुवाद में लिप्यंतरण से भी काम किया जा सकता है । अनुवाद की स्थिति में सरल भाषा, छोटे-छोटे वाक्यों के प्रयोग द्वारा अनुवाद जनित जटिलताओं को दूर किया जा सकता है ।

(3) प्रयोजनमूलक हिन्दी की तीसरी समस्या उसकी नई पारिभाषिक शब्दावली निर्माण तथा उसकी नई प्रयुक्तियाँ बनाने सम्बन्धी हैं । यद्यपि प्रयोजनमूलक हिन्दी की प्रवृति सतत् प्रयोगशील व विकासशील है किन्तु इस प्रक्रिया में विषय, सन्दर्भ, आवश्यकतानुसार नई पारिभाषिक शब्दावली का जल्दी से जल्दी निर्माण किया जाना चाहिए । साथ ही ऐसे कोश-ग्रन्थों में संकलित शब्दावली को योजनाबद्ध तरीके से आम लोगों तक प्रयुक्ति के प्रयास किए जाएँ ।

प्रयोजनमूलक हिन्दी अभी विकासमान स्थिति में है । जीवन से सम्बन्धित अभी भी अनेक ऐसे ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र हैं जहाँ प्रयुक्ति निर्मित होनी बाकी है । अत: विषयगत स्थिति, सन्दर्भ एवं आवश्यकता अनुसार ऐसे प्रयोग निर्मित करके उन्हें व्यवहार-योग्य बनाया जाना चाहिए ।

5.5 शब्दावली

मानक रूप	-	भाषा का सर्वमान्य, स्वीकार्य, आधारभूत रूप ।
तत्सम रूप	-	संस्कृत शब्द जो हिन्दी में हु बहू प्रयुक्त हैं ।
अल्पांग वाक्य	-	ऐसा वाक्य जिसमें न्यूनतम अनिवार्य घटक हों ।
कर्तृवाच्य	-	जिसमें क्रिया रूप कर्त्ता अनुसार हो व कर्त्ता प्रधान हो ।
कर्मवाच्य	-	जिसमें क्रिया रूप कर्म अनुसार हो व कर्म प्रधान हों ।
अग्रणी	-	रास्ता दिखाने वाला ।
सामासिक	-	मिलीजुली/समासयुक्त।
परिनिष्ठित	-	पूर्ण रूप से उपयुक्त ।
प्रयोक्ता	-	इस्तेमाल करने वाला ।

5.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आपने सामान्य हिन्दी, साहित्यिक हिन्दी, प्रयोजनमूलक हिन्दी के स्वरूप की जानकारी प्राप्त की व तीनों का स्वरूप समझा । आपने जाना:-

* प्रयोग के आधार पर भाषा के दो रूप सामने आते है :- औपचारिक, अनौपचारिक । अनौपचारिक भाषा आम बोलचाल की भाषा होती है ।
* सामान्य हिन्दी अनौपचारिक होती है, इसे सीखने के लिए औपचारिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ती ।
* साहित्यिक हिन्दी का सम्बन्ध कहानी, उपन्यास कविता आदि विभिन्न साहित्यिक विधाओं से होता है ।
* साहित्यिक हिन्दी के चार रूप देखे जा सकते हैं।
* जिस भाषा का प्रयोग किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए किया जाए, वह प्रयोजनमूलक भाषा कही जाती है ।
* प्रयोजनमूलक हिन्दी का स्वरूप निर्धारित करने में विभिन्न रूपों - कार्यालयी वाणिज्यिक, वैज्ञानिक साहित्यिक आदि की चर्चा की जाती है ।
* हिन्दी भाषा अपना व्यापक रूप धारण कर चुकी है । राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा आदि मिलकर प्रयोजनमूलक प्रकार्य निश्चित करते हैं ।
* प्रयोजनमूलक प्रकार्यो के सन्दर्भ में योजनाबद्ध विकास की आवश्यकता पड़ती है ।
* प्रयोजनमूलक हिन्दी की वाक्य रचना सटीक एवं एकार्थी होती है ।

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रयोजनामूलक हिन्दी के स्वरूप व तत्वों की विवेचना कीजिए ।
2. हिन्दी भाषा के प्रयोग के विविध क्षेत्रों का वर्णन कीजिए ।

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सं. र. ना. श्रीवास्तव; **'प्रयोजनमूलक हिन्दी',** : चर्चा परिचर्चा, आगरा 1974 ।
2. विनोद गोदरे; **'प्रयोजनमूलक हिन्दी',** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1991 ।
3. दंगल झाल्टे,. **'प्रयोजनमूलक हिन्दी',** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1991 ।
4. कृष्ण कुमार गोस्वामी, **"प्रयोजनमूलक हिन्दी और कार्यालयी हिन्दी',** कलिंगा प्रकाशन, नई दिल्ली 1992।
5. सूरजभान सिंह**; 'हिन्दी का वाक्यात्मक व्याकरण',** साहित्य सहकार, दिल्ली। 1985
6. हिन्दी- भाषा विज्ञान अंक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली, 1973
7. देवेन्द्र नाथ शर्मा; राष्ट्रभाषा हिन्दी : **समस्याएँ और समाधान'** लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
8. भोलानाथ तिवारी एवं कमल सिंह, स**म्पर्क भाषा हिन्दी',** प्रभात प्रकाशन, दिल्ली ।

इकाई - 8

प्रयोजनमूलक हिन्दी की आवश्यकता और उसके विविध रूप

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 प्रयोजनमूलक हिन्दी. संकल्पना

6.3 प्रयोजनमूलक हिन्दी : आवश्यकता

6.4 प्रयोजनमूलक हिन्दी विविध रूप

6.4.1 वाणिज्य-व्यापार के क्षेत्र मे हिन्दी

6.4.2 वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्र

6.4.3 कार्यालयी हिन्दी

6.4.4 विधि के क्षेत्र में हिन्दी

6.4.5 सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी

6.4.6 संचार माध्यम में हिन्दी

6.4.7 विज्ञापन के क्षेत्र में हिन्दी

6.5 प्रयोजनमूलक हिन्दी और सामान्य हिन्दी

6.6 प्रयोजनमूलक हिन्दी और साहित्यिक हिन्दी में अंतर

6.7 शब्दावली

6.8 सारांश

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

- प्रयोजनमूलक हिन्दी की संकल्पना को समझ सकेंगे ।
- प्रयोजनमूलक हिन्दी की आवश्यकता जान सकेंगे ।
- प्रयोजनमूलक हिन्दी के विविध रूप की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- प्रयोजनमूलक हिन्दी से सामान्य हिन्दी एवं साहित्यिक हिन्दी में भेद से अवगत हो सकेंगे ।

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत खण्ड हिन्दी के विविध रूपों से आपको रूबरू कराएगा । आपके मन मे सहज ही प्रश्न उठ सकता है कि प्रयोजनमूलक या प्रयोजनपरक भाषा से क्या आशय है । आपकी इस जिज्ञासा का समाधान इस इकाई में किया जाएगा । साथ ही साथ, यह भी बताएंगे कि

प्रयोजनमूलक भाषा की आवश्यकता क्यों पड़ती है? इसके ओर कौन - कौन से रूप होते हैं, इसकी प्रयोजनपरकता किन-किन आधारों पर होती है। इन सब तथ्यों से अवगत कराने का प्रयास करते हुए हम प्रयोजनमूलक हिन्दी के स्वरूप और इसकी विशेषताओं की चर्चा करेंगे ।

हिन्दी के विभिन्न रूपों से तात्पर्य अलग-अलग स्थितियों में हिन्दी का पृथक-पृथक रूप। जब हम अपने स्वजनों, परिवारजनों से बातचीत करते हैं, तो हम एक भिन्न प्रकार की हिन्दी का प्रयोग करते हैं । जब हम सृजनात्मक लेखन करते हैं तब एक भिन्न प्रकार की शैली का प्रयोग करते है। जब हम कोई विशिष्ट उद्देश्य लेकर भाषा का प्रयोग करते हैं तब उसका स्वरूप भिन्न ही होता है।

आप भली भाँति समझ गए होंगे कि किसी से भी अनौपचारिक बात करते समय हम बोलचाल की हिन्दी का प्रयोग करते हैं, जिसे सामान्य हिन्दी भी कहा जाता है । सृजनात्मक लेखन की भाषा में भाषा की साहित्यिकता का विशेष ध्यान रखा जाता है । यहाँ पर अलंकार, शब्द - शक्तियों आदि के माध्यम से सौन्दर्य पैदा किया जाता है । इसमें भाषा का संवेदनपूर्ण होना अनिवार्य हो जाता है । हिन्दी का वह रूप जिसका प्रयोग व्यक्ति किसी प्रयोजन या उद्देश्य के लिए करता है, वही स्वरूप प्रयोजनमूलक हिन्दी माना जाता है ।

6.2 प्रयोजनमूलक हिन्दी : संकल्पना

प्रयोजन में मूलक प्रत्यय जोड़कर प्रयोजनमूलक शब्द की निर्मित होती है । इसका आशय है - हेतु विशेष वाला। प्रयोजन के हिन्दी पर्याय हैं- आवश्यकता, आशय, इरादा, इष्ट, काम, कारण, मकसद, कार्य, गर्ज नीयत, बहाना, मतलब, मनोरथ आदि ।

इस प्रकार प्रयोजनमूलक का तात्पर्य है- वह भाषा जिसका अपना विशिष्ट लक्ष्य है, प्रयोजन है ।

प्रयोजनमूलक भाषा वह भाषा होती है जो किसी उद्देश्य विशेष से सम्बन्धित हो । यो तो भाषा का प्रयोजन हमेशा ही विचारों की अभिव्यक्ति रहता है । किन्तु जब हम प्रयोजनमूलक भाषा कहते हैं तो इसका तात्पर्य किसी प्रयोजन विशेष के लिए प्रयोग होने वाली भाषा होता है ।

प्रश्न यह उठता है वह प्रयोजन क्या है? उत्तर होगा जीवन के विविध कार्य क्षेत्र से सम्बन्धित प्रयोजन । हम सभी जानते है कि रोजमर्रा के जीवन में हमारी विभिन्न भूमिकाएँ होती हैं जैसे पारिवारिक जीवन की भूमिका, व्यावसायिक जीवन की भूमिका आदि । हमारा भाषा व्यवहार हमारी भूमिका पर निर्धारित होता है । अपने माता-पिता, पति-पत्नी रूप में जो हमारा भाषा व्यवहार होता हैं वह व्यवसाय. क्षेत्र रूप में भिन्न होता है । जिस तरह की भाषा का प्रयोग हम परिवार में करते हैं, वह सहयोगी कर्मचारी से नहीं करते ।

चिकित्सालय, बैंक- अन्य कार्यालय में जिन लोगों से हमारा संपर्क होता है, उनसे बातचीत में विशिष्ट बात होती है- उसकी विशिष्ट शब्दावली । स्थान, कार्यालय विशेष में प्रयुक्ति शब्दावली आम जीवन में प्रयुक्त नहीं होती । इस प्रकार, किसी व्यवसाय अथवा कार्य क्षेत्र के लोगों द्वारा अपने कार्य क्षेत्र के प्रयोजन के लिए इस्तेमाल की जाने वाली भाषा प्रयोजनमूलक भाषा. कही जाती है ।

डॉक्टर, वकील, पत्रकार, वैज्ञानिक, व्यापारी आदि के कार्य क्षेत्रों से सम्बन्धित भाषा के विशेष रूप को प्रयोजनमूलक भाषा कहा जाता है ।

हमें यह नहीं समझना चाहिए कि किसी भाषा का प्रयोजनमूलक स्वरूप उस भाषा के मूल रूप यानि शब्द- संरचना, पदावली या अन्य व्याकरणिक रूपों से भिन्न होता है । बल्कि भाषा के इस व्यापक रूप के भीतर ही विद्यमान रहता है ।

जीवन के विविध क्षेत्रों में व्यवहार में लाए जाने वाले रूप के कारण इस भाषा को व्यावहारिक भाषा भी कहा जाता है । अंग्रेजी में इसे फंक्शनल लेंग्वेज भी कहा जाता है । हिन्दी के सन्दर्भ में व्यावहारिक एवं प्रयोजनमूलक विश्लेषण अपेक्षाकृत नया है । हिन्दी भाषा और उसकी बोलियाँ, साहित्यिक रूप जितना पुराना है, प्रयोजनपरक उतना नहीं । हालांकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार-वाणिज्य की भाषा के रूप -में हिन्दी दीर्घ काल से सम्पर्क भाषा बनी हुई थी लेकिन आधुनिक काल में उसने कई दायित्वों का वहन किया है ।

संक्षेप में माना जा सकता है

"प्रयोजनमूलक हिन्दी से तात्पर्य है, हिन्दी का वह प्रयुक्तिपरक विशिष्ट रूप जो विषयगत, भूमिकागत तथा संदर्भगत प्रयोजन के लिए विशिष्ट भाषिक संरचना द्वारा प्रयुक्त किया जाता है और जे सरकारी प्रशासन तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के अनेकविध क्षेत्रों को अभिव्यक्ति प्रदान करने में सक्षम सिद्ध होता है ।

6.3 प्रयोजनमूलक हिन्दी: आवश्यकता

प्रिय छात्रों कपके मन में यह प्रश्न सहज ही उठ सकता है कि प्रयोजनमूलक हिन्दी की आवश्यकता क्या है? जब हम हिन्दी भाषा को पढ़ना लिखना जानते है, इस भाषा मे रचित साहित्य को भली- भाँति महसूस कर सकते हैं फिर यह प्रयोजनमूलक हिन्दी क्यों?

वस्तुत: साहित्य भाषा का एक पक्ष होता है जिसमे भाषा प्रयोग करने वालों के जीवन अनुभव, आशाएँ, आकांक्षाएँ होती हैं । किन्तु जीवन का दूसरा पक्ष भी होता है जिसमें सामाजिक व्यवहार? सामाजिक क्रिया-कलाप, भी होते है और उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है- प्रयोजनमूलक भाषा । उदाहरण देखिए - एक भाषा के विद्यार्थी को तो भाषा के प्रश्नों के उत्तर देना अनिवार्य होता है किंतु भाषा के इतर विषयों- भूगोल, वाणिज्य, विज्ञान के प्रश्न पत्रों मे पूछे सवाल का उत्तर देने के लिए भी तो विद्यार्थी को माध्यम भाषा की जरूरत तो पड़ती ही है न! राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद यद्यपि राष्ट्र से ही निर्मित हैं किन्तु विषय की पारिभाषिक शब्दावली का ज्ञान ही दोनों में अंतर कर सकता है ।

हमारे देश में प्रयोजनमूलक हिन्दी की आवश्यकता वस्तुत: तब अनुभूत हुई जब हिन्दी राजभाषा के पद पर समादृत हुई । विश्व में विज्ञान, तकनीकी, प्रौद्योगिकी के तीव्रगामी विकास का प्रभाव भारत पर भी पड़ा । परिणामस्वरूप हिन्दी को नए महत्त्वपूर्ण भाषिक दायित्वों से गुजरना पड़ा । बदली हुई परिस्थितियों में प्रयोजन-विशेष के प्रसंग में हिन्दी के ऐसे रूप की तीव्र आवश्यकता महसूस की गई जो युगीन आकांक्षाओं की पूर्ति कर सके ।

अतीत में हिन्दी 'कभी भी राजकाज की भाषा नहीं रही । मुस्लिम शासन-काल में अरबी-फारसी तो अंग्रेजी शासन काल में अंग्रेजी राज-काज की भाषा बनी । ऐसी स्थिति में भारत की राजभाषा बनने के बाद हिन्दी को सरकारी कामकाज एवं प्रशासन के सर्वथा नए, अनछुए क्षेत्रों से दो-चार होना पड़ा ।

ऐसा नया रूप जो विषय को अभिव्यक्त कर सके, इसके लिए पारिभाषिक शब्दावली गढ़ी गई । वैसे न्याय, दर्शन, तर्क शास्त्र, नाट्य शास्त्र मनोविज्ञान, ज्योतिष, गणित आदि ज्ञान-विज्ञान क्षेत्रों की चिंतन परंपरा में तो हिन्दी, संस्कृत सहायक बनी किंतु टेक्नोलॉजी, इलेक्ट्रानिक, भौतिकी, दूरसंचार आदि अनछुए विज्ञान क्षेत्रों में नवीन शब्दावली निर्माण की आवश्यकता बडी शिद्दत से महसूस की गई । इसी के साथ, प्रशासन, विधि, दूरसंचार, व्यवसाय, वाणिज्य खेलकूद, पत्रकारिता आदि में हिन्दी अहम् जरूरत बनकर उभरी ।

एक उदाहरण द्वारा इसे और अच्छे तरीके से जाना जा सकता है । यदि आपको हॉकी मैच का आँखों देखा हाल रेडियो पर (Lives Telecast) सुनाने का दायित्व सौंपा जाता है तो आपको महसूस होगा की मात्र भाषा की जानकारी ही पर्याप्त नहीं है । आपको संबन्धित खेल की पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रयोग में आने वाले जुमलों की भी जानकारी अनिवार्य हो जाती है । यह जानकारी भाषा के प्रयोजनमूलक स्वरूप द्वारा ही जानी जा सकती है । इसी तरह प्रयोजन-मूलक भाषा की आवश्यकता हम सभी को जीवन के सभी क्षेत्रों में अवश्य पड़ती ही है।

6.4 प्रयोजनमूलक हिन्दी: विविध रूप

हम पहले ही देख चुके हैं कि प्रयोजनमूलक हिन्दी का तीव्र गति से विकास आधुनिक युग में आकर हुआ । इसका प्रमुख कारण जीवन की नई, बदली परिस्थितियों में भाषा को नए दायित्वों से होकर गुजरना पडा और उसने नई अर्थच्छवियाँ और नए रूप विकसित किए । समाज का विकास जिन-जिन क्षेत्रों में होता जाएगा और जिन-जिन क्षेत्रों में हम हिन्दी भाषा का प्रयोग करते रहेंगे । उसके उतने ही रूप विकसित होते रहेंगे । हिन्दी भाषा के प्रमुख प्रयोजनपरक रूप निम्न है :-

1. वाणिज्य-व्यापार क्षेत्र में हिन्दी
2. वैज्ञानिक और तकनीकी हिन्दी
3. कार्यालयी हिन्दी
4. विधि क्षेत्र में हिन्दी
5. सामाजिक विज्ञान क्षेत्र में हिन्दी
6. संचार माध्यम में हिन्दी
7. विज्ञापन क्षेत्र में हिन्दी

6.4.1 वाणिज्य-व्यापार के क्षेत्र में हिन्दी

व्यापार और वाणिज्य का सम्बन्ध समाज के सभी वर्गो से होता है । इस क्षेत्र में जो भी लोग लगे हैं उनकी भाषा विशिष्ट होती है, मुहावरा भिन्न होता है । जैसे आप कोई चीज

खरीदेंगे तो 'केश मीमो' लेंगे, उसके लिए आप पैसे का भुगतान करेंगे, उसकी रसीद लेंगे, पूंजी निवेश करेंगे, उसका हिसाब-किताब करेंगे । इस प्रकार कहीं न कहीं इस भाषा से सभी का वास्ता पड़ता रहता है।

वाणिज्य और व्यापार का विस्तार किसी भाषा-विशेष के क्षेत्र तक सीमित नहीं रहता बल्कि यह अन्तर्राज्यीय, अंतर्प्रांतिय, अंतर्देशीय भी होता है । हिन्दी भारतीय समाज में व्यापार-वाणिज्य की भाषा दीर्घावधि से रही है । संपर्क भाषा के रूप ने इसे देशव्यापी और सर्वसुलभ बनाया । यही कारण रहा कि इस क्षेत्र में विकसित शब्दावली और मुहावरा हिन्दी की बोलियों मे खूब प्रचलित रहा और आज भी काफी हद तक वह अपने परंपरागत स्वरूप में उपलब्ध है साथ ही औद्योगिक प्रगति के युग में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वाणिज्य की भाषा अंग्रेजी होने के कारण आज इस क्षेत्र में अंग्रेजी शब्दावली का भी भरपूर प्रयोग हुआ है । उदाहरणार्थ निम्न वाक्य पढ़िए-

"लेखाकरण प्रणाली द्वारा समस्त वित्तीय कार्य व्यापारों का लेखा बहियों में रिकॉर्ड कर लिया जाता है । लेखाकरण में दर्ज सारे लेन-देन के बिल बीजक, रसीद, केश मैमो आदि के रूप में लिखित प्रमाण उपलब्ध होने चाहिए । "

किंतु जब हम अखबार का बाजार से सम्बन्धित कॉलम पढ़ते हैं तो उस व्यापारिक सूचना की भाषा खास परंपरागत शैली की दीख पड़ती है, जैसे -

* चाँदी टूटी, गिन्नी उछली
* जेवराती सोने मे सौ रूपये की तेजी ।
* हल्दी में तेजी, छुहारे लुढ़के ।
* गेहूँ के भाव टूटे ।
* जीरा फिर भड़का ।

उक्त उदाहरणों में टूटना, उछलना, तेजी, लुढ़कना, भडकना आदि क्रियाओं के विशिष्ट अर्थ है ।

6.4.2 वैज्ञानिक और तकनीकी हिन्दी

विज्ञान और तकनीकी हिन्दी का व्यवहार क्षेत्र शिक्षा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रयोग-कार्यान्वयन का क्षेत्र है । यद्यपि भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान और चिंतन की परंपरा प्राचीन काल में तो अत्यधिक विकसित थी, किन्तु कालांतर में इसका कोई व्यवस्थित विकास नहीं हुआ । फलत: संस्कृत भाषा में तो विज्ञान सम्बन्धी लेखन हुआ था किंतु हिन्दी में नहीं हो सका । वर्तमान युग में आकर पश्चिम के विज्ञान और प्रौद्योगिकी के परिचय उपरांत हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन प्रारम्भ हुआ । परिणाम स्वरूप हिन्दी की विज्ञान शब्दावली में प्राचीन संस्कृत शब्दों के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक शब्दावली को ग्रहण किया गया है । हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, एंपियर आदि ऐसे ही शब्द हैं ।

उदाहरणार्थ: -

"उष्मा अपने आप किसी ठण्डे पदार्थ से गर्म पदार्थ की ओर नहीं बहती । यह उष्मा की गति का दूसरा नियम है।"

इस भाषा प्रयुक्ति में शब्द अपना विशिष्ट अर्थ रखते हैं न कि बोलचाल या साहित्यिक हिन्दी का। यह भाषा अपनी पृथक् शब्दावली, वाक्य संरचना, विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ रखती हैं ।

6.4.3 कार्यालयी हिन्दी

हिन्दी भाषा की अत्यंत आधुनिक एवं सर्वोपयोगी प्रयुक्त के रूप में "कार्यालयी हिन्दी" (OFFICIAL HINDI) को रखा जा सकता है । इसे प्रशासनिक हिन्दी भी नाम दिया गया । प्रशासन क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे यह नाम दिया गया है । हिन्दी का यह स्वरूप वस्तुत: आजादी के बाद का ही परिमार्जित, विकसित रूप है । मुगल काल में समस्त राज-काज अरबी-फारसी भाषा में होता था तो ब्रिटिश काल में 'अंग्रेजी' में ।

प्रशासनिक कार्य व्यवस्था में हिन्दी के प्रयोग की शुरूआत तब हुई, जब स्वतन्त्रता प्राप्ति उपरांत यह महसूस किया गया कि स्वाधीन देश की अपनी राजभाषा होनी चाहिए । परिणाम स्वरूप हिन्दी को संघ की राजभाषा बनाया गया । इस तरह, हिन्दी भाषा को जो नए दायित्व सौंपे गए, उसके अनुरूप शब्दावली एवं भाषाई मुहावरे का विकास किया गया ।

स्वतन्त्रता उपरांत सरकारी कार्यालयों में कामकाज की पद्धति तो वही अपनाई गई जो पूर्ववर्ती अंग्रेजी शासन व्यवस्था में थी । किंतु राजभाषा परिवर्तन के कारण अनुवाद की व्यापक मात्रा में आवश्यकता महसूस की गई । चूँकि सारा पूर्ववर्ती साहित्य अंग्रेजी में था अत: आजादी के बाद उस सम्पूर्ण कार्यविधि साहित्य को हिन्दी में अनूदित किया गया । इस तरह कार्यालयी हिन्दी के विकास में अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही ।

कार्यालयी हिन्दी में सरलता, स्पष्टता और सुबोधगम्यता का होना अत्यंत आवश्यक है । इसका प्रमुख कारण यह है कि यह भाषा उन लोगों की समझ में आनी जरूरी है जिनके लिए प्रशासन किया जा रहा है । और यह सब लोग आम भारतीय है ।

कार्यालय की भाषा औपचारिक होती है । इस भाषा में अधिकारी तंत्र का पदानुक्रम भी ध्यान में रखा जाना जरूरी होता है । साथ ही पारिभाषिक शब्दावली का भी सुनिश्चित अर्थ में प्रयोग किया जाता है ।

कार्यालयी हिन्दी में तकनीकी शब्दावली का प्रयोग, और विशिष्ट प्रकार की वाक्य रचना भी हमें दीख पड़ती है । जैसे :-

* मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है ।
* मामला अभी विचाराधीन है ।
* इसे तत्काल लागू करें ।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि इस वाक्य रचना में कर्तृवाच्य के स्थान पर कर्मवाच्य संरचना का प्रयोग हुआ है । साथ ही साथ तकनीकी शब्दावली यथा-पावती, निदेश, अवर सचिव आदि शब्दों का प्रयोग भी अनिवार्यत: होता है जो आम बोलचाल में प्रयुक्त नहीं होता ।

6.4.4 विधि के क्षेत्र में हिन्दी

मुगल काल में कचहरी की भाषा अरबी फारसी आधारित उर्दू थी जो कालांतर में अंग्रेजी शासन में भी थोड़े बहुत संशोधनों से उर्दू रूप में ही चलती रही । हालांकि अंग्रेजी शासन के दौरान पश्चिमोत्तर प्रदेश में अदालती कामकाज फारसी के स्थान पर हिन्दी के प्रयोग के आदेश दिए थे, किंतु व्यवहार रूप में उर्दू ही कचहरियों की भाषा बनी रही । बाद में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं उच्च-शिक्षा के प्रभाव के कारण अंग्रेजी को अधिक महत्व मिलता गया और हिन्दी उपेक्षित होती गई। किन्तु स्वतन्त्रता उपरांत जब हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दे दिया गया तो इस भाषा को विधि एवं न्याय- व्यवस्था में भी अपनाने का प्रश्न उठा। इसके परिणामस्वरूप विधि शब्दावली निर्धारित की गई । इस विधिक शब्दावली में अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय निर्धारित करते समय परंपरागत संस्कृत, अरबी फारसी शब्दों का भी आधार ग्रहण किया गया ।

विधि की भाषा बहुत स्पष्ट, निश्चित, एकार्थी होती है । शब्द एवं वाक्य का अभीष्ट अर्थ सरल एवं इकहरा ही होना चाहिए । अन्यथा अर्थ का अनर्थ होने की संभावना हो जाती है । इसी कारण इस शैली में पर्याय रखने की छूट नहीं होती । उदाहरणार्थ

(3) खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) में किसी बात के होते हुए भी, जहाँ किसी राज्य के उस विधान मण्डल में पुर: स्थापित विधेयकों या उसके द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में अथवा उस उपखण्ड के पैरा में निर्दिष्ट किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा से भिन्न कोई भाषा विहित की है वहाँ उस राज्य के राजपत्र में उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद इस अनुच्छेद के अधीन उसका अंग्रेजी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा ।

उक्त भाषा में प्रयुक्त शब्द - उपखण्ड पुर: स्थापित, पारित, प्रख्यापित, उपविधि आदि सामान्यत: जन भाषा में व्यवहार में नहीं आते । ये वस्तुत: विधि के तकनीकी शब्द हैं । और इनके स्थान पर इनके पर्याय रखना उचित नहीं होगा क्योंकि अन्य अर्थ की संभावना बन सकती है ।

विधि शब्दावली एवं वाक्य रचना भी कार्यालयी हिन्दी की भाँति रचनाबद्ध है । कर्तृवाच्य की जगह कर्मवाच्य की प्रवृत्ति दीख पड़ती है । सामान्य वाक्य की तुलना में पूरा पैरा ही एक वाक्य है । ऐसी वाक्य रचना सामान्यत: हिन्दी में नहीं पाई जाती । चूंकि हमारा विधिक लेखा पहले अंग्रेजी में होता है, बाद में हिन्दी अनूदित होता है, अत: यह प्रवृति आ ही जाती है ।

6.4.5 सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी -

सामाजिक विज्ञान अपनी विषय वस्तु के साथ-साथ अपनी भाषिक प्रवृत्ति के कारण भी विशिष्ट होते हैं । इन भाषिक विशिष्टता इनकी विशिष्ट शब्दावली होती है । सामाजिक विज्ञानों में विज्ञान विज्ञानों की विविध प्रशाखाएँ-राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि

विषय आते है । इनकी शब्दावली संकल्पनाओं और विचारधाराओं पर आधारित रहती है जो अपने भीतर विशिष्ट अर्थ समाहित किए होती है ।उदाहरणार्थ :-

"राष्ट्रवादी इतिहास लेखन ने स्वतन्त्रता संघर्ष को वैचारिक आधार प्रदान करने और साम्राज्यवाद के आर्थिक नतीजों का विश्लेषण करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । हालाँकि राष्ट्रवाद ने अपना ध्यान बाह्य पक्ष अर्थात् भारत के साम्राज्यवादी शोषण पर ही केन्द्रित किया।"

उक्त गद्यांश में राष्ट्रवाद, राष्ट्रवादी, साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, वर्ग शोषण आदि शब्द पारिभाषिक शब्द है । इनका प्रयोग विशिष्ट है । ये सामान्य अर्थ बोधक शब्द नहीं हैं । इनकी अर्थच्छवि ज्ञात करने के लिए पारिभाषिक कोश की अपेक्षा होती है । राष्ट्र शब्द से निर्मित राष्ट्रीय तो सकारात्मक अर्थ की प्रतीति कराता है किंतु राष्ट्रवाद पूर्णत: सकारात्मक अर्थ की प्रतीति कराए यह जरूरी नहीं । इसके अतिरिक्त इन सभी विज्ञानों की भाषा की वाक्य संरचना का स्वरूप सामान्य भाषा सा ही होता है ।

6.4.6 संचार माध्यम में हिन्दी

विज्ञान और तकनीकी विकास का प्रभाव जनसंचार पर भी पडा है । इस क्षेत्र में व्यापकता समाविष्ट हुई है । जनसंचार के बहुविध माध्यमों को हम निम्न रूप से विभक्त कर सकते हैं :-

1. मुद्रित सामग्री - समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तिकाएँ तथा विज्ञापन ।
2. श्रव्य सामग्री - रेडियो
3. भव्य दृश्य सामग्री - टेलीविज़न, फिल्म, वीडियो ।
4. लोक माध्यम - नौटंकी, कठपुतली, सामूहिक गायन, लोकगीत,
5. मौखिक माध्यम - व्यक्तिगत सम्पर्क, भाषण, सार्वजनिक सभाएँ ।
6. क्षेत्रीय प्रचार - सिनेमा, स्लाइड- प्रदर्शन ।
7. कम्प्यूटर ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से देश में समाचार पत्रों के प्रकाशन में आशातीत वृद्धि हुई है। ऑफसेट प्रिंटिंग, टेलीप्रिंटर्स से न केवल समय की बचत हुई है अपितु समाचारों में गुणात्मकता में भी अभिवृद्धि हुई है । हिन्दी इस माध्यम में बहुत आगे है ।

संचार माध्यमों मे भाषा प्रयुक्ति में मौखिक एवं लिखित दोनों माध्यम आते हैं । यद्यपि दोनों रूपों का अभीष्ट तो संप्रेषण ही होता है किन्तु व्यापार एवं अभिव्यक्ति की प्रक्रिया समान नहीं होती । मौखिक रूप से कही गई बात को यदि हम ज्यों का त्यों अंकित कर दें तो यह कतई जरूरी नहीं कि वह उतना प्रभावी रूप से संप्रेषणीय हो ही । किंतु उच्चरित शब्दों में तुरन्त संप्रेषणीयता का होना भी अनिवार्य है । अन्यथा वक्ता का अर्थ गलत ढंग से संप्रेषित हो सकता है। लिखित सामग्री को हम एक से अधिक बार पढ़कर भी अभीष्ट अर्थ प्राप्त कर सकते हैं ।

मुद्रित सामग्री का उद्देश्य समाज के सभी वर्गो तक अपनी बात पहुँचाना होता है यानि इसमें बुद्धिजीवी, व्यापारी, किसान, आम नागरिक, मजदूर सभी वर्ग आ जाते हैं । ऐसी स्थिति

में ऐसी भाषा सहज, सरल बोधगम्य होनी चाहिए । चूँकि संचार माध्यमों की विषयगत सीमा नहीं होती, उसमें खेल, बाजार आदि सभी समाविष्ट रहते हैं, अत: उसमें तकनीकी शब्दावली भी अवश्यमेव आती ही है । अत: इन सभी आवश्यकताओं के बावजूद भाषा में बोलचाल सरलता एवं लय अपेक्षित बन जाता है ।

यह ध्यान रखा जाता है कि पत्र पत्रिकाओं की भाषा रेडियो-दूरदर्शन की भाषा से भिन्न होती है । पत्र-पत्रिकाओं में भाषा का कठिन स्वरूप मिल सकता है, वाक्य लम्बे भी मिल सकते है, किन्तु दृश्य, दृश्य-श्रव्य माध्यमों की भाषा का सरल, स्पष्ट होना आवश्यक है । समाचार पत्र की भाषा देखें -

"भारत के विदेश मंत्री जब गत 16 नवम्बर को सोमालिया की राजधानी मोगादिशू की हालत देखने गए तो वह भी स्वतन्त्र होकर मोगादिशू नहीं घूम सकें।"

यही समाचार जब पढ़कर सुनाया जाएगा तो श्रोता को समझने में असुविधा होगी । रेडियो आदि में इसका प्रारूप निम्न होगा -

"भारत के विदेश मंत्री जब गत 16 नवम्बर को सोमालिया की राजधानी मोगादिशू गए । वे मोगादिशू की हालत देखना चाहते थे इसलिए कुछ राहत केन्द्रों का दौरा करने निकले।"

आशय यह है कि जनसंचार की माध्यम भाषा में स्वरूप परिवर्तन के कारण भाषा-परिवर्तन अनिवार्य हो जाता है । विज्ञापन की भाषा समाचार की भाषा से भिन्न होती. है । खेल समाचार की भाषा फिल्म समाचार से भिन्न होगी ।

संचार माध्यमों में प्रयुक्त हिन्दी जीवन के सभी क्षेत्रों से शब्दावली ग्रहण करती है । वह अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय इस्तेमाल करने के साथ ही अंग्रेजी रूप को ग्रहण करती है, उसका लिप्यंतरण भी खूब स्वीकार करती है ।

अखबारी भाषा में, खास तौर से अंग्रेजी भाषा में तो संक्षिप्तियों का तो खूब प्रयोग दिखाई पड़ता है यथा-भाजपा, बसपा, जद आदि किंतु हिन्दी में ऐसा नहीं होता । कारण भाषा परिवर्तन एवं विधा परिवर्तन ही है ।

6.4.7 विज्ञापन के क्षेत्र में हिन्दी

संचार माध्यम और विज्ञापन परस्पर अन्योन्याश्रित है । पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो, टी.वो. पर विज्ञापन पढ़ना, सुनना और देखना हमारी रोजमर्रा की आदत बन चुकी है । संचार माध्यमों के अलावा दीवारों मार्गों चौराहों पर लगे बोर्ड, पोस्टर व' पर्दे-बेनर इसकी महत्ता प्रकट करती है।

चूँकि विज्ञापन का उद्देश्य उपभोक्ता को आकृष्ट करना होता है, अत: उसकी प्रस्तुति लय, गति के साथ होती है । यदि विज्ञापन व्यापारिक है तो उसमें इतना आकर्षण होना चाहिए कि उपभोक्ता तुरंत उसे खरीदने को लालायित हो उठे । वहीं यदि विज्ञापन प्रचारपरक है तो इतना प्रभावशाली होना चाहिए कि पाठक, श्रोता के मन: मस्तिष्क पर गहरा असर करे । यदि विज्ञापन रोजगार परक है तो उसमें सूचना की स्पष्टता, पूर्णता अपेक्षित होती है । कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :

* 'दो बूंद जिंदगी की' (पल्स पोलियो अभियान)

* "आयोडेक्स मलिए काम पर चलिए"
* "ठण्डा मतलब कोका कोला"

इनमें प्रत्येक शब्द इतनी सार्थकता से समाविष्ट किया है कि अभीष्ट संदेश अपने आप प्रेषित हो जाता है।

विज्ञापन में तुकांत का प्रयोग पाठक श्रोता वर्ग को सहज याद कराने के लिए किया जाता है,

"बेटी छुएगी आकाश, बस मौके की तलाश । '

आज सभी विज्ञापन बिना हिन्दी के पंगु है । 'हिन्दी आज विज्ञापन का अंग बन चुकी है ।

6.5 प्रयोजनमूलक हिन्दी और सामान्य हिन्दी

प्रयोजनमूलक हिन्दी के स्वरूप का अध्ययन करने के उपरांत आप भली-भाँति समझ गए होंगे कि सामान्य बोलचाल कि हिन्दी और प्रयोजनमूलक हिन्दी में कुछ अंतर होता है ।

सबसे पहला अंतर तो औपचारिकता का होता है । सामान्य व्यवहार की बोलचाल की हिन्दी में अनौपचारिकता रहती है । लेकिन प्रयोजनमूलक हिन्दी की भाषा, चाहे वह किसी भी प्रयोजन के लिए क्यों ना प्रयुक्त हो, सदैव औपचारिक ही होती है । इसमें औपचारिकता की सीमा का भेद हो सकता है, किंतु अंतर होता अवश्य है ।

औपचारिकता के कारण प्रयोजनमूलक हिन्दी-भाषा की शब्दावली और वाक्य संरचना में सहजता तो होती है किंतु उसमें एक तरह की सोद्देश्यता एवं सतर्कता होती है जो सामान्य हिन्दी में उपलब्ध नहीं होती ।

सामान्य हिन्दी में अपेक्षाकृत संदिग्धता व अनेकार्थी शब्दों का प्रयोग हो सकता है, किन्तु प्रयोजनमूलक हिन्दी की भाषा असंदिग्ध, स्पष्ट होती है ।

6.6 प्रयोजनमूलक हिन्दी और साहित्यिक हिन्दी में अंतर

हमारे जीवन अनुभव और संवेदनाएँ साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं । इसमें व्यक्ति के हृदय पक्ष अर्थात् भावना और बुद्धि दोनों का समावेश होता है । साहित्य में भावना की सघनता और तीव्रता होती है । अत: साहित्य की भाषा निर्बन्ध होती है । वह आम बोलचाल की तरह सहज, सरल भी हो सकती है, और बिंब, प्रतीक, अलंकार और वक्रोक्ति प्रधान भी हो सकती है । वहीं प्रयोजनमूलक हिन्दी सरल, स्पष्ट, सीधी और प्रयोजन सापेक्ष होती है । इसका तात्पर्य यह है कि शब्दों का उतना ही अर्थ निकले जितना कि अभीष्ट है । जबकी साहित्य की भाषा में एकाधिक अर्थ, व्याख्याएँ सम्भव हैं ।

साहित्य की भाषा में शब्दावली की कोई सीमा नहीं होती । प्रयोगकर्त्ता अपनी इच्छानुसार नए-नए भाषिक प्रयोगों द्वारा नवीन अर्थ की सृष्टि करवा सकता है किन्तु यह छूट प्रयोजनपरक भाषा के प्रयोक्ता को नहीं होती । इसमें शब्दावली पारिभाषिक होती है जिसमें शब्दों का अर्थ क्षेत्र निश्चित एवं परिसीमित होता है ।

विषय वस्तु के साथ भाषिक स्तर पर वाक्य रचना में भी दोनों में अंतर देखा जा सकता -है । साहित्यिक भाषा में साहित्यकार को भाषाई प्रयोग की छूट मिल जाती है । वह लालित्यपूर्ण भाषा प्रयोग कर सकता है किन्तु प्रयोजनमूलक भाषा में ऐसा संभव नहीं है ।

साहित्यिक भाषा प्रयोजनमूलक हिन्दी की सदा से ही ऋणी रही है । समाज विज्ञान की उपशाखाओं-दर्शन की पारिभाषिक शब्दावली ने मध्यकालीन साहित्य को प्रभावित किया यथा- निर्गुण, सगुण, ब्रह्म, जीव, माया आदि तो आधुनिक सामाजिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की पारिभाषिक शब्दावली ने वर्तमान साहित्यिक भाषा को प्रभावित किया है । वर्तमान स्वरूप में ब्लॉग, नेट, डै, आतंकवाद, साईबर क्राईम आदि बहु पारिभाषिक शब्द भी इस प्रकार अन्तर्निहित हो गए हैं कि पृथक् करना असंभव है । किन्तु प्रयोजनमूलक हिन्दी साहित्य से कोई शब्दावली नहीं ग्रहण करती ।

संचार माध्यमों तथा विज्ञापन आदि क्षेत्रों में प्रयुक्त हिन्दी विभिन्न ज्ञान-विज्ञानों से आदान-प्रदान अवश्य करती है । यह प्रयुक्ति ज्ञान एवं विषय क्षेत्र पर आधारित न होकर व्यवहार क्षेत्र पर आधारित है ।

6.7 शब्दावली

दैनंदिन	-	प्रतिदिन का
अंतर्देशीय	-	देश के अन्तर्गत एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में
संकल्पना	-	किसी वस्तु, विचार, स्थिति की सम्यक, सम्पूर्ण अवधारणा ।
अर्थच्छवि	-	अर्थ के अनेक रूप
संवेदन	-	अनुभव-सुख, दुःख आदि भावों की अनुभूति
तुकांत	-	जिन दो पंक्तियों के अंत में तुक (समान लय) मिलती हो ।
अलंकार	-	भाषा का सौन्दर्य विधान
वक्रोक्ति	-	चमत्कार प्रधान उक्ति
व्यंजना	-	शब्द के विविध अर्थ की प्रस्तुति ।
लालित्य	-	सुन्दरता, मनोहरता
लिप्यंतरण	-	एक लिपि में लिखी सामग्री को दूसरी लिपि में प्रस्तुत करना । जैसे रोमन में School को देवनागरी में 'स्कूल' लिखना।

6.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने प्रयोजनमूलक हिन्दी की संकल्पना, उसकी आवश्यकता और उसके विविध रूपों की जानकारी प्राप्त की । आपने पढ़ा :-

* जिस भाषा का प्रयोग किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए किया जाए, वह प्रयोजनमूलक भाषा कही जाती है।
* प्रयोजनमूलक हिन्दी की आवश्यकता विज्ञान एवं तकनीकी विकास के कारण अधिक महसूस की गई ।

* स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विकास की विभिन्न संभावनाओं ने हिन्दी के प्रति अपेक्षित दृष्टि से देखा और हिन्दी ने नवीन चुनौतियाँ स्वीकार की ।
* भाषा का सामान्य रूप अब केवल साहित्य तक ही सीमित नहीं रहा । इसमें नित नवीन क्षेत्र जुड़ रहे हैं, यथा- बैंक, वाणिज्य, व्यापार, विज्ञान, तकनीक, प्रौद्योगिकी, कार्यालय, विधि, संचार, सामाजिक विज्ञान और विज्ञापन आदि ।

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. साहित्यिक हिन्दी और प्रयोजनमूलक हिन्दी का साम्यवैषम्य का वर्णन कीजिए ।
2. प्रयोजनमूलक हिन्दी के विविध रूपों का विश्लेषण कीजिए ।

8.10 सन्दर्भ ग्रंथ

1. सं. र. ना. श्रीवास्तव, **प्रयोजनमूलक हिन्दी** : चर्चा परिचर्चा, आगरा, 1974 ।
2. विनोद गोदरे, **प्रयोजनमूलक हिन्दी,** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991 ।
3. हरि बाबू कंसल, सुधांशु बंधु, **राजभाषा हिन्दी** : संघर्षो के बीच, नई दिल्ली, 1991 ।
4. कृष्ण कुमार गोस्वामी, **"प्रयोजनमूलक हिन्दी और कार्यालयी हिन्दी",** कलिंगा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992 ।
5. रीता रानी पालीवाल, **"प्रयोजनमूलक हिन्दी** : अर्थ, क्षेत्र और विस्तार लेख, (अनुवाद की सामाजिक भूमिका' पुस्तक से संकलित), सचिन प्रकाशन, दिल्ली ।

इकाई - 7

हिन्दी की प्रयोजनमूलक शैलियाँ

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2.1 हिन्दी की प्रयोजनमूलक शैलियाँ

7.2.2 बोलचाल शैली

7.2.3 संवाद / वार्तालाप शैली

7.2.4 विचारात्मक शैली

7.2.5 सामाजिक शैली

7.2.6 पत्र-लेखन शैली

7.2.7 प्रशासनिक शैली

7.2.8 भावात्मक शैली

7.3 शब्दावली

7.4 सारांश

7.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- भाषा सौन्दर्य की अभिवृद्धि में शैली प्रयोग के महत्त्व को समझ सकेंगे ।
- शैली का तात्पर्य एवं महत्त्व समझ सकेंगे ।
- हिन्दी की प्रयोजनमूलक शैलियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- प्रयोजनमूलक शैलियों की उपादेयता एवं महत्त्व को समझ सकेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

आप भली-भाँति जानते हैं कि हिन्दी न केवल व्यवहार अपितु साहित्य एवं अनुप्रयोग की भी भाषा है । किसी भी भाषा के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश और प्रयोग के आधार पर अनेकानेक रूप आज निर्मित हो सकते हैं, हो रहे हैं । व्यावहारिक रूप जहाँ बिना किसी विशेष प्रशिक्षण के व्यक्ति जानता है, अनौपचारिक रूप में प्रयोग करता है वहीं भाषा का साहित्यिक रूप अपनी लक्षणा, व्यंजना शक्तियों के माध्यम से भाषा को गतिशील बनाता है । इसके समानान्तर भाषा का प्रयोजनमूलक रूप भाषा का सर्वाधिक जीवन्त रहने वाला पक्ष, होता है । प्रयोजनीयता ही किसी भाषा की कालावधि को दीर्घ एवं अल्पकालिक बनाती हैं । यदि कोई भाषा अपने आप में लोक जीवन के प्रयोजनपरक पक्षों को स्वीकार कर सकती है तो वह भाषा

सतत् विकासशील एवं जीवित रह पाती है, अन्यथा वह भाषा मृत हो जाती है यही कारण है कि पालि और प्राकृत, संस्कृत आदि भाषाओं में साहित्य को प्रभूत मात्रा में वो भी श्रेष्ठ स्तर का रचा गया किन्तु ये भाषाएँ प्रयोजनपरकता को नहीं परख पाई, फलत: ये भाषाएँ उच्च गुणवत्ता के बावजूद मृत-सी हो गई । इसके ठीक विपरीत हिन्दी अपनी प्रयोजनीयता के कारण ही आज भी गत्यात्मक है । अनुप्रयुक्ति के अनेक क्षेत्रों में उसकी प्रवाहमयता विशिष्ट शैलियों एवं विविध प्रयुक्तियों द्वारा अक्षुण्ण है ।

7.2 हिन्दी की प्रयोजनमूलक शैलियाँ

किसी भी भाषा की सुन्दरता उसकी अभिव्यक्ति में छिपी होती है । अभिव्यक्ति प्रकारों में शैली का स्थान सर्वोपरि माना जा सकता है । शैली के विभिन्न रूपों के कारण ही भाषा अपनी विशिष्टता दर्शाती है । इसी के माध्यम से अपेक्षित भावों एवं विचारों को स्पष्टता, प्रभावोत्पादकता प्राप्त होती है ।

शैली (Style) एक पारिभाषिक शब्द है । परिस्थिति सन्दर्भ द्वारा निर्धारित विषय - वस्तु भाषिक अभिव्यक्ति के माध्यम और सन्दर्भ अथवा लहजे इन तीनों के समामेलन के परिणामस्वरूप जिस प्रकार का विशिष्ट भाषिक प्रयोग दृष्टिगत होता है, उसे शैली कहा जाता है । शैली व्यक्ति, सन्दर्भ तथा विषय सापेक्ष होती है ।

संसार की कोई भी ऐसी भाषा नहीं जिसमें अभिव्यक्ति की कोई विशेष परम्परा न हो । प्रत्येक भाषा में शैली की अपनी एक विशिष्ट एवं व्यापक भूमिका होती है । भाषा की प्रयुक्ति-विशेष, विधा तथा प्रयोक्ता विशेष के अनुसार भाषा में जो विशिष्टताएँ दिख पड़ती हैं उन्हें भाषा की शैलियाँ कहा जाता है ।

प्रयोग एवं विधा के आधार पर भाषा में भेद पाए जा सकते हैं किन्तु प्रसंग, सन्दर्भ एवं उद्देश्य की अभिव्यक्ति की रीति एक समान होने के कारण शैलियाँ पृथक्-पृथक् नहीं हो सकती । कहा जा सकता है कि भाषा के अन्तर्गत पाए जाने वाले अनुप्रयुक्त भेदों के आधार पर विभिन्न भाषा-भेद दृष्टिगत होते हैं । अत: विश्व की कोई भी भाषा शैली से मुक्त नहीं हो सकती ।

हिन्दी एक अत्यन्त आधुनिक, विकसित एवं प्रयोगशील भाषा है । यह एक सत्य है कि हिन्दी का साहित्यिक रूप जितना समृद्ध है, उससे कहीं आगे उसका प्रयोजनमूलक रूप भी है ।

हिन्दी भाषा और साहित्य के अन्तर्गत जितनी शैलियाँ प्रयुक्त होती हैं, उतनी शायद विश्व की किसी भी भाषा में नहीं होती । जीवन विविधतामयी है । उसी भाँति जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक स्तर पर अनुप्रयुक्ति एवं सम्प्रेषण के सशक्त भाषा के रूप में हिन्दी ने अनेक दायित्वों का निर्वहन किया है और नए सन्दर्भगत, प्रयुक्तिपरक क्षेत्र उद्घाटित हो रहे हैं । हिन्दी की प्रमुख प्रयोजनमूलक शैलियाँ निम्न है:-

(अ) बोलचाल की शैली

(ब) संवाद की शैली

(स) भावात्मक शैली

(द) विचारात्मक शैली

(य) सामाजिक शैली

(र) पत्र-लेखन शैली

(ल) प्रशासनिक शैली

7.2.1 बोलचाल की शैली

हिन्दी भाषा की प्रयुक्ति की मूलत: दो शैलियाँ माना जाती हैं - बोलचाल की शैली और साहित्यिक शैली । साहित्य के अन्तर्गत भी विषय, सन्दर्भ एवं लेखक विषय-विशेष के आधार पर अनेकानेक शैलियाँ प्रचलित हैं । बोलचाल एवं बातचीत की शैली हिन्दी की आधारभूत प्रवृत्ति मानी जाती है ।

बोलचाल की हिन्दी और साहित्यिक हिन्दी में बहुत अन्तर होता है । बोलचाल की हिन्दी की अपनी पृथक् विशेषताएँ, भाषा-संरचना होती है । रोजमर्रा के व्यवहार में प्रयुक्त बोली जाने वाली बोलचाल की शैली में छोटे-छोटे वाक्यांश दो, तीन या चार पदों के होते हैं । ये वाक्यांश भी समुच्चयादि बोधक अवयव द्वारा जुड़े होते हैं । साहित्यिक भाषा की अपनी पृथक् विशेषता होती है । इसमे संज्ञा, सर्वनाम, कारक पदों का नियत एवं निश्चित क्रम होता है । इसमें अपेक्षाकृत लम्बे और क्लिष्ट वाक्यों का समावेश होता है और वे भी परस्पर आश्रित रहते हैं । ये संरचनात्मक अन्तर भाषाई स्वाभाविकता है ।

बोलचाल की हिन्दी में व्यक्ति के भाव, विचार एवं अभिलाषाएँ आदि व्यक्त करने के लिए जो शैली अपनाई जाती हैं उसमें अपनत्व का भाव होता है, स्वाभाविक प्रवाह दिखाई देता है । इस प्रवाह में कभी भावनाओं का अतिरेक पाया जाता है तो कभी आत्मीय सम्बन्धों की भीनी गन्ध होती है ।

हिन्दी की बोलचाल शैली क्षेत्रीय और स्थानीय बोलियों से भी बहुत प्रभावित हुई है । हिन्दी की विशेष उल्लेखनीय बोलियों भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी पहाड़ी, राजस्थानी आदि का प्रभाव दर्शनीय बन रहा है तो गुजराती, पंजाबी, मराठी आदि क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव से भी हिन्दी की बोलचाल की पद्धति निर्मित हुई हैं । वर्तमान में बहु प्रयुक्त 'बम्बईया हिन्दी' इसका ठोस उदाहरण है ।

प्रयोग के आधार पर बोलचाल की हिन्दी में मुख्यत: तीन शैलियाँ वर्तमान में दीख पड़ती हैं :-

1. हिन्दी - संस्कृत से प्रभावित
2. हिन्दुस्तानी - उर्दू फारसी से प्रभावित
3. हिंग्लिश - अंग्रेजी परंपरा से प्रभावित

ये तीनों प्रकार प्राय: सामाजिक या सांस्कृतिक आधारों पर वर्गो, समुदायों द्वारा उपयोग में लाए जाते रहे हैं ।

7.2.2 संवाद / वार्तालाप शैली

आप इतना तो जानते ही होंगे कि भाषा का प्रयोग सामान्यत: दो रूपों- लिखित एवं मौखिक में होता है । आपस में की जाने वाली बातचीत को हम वार्तालाप या संवाद कहते हैं । वार्तालाप उस भाषा से बहुत भिन्न होता है जो हम पुस्तकों में पढ़ते हैं । लिखित भाषा एक व्यवस्थित तथा व्याकरणिक भाषा होती है । उसका एक निश्चित अर्थ होता है । किंतु वार्तालाप में ऐसा नहीं होता । संवाद की भाषा व्याकरण के नियमों में बेधकर नहीं चलती । वार्तालाप की भाषा बहुत सहज होती है ।

भाषा के साहित्यिक और प्रयोजनमूलक रूपों में संवाद / कथोपकथन / वार्तालाप का विशिष्ट स्थान है । संवाद मनुष्यों के पारस्परिक विचार-विनिमय का प्रमुख साधन है । संवाद के अभाव में व्यावहारिक भाषा जीवित ही नहीं रह सकती । हिन्दी की प्रयोजनमूलक शैलियों में संवाद-शैली ने हिन्दी भाषा का गत्यात्मक रूप निर्मित किया है ।

संवादों का प्रयोग साहित्यिक हिन्दी के अन्तर्गत नाटकों, एकांकियों, चित्रपटों, संभाषणों, भेंट. वार्त्ताओं में विशेष रूप से किया जाता है । इन विधाओं में चरित्र एवं नाटककार-रचनाकार संवादों के माध्यम से ही प्रकट होते हैं । जब पात्र संवाद उच्चरित करता है तब वह विश्वसनीय एवं जीवन्त हो उठता है । संवाद नाटकों के प्राण होते हैं । इनके अभाव में नाटक न तो खेला जा सकता है और न ही लिखा जा सकता है । इसमें कलात्मकता तथा प्रभावात्मकता इसलिए भी जरूरी हो जाती है, क्योंकि कथा-सूत्र, चरित्र-निर्माण, रचनाकार-उद्देश्य संवादों द्वारा ही पूर्णता को प्राप्त होते हैं ।

संवाद या वार्तालाप प्रभावी बने, इसके लिए निम्न तकनीकी कौशलों का बोध होना अपरिहार्य हो जाता है-

(1) अनुतान : -

अनुतान का तात्पर्य है - बोलने का ढंग । एक ही वाक्य विभिन्न अनुतानों से बोला जाता है तो उसका अभिप्रेत अर्थ बदल जाता है-

वह चला गया । (सामान्य रचना)

वह चला गया? (प्रश्न)

वह चला गया! (विस्मय)

मनोभावों को प्रकट करने के लिए अनुतान के साथ-साथ आवाज ऊँची करना, शब्दों पर बल देना, चेहरे के आंगिक भावों को प्रकट करने से अभिप्रेत स्पष्ट हो जाता है । जब हम गुस्से में बात करते हैं तो आवाज तेज करते हैं, दीनता की बात करते हैं तो आवाज धीमी करते हैं, गाली देने पर गाली शब्द पर जोर देते हैं किन्तु मित्र को परिहास में गाली देने पर उच्चारण लम्बा कर लेते हैं । श्रोता इन सभी गुणों को पहचानता है और उसी के अनुरूप वह वार्तालाप को आगे बढाता है ।

(2) बलाघात :-

वार्त्तालाप में बलाघात का अत्यधिक महत्त्व है । बलाघात से तात्पर्य है - शब्द पर बल देना । हम जिन शब्दों पर बल देते हैं, उस के द्वारा हम नई सूचना देते हैं । जैसे :-

राज: पापा, जयपुर चलिए ना!

पापा: गर्मियों में जयपुर! मरना है क्या?

(3) कोडमिक्सिंग :-

जब एक भाषा में बातचीत करते हुए बीच-बीच में दूसरी भाषा के शब्दों, वाक्यों का प्रयोग हो तब इसे 'कोडमिक्सिंग कहा जाता है । वक्ता इसे जानबूझकर प्रयोग नहीं करता, उसका एक मात्र उद्देश्य होता है- अपनी बात को दूसरों तक पहुँचाना । इसका प्रमुख कारण होता है -

(1) हिन्दी भाषा में उस भाषा के शब्दों का हुबहू प्रचलन ।

(2) अंग्रेजी भाषा की अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति ।

(3) अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा ।

उदाहरणार्थ -

* आप कोई अच्छा प्लेस सजेस्ट करें ।
* मुझे शॉपिंग भी करनी है, वही ।

(4) प्रांतीय विशेषताएँ :-

हर प्रान्त की अपनी-अपनी एक भाषा या बोली है और वैसे भी भाषा एवं बोली का स्वरूप कुछ दूरी पर परिवर्तित हो जाता है । इसी कारण मनीष मनीस बनता है, मिश्र मिश्रा व मिसरा बन जाते हैं ।

निष्कर्षत: संवादों में निम्न विशेषताएँ होनी चाहिए :-

* संवाद संक्षिप्त होने चाहिए तभी प्रभावोत्पादकता आ सकती है ।
* स्वाभाविकता संवादों की बहुत बड़ी विशेषता मानी जाती है ।
* संवाद सरल, सुबोध एवं रुचिकर होने चाहिए । कठिन उबाऊ व अस्वाभाविक संवाद वार्त्तालाप में व्यवधान डालते हैं ।
* संवाद कथा-विकासक, वातावरण-निर्माणक एवं चरित्रोद्घाटक होने चाहिए ।
* संक्षिप्तता, भाषाई-स्पष्टता, स्वाभाविकता, अर्थ-गंभीरता, प्रसंगानुकूलता संवादों की अनिवार्य विशेषताएँ होती हैं ।

7.2.3 विचारात्मक शैली

हिन्दी की अन्य शैलियों की अपेक्षा यह शैली अत्यधिक गम्भीर, दुर्बोध एवं वैचारिक मानी जाती है । इस शैली में प्राय: अत्यन्त परिनिष्ठित एवं स्तरीय भाषा का प्रयोग होता है । इस शैली में लेखक की बौद्धिक क्षमता का प्रखर चिन्तन एवं उत्कृष्ट अभिव्यक्ति कौशल की अपेक्षा होती है । इस शैली में लेखक अपने विचारों के तर्कपूर्ण विश्लेषण, वर्गीकरण, निरूपण एवं मूल्यांकन आदि को वैज्ञानिक रीति से अभिव्यक्त करता है । इसका पाठक वर्ग आम सामान्य व्यक्ति नहीं अपितु छात्र, अनुसंधानकर्ता, विचारक एवं बौद्धिक व्यक्ति होता है ।

इसलिए इसकी भाषा में पारिभाषिक शब्दावली, सूत्र-वाक्य, सामाजिक शब्द-कौशल का प्रभूत मात्रा में प्रयोग किया जाता है । इस प्रकार की शैली में लेखक अपनी विशिष्ट विषय-वस्तु को उद्घाटित करता हैं, परिभाषित करता है अपनी संकल्पनाओं की स्थापना करता है, सप्रमाण सतर्कता में उसे सिद्ध करने की कोशिश करता है । इस प्रकार की शैली हिन्दी में प्राय: निबन्ध, प्रबन्ध, आलोचना आदि विधाओं में प्रयुक्त होती है ।

7.2.4 सामाजिक शैली

मनुष्य सामाजिक प्राणी है । इस कारण उसकी भाषा का सामाजिकता से संयुक्त होना स्वाभाविक है । व्यक्ति विशेष के सामाजिक स्तर, सामाजिक भूमिका एवं सम्बद्ध सामाजिक स्थितियों के परिणामस्वरूप भाषा का रूप एवं शैली बदलती रहती है । एक ही व्यक्ति प्रसंग, परिवेश, परिस्थिति अनुसार समाज में अनेक भूमिकाओं का निर्वहन करता है और उसी के अनुरूप भाषाई अभिव्यक्ति शैली में बदलाव आ जाता है । सरकारी कार्यालयों में भी किसी पदाधिकारी को भी अनेक भूमिकाओं का निर्वहन करना पड़ता है । जैसे उसके समकक्ष अधिकारी अधीनस्थ सहकर्मी अपने उच्चाधिकारी आदि से वार्त्तालाप, बातचीत एवं कार्यालयी कामकाज के सन्दर्भ में भिन्न-भिन्न शैलियों का प्रयोग करता है, इसी प्रकार सामान्य व्यक्ति भी सामाजिक स्तरों- व्यावसायिक पारिवारिक, राजनीतिक आदि सन्दर्भो के अनुसार शैली का प्रकार बदलता ही रहता है । यही सामाजिक शैली है ।

7.2.5 पत्र लेखन शैली

पत्र लेखन प्रयोजनमूलक हिन्दी की प्रमुख शैली है । पत्र लेखन वह कला है जिसे निरन्तर अभ्यास द्वारा निखारा जा सकता है । जीवन के सभी क्षेत्रों सामाजिक, राजनीतिक, व्यापारिक, साहित्यिक, कार्यालयी में पत्र-लेखन अनिवार्य होता है ।

पत्र लेखन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । जब से व्यक्ति ने लिखना-पढ़ना प्रारम्भ किया होगा तभी से परिस्थितिवश शुभ-अशुभ कार्यो की वजह से सूचना-संप्रेषण के लिए पत्र व्यवहार की आवश्यकता पड़ती थी । भौगोलिक दृष्टि से दूर बैठे स्व-जनों, परिचितों को संदेश प्रेषित करना, प्राप्त संदेशों का प्रति उत्तर देना 'पत्राचार' माना जाता है ।

मानव इतिहास में पत्रों ने इतिहास बदल दिए हैं, कई ऐतिहासिक साक्ष्य बन गए हैं जैसे जवाहरलाल नेहरू द्वारा अपनी पुत्री इन्दिरा गाँधी को लिखे पत्र आदि ।

पत्र-लेखन एक कला है इसमें लेखक अपनी भावनाएँ प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करता है । पत्र के माध्यम से व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रकट होता है ।

अच्छे पत्र की विशेषताएँ :

1. सरलता :-

पत्रों की भाषा सामान्यत: सरल, सुबोध होनी चाहिए ताकि संदेश शीघ्रता से समझ आ जाए । इससे अनौपचारिकता एवं भावात्मकता की सृष्टि होती है ।

2. शैली :-

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक विशिष्ट शैली होती है किन्तु अभिव्यक्ति में वह शैली होनी चाहिए जिससे सामने वाला अभीष्ट कथन को सरलता से समझ ले ।

3. संक्षिप्तता :-

पत्र सारगर्भित एवं संक्षिप्त होना चाहिए । इसमें अनावश्यक विस्तार, अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन से बचा जाना चाहिए।

4. क्रमबद्धता -

पत्र अपने आप में पूर्ण तभी होगा जब लेखक अभीष्ट बातों को क्रमबद्ध रूप से लिखेगा । इससे अनावश्यक बातों से छुटकारा मिल सकेगा व आवश्यक बात वंचित नहीं रह जाएगी ।

5. प्रभावान्विति :-

पत्र वही श्रेष्ठ होता है जो पाठक पर अपेक्षित प्रभाव डालने में सक्षम होता है ।

6. विनम्रता :-

पत्र-लेखक को इस बात का पूरा ख्याल रखना चाहिए कि उसके शब्द चयन में विनम्रता झलके । विनयशीलता के भावों से पाठक पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है एवं कटु, अभद्र भाषा से प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

7. आकर्षण -

पत्र तभी आकर्षक बनता है जब -

- लेखक की लिखावट साफ-सुथरी, सुन्दर हो,
- साफ स्वच्छ कागज का उपयोग हो
- अच्छी भाषा-शैली का प्रयोग हो
- विराम- चिह्नों का समुचित प्रयोग हो
- पत्र-पता सम्पूर्ण रूप से अंकित हो ।

पत्रों का वर्गीकरण :-

हिन्दी में मुख्यत: पत्र निम्नानुसार प्रचलित एवं विद्यमान हैं :-

1. व्यक्तिगत पत्र
2. व्यावहारिक पत्र
3. आधिकारिक पत्र
4. व्यावसायिक पत्र
5. सार्वजनिक पत्र
6. कार्यालयी पत्र

पत्रों में सामान्य अन्तर :-

व्यक्तिगत पत्र आत्मीयता एवं निकटता लिए होते हैं किन्तु इतर पत्रों में लेखक-पाठक में एक निश्चित दूरी होती है।

व्यक्तिगत पत्रों में हृदय के भावों की सहज अभिव्यक्ति होती है जबकि अन्य प्रकार के पत्रों में बुद्धि कौशल एवं चातुर्य की प्रधानता होती हैं ।

वैयक्तिक पत्रों की भाषा-शैली सहज स्वच्छन्द, प्रवाहपूर्ण, सरल एवं सरस होती है जबकि अन्य पत्रों की भाषा-शैली, संबोधन आदि निश्चित साँचे में ढले, वैचारिक, बौद्धिक होते हैं।

7.2.6 प्रशासनिक शैली :

प्रशासनिक शैली हिन्दी भाषा की उपयोगी प्रयोजनमूलक शैली मानी जाती है । स्वतंत्रता पश्चात् जब हिन्दी राजभाषा के पद पर आसीन हुई तब अनेक दायित्वों का निर्वहन करना पड़ा । चूँकि हिन्दी राजकाज की भाषा बनी, अत: नई पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण और प्रयोग हुआ । प्रशासनिक व्यवस्था में एक श्रेणीगत व्यवस्था होती है इसलिए इसमें वाक्य रचना, शब्द-प्रकिया एवं कार्यालयी पद्धति एक निश्चित मानदण्डों अनुसार ही प्रयुक्त होती है। इसमें निरपेक्षता, तटस्थता, निर्वैयक्तिकता, तथ्यात्मकता का आगम हुआ एवं शैली में भावुकता, कोमलता, आलंकारिकता, मुहावरे-कहावतों का लोप हुआ ।

इस शैली में उत्तम पुरूष की अपेक्षा अन्य पुरूष सम्बोधनों, निरपेक्ष लेखन प्रणाली का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में होता है । साथ ही कार्यालयी परम्परा एवं कार्यप्रणाली से सम्बद्ध तकनीकी शब्दावली एवं बँधी-बँधाई स्वरूप-निर्मित से ढाँचा रूपायित होता है । इसलिए यह शैली उपयोगी होने के बावजूद नीरस, उबाऊ और दुष्कर लगती है । इसी कारण, यह आज भी सामाजिक जीवन में अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाई हैं ।

7.2.7 भावात्मक शैली :

प्रशासनिक शैली के ठीक विपरीत भावात्मक शैली अपनी प्रस्तुति, प्रभावान्विति के कारण समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय है । इस शैली में विशिष्ट भावों को विषयानुसार भावगम्य शैली में प्रस्तुत किया जाता है । हिन्दी की अन्य शैलियों की अपेक्षा यह अधिक सहज, सुरूचिपूर्ण मानी जाती हैं । हिन्दी भाषा की यह शैली अत्यधिक प्रभावी एवं लोकप्रिय मानी जाती हैं । इसका मूल उद्देश्य पाठकों के हृदयों को रस सिक्त करना है, उनमें भावों का उद्रेक करना है । सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य का अधिकांश भाग- आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, छायावाद, गीति-काव्य इस भावात्मक शैली की अभिव्यक्ति से ओत-प्रोत है । यह आवश्यक नहीं कि भावात्मक शैली पद्य में ही हो । यह शैली गद्य में भी प्रयुक्त हो सकती है एवं हो रही है । इसमें न तो विचारों की गहनता अनुभूत होती है और न ही सूक्ष्म बुद्धि कौशल का बोध । हिन्दी की भावात्मक शैली में निम्न गुण देखे जा सकते हैं :-

- इसमें भावों की विशिष्ट प्रस्तुत होती हैं ।
- शब्दों की कोमलता, लालित्य इसकी विशिष्टता होता है ।
- इसका प्रमुख गुण रस-माधुर्य होता हैं ।
- अभिव्यक्ति करने वाले की दृष्टि -सृष्टि कविमय होती हैं ।
- भाव प्रबलता एवं प्रभावान्विति इसके प्रमुख लक्षण माने जाते हैं ।

7.3 शब्दावली

अनुप्रयोग - ज्ञान का जीवन में प्रयोगिक कराना ।

अव्यय	-	वे तत्त्व जो लिंग, वचन, काल कारक, से परिवर्तित रहते हैं ।
हिंग्लिश	-	हिन्दी और अंग्रेजी का संयुक्त रूप
संवाद	-	आपस में की जाने वाली बातचीत
अनुतान	-	बोलने का ढंग
बलाघात	-	शब्द पर जोर देना ।
कोड मिक्सिंग	-	एक भाषा में अन्य भाषा के शब्दों का अनायास प्रयोग
क्लिष्टता	-	कठिन, समझने में मुश्किल
दुर्बोध	-	समझने में आसानी नहीं ।
दस्तावेज	-	लिखित प्रमाण रूप में प्रयुक्त कागज ।
अनुस्मारक	-	याद दिलाने लिखा गया पत्र
सरणि	-	तरीका, व्यवस्था ।

7.4 सारांश

भाषा साहित्य एवं व्यवहार की भाषा होने के साथ ही अनुप्रयोग का भी रूप होती है । व्यावहारिक भाषा सीखने के किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती । भाषा प्रयोजनमूलक होने के कारण ही दीर्घजीवी बन सकती है । प्रत्येक व्यक्ति की अपनी पृथक् अभिव्यक्ति शैली होती है । शैली का शाब्दिक अर्थ है । विशिष्ट भाषिक प्रयोग । हिन्दी की मुख्य प्रयोजनमूलक शैलियाँ हैं - बोलचाल की शैली, संवाद की शैली, भावात्मक शैली, विचारात्मक शैली, सामाजिक शैली, पत्र लेखन शैली, प्रशासनिक शैली । बोलचाल की शैली हिन्दी की आधारभूत शैली मानी जाती है । बोलचाल की शैली में अपनत्व होता है । बोलचाल की तीन शैलियाँ मानी जाती हैं -हिन्दी, हिन्दुस्तानी और हिंग्लिश।

आपस में की जाने वाली बातचीत को संवाद कहा जाता है । संवाद निर्माण एवं अभिव्यक्ति में अनुतान, बलाघात एवं कोडमिक्सिंग प्रमुख तत्त्व हैं । व्यक्ति अपने सिद्धान्तों, विचारों, संकल्पनाओं को जिस शैली में व्यक्त करता है, उसे विचारात्मक शैली माना जाता है । व्यक्ति अपनी परिस्थिति, परिवेश एवं प्रसंग अनुसार अभिव्यक्ति शैली निर्मित करता है, इसे सामाजिक शैली कहा जाता है । व्यक्ति जीवन के सभी क्षेत्रों में सूचना-संप्रेषण के लिए जिस लिखित माध्यम का प्रयोग करता है, उसे पत्र कहा जाता है । सरलता, संक्षिप्तता, क्रमबद्धता, विनम्रता एवं आकर्षण प्रभावी पत्र की विशेषताएँ एवं आवश्यकता मानी जाती हैं ।

पत्रों को छ: भागों में वर्गीकृत किया जाता है - व्यक्तिगत, व्यावहारिक, आधिकारिक, व्यावसायिक, सार्वजनिक एवं कार्यालयी । सरकारी कामकाज एवं प्रशासन के क्रिया-कलापों में प्रयुक्त शैली, प्रशासनिक शैली, मानी जाती है । निरपेक्षता, तटस्थता, तथ्यात्मकता प्रशासनिक शैली की विशिष्टताएँ मानी जाती हैं । विशिष्ट भावों की विशिष्ट भावपरक प्रस्तुति भावात्मक शैली द्वारा सम्पन्न होती है । इसका मूल उद्देश्य है - पाठकों को रस-सिक्त करना, भावों का उद्रेक करना । शब्दों की कोमलता, लालित्य, रस-माधुर्य भावात्मक शैली की विशिष्टता हैं । भावात्मक शैली पद्य के अलावा गद्य में भी रची जा सकती हैं ।

7.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लिखित भाषा और मौखिक भाषा में क्या अन्तर है?
2. हिन्दी की प्रयोजन मूलक शैलियाँ कौन- कौनसी हैं? वर्णन कीजिए ।

7.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वी रा. जगन्नाथन ठाकुरदास; **'गहन हिन्दी शिक्षण,** ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस, नई दिल्ली ।
2. भोलानाथ तिवारी, **"अच्छी हिन्दी : कैसे बोलें, कैसे लिखें,** लिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1988 ।
3. वी. रा. जगन्नाथ, **" प्रयोग और प्रयोग,** ऑक्सफोर्ड द्वी. प्रेस, दिल्ली, 1981 ।
4. दंगल झाल्टे, **" प्रयोजनमूलक हिन्दी,** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008 ।
5. श्रीमाली (डॉ.) इन्द्रप्रकाश, **" सामान्य हिन्दी ज्ञान,** कमल बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, उदयपुर नवीन संस्करण ।
6. विनोद गोदरे, **" प्रयोजनमूलक हिन्दी,** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006 ।

इकाई - 8

प्रयोजन मूलक हिन्दी का प्रमुख तल - अनुवाद : परिभाषा एवं प्रकार

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 अनुवाद की परिभाषा
8.3 अनुवाद महत्व व स्वरूप
8.4 अनुवाद की आवश्यकता क्यों
8.5 अनुवाद के प्रकार
8.5.1 गद्यत्व-पद्यत्व के आधार पर
8.5.2 साहित्यिक विधा के आधार पर
8.5.3 विषय के आधार पर
8.5.4 अनुवाद की प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण
8.5.5 प्रक्रिया के आधार पर
8.5.6 भाषिक माध्यम के आधार पर
8.5.7 भाषा प्रकार के आधार पर
8.5.8 अन्य प्रकार
8.6 अनुवाद के साधन एवं उपकरण
8.7 सारांश
8.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
8.9 संदर्भ ग्रंथ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगे कि -

- अनुवाद की परिभाषा व स्वरूप को समझ सकेंगे ।
- अनुवाद के विविध प्रकार की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- अनुवाद की आवश्यकता को समझ सकेंगे ।
- अनुवाद के साधन एवं उपकरण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

8.1 प्रस्तावना

अनुवाद कार्य प्राचीनकाल से होता आया है । वर्तमान में अनुवाद कार्य का महत्व अधिक हो गया है कारण विश्व का परिदृश्य बदल रहा है । सम्पूर्ण विश्व 'एक इकाई' हो गया है ऐसे में अनुवाद कार्य का महत्व बढ़ जाता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति व देश एक दूसरे के विषय में जानने को उत्सुक है कहीं क्या हो रहा है? यह जानने की आवश्यकता प्रतिक्षण

महसूस की जाती है । विश्व में विविध - भाषा-भाषी लोग रहते हैं विश्व की सभी भाषाएँ सीखी नहीं जा सकती ऐसे में अनुवाद कार्य के माध्यम से विश्व के समस्त देशों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है । अनुवाद कार्य में एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव समान और सहज ढंग से दूसरी भाषा में व्यक्त किया जाता है अत: अनुवादक को मूलभाषा व लक्ष्य भाषा अजात वह सामग्री जिसका अनुवाद किया जाये और वह भाषा जिसमें अनुवाद किया जा रहा है । दोनों का ज्ञाता होना आवश्यक है ।

अनुवाद का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया है इसका विस्तृत क्षेत्र मौखिक अनुवाद तो है ही साथ में शिक्षा, विज्ञान, तकनीकी प्रोद्योगिकी, विधि व न्याय संचार माध्यम के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को मजबूत बनाने में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है । धर्म व दर्शन के क्षेत्र में भी अनुवाद के माध्यम से धार्मिक सौहार्द बढ़ा है । अनुवाद कार्य ने सांस्कृतिक सेतु का कार्य करते हुये दो देशों को जोड़ने का कार्य भी किया है क्योंकि एक देश की संस्कृति को जब दूसरे देश के लोगों द्वारा जानने का प्रयास होता है तो निश्चित रूप से माध्यम भाषा में अनुवाद किया जाता है तत्पश्चात् वहाँ की जानकारी आसानी से प्राप्त हो जाती है । अनुवाद कार्य कि आवश्यकता पहले तो थी ही वर्तमान में यह अत्यन्त जरूरी हो गयी है ।

अनुवाद कार्य जब किया जाता है तो शब्दशः अनुवाद अच्छा नहीं माना जाता । उसका यथा संभव मौलिक, सहज, स्पष्ट व सुबोध होना आवश्यक होता है । अनुवादक के लिये यह जरूरी है कि वह मूलभाषा के कथ्य को सुरक्षित रखते हुये बात को दूसरे तक सम्प्रेषित कर दे । ज्ञान के क्षेत्र में अनुवाद कार्य होने से तुलनात्मक साहित्य का लाभ उठाया जा रहा है । महत्वपूर्ण कृतियों का अनुवाद आसानी से उपलब्ध हो रहा है । अनुवाद के विविध प्रकार के विषय में भारतीय व विदेशी चिन्तकों ने अपने विचार व्यक्त किये है ।

कहा जा सकता है अनुवाद कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इसकी व्यापकता विविध क्षेत्रों में सिद्ध हो रही है आज अनुवाद विश्व के विविध क्षेत्रों में वरदान सिद्ध हो रहा है ।

8.2 अनुवाद की परिभाषा

अनुवाद आज व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकता बन गया है अनुवाद आदान प्रदान का सशक्त माध्यम बन गया है अनुवाद की उपयोगिता भाषा साहित्य से होकर सांस्कृतिक, ऐतिहासिक व राष्ट्रीय एकता तक पहुँच गयी है । कब किसने क्या कहा यह जानने के लिये विश्व की भाषाओं का महत्वपूर्ण योगदान है । भाषा भावों के सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम है । एक भाषा-भाषी समुदाय में प्राय भाषा ही भावों का सम्प्रेषण करती है किन्तु दो भिन्न भाषा-भाषी समुदायों के बीच विचारों के आदान प्रदान के लिये अनुवाद की सहायता लेनी पड़ती है अनुवाद प्राचीन काल से हो रहा है । यह पहले धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद तक ही सीमित था । परन्तु अब छोटे बड़े सभी राष्ट्र एक दूसरे से सम्पर्क चाहते हैं । आवश्यकताएँ बढ़ने के साथ निर्भरता भी बड़ी है । अत: अनुवाद आज की जरूरत बन गया है ।

अनुवाद क्या है?

सामान्यत: 'अनुवाद'' एक भाषा से दूसरी भाषा में सम्प्रेषण करने की वह प्रक्रिया है जिस संस्कृत एवं हिन्दी में ''अनुवाद'' कहा जाता है । अनुवाद के लिये तर्जुमा, भाषा, टीका रूपान्तर भाषान्तर, भाषान्तरण, अन्तरण आदि शब्दों का प्रयोग होता है ।

'अनुवाद' शब्द हिन्दी और अन्य कई भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त होता है अनुवाद के लिये 'ट्रान्सलेशन' शब्द प्रयुक्त होता है । यह शब्द प्राचीन फ्रान्सिसी शब्द 'ट्रान्सलेटेर' से व्युत्पन्न है इसका दयुत्पतिमूलक अर्थ है परिवहन-एक स्थान बिन्दु से दूसरे स्थान बिन्दु पर ले जाना । ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्दकोश में इस अर्थ को इस प्रकार दिया गया है । Translation express the sense of (word,sentence,book) in OR into another language (as translated Homer into English from the Greek) 'ट्रान्सलेट' शब्द लाक्षणिक व्यापार से अन्य कई अर्थो में भी प्रयुक्त होता है । परन्तु यहाँ मतलब मुख्य शब्दार्थ से है ।

'अनुवाद' शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है । 'अनुवाद' शब्द का सम्बन्ध 'वद्' धातु से है, जिसका अर्थ होता है । 'बोलना' या 'कहना' । 'वद्' धातु में 'धला' प्रत्यय लगने से 'वाद' शब्द बनता है तथा 'अनु' उपसर्ग जुड़ने से 'अनुवाद' शब्द बन जाता है । 'अनु' का अर्थ होता है बाद में या उपरान्त । अत: अनुवाद का अर्थ है 'किसी के कहने के उपरान्त कहना या' पुनः कथन, अनुकथन या अनुवचन । शब्दार्थ चिन्तामणि कोश में 'अनुवाद' का यही अर्थ- 'प्राप्तस्य पुन: कथने' अर्थात् 'पहले कहे गये अर्थ को पुन: कहना' दिया गया है । प्राचीन भारत में शिक्षा की मौखिक परम्परा थी । गुरु की वाणी का शिष्य अनुवचन (दोहराते) करते थे ।

'पुन: कथन' के अर्थ में 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग कुछ प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में भी हुआ है-

कालानुवाद परीत्य

(यास्क रचित निरूक्त 12-12)

आवृत्तिरनुवादो वा ।

(भर्तृहरि 2.1.1.5)

अनुवादे चरणानाम

(पाणिनी अष्टाधायी 2,4,3)

वैदिक संस्कृत में 'अनुवाद' के 'अनु' और वद्' का भी अलग प्रयोग मिलता है । ऋग्वेद (2.13.3)ए में आता है- 'अन्वेको वदति यमूद्वाति' यहाँ 'अनु.....वदति का अर्थ 'दुहराता है' या पीछे से कहता है ।

अत: संस्कृत साहित्य में 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग मुख्यत: कही हुई, सुनी हुई या ज्ञात बात को 'दोहराने' 'पुनरावृत्ति करने' के अर्थ में हुआ है । बात दुबारा कहना या 'दोहराना' का मुख्य उद्देश्य स्पष्टीकरण या कुछ विशिष्ट विवेचन मात्र हैं । कालान्तर में इस अर्थ में परिवर्तन हो गया-

'एक भाषा में कही गई बात को या बातों को दूसरी भाषा में ज्यों का त्यों कहना या बतलाना । संक्षेप में एक भाषा की किसी सामग्री का दूसरी भाषा में रूपान्तर ही अनुवाद है ।

'अनुवाद' शब्द पर विचार करने के बाद उसकी विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषा जानना आवश्यक है ।

परिभाषा

आज के वैज्ञानिक युग में किसी शब्द को परिभाषित करना अत्यन्त कठिन है । पौर्वात्य साहित्य में, विशेष रूप से संस्कृत साहित्य में अनुवाद शब्द अनुवचन अनुकथन, 'पुनरावृत्ति' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है परन्तु पश्चिम में अनुवाद पर गंभीर चिन्तन हुआ है । सोलहवीं शताब्दी के दौरान भारी संख्या में भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुवाद किये गये अनुवादकों ने अपने अनुवाद सिद्धान्त प्रतिपादित किये । बीसवीं सदी के दौरान साहित्यिक और भाषा वैज्ञानिक पत्रिकाओं में अनुवाद सम्बन्धी लेख प्रकाशित हुए और अनुवाद सम्बंधी ग्रंथों का लेखन प्रारम्भ हुआ विभिन्न कालों में पश्चिम में अनुवाद को तरह-तरह से परिभाषित किया गया ।

अनुवाद चिन्तन संबंधी कुछ विचार प्रस्तुत - सेमुअल जॉन्सन का 'अनुवाद मूलभाषा की सामग्री के भावों की रक्षा करते हुए उसे दूसरी भाषा में बदल देना है' (To translate is to change into another language retaining the sanse। **Samual Johnson)**

ड्राइडन के कथनानुसार 'मूल लेखक का अनुसरण करना सर्वोत्तम है, उसी के साथ गिरो उसी के साथ उठो । (your author always will be best advise falls, and rise when he rises)

ई. ए. नाइडा अनुवाद को 'स्त्रोत भाषा के संदेश की लक्ष्य भाषा में शिल्प और अभिव्यंजना की दृष्टि से निकटतम सहज रोमतुल्य अभिव्यक्ति मानते है । (Translation consists in producing in the receptor language the closet, natural equivalent to the message of the source language. First in meaning and secondly in style -E.A.Nadia)

कैटफोर्ड का कथन है कि

'अनुवाद स्रोत भाषा की पाठ्य सामग्री का लक्ष्य भाषा की समतुल्य पाठ्य सामग्री द्वारा प्रतिस्थापन है । (The replacement of texual material of one language by equipment in another language catford J.C.)-

मैथ्यू आर्नल्ड मानते है कि अनुवाद ऐसा होना चाहिए कि उसका वही प्रभाव पड़े जो मूल का उसके पहले श्रोताओं पर पड़ा होगा । (A translation should affect as in the same way as the original may be supposed to have affected inn first hearers.)

विलियम कपूर 'अनुवाद की निष्ठा ही उसकी आत्मा है और फिर निष्ठा का अर्थ भी तो यही है।' (Fidelity indeed Is the very essence of translation and the term itself Implies it.)

एलेक्जेण्डर पोप की मान्यता है कि 'कविता की मूलचेतना अथवा ऊष्मा की ओर ही अनुवादक का सर्वाधिक ध्यान होना चाहिए, नहीं तो वह अनुवाद के दौरान ही नष्ट हो जायेगी ।

(The fire of the poem is what the translator should principally regard, as it is most likely to expire in the managing.)

अनुवाद को लेकर भारतीय विद्वानों के विचार इस प्रकार है-

भोलानाथ तिवारी की मान्यता है कि 'एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है ।

कैलाशचन्द्र भाटिया 'अनुवादक को मूल लेखक के साथ भी सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए । इस सहयोग से लाभ ही अधिक होता है । अगर मूलकृति के लेखक को दूसरी भाषा का भी ज्ञान है, तो भाषा अभिव्यंजना को सुधारने मे सहायता मिलती है ।

डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर - 'अनुवाद की शुद्धता और सफलता का प्रमाण यही है कि शुद्ध लक्ष्य भाषा भाषी आसानी से उसे समझे और सराह सकें । कहीं उसे बात खटकती है तो अनुवाद को सुधारना चाहिए ।

डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव का मत है कि 'एक भाषा (स्त्रोत भाषा) की पाठ्य सामग्री में अंतर्निहित तथ्य का समतुल्यता के सिद्धान्त के आधार पर दूसरी भाषा (लक्ष्य भाषा) में संगठनात्मक रूपान्तरण अथवा सर्जनात्मक पुनर्गठन ही अनुवाद कहा जाता है ।

अनुवाद की अपेक्षा के संबंध में गार्गी गुप्त कहते हैं 'अनुवाद कर्म निष्ठा की मांग करता है । यह निष्ठा भाषा के प्रति, मूल भाषा और लक्ष्य भाषा दोनों के प्रति, कथ्य के प्रति और यथासंभव शैली के प्रति भी अपेक्षित है । उपर्युक्त सभी अलग-अलग परिभाषाएँ अनुवाद के व्यापक स्वरूप को रेखांकित करती है । अनुवाद की सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती । लेकिन अनुवाद को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है ।

अनुवाद स्त्रोत भाषा के शब्दार्थ, उसके पाठ तथा अभिव्यंजना और अभिव्यक्ति की दृष्टि से लक्ष्य भाषा में सहज समानकों द्वारा भाषान्तरण का उपक्रम है ।

वस्तुत: अनुवाद में अर्थ और शिल्प दोनों का समान महत्व है । यदि साहित्यानुवाद में अर्थ अधिक महत्त्वपूर्ण है तो विज्ञान और विधि के अनुवाद में अर्थ के साथ ही शब्द की भी महत्ता है ।

8.3 अनुवाद: महत्व व स्वरूप

अनुवाद कार्य प्राचीन काल से होता आया है बीसवीं सदी को अनुवाद का युग माना गया इकीसवीं सदी में प्रवेश होने के साथ ही आज अनुवाद कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है । सूचना व प्रौद्योगिकी के युग में अनुवाद के बिना अन्य देशों से सम्पर्क होना मुश्किल है । आज भिन्न भाषा समुदायों में सम्पर्क बढ़ा है अत: अनुवाद का महत्व भी बढ़ा है अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों के मध्य राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक तथा साहित्यिक व सांस्कृतिक स्तर पर बढ़ते आदान प्रदान के कारण अनुवाद कार्य की महत्ता और आवश्यकता बढ़ी है । अभिप्राय यह है कि अनुवाद वर्तमान समय की पहली आवश्यकता है वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सर्वव्यापी है । अनुवाद का सबसे बड़ा क्षेत्र बातचीत का होता है । मातृभाषा से

भिन्न भाषा में बोलने पर हम मातृभाषा में सोचते हैं फिर मन ही मन अन्य भाषा में अनूदित करते हैं । तब यही अनूदित रूप हमारे मुख से निकलता है । जीविकोपार्जन के लिये लोगों को दूर अन्य भाषा-भाषी प्रदेशों में जाना पड़ता है । वहाँ अनुवाद ही काम आता है । पत्राचार, धर्मक्षेत्र, न्यायालय, कार्यालय क्षेत्र, शिक्षा, विज्ञान, प्रौद्योगिकी संचार, सांस्कृतिक सम्बन्धों, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध आदि में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है अनुवाद ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी, तकनीक इंजीनियरी आदि के अधुनातन ज्ञान का संवाहक है चिकित्सा के क्षेत्री में नित्यप्रति हो रहे अनुसंधान व शोध कार्यो से परिचित होने का साधन अनुवाद ही है । विधि, न्याय, प्रशासन प्रजातंत्र आदि सम्बन्धी ज्ञान के संवर्द्धन के लिये अनुवाद कार्य होना अत्यन्त आवश्यक है । धर्म संस्कृति, दर्शन के क्षेत्र में अनुवाद सेतु का कार्य करता है । मानव चेतना के उत्कर्ष के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क व विश्व मैत्री का एक मात्र साधन है अनुवाद। सामाजिक संदर्भ में अनुवाद व्यापार अनौपचारिक परिस्थितियों में होता है । इसका सम्बंध द्विभाषिकता की स्थिति से है । द्विभाषिकता से तात्पर्य हम एक भाषा (मातृभाषा) में सोचते हैं, परन्तु दूसरी भाषा में अभिव्यक्त करते हैं । इस स्थिति में अनुवाद प्रक्रिया का होना अनिवार्य है । परन्तु यह अनौपचारिक रूप में होती है । यह स्वीकृत तथ्य है कि अन्य भाषा के परिवेश में अन्य परिभाषा सीखते समय अनुवाद का प्रत्यक्ष रूप से अस्तित्व रहता है । द्विभाषी रूप में हम अनौपचारिक अनुवादक हैं । इस दृष्टि से अनुवाद एक सामाजिक भाषा व्यवहार है । आधुनिक युग में अनुवाद का महत्व बढ़ा है क्योंकि ज्ञान साहित्य के अतिरिक्त विविध धाराओं में बहने लगा है इस ज्ञान को एक दूसरे तक पहुँचाने का उचित माध्यम अनुवाद ही है । आज अनुवाद के कारण विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान के साथ विधि, :न्याय प्रशासन, बैंक, मीडिया तकनीकी वाणिज्य आदि क्षेत्रों की जानकारी प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँच रही है राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसकी व्यापकता और व्यापकता से उभरता महत्व स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । मीडिया के सभी माध्यम पत्रपत्रिकाएँ फिल्में रेडियो, दूरदर्शन आदि के माध्यम से दूर-दराज में होने वाली घटनाएँ हम तक पहुँचती हैं यह जरूरी नहीं इन सभी की भाषा वही हो जो हमारी मातृभाषा या राष्ट्रभाषा है । अन्य भाषा भी हो सकती है जिसे हम जानते नहीं ऐसी स्थिति में अनुवाद के द्वारा हम यह जानकारी ले सकते हैं ।

डॉ. रीतारानी पालीवाल के अनुसार 'मानव के पास आयु समय और साधन की एक सीमा रहती है । हर व्यक्ति संसार की प्रत्येक भाषा सीख नहीं सकता । ऐसी स्थिति में अनुवाद ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा हम सभी भाषाओं से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं । वस्तुत: अनुवाद के माध्यम से ही विभिन्न भाषा-भाषी समाजों के बीच संवाद स्थापित होता है । विश्व सभ्यताओं के विकास में अनुवाद का अमूल्य योगदान रहा है । अनुवाद के अभाव में विश्व की सभ्यताएँ 'नदी के द्वीपों की तरह एक-दूसरे से अलग-अलग हो जाती हैं । वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना चरितार्थ करता है अनुवाद ।"

डॉ. जी. गोपीनाथन में अनुवाद को सांस्कृतिक सेतु" की संज्ञा से अभिहित किया है । उनके अनुसार अनुवाद मानव सभ्यता के साथ विकसित हुई एक ऐसी तकनीक है जिसका आविष्कार मनुष्य ने बहुभाषिक स्थिति की विडम्बनाओं से बचने के लिए किया था ।

डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया ने ठीक ही लिखा है कि 'दूर-दूर सीमाओं में बेटी मानव-जाति अनुवाद के माध्यम से समीप आती जाती रही है । प्राचीनकाल से ही संस्कृतियों के विकास में अनुवाद का भारी योगदान रहा है । बेबिलोन में बहुभाषा-भाषी समाज था । अत: वहाँ शासकीय कामकाज में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका थी । इस प्रकार अनुवाद के महत्व को कई कोणों से रेखांकित किया जा सकता है अनुवाद ज्ञान विज्ञान, तकनीक प्रौद्योगिकी आदि के अधुनातन ज्ञान का संवाहक है । पर्यटन, वाणिज्य, व्यापार के संवर्धन के लिये अनुवाद महत्वपूर्ण है । तुलनात्मक साहित्य और विदेशी भाषा शिक्षण में अनुवाद हमारी मदद करता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुवाद की भूमिका मानव जीवन और मानव मूल्यों के संवर्धन एवं संरक्षण में गुणात्मक एवं विशिष्ट संसार में आज अनुवाद केन्द्रीय स्थिति में है

संसार मे आज अनुवाद केन्द्रिय स्थिति मे है सम्प्रेषण के नये माध्यमों के आविष्कारों ने 'वसुधैव कुटुम्बकम' की उपनिषदीय कल्पना को साकार बना दिया है । अनुवाद का महत्व शब्दातीत है । निश्चित रूप से अनुवाद के द्वारा हमें प्राप्त हो रहा ज्ञान हमारे विकास में अनमोल योगदान दे रहा है । विश्व में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है । जिसका लाभ आज सम्पूर्ण मानव जगत को मिल रहा है ।

अनुवाद का स्वरूप निश्चित करना अत्यन्त कठिन है । अनुवाद करते समय यह मानकर चलना होता है कि कथन और कथ्य में किंचित अन्तर आ सकता है एक भाषा की बात को कथन शैली व कथ्य के साथ दूसरी भाषा में प्रस्तुत करना संभव नहीं होता । अनुवाद में मूल कथन की आत्मा मरनी नहीं चाहिये । तभी वह सफल माना जाता है । जब अनुवाद के पाठक अनूदित सामग्री पढ़कर वही अर्थ ग्रहण करे जो स्त्रोत भाषा-भाषियों ने ग्रहण किया है । अर्थ अथवा कथ्य का अन्तरण उतना सरल व सहज नहीं होता । इसका प्रमुख कारण है अनुवाद के साथ दो भाषाओं का जुड़ना । प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति तथा प्रवृत्ति होती है । प्रत्येक भाषा की अपनी ध्वन्यात्मक, रूपात्मक, शब्दात्मक वाक्यात्मक प्रकृति होती है । भाषा के साथ ही सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष भी जुड़ा होता है । इन सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ स्त्रोत भाषा में विद्यमान सामग्री का अंतरित होना असंभव होता है ।

अत: अनुवाद के स्वरूप को जानने के लिये उन प्रमुख बिन्दुओं को जानना आवश्यक है, जो अनुवाद के स्वरूप को निर्धारित करते है । उन बिन्दुओं को आधार बनाकर भाषा वैज्ञानिक ई. ए. नायडा ने अनुवाद के प्रमुख तीन स्वरूप निर्धारित किये हैं ।

(1) शाब्दिक अनुवाद

शाब्दिक अनुवाद से नायडा का अभिप्राय एक भाषा के शब्द को दूसरी भाषा में बल देना नहीं वरन् स्रोत भाषा के व्याकरणिक रूप के स्थान पर लक्ष्य भाषा के व्याकरणिक रूप को रख देना था । पारिभाषिक शब्दावली में अनुवाद पर 'शाब्दिक अनुवाद' क सिद्धान्त लागू होता है इसमें एक भाषा के भाव का दूसरी भाषा में रूपान्तरण करते हुए प्रत्येक शब्द, उपवाक्य वाक्य आदि के महत्व पर ध्यान दिया जाता है । यह वस्तुत: तथ्यात्मक और तकनीकी साहित्य में प्रयुक्त होता है । जैसे विज्ञान, विधि, इंजीनियरिंग आदि । शाब्दिक अनुवाद के लिये आवश्यक है उचित शब्द भण्डार और उसका निर्माण हो साथ ही 'शब्द भण्डार का संग्रह हो । जिस देश में

किसी क्षेत्र विशेष जैसे प्रौद्योगिकी, विज्ञान का विकास दूसरी भाषा. के माध्यम से हुआ है तो उसे अपने शब्द भण्डार के अभाव में वह भाषा स्त्रोत के ही शब्दों को थोड़े परिवर्तन व संशोधन के साथ स्वीकार कर लेना चाहिए । शाब्दिक अनुवाद के लिये लचीलापन आवश्यक है । किन्तु शाब्दिक अनुवाद के समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि वह हास्यास्पद नहीं हो जाये । जैसे हिन्दी के वाक्य उसका सिर चक्कर खा रहा है । 'का अंग्रेजी अनुवाद (His head is eating circle) हास्यास्पद ही होगा ।

Worm Welcome - गर्म स्वागत जबकि होना चाहिये गर्मजोशी से स्वागत' (आत्मा राम का self light) उचित अनुवाद नहीं है स्त्रोत भाषा के शब्दों को सही ढंग से लक्ष्य भाषा में अंतरित करना चाहिये-

To throw light upon प्रकाश डालना ।

जबकि हिन्दी की प्रकृति के अनुसार होना चाहिये 'विचार करना' ।

Blow Hot-Blow Cold - ठंडी फूंक - गरम फूंक, जबकि होना चाहिये नरम-गरम ।

Iron Will - इस्पाती इच्छा, Save skin चमड़ी बचाना के स्थान पर 'दृढ़ इच्छा शक्ति' व स्वयं की रक्षा' होनी चाहिये ।

शाब्दिक अनुवाद सबसे अच्छा एवं आदर्श अनुवाद माना गया है । इसमें मूल का कोई शब्द छोड़ने की अनुमति नहीं है प्राय: विज्ञान, विधि, संवैधानिक आदेश, प्रशासनिक पत्राचार आदि में शाब्दिक अनुवाद होता है । मुहावरेदार अभिव्यक्ति में शाब्दिक अनुवाद प्राय: संभव नहीं होता ।

(2) भावानुवाद

इसमें मूल कृति के भावार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास रहता है । भावानुवाद में भावों की प्रमुखता शब्दों की अपेक्षा अधिक रहती है क्योंकि शब्द तो केवल भावों के वाहक होते हैं, वह तो किसी वस्तु विशेष या भाव विशेष को स्पष्ट करने के लिए संकेत मात्र होते हैं । यदि मूल सामग्री सूक्ष्म भावों से युक्त हो उसमें भावगत बारीकियाँ हो तो उसका भावानुवाद अपेक्षित होता है इस प्रकार के अनुवाद में मूल के शब्द, पदबंध, वाक्यों का अनुवाद करने के स्थान पर उसके अर्थ और भाव का अनुवाद किया जाता है । अंग्रेजी में सेंस-फार सेंस' इसी प्रकार के अनुवाद को कहा जाता है। डॉ. जी गोपीनाथन इसे परकाया प्रवेश' प्रक्रिया बताते है । भावानुवाद में अर्थ गांभीर्य होना चाहिये । भावानुवाद मात्र-भाषान्तरण नहीं हो सकता ।

भावानुवाद में अनुवादक को मूल भाव से छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिये । उसे मूल भाव को बिना बिगाड़े अथवा जोड़े सुन्दर अनुवाद करना होता है । भावानुवाद में मूल कृति के समकक्ष ही पाठक को अनूदित कृति के पारायण पर भावों का आस्वादन होना चाहिए ।

उदाहरण -

फारसी कवि उमरखैयाम की रूबाइयों का फिटजजेराल्ड द्वारा अंग्रेजी अनुवाद तथा कालिदास के संस्कृत नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' का डॉ. पी. लाल द्वारा अंग्रेजी अनुवाद भावानुवाद के श्रेष्ठ नमूने है ।

(3) छायानुवाद

इसे 'फ्री ट्रान्सलेशन' भी कहा जाता है । डॉ. विश्वनाथ अय्यर के अनुसार मूल कृति को पढ़ने के बाद अनुवादक ने जो समझा, अनुभव किया, उसके मन पर जो प्रभाव पड़ा उसके संदर्भ में वह मूल पाठ का लक्ष्य भाषा में रूपान्तरण करता है उसे छायानुवाद कहा जाता है । इसमें अनुवाद को पूर्ण छूट होती है कि वह मुख्य भाव लेकर पाठ २ चना करे ।

छायानुवाद में मूल कृडुति के समग्र प्रभाव का अनुवाद किया जाता है । वस्तुत: यह एक प्रकार का पुन: सृजन होता है । डॉ. भोलानाथ तिवारी के शब्दों में 'छायानुवाद ऐसे अनुवाद को कहा जाना चाहिए जो शब्दानुवाद की तरह मूल के शब्दों का अनुसरण न करें, अपितु दोनों दृष्टियों से मुक्त होकर, उसकी छाया लेकर चले । '

(4) पर्याय के आधार पर अनुवाद

भाषा में प्रत्येक शब्द का अपना महत्व होता है वाक्य में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द और उसके 'प्रयोग का महत्व होता है। यह संभव है कि अनुवादक के पास मूल वृति में प्रयुक्त शब्दों के पर्याय हो प्रत्येक भाषा में अनेक ऐसे शब्द होते हैं जिनको प्राय: पर्याय समझ लेते हैं । मूल कृति में प्रयुक्त शब्द के भाव को दूसरी भाषा में सम्प्रेषित करने की कला अनुवादक में होनी चाहिए । अनुवादक को प्रयोग से सूक्ष्म भेदों का ज्ञान होना चाहिये । शब्द की शक्ति प्रयोग में ही निहित होती है ।

व्यवहार में सब पर्यायों में निकटता तो होती है । अर्थ की दृष्टि से समानता कम होती है ।

उदाहरणार्थ -

नाजुक, कोमल, मृदुल, मुलायम, नर्म, सुकुमार सभी का भाव एक समान होते हुए भी प्रयोग भेद से अर्थ भिन्नता स्पष्ट हो जायेगी । प्रखर, तीक्ष्ण कुशाग्र बुद्धि के रूप में भिन्नभाव हिन्दी में मिलते है संभव है अन्य भाषाओं में न हो दुःख दर्द, विषाद और शोक आदि का जितना स्पष्ट अर्थ हिन्दी में है, अन्य भाषा में नहीं । प्रयोग तथा संदर्भ भेद से अर्थ भेद निश्चित होता है । अर्थ संकेत पर भारतीय परम्परा में पर्याप्त विवेचन मिलता है । स्थान भेद, प्रसंग, स्त्रोत देशकाल, प्रकरण भेद से अर्थ बदलते है ।

एक ही मूल से बने शब्द प्रयोग के आधार पर अपनी सीमाएँ निश्चित कर लेते हैं उदाहरणार्थ 'ताप शब्द लिया जा सकता है । ताप' का मूल अर्थ है 'गर्मी' उससे विकसित भाव हुआ गर्मी के कारण होने वाली जलन जो कष्टप्रद हो । इसी कारण यह बुखार का द्योतक हो गया । भारतीय परम्परा में ताप कई प्रकार के है- 'दैहिक दैविक, भौतिक ताप परन्तु प्रयोग के आधार पर इनके अर्थ भिन्न है । हिन्दी में इस प्रकार विशद विवेचन मिलता है । संभव है अन्य भाषा में इस प्रकार का विस्तृत विवेचन नहीं मिले ऐसी स्थिति में इन शब्दों को उस भाषा की लिपि में लिख देना चाहिए और मूल अंश में अथवा पाद टिप्पणी के रूप में विस्तृत्व व्याख्या कर देनी चाहिये ।

'भय बिनु होय न प्रीति' में उदाहरण के लिये 'भय' शब्द लिया जा सकता है डर, भीति इसके पर्याय है । परन्तु 'भीति' शब्द हिन्दी में कम प्रचलित है और 'भय' शब्द की विशालता

'भीति' में आभासित नहीं होती । 'डर' शब्द में कुछ हल्कापन अनुभव होता है अत: यहाँ डर व भीति के स्थान पर 'भय' शब्द का प्रयोग उचित प्रतीत होता है ।

ई. ए. नायडा ने शाब्दिक अनुवाद, भावानुवाद और पर्याय के आधार पर अनुवाद का स्वरूप निर्धारित किया है । डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया ने सारानुवाद और टीकानुवाद का विवेचन भी इस संदर्भ में किया है ।

(5) सारानुवाद

सारानुवाद से तात्पर्य 'मूल कृति के सार का अनुवाद' है । यह सामान्यत: समाचार पत्रों के लिये विभिन्न एजेन्सियों द्वारा सम्पन्न होता है । सरकारी कागजात और सरकारी रिपोर्ट आदि में सार अनुवाद या 'जिस्ट ट्रान्सलेशन' किया जाता है । सारानुवाद मुख्य कथ्य का अनुवाद होता है औr आवश्यकतानुसार संक्षिप्त, अति संक्षिप्त, अत्यन्त संक्षिप्त कई प्रकार से हो सकता है । मूल पाठ से सार रूप में किया जाने वाला अनुवाद ही सारानुवाद कहलाता है । पत्रकारिता एवं लम्बे भाषणों के तत्काल-अनुवाद में भी अनुवाद का यही रूप होता है । संसद विधानसभाओं की कार्यवाही अथवा समय-समय पर प्रस्तुत रिपोर्ट / प्रतिवेदनों के लिए सारानुवाद आवश्यक होता है । भाषण व वक्तव्यों के सारानुवाद में स्त्रोत भाषा में दिये मूल भाषण से 'चयन' की प्रक्रिया निष्णात होना आवश्यक है ।

(6) टीकानुवाद

अनुवाद का यह रूप भारत में प्राचीन काल से चला आ रहा है । संस्कृत के अनेकानेक आर्ष ग्रंथों के भाष्य और टीका इसके उदाहरण है । संस्कृत, पालि, प्राकृत में लिखे ग्रंथों की टीकाओं का भरमार है । इसका लक्ष्य भाषा में किया गया 'भाष्य' भी कहते हैं । यह पद्धति भारत की सभी भाषाओं में प्रचलित है । 'गीता' पर सर्वाधिक भाष्य लिखे गये हैं ।

अरस्तु के 'काव्यशास्त्र' लोंजाइनस के 'पेरिइप्सुस' के अंग्रेजी तथा हिन्दी में किये गये अनुवाद इसी कोटि में आता है । 'बाइबिल' व 'गीता पर विभिन्न भाषाओं में अगणित टीकानुवाद हुए है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अनुवाद का काम जितना महत्त्वपूर्ण व उपयोगी है उतना कठिन भी है । शब्दों की शक्ति असीम है प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है । उसका निर्वाह करना अनुवादक का दायित्व है।

अनुवादक को अनुवाद करते समय स्रोत भाषा के मूल स्वरूप को सुरक्षित करने के लिये अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है । मूल के यथार्थ को उचित रूप में प्रस्तुत करना अनुवादक का कर्त्तव्य है ।

8.4 अनुवाद की आवश्यकता क्यों?

प्राचीन काल से ही अनुवाद कार्य होता आया है । किन्तु आज अनुवाद कार्य साहित्य तक ही सीमित न रहकर विविध क्षेत्रों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है इससे लोगों को रोजगार मिलने के साथ एक दूसरे के विषय में जानने का अवसर भी प्राप्त हुआ है । आज सम्पूर्ण विश्व एक हो गया है । प्रत्येक देश दूसरे देशों के राजनीतिक घटनाक्रम, सांस्कृतिक,

साहित्य हलचल, व हो रहे अनुसंधान कार्य से परिचित होना चाहता है कहीं क्या हो रहा है? क्या लिखा जा रहा है । इन सबकी उत्सुकता मनुष्य में बनी रहती है । इसका सबसे सीधा और सशक्त माध्यम है अनुवाद । इसके लिये देश में प्रत्येक भाषा के अनुवादकों का होना आवश्यक हो जाता है क्योंकि प्रत्येक भाषा सीखी नहीं जा सकती । इसके लिये अनुवाद कार्य की महत्ता स्वत: सिद्ध होती है आज कम्प्यूटर के युग में 'कम्प्यूटर अनुवाद' की भी सुविधा हो गयी है ।

अनुवाद का सबसे बड़ा क्षेत्र मौखिक है । दो भाषा-भाषी मिलते हैं तो अनुवाद के अतिरिक्त सम्पर्क का अन्य साधन उनके पास नहीं होता । अत: दुभाषिये और अनुवादक की आवश्यकता पड़ती है । पत्राचार के क्षेत्र में अनुवाद की आवश्यकता अधिक हो रही है क्योंकि व्यापार, कार्यालय, बैंक, न्यायालयों आदि में पत्राचार का अत्यधिक महत्व है यहाँ अनुवादक की आवश्यकता हमेशा बनी रहती है ।

शिक्षा के क्षेत्र में आज अनुवाद कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि विषय व्यापक हो गये है । शिक्षा कॉलेज, विश्वविद्यालयों द्वारा से चलाए गए दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों के माध्यम से देश से विदेशों में पहुँच रही है विषय विशेष के उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण ग्रंथों के लिये विश्व की भाषाओं का जानना आवश्यक हो जाता है । विदेशी भाषाओं की जानकारी के अभाव में हमारा ज्ञान अधूरा ही माना जायेगा ऐसी स्थिति में अनुवाद हमारा सहायक हो सकता है । साहित्य के क्षेत्र में अनुवाद का योगदान उल्लेखनीय है ।

साहित्यिक कृतियों के अनुवाद से सांस्कृतिक परिचय के साथ सामाजिक जीवन की जानकारी भी हमें मिलती है । उदाहरण के लिये तकषि पिल्लै के मलयालम उपन्यास 'चेम्मीन' का हिन्दी अनुवाद 'मछुआरे' व 'क्वायर' का रस्सी' नाम से अनुवाद हुआ है । पन्ना लाल पटेल के मानतीनी भवाई उपन्यास का 'जीवन एक नाटक' नाम से अनुवाद रघुवीर चौधरी ने किया है । जो नेशनल बुक ट्रस्ट से अनूदित है ।

जर्मन कवि व नाटककार गेटे ने 'शकुन्तला' के अनुवाद को पढ़कर विश्व साहित्य की कल्पना विकसित की । अनूदित कृतियों को पढ़ने से हमें वहाँ के परिवेश, विचार की जानकारी मिलती है । यह अनुवाद से ही संभव हुआ है ।

कन्नड में यू. आर. अनन्तमूर्ति के उपन्यास 'संस्कार' का ए.के. रामानुजन ने अंग्रेजी में अनुवाद किया । इससे भाषा व संस्कृति के बीच सेतु निर्माण हुआ है अनुवाद इसमें महत्त्वपूर्ण है । अनुवाद द्वारा सांस्कृतिक आदान प्रदान का रास्ता खुला है । ज्ञानपीठ से पुरस्कृत कृतियाँ हिन्दी व अन्य भाषाओं में अनूदित होती है । वे सभी भारतीय जिनकी रूचि साहित्य में है वे इसका आनन्द उठाते है । तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में अनूदित कृति सहायक होती है । कोई भी कृति विश्व स्तर पर तभी पहुँच सकती है जब वह अनूदित होती है रवीन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजलि अंग्रेजी में अनूदित होकर 'नोबल' पुरस्कार प्राप्त कर सकी अन्यथा बांग्ला सभी समझ नहीं पाते किसी भी भाषा के साहित्यक क्षेत्र में विचारों परिवेश, मान्यताओं बदलाव आदि की जानकारी प्राप्त करने के लिये अनुवाद अत्यन्त महत्वपूर्ण है । अपने देश व विदेश में उपलब्ध साहित्य की जानकारी अनुवाद के माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है ।

विज्ञान, तकनीकी प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में देखा जाये तो अनुवाद कार्य स्वयं सिद्ध हुआ है भारत विकसित देश न होकर विकासशील देशों की श्रेणी में आता है अत: नवीन तकनीकी ज्ञान के लिये हमे विकसित देश इंग्लैंड; अमेरिका, जापान आदि पर अपनी दृष्टि रखनी पड़ती है । अत: तकनीकी ज्ञान व वैज्ञानिक सूचनाओं के लिये अनुवाद के अतिरिक्त अन्य कोई माध्यम हमारे पास नहीं है । यह अनुवाद पहले अंग्रेजी में फिर अंग्रेजी से हिन्दी में हमें उपलब्ध हो जाता है । विधि व न्याय के क्षेत्र में उच्च न्यायालय के निर्णय अंग्रेजी में होते हैं । जहाँ निचली अदालतों में प्रादेशिक भाषाओं में निर्णय होते है । उन्हें अनुवाद के माध्यम से उच्च न्यायालय को प्रस्तुत किया जाता है । यहाँ भी अनुवाद महत्वपूर्ण होता है । संचार माध्यमों में रेडियो, समाचार पत्र व दूरदर्शन महत्वपूर्ण है भारत में अनेक भाषाओं में समाचार पत्र छपते हैं किन्तु समाचार प्राप्ति का माध्यम अंग्रेजी भाषा एजेन्सियाँ होती हैं । कई बार ऐसी घटनाएँ होती हैं । जिनका प्रकाशन भारत में और विदेशी समाचार पत्रों में प्रकाशित समाचारों का भारत के प्रादेशिक समाचारों में छपना आवश्यक होता है । यहाँ भी अनुवाद आवश्यक होता है । मलयालम, तमिल कन्नड भाषा में प्रकाशित समाचार अन्य प्रादेशिक भाषा (एक दूसरे में) छपने के लिये अनुवादक आवश्यक है । यहाँ अनुवादक कार्य अति महत्वपूर्ण होता है क्योंकि समाचार में सही सूचना देनी होती है । इसका अन्यथा अर्थ नहीं लगाया जा सकता ।

कई बार रेडियो में नाटक, रूपक वार्त्ताएं प्रादेशिक भाषाओं के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं एक प्रादेशिक कार्यक्रम दूसरे प्रदेश में प्रसारित होने के लिये कुशल अनुवादक का होना आवश्यक है जिससे अन्य प्रदेश के लोग भी उस वार्ता समाचार या प्रसारित नाटक व एकांकी का लाभ उठा सके । 15 अगस्त, 26 जनवरी को देश के नाम महामहिम राष्ट्रपति / प्रधानमंत्री का सन्देश एक साथ भारत के सभी प्रदेशों के आकाशवाणी केन्द्र प्रसारित करते हैं जो अनुवाद के माध्यम से ही संभव हो सकता है । दूरदर्शन पर आज चैनलों की बाढ़ सी आ गई है । प्रत्येक चैनल के अपने खेल, समाचार व मूवी चैनल है । मुख्य भाषा में प्रसारित चैनल के कार्यक्रम कई बार, प्रादेशिक भाषा में अनूदित होकर आते है ।

दूरदर्शन के लोकप्रिय टीवी. धारावाहिक रामायण', 'महाभारत' इसके प्रमुख उदाहरण है । डिस्कलर चैनल, नेशनल ज्योग्राफीक वृत्तचित्र, बालचित्र, एनीमेटेड फिल्में का प्रसारण हो रहा है । कई विदेशी धारावाहिक जैसे सिग्मा, 'बालफिल्म मोगली' अनूदित होकर प्रसारित और लोकप्रिय हुये है । भारत में यह प्रसारण हिन्दी भाषा में होता है । यह अनुवाद द्वारा ही संभव हो सका है ।

फिल्मों के माध्यम से शिक्षा व संदेश दिया जाता है । यहाँ लोकशिक्षण का कार्य आसानी से किया जा सकता है । किन्तु एक भाषा की फिल्म का लाभ, अन्य भाषा-भाषी लोग नहीं उठा सकते यहाँ अनुवाद कार्य का महत्व बढ़ जाता है । अनूदित बांग्ला उपन्यास 'आरण्यक' व 'पाथेर पाँचाली (फिल्म) रूप में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी है । टाइटेनिक, जूरासिक पार्क जैसी फिल्म विश्वभर में प्रसिद्ध हुई । 'लगान' फिल्म ने विश्वभर में धूम मचाई और करोड़ों रूपयों का अर्जन किया है । यह अनुवाद से ही संभव हो सकता था । फिल्मों में यह कार्य डबिंग के माध्यम से सम्पन्न होता है ।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन सभाओं, में संवाद मूल रूप से अनुवाद पर ही आश्रित रहता है । प्रत्येक राष्ट्र के राजदूत के -साथ अनुवादक की उपस्थिति अनिवार्य होती है । भारतीय संसद में लोकसभा व राज्यसभा में प्रस्तुत दस्तावेज पहले अंग्रेजी में तैयार किये जाते हैं परन्तु मूल अंग्रेजी कागजात अनूदित किये बिना संसद में प्रस्तुत नहीं किये जा सकते । संसद में प्रश्नकाल के समय सांसद किसी भी प्रादेशिक भाषा में प्रश्न पूछ सकता है व उत्तर दे सकता है क्योंकि संसद में विभिन्न प्रदेश के प्रतिनिधि होते हैं । अत: इनके वक्तव्यों का भारतीय भाषाओं और हिन्दी में अनुवाद आवश्यक होता है यहाँ हिन्दी व अंग्रेजी के अनुवादक हमेशा तैयार रहते हैं इसके अतिरिक्त संविधान द्वारा स्वीकृत अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की व्यवस्था की जाती है ।

धर्म दर्शन के क्षेत्र में भी अनुवाद कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है । विश्व के प्रत्येक धर्म की अपनी भाषा है । हिन्दू धर्म की भाषा संस्कृत है, बौद्ध धर्म की पाली, ईसाई के धार्मिक उपदेश लेटिन में, मुस्लिम अरबी भाषा को धर्म के क्षेत्र में प्रयोग करते है । कई बार धर्म विशेष के अनुयायी को अपने धर्म की भाषा ज्ञात नहीं होती व उसके भाव व सार को समझने के लिये अनुवाद का सहारा लेता है । अनुवाद के न केवल राष्ट्रीय संदर्भ होते हैं अपितु उसके अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ भी है । मार्क्स द्वारा जर्मन भाषा में लिखे गये ग्रंथों का अनुवाद विश्व भर की भाषाओं में हो जाने के कारण विश्वभर की भाषाओं में हो जाने के कारण विश्वभर के चिन्तन को नयी दिशा मिली । धर्म दर्शन संस्कृति के संदर्भ विश्व स्तर पर देखा जाये तो सभी धर्मों की अपनी विशिष्ट भाषाएं रही हैं धर्मों के प्रचार-प्रसार के साथ अन्य भाषा भाषी भी अनुयायी बन जाते हैं तो सुविधा के लिये धार्मिक ग्रंथों का लिप्यंतरण करना आवश्यक हो जाता है यथा-बंगाली मुसलमानों के लिये 'कुरान शरीफ' के मूल पाठ का बंगला लिपि में अंतरण किया जाए जिससे व कुरान का सही उच्चारण कर सके । इसी प्रकार धर्मप्रचारक धर्मग्रंथों की बातों को अनुयायियों की भाषाओं में अनुवाद करके समझाते हैं 'बाईबिल' का विश्व की अधिकांश भाषाओं में अनुवाद हो चुका है । 'श्रीमद् भागवत' का अनुवाद विश्व की प्रमुख भाषाओं में हुआ है । यहाँ अनुवाद का महत्व स्वयं सिद्ध हुआ है ।

पर्यटन के क्षेत्र में अनुवाद महत्वपूर्ण है । क्योंकि विदेशी पर्यटक भारत आये या भारतीय विदेश में जाये तो पर्यटन स्थल पर लिखी भाषा, ऐतिहासिक इमारतों के लेख को पढ़ना असंभव होता है । यह अनुवाद के द्वारा सहज और सरल हो जाता है । अनुवादक को पर्यटन स्थल व वहाँ खुदे लेखों की सही व पूर्ण जानकारी होनी चाहिये । पर्यटन से देश को आर्थिक लाभ तो होता ही है अन्य देशों से मधुर संबंध भी स्थापित होते हैं इसमें अनुवाद की ही भूमिका प्रमुख होती है ।

सांस्कृतिक समन्वय के लिये एक देश से दूसरे देशों में सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं । संस्कृतियों के मेल जोल के लिये सांस्कृतिक केन्द्र बने हुये हैं ये अपने साथ अनुवादक रखते हैं । साहित्यिक क्षेत्र में अनुवाद का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है अत: अनुवाद की आवश्यकता प्राचीन समय से लेकर वर्तमान तक बनी हुई है।

8.5 अनुवाद के प्रकार

अनुवाद एक प्रायोगिक विद्या है अत: इसकी प्रक्रिया में प्रयोग, प्रयोजन और प्रयोक्ता आदि कई तत्व समाहित होते हैं अनुवादकों ने अनुवाद के कई प्रकार बताये हैं अनुवाद के अनेक पक्ष होने के कारण इसका अध्ययन कुछ कठिन होता है अनुवाद के प्रकारों के सम्बन्ध में भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों ने चिन्तन किया है । अनुवाद के प्रकारों को निश्चित करना आसान कार्य नहीं है अनुवाद के प्रकारों को वर्गीकृत करने से पूर्व उसके आधारों को जानना आवश्यक है अनुवाद के प्रकारों के सम्बन्ध में डॉ. भोलानाथ तिवारी ने निम्न आधार माने हैं-

(अ) अनुवाद के गद्य-पद्य होने के आधार पर

(ब) साहित्यिक विधा के आधार पर

(स) विषय के आधार पर

(द) अनुवाद की प्रकृति के आधार पर

8.5.1 गद्यत्व-पद्यंत्व के आधार पर

यह अनुवाद किसी कृति के गद्य या पद्य में होने उसे गद्य या पद्य में रूपायित करने की ओर संकेत करती है इसी आधार पर अनुवाद के कुछ प्रकार इस प्रकार है ।

(i) **गद्यानुवाद -** यह अनुवाद गद्य में होता है यदि श्रोत भाषा का साहित्य गद्य में है तो अनुवाद गद्य में किया जायेगा यदि स्त्रोत भाषा का साहित्य पद्य में हो तो अनुवाद लक्ष्य भाषा में गद्य के रूप में किया जा सकता है । कहने का अभिप्राय: यह है कि मूल रचना गद्य में हो या पद्य में हो अनुवाद में इसका रूप 'गद्य' ही होता है ।

(ii) **पद्यानुवाद -** मूल पद्य अथवा गद्य के पद्य में किये गये अनुवाद को पद्यानुवाद कहा जाता है । इस प्रकार के अनुवाद को छंदानुवाद या छंदबद्ध अनुवाद भी कहते हैं । यह अनुवाद पद्य में होता है । यह ठीक है किन्तु मूल कृति का रूप गद्य भी हो सकता है पद्य भी हो सकता है । मूल कृति पद्य में है तो प्राय: पद्य में अनुवाद होता है । लेकिन अनेक बार कृति गद्य में होने के बावजूद उसका पद्य में अनुवाद होता है।

8.5.2 साहित्यिक विधा के आधार पर

साहित्यिक विधाओं के आधार पर उतने ही प्रकार अनुवाद विधा के माने जा सकते हैं । साहित्यिक विधा के मुख्य प्रकार काव्यानुवाद, नाट्यानुवाद कथानुवाद है । इन तीनों में ही साहित्य की अधिकांश: विधाएँ समायी हुई हैं विभिन्न कारणों से इनका अनुवाद कठिन माना गया है इन अनुवाद प्रकारों (क) साहित्यिक अनुवाद (ख) साहित्येतर अनुवाद में विभाजित किया जा सकता है ।

(i) साहित्यिक अनुवाद - ज्ञान प्रधान साहित्य का अनुवाद अत्यन्त आसान होता है इसमें काव्य, नाटक, उपन्यास शामिल होते हैं इनका एक अनुवाद काफी नहीं होता ।

साहित्यिक अनुवाद में अनुवादक को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है विशेष रूप से काव्य का अनुवाद अत्यन्त कठिन होता है ।

(1) काव्यानुवाद

किसी काव्य रचना का अनुवाद काव्यानुवाद कहलाता है । यह अनुवाद गद्य-पद्य या मुक्ता छंद में ही किया जाता है यह प्रश्न विवाद का रहा है कि काव्यानुवाद हो सकता है अथवा नहीं । विद्वान मानते हैं कि काव्यानुवाद सूर्य की किरणों को तृणों के घेरे में बाँधने जैसा है पर ऐसा भी नहीं है कि काव्यानुवाद नहीं हुए हों । काव्यानुवाद को असंभव माना जाये ठीक नहीं है किन्तु कोई विद्वान ऐसा नहीं है जिसने काव्यानुवाद के पक्ष में सीधी कोई बात कही हो । काव्यानुवाद को असंभव मानने वालो से डी. भोलानाथ तिवारी कहते हैं - 'ऐसे अनुवाद (काव्यानुवाद) हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे । ऐसी स्थिति में जो हो चुका है, हो रहा है, भविष्य में भी होता रहेगा । उसे कैसे कह दें कि नहीं हो सकता ।"

(2) नाट्कनुवाद

किसी नाटक का नाटक के रूप में अनुवाद 'नाट्यानुवाद कहलाता है । यों तो अन्य साहित्यिक विधाओं के नाटक रूप में अनुवाद हो सकते हैं । नाटक के भी काव्य या कहानी रूप में अनुवाद या (रूपान्तरण) होते हैं । नाटक का अनुवाद कठिन कार्य है क्योंकि उसे पठनीय होने के साथ ऐसा होना चाहिये जिसे रंगमंच पर खेला भी (ना सके । अत: अनुवादक को रंगमंच का जानकार होना आवश्यक है । नाटक में संवाद और मंचन महत्वपूर्ण होता है । कहा जा सकता है - 'नाटक संवादों पर आधारित मंच विधा है ।' नाटक के प्रकारों को दो वर्गो 'पठनीय' व 'अभिनेय' में रखा जा सकता है । नाटक का पठनीय अनुवाद इतना कठिन नहीं होता । मूल कृति. कोश, विशेषज्ञ आदि की मदद से किसी भी नाटक का पठनीय अनुवाद किया जा सकता है । किन्तु नाटक को अभिनेय बनाने पर अनेक कठिनाइयाँ सामने आती हैं । यहाँ रंगमंचीय जानकारी अनुवादक को अवश्य होनी चाहिये । हिन्दी में अनेक नाटकों के अनुवाद हुए हैं किन्तु ये नाटक पठनीय ही बन पाये हैं अत: इन्हें सफल नाट्यानुवाद कहा नहीं जा सकता । नाटक संवादों की विधा है अत: अनुवादक को अत्यधिक सर्तकता से अनुवाद कार्य करना पड़ता है नाटक के अनुवाद में संवादों और अभिनय का सही तालमेल आवश्यक है । निश्चित रूप से मंच. के लिये वांछनीय-अवांछनीय तत्त्वों का ज्ञान रखने वाला अनुवादक ही नाट्यानुवाद का कार्य कुशलतापूर्वक कर सकता है ।

(3) कथानुवाद

कथा साहित्य (उपन्यास तथा कहानी) का कथा साहित्य में अनुवाद कथानुवाद कहलाता है । इस श्रेणी का अनुवाद काव्यानुवाद तथा नाटकानुवाद की तुलना में सरल होता है । इस आधार पर रेखाचित्रनुवाद, निबन्धानुवाद संस्मरणानुवाद आदि कई भेद-विभेद हो सकते हैं । कथानुवाद करते समय अनुवादक को कथासाहित्य के तत्व कथावस्तु, चरित्र, संवाद, देशकाल को ध्यान में रखकर अनुवाद करना पड़ता है । अनुवादक इन सभी तत्वों को लक्ष्य भाषा में कितनी सफलता से उतार पाता है इस पर अनुवाद की सफलता निर्भर करती है । कथासाहित्य की अनुवाद प्रक्रिया के दो बिन्दु हो सकते हैं पहले तो अनुवादक को कृति व कृतिकार के साथ

तादाक्य स्थापित करें । अनुवादक उस मानसिकता को तन्मयता के साथ महसूस करे जो निर्माण के दौरान मूल रचनाकार की रही होगी । इसके पश्चात ही अनुवाद कार्य करे । दूसरा यह कि रचना का समग्र प्रभाव दूसरी भाषा में अंतरित कर दे । कथा साहित्य के अनुवाद में यह बिन्दु अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं ।

इस प्रकार कथानुवाद कार्य भी सरल नहीं है । कथा साहित्य के कथावस्तु, परिवेश वातावरण चरित्र, शैली आदि महत्वपूर्ण तत्वों के रूपान्तरण में अनुवादक को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है ।

(ख) साहित्येतर अनुवाद

साहित्येतर अनुवाद का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है साहित्यिक अनुवाद में अनुवादक को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । साहित्येतर अनुवाद में इतनी कठिनाइयाँ नहीं आती । विज्ञान तकनीकी, वाणिज्य, साहित्येतर अनुवाद के अन्तर्गत कार्यालयी अनुवाद, विधि अनुवाद, बैकिंग सामग्री, अनुवाद, सैनिक सामग्री, कृषि सामग्री, 'आदि अनुवाद किये जाते है । बैंक, विधि, सैनिक आदि प्रकार की सामग्री के लिये अनुवाद समस्याएँ भिन्न होती हैं ।

8.5.3 विषय के आधार पर

विषय के आधार पर अनुवाद के अनेक भेद किए जा सकते हैं । जैसे सरकारी रिकार्डों का अनुवाद, गजेटियरों का अनुवाद पत्रकारिता से सम्बद्ध अनुवाद, विधि-साहित्य का अनुवाद, वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद, गणित साहित्य का अनुवाद, ऐतिहासिक साहित्य का अनुवाद, धार्मिक साहित्य का अनुवाद तथा ललित साहित्य का अनुवाद आदि ।

8.5.4 अनुवाद की प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण

अनुवाद की प्रकृति के आधार पर अनुवाद के दो प्रधान भेद किए जा सकते हैं - मूलभूत अनुवाद व मूलनिष्ठ अनुवाद । मूलमुक्त अनुवाद के अन्तर्गत छायानुवाद, भावानुवाद, सारानुवाद रूपान्तरण, व्याख्यानुवाद आदि प्रकार समाविष्ट किए जा सकते हैं । मूलनिष्ठ अनुवाद शब्दशः या शब्दनिष्ठ अनुवाद कहा जा सकता है । मूलमुक्त अनुवाद में अनुवादक को अभिव्यक्ति या कथन शैली की छूट होती है कथ्य की नहीं, जबकि मूलनिष्ठ अनुवाद में आशय और अभिव्यक्ति शैली का यथासंभव प्रतिबिम्ब अनुवाद में प्रस्तुत किया जाता है या ऐसा अनुवाद जो मूल का अनुगमन करे मूलनिष्ठ अनुवाद कहलाता है । प्रकृति के आधार पर इन प्रकारों को विस्तार से इस प्रकार समझा जा सकता है -

(I) शब्दानुवाद

इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक को प्रत्येक शब्द का अनुवाद करना पड़ता है । न्याय, विधि, विज्ञान, गणित एवं प्रोद्योगिकी की सामग्री का शब्दानुवाद करना पड़ता है । उच्च स्तर की गणित व उच्च प्रौद्योगिकीय सामग्री का अनुवाद 'शब्दानुवाद' के रूप में करना पड़ता है । शब्दानुवाद यह शब्द 'शब्द+अनुवाद' से बना है । अंग्रेजी में शब्दानुवाद के लिए लिटरल

ट्रांसलेशन, वर्बल ट्रांसलेशन, 'वर्ड फॉर वर्ड ट्रांसलेशन' जैसे नामों का प्रयोग किया जाता है । शब्दानुवाद के कई उपभेद किये जा सकते हैं -

शब्दशः अनुवाद

शब्दानुवाद शाब्दिक अनुवाद शब्दाश्रयी अनुवाद

(i-i) शब्दशः अनुवाद

इसके अनुसार मूल पाठ के शब्द क्रम के अनुसार अनुवाद प्रस्तुत किया जाता है । यह अनुवाद अच्छा नहीं माना जाता । प्रत्येक भाषा की अपनी पद्धति होती है । लक्ष्य भाषा की पद्धति का ध्यान नहीं रखना इस अनुवाद का बड़ा दोष है । बाईबिल के पुराने अनुवाद इसी शैली में हुए है । इस प्रकार के अनुवाद में बोधगम्यता कम होती है । शब्दशः अनुवाद के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

I am directed to

मैं हूँ निर्देशित को

What are you doing?

क्या हो तुम कर रहे ।

(i-ii) शाब्दिक अनुवाद

इस प्रकार के अनुवाद में लक्ष्य भाषा की वाक्य रचना के अनुसार मूल के प्रत्येक शब्द का कोशीय अनुवाद प्रस्तुत किया जाता है । सरकारी अनुवाद तथा हिन्दी समाचार पत्रों हेतु अंग्रेजी सामग्री से किए गये अनुवाद में शाब्दिक अनुवाद का रूप देखा जा सकता है । इस प्रकार के अनुवाद को करते समय अनुवादक को देखना चाहिये कि मूल भाषा में अभिव्यक्त भाव अनुवाद में भी व्यक्त हो पा रहा है अथवा नहीं प्रत्येक शब्द पर ध्यान देने के कारण यह अनुवाद उत्कृष्ट नहीं माना जा सकता उदाहरणार्थ-

To throw light upon पर प्रकाश डालना (जबकि हिन्दी की प्रकृति के अनुसार अनुवाद होना चाहिए ('विचार करना') Meeting Point 'मिलन बिन्दु' जबकि इसका उचित अनुवाद 'मिलने का स्थान' होना चाहिये । इसी प्रकार अंग्रेजी में - 'पेट में चूहे दौड़ रहे है ।

Rates are running in stomuch जबकि होना चाहिए (Felling Hungry)

छोटी-छोटी बातें-Small Small talks जबकि होना चाहिये (Little talks)

वस्तुतः इस प्रकार के अनुवाद की लक्ष्य भाषा पर स्त्रोत भाषा का प्रभाव रहता है । मुहावरेदार अभिव्यक्तियों का शाब्दिक अनुवाद प्राय: संभव नहीं होता ।

(i-iii) शब्दाश्रयी अनुवाद

शब्दानुवाद का सर्वोत्तम अनुवाद शब्दाश्रयी अनुवाद है । इसे समतुल्य अनुवाद भी कहा जा सकता है । इसमें स्त्रोत भाषा की अभिव्यक्तियों का लक्ष्य भाषा में अन्तरण करते समय समतुल्यता पर ध्यान रखा जाता है । तथ्यात्मक साहित्य के अनुवाद के लिये इस प्रकार का अनुवाद ही उपेक्षित होता है इस अनुवाद का दोष यही है कि इसमें स्रोत भाषा की भाषिक संरचना की छाया मौजूद रहती है । इस कारण अनुवाद का पाठ प्रवाह आसान नहीं रहता । उदाहरणार्थ - Opinion seems to be devided on the issue इसका हिन्दी अनुवाद (इस

प्रश्न पर मत विभाजित प्रतीत होता है ।) इस प्रकार का अनुवाद स्रोत भाषा की सम्पूर्ण छाया लेकर चलता है । डी भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'त्रुटियों से बचकर सर्तकता पूर्वक किया गया बढ़िया शब्दानुवाद ही वास्तविक अनुवाद है, बशर्ते वह मूल के भाव को सफलता पूर्वक लक्ष्य भाषा में व्यक्त करने में समर्थ हो । '

(II) भावानुवाद

इस प्रकार के अनुवाद में मूल के शब्द पदबन्ध वाक्यों का अनुवाद करने के स्थान पर उसके अर्थ और भाव का अनुवाद किया जाता है । सर्जनात्मक कृतियों में भावानुवाद ही उचित होता है । इसमें भाव संवेदना के साथ अनुवादक की अपनी शैली की छाप मिलती है । इस अनुवाद की कमी यह है कि अनुवादक इसमें मूलकृति से आजादी लेकर अपनी इच्छा से लिखता है । डॉ. जी गोपीनाथन ने इस प्रकार के अनुवाद के लिये ही परकाया प्रवेश' की प्रक्रिया की संज्ञा दी है । अंग्रेजी में 'सेंस-फार-सेन्स' इसी प्रकार के अनुवाद को कहा जाता है । भावानुवाद मात्र भाषान्तरण नहीं हो सकता । इसमें अर्थ की गंभीरता भी होनी चाहिये । भावानुवाद में मूल कृति के समकक्ष ही पाठक को अनूदित कृति पढ़ते समय भावों का आस्वादन होना चाहिये । कालिदास के संस्कृत नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम का डी. पी. लाल द्वारा किया गया अंग्रेजी अनुवाद तथा फारसी कवि उमर खैयाम की रूबाइयों का फिटज जेराल्ड द्वारा प्रस्तुत अंग्रेजी अनुवाद भावानुवाद के श्रेष्ठ नमूने हैं ।

(III) छायानुवाद

इस प्रकार के अनुवाद में मूल रचना की छायामात्र रहती है भावानुवाद में मूल कृति के भाव का अनुवाद किया जाता है वही छायानुवाद में मूलकृति के समग्र 'प्रभाव' का अनुवाद किया जाता है । डॉ. विश्वनाथ अम्मर के अनुसार 'मूल कृति पढ़ने के बाद अनुवादक ने जो समझा था, जो अनुभव किया, उसके मन पर जो प्रभाव पड़ा उसके संदर्भ में वह मूल पाठ का लक्ष्य भाषा में रूपान्तरण करता है उसे छायानुवाद कहा जाता है । इसमें अनुवादक को छूट रहती है कि वह मुख्य भाव को लेकर पाठ रचना करे । यह एक स्वतंत्र रचना होती है । वस्तुत: यह एक प्रकार का पुन: सृजन होता है । इसे अंग्रेजी में (Free Translation) कहते है ।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के शब्दों में 'छायानुवाद ऐसे अनुवाद को कहा जाना चाहिए जो शब्दानुवाद की तरह मूल के शब्दों का अनुसरण न करे, अपितु दोनों दृष्टियों से मुक्त होकर उसकी छाया लेकर चले ।'

साहित्यिक लेखों में छायानुवाद के उदाहरण प्राय: देखे जा सकते हैं ।

(IV) रूपान्तरण

रूप परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर कर किया अनुवाद रूपान्तरण कहलाता है छायानुवाद की एक विधा को रूपान्तरण (Adaptation) कहा जाता है । इस शब्द का अर्थ है रूप को बदलना । इसमें रूपान्तरण कर मूल के पात्रों के नाम, देशकाल या वातावरण आदि में परिवर्तन भी किये जाते हैं और नहीं भी ।

जैसे भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने शेक्सपीयर के 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का अनुवाद 'दुर्लभ बन्धु अर्थात 'बंगपुर का महाजन' नाम से किया था । इसके पात्र एन्टोनियो को अनन्त, वेसानियो की

बसन्त तथा पोर्शिया को 'पुर श्री' नाम दिये । डॉ. विश्वनाथ अय्यर इसे 'प्रतिरोपण' की संज्ञा देते है । पंचतंत्र की कथाओं से रूपान्तरित होकर बनी 'ईसप की नीतिकथाएँ रूपान्तरण का प्राचीनतम उदाहरण है । विभिन्न प्रान्तों की लोककथाओं में समानता का होना रूपान्तरण का ही प्रतिफल माना जा सकता है । साहित्य में रूपान्तरण के अनेक उदाहरण मिलते हैं । रेडियो व दूरदर्शन पर विविध प्रकार के रूपान्तरण, जैसे कथा रूपान्तरण, नाट्यरूपान्तरण देखने व सुनने को मिलते हैं । रूपान्तरण एक कठिन कार्य है । जैसे पौधे को विदेशी धरती से उखाड़कर निजी धरती पर अपनी धरती और जलवायु के अनुरूप ढालना । इसके लिये अत्यन्त कुशलता व सावधानी की आवश्यकता होती है । ठीक इसी प्रकार रूपान्तरण कार्य होता है । एक भाषा की किसी कृति को अन्य भाषा में इस प्रकार रूपान्तरित करना कि वह विदेशी ज्ञात न हो सके यह रूपान्तरण की समस्या है । इसके लिये रूपान्तरणकार को दोनों भाषा का ज्ञान मूल कृति में चित्रित परम्परा, प्रथा, स्थान, सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश का ज्ञान होना आवश्यक है । संचार माध्यमों में रूपान्तरण बहु प्रचलित है । अत: रूपान्तरण को श्रेष्ठ अनुवाद कहा जा सकता है ।

(V) व्याख्यानुवाद

व्याख्यानुवाद को भाष्यानुवाद या टीकानुवाद भी कहा जाता है । अनुवाद का यह रूप भारत में प्राचीन काल से प्रचलित है । संस्कृत के अनेकानेक आर्ष ग्रंथों के भाष्य और टीका इसके उदाहरण है । विज्ञान एवं शिक्षण के क्षेत्र में कक्षाओं, पाठ्य पुस्तकों, शोध पत्रों आदि का भाष्यानुवाद किया जाता है । उदाहरणार्थ अरस्तु के 'काव्यशास्त्र एवं लोंजाइनस के 'पेरिइप्सुस' के अंग्रेजी व हिन्दी में किये अनुवाद इस कोटि में आते हैं । भोलानाथ तिवारी व्याख्यानुवाद को स्पष्ट करते हुए कहते हैं - 'इसमें मूल व्याख्या के साथ अनुवाद होता है । स्पष्ट ही व्याख्या व्याख्याता के व्यक्तित्व, ज्ञान तथा दृष्टिकोण पर आधारित होती है तथा उसमें कथ्य के स्पष्टीकरण के लिए कुछ अतिरिक्त उदाहरण, उद्धरण, प्रमाण इत्यादि जोड़े जा सकते हैं । इसी कारण व्याख्यानुवाद में अनुवादक केवल अनुवादक न रहकर काफी महत्वपूर्ण हो जाता है । "

व्याख्यानुवाद जटिल कर्म है क्योंकि. इसमें मूल की सूत्रात्मक व अस्पष्ट बातों का स्पष्ट बातों का स्पष्ट रूप से विश्लेषण विवेचन होता है । अत: इसमें व्याख्यानुवादक को विशेष सावधानी व सतर्कता रखनी पड़ती है । अन्यथा मूल कथ्य के स्वरूप के बिगड़ने के साथ मूल कृति के साथ अन्याय होने का भय बना रहता है वर्तमान में 'गीता' पर तिलक और विनोबा भावे के गीता-भाष्य' इसी प्रकार के अनुवाद है । गीता और बाइबिल के जितने भाष्यानुवाद लिखे गये शायद अन्य ग्रंथों के नहीं किए गये हैं ।

(VI) सारानुवाद

सारानुवाद मुख्य कथ्य का अनुवाद होता है । मूल पाठ से सार रूप में किये जाने वाला अनुवाद सारानुवाद होता है । सरकारी कागजात और लोकसभा व विधान सभाओं की कार्यवाही, सेमिनार का सारानुवाद या 'जिस्ट ट्रांसलेशन' किया जाता है । यह संक्षिप्त, अतिसंक्षिप्त, अत्यन्त संक्षिप्त कई प्रकार का हो सकता है । अपनी संक्षिप्तता, सरलता, स्पष्टता तथा लक्ष्य भाषा के स्वाभाविक सहज प्रवाह के कारण सारानुवाद अधिक उपयोगी होता है । पत्रकारिता एवं

लम्बे भाषणों के तत्काल अनुवाद में भी अनुवाद का यही रूप होता है । मूल पाठ के स्त्रोत भाषा में तैयार सार का अनुवाद सारानुवाद होते हुए भी वास्तव में शब्दानुवाद ही होता है । इस अनुवाद में विस्तृत कथ्य को सार-संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है ।

(VII) वार्तानुवाद

इस प्रकार के अनुवाद को आशु अनुवाद तथा अंग्रेजी में Interpretative Translation कहा जाता है । यह एक दुभाषिया कर्म है जिसमें मूल वक्ता के वक्तव्य का लक्ष्य भाषा में दुभाषिये द्वारा तत्काल भाषान्तरण किया जाता है । लिखित अनुवादक के पास समय होता है लेकिन दुभाषियो के पास समय नहीं होता उसे तत्काल अनुवाद करना होता है । इसके लिये दुभाषियों को वक्ता के वक्तव्य की विषय वस्तु के साथ महत्वपूर्ण सामाजिक सांस्कृतिक, राजनैतिक व आर्थिक मुद्दों की जानकारी होना चाहिये । उसे सामान्य-ज्ञान भी होना चाहिये । जिससे वह वक्ता की बात को ठीक से सम्प्रेषित कर सके । भोलानाथ तिवारी कहते हैं कि - 'दुभाषिया द्वारा किए जाने वाले अनुवाद को किसी अन्य अधिक शब्द के अभाव में, मैं वार्तानुवाद की संज्ञा देना चाहूँगा । "

(VIII) अनुसृजन

साहित्य के अनुवाद में खासकर पद्य के अनुवाद में भावात्मक अनुवाद की प्रक्रिया अपनाई जाती है । अच्छे कवि ही कविता का सफल अनुवाद कर सकते है । वे भावात्मक अनुवाद से एक कदम आगे रहते हैं क्योंकि वे मूल कवि का भाव ग्रहण करने के बाद उसके आधार पर अपनी कविता रचते हैं इसे अनुसृजन कहा जाता है । अंग्रेजी में इसे (Transcreation) कहते हैं । अनुसृजन करते समय अनुवादक मूल कविता के क्रम आदि में परिवर्तन, कुछ कांट छांट कर दे संभव है । इसके लिये अनुवादक का प्रतिभा सम्पन्न होना आवश्यक है । अन्यथा अनुसृजन में मूल कवि की रचना की गरिमा को हानि पहुँच सकती है । क्योंकि मूल लेखक द्वारा एक बार रचना का सृजन हो चुका है अनुवाद उसका दुबारा सृजन करता है । अनुसृजन का सबसे अच्छा उदाहरण फिट्जेराल्ड कृत उमरखैयाम की 'रूबाइयत' का अनुवाद अनुसृजन की कोटि में ही आता है ।

फिट्जेराल्ड ने अंग्रेजी में 'रूबाइयत' का अनुवाद किया वह अनुवाद अत्यन्त लोकप्रिय होकर संसार की विभिन्न भाषाओं में फिट्जेराल्ड के अंग्रेजी अनुवाद का अनुवाद हुआ । यह अनुसृजन श्रेष्ठ अनुवाद था । आजकल साहित्य के अनुवादक 'अनुसृजन' को अधिक पसन्द कर रहे है । नेशनल बुक ट्रस्ट और साहित्य अकादमी किसी भी भारतीय भाषा की रचना को अखिल भारतीय स्तर पर प्रकाशनार्थ स्वीकार कर उसका पहले हिन्दी में अनुवाद करवाती है उसके बाद हिन्दी अनुवाद से अन्य भाषाओं में उस कृति का अनुवाद प्रकाशित किया जाता है ।

8.5.5 अनुवाद प्रक्रिया के आधार पर

हम अनुवाद के विविध प्रकारों की चर्चा में अनुवाद प्रक्रिया के आधार पर अनुवाद के भेद को छोड़ नहीं सकते अनुवाद की प्रक्रिया के अनुसार इसके दो भेद किये जा सकते हैं -

(क) पाठधर्मी अनुवाद

(ख) प्रभावधर्मी अनुवाद

(क) पाठधर्मी अनुवाद

इस प्रकार के अनुवाद में कथ्य और अभिव्यक्ति की सघनता का महत्व होता है । यह अनुवाद वाक्य विन्यास और अर्थ विन्यास पर आधारित होता है । डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव तथा डी. कृष्ण कुमार गोस्वामी के अनुसार 'पाठधर्मी अनुवाद का आयाम पाठ को स्वायत्त एवं स्वनिष्ठ मानता है और अनुवादक को पाठ से बाहर जाने की छूट नहीं देता । पाठ की भाषा के विभिन्न स्तरों पर वह पहले अध्ययन-विश्लेषण करता है और उसमें निहित अर्थ को अनूदित पाठ व्यंजित करने के लिए मूलकृति की संरचना और बनावट को अपना मॉडल बनाता है।"

विधि साहित्य की सामग्री की अनुवाद प्रक्रिया अनिवार्य रूप से पाठधर्मी होती है ।

(ख) प्रभावधर्मी अनुवाद

इस प्रकार के अनुवाद में मूल पाठ के प्रभाव को अनुवाद का आधार बनाया जाता है प्रभावधर्मी अनुवाद में अनुवादक को केवल इतना ध्यान रखना पड़ता है कि अनूदित कृति का भी वही प्रभाव पडे जो मूलकृति का पाठकों पर पड़ता है अर्थात इसमें लक्ष्य भाषा में समतुल्य प्रभाव का सृजन किया जाता है । अनुवादक को इस अनुवाद में ध्वनि, शब्द पद, वाक्य आदि सभी स्तरों पर मूल के साथ चलना पडता है अर्थ के साथ चलना पड़ता है अन्यथा वह अनुवाद नहीं अकृति ही प्रतीत होगी । प्रभावधर्मी अनुवाद में प्रभाव ही सर्वेसर्वा होता है ।

8.5.6 भाषिक माध्यम के आधार पर

अनुवाद की प्रकृति की दृष्टि से अनुवाद कर्म में प्रयुक्त भाषिक (भाषा ही नहीं) माध्यम से अनुवाद के भेदों का वर्गीकरण इस अवधारणा पर आधारित है कि अनुवाद लक्ष्य भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा किया जाय । इस प्रकार के अनुवाद में अनुवाद लक्ष्य भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा किया जाता है । इसे प्रतीक व्यवस्था कहा जा सकता है रोमन याकोब्सन ने प्रतीकान्तरण की इस अवधारणा के आधार पर अनुवाद के तीन भेद किये हैं । ये इस प्रकार है-

(i) अंत: भाषिक अनुवाद -

किसी भाषा की एक प्रकार की प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ को उसी भाषा की अन्य प्रकार की प्रतीक व्यवस्था में व्यक्त करना अन्त: भाषिक अनुवाद कहलाता है क्योंकि प्रत्येक भाषा में केवल एक ही प्रतीक व्यवस्था नहीं होती । जैसे- 'धन्यवाद' शब्द के लिये शुक्रिया, साधुवाद शब्दों का प्रयोग, अत: यह भाषिक अनुवाद कहलायेगा । प्रेमचन्द का आरम्भिक लेखन उर्दू-शैली में बाद में हिन्दी शैली में लेखन व प्रकाशन होना शेक्सपीयर के पद्य बद्ध नाटकों का चार्ल्स लेब द्वारा गद्य में लिखा जाना अन्वयान्तर या अंत: भाषिक अनुवाद ही था ।

(ii) अन्तरभाषिक अनुवाद -

एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ को दूसरी भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त करना या एक भाषा के कथ्य को दूसरी भाषा में अंतरित करना भाषान्तरण या अन्तर भाषिक अनुवाद कहलाता है । यह वास्तविक अनुवाद होता है इसमें अनुवादक को मूल भाषा के साथ लक्ष्य भाषा का भी उतना इत्रन होना आवश्यक है । विमल मित्र, तकषि, यू आर

अनन्तमूर्ति पन्नालाल पटेल के कथा साहित्य का हिन्दी में अनुवाद अन्तरभाषिक अनुवाद के ही उदाहरण है ।

(iii) अन्तरप्रतीकात्मक अनुवाद -

प्राचीन समय से ही प्रतीक किसी न किसी रूप में विचारों को अभिव्यक्त करते रहे हैं । जैसे हिन्दी के खतरा' शब्द को लाल क्रास में व्यक्त करना, यातायात में लाल, हरी., पीली बत्ती का प्रयोग । कविता में व्यक्त भाव को चित्रकार का चित्रों द्वारा व्यक्त करना, यह अन्तर-प्रतीकात्मक अनुवाद है । ऐतिहासिक इमारतों पर चित्रकथाओं का अंकन । हिन्दी में तो इसके कई उदाहरण उपलब्ध हैं । मन्नू भण्डारी की कहानी 'यही सच है' पर रजनीगंधा फिल्म, रेणू की 'तीसरी कसम' उर्फ मारे गये गुलफाम पर तीसरी कसम' फिल्म बनाई गई । इसी प्रकार दूरदर्शन पर विश्व प्रसिद्ध कहानियों का रूपान्तरण प्रस्तुत किया जाता रहा है । जैसे कथा-सागर नामक कार्यक्रम विश्व प्रसिद्ध कहानियों का अनुवाद था । 'शकुन्तल' नाटक के दृश्यों को रवि वर्मा ने चित्रों द्वारा अंकित किया है । ये अन्तर प्रतीकात्मक अनुवाद का उदाहरण कहे जा सकते है ।

उपर्युक्त तीनों प्रकार अन्त: भाषिक, अन्तर-भाषिक, अंतर प्रतीकात्मक माध्यम को आधार बनाकर ही विभाजित किये गये हैं ।

8.5.7 भाषा प्रकार के आधार पर

भाषा प्रकार के अन्तर्गत अनुवाद उपादान सापेक्ष और रूप सापेक्ष होता है । उपादान सापेक्ष में लिखित व मौखिक अनुवाद दोनों महत्वपूर्ण हैं । लिखित अनुवाद लिखकर किया जाता है तो मौखिक अनुवाद बोलकर किया जाता है ।

1. लिखित अनुवाद -

प्राचीनकाल से ही लिखित अनुवाद होता आया है । लिखित अनुवाद अत्यन्त श्रमसाध्य होता है क्योंकि इसमें अनुवादक को पाठ पठन, विश्लेषण, समायोजन जैसी लम्बी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है । आधुनिक युग में. लिखित अनुवाद को सुरक्षित रखने के कई साधन हो गये हैं, जैसे कम्प्यूटर की मेमोरी या फ्लॉपी में रखना । इसे वर्षो तक सुरक्षित रखकर इसका लाभ उठाया जा सकता है । लिखित अनुवाद, भविष्य के अनुवादकों के लिये दिशा निर्देश करता है, उनका सहायक होता है । अत: लिखित अनुवाद अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

2. मौखिक अनुवाद

अनुवाद को जब लिखने के स्थान पर बोल कर किया जाता है, वह मौखिक अनुवाद कहलाता है । मौखिक अनुवाद उतना ही प्राचीन है जितनी मानवीय सभ्यता । दुभाषिया यहाँ महत्वपूर्ण होता है । उसका स्त्रोत भाषा व लक्ष्य भाषा दोनों में पारंगत होना आवश्यक है । यह भाषान्तरण भी कहलाता है । दो भाषा-भाषियों के बीच यह सेतु का कार्य करता है । आज जब विश्व के सभी देश एक-दूसरे से आदान प्रदान कर रहे हैं । वहाँ इस प्रकार के अनुवाद का महत्व और बढ़ गया है । इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक वक्ता का भाव ग्रहण करके उचित लक्ष्य भाषा में अनूदित करके सुनाता है । मौखिक अनुवाद में अनुवादक को तीन बातें- वक्ता

का कथन समझना, मन ही मन अनुवाद, लक्ष्य भाषा में उसे अभिव्यक्त करना प्रमुख होती है । तभी वह कुशलता से मौखिक अनुवाद कर सकता है।

रूप सापेक्ष अनुवाद में गद्य का अनुवाद गद्य में तथा पद्य का अनुवाद पद्य रूप में करना मुख्य है । माध्यम के आधार पर तीसरा अनुवाद प्रकार लेखन प्रकार है । इसके अन्तर्गत स्त्रोत भाषा के शब्दों का लक्ष्य भाषा में लेखन होता है । स्त्रोत भाषा के अनेक शब्दों को उसी रूप में लक्ष्य भाषा की लिपि में उतारना होता है । जैसे व्यक्तिवाचक संज्ञा स्थानबोधक शब्द अनेक सांस्कृतिक शब्द आदि इनको कभी उच्चारण के अनुसार लक्ष्य भाषा में लिखते हैं तो कभी लक्ष्य भाषा को लिपि के अनुसार लिखते हैं ।

8.5.8 अन्य प्रकार

सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दियों में धर्मेत्तर ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवाद हुए । इस युग के अनुवाद चिंतको में अब्राहम काउली व ड्राइडन प्रमुख थे । ड्राइडन को अंग्रेजी साहित्य में अनुवाद का जनक कहा जाता है । ड्राइडन ने अनुवाद के तीन प्रकार बताए हैं -

(1) शब्दानुवाद (मेटाफ्रेज). शब्द प्रति शब्द या पंक्ति प्रति पंक्ति अनुवाद ।

(2) भावानुवाद (पैराफ्रेज). लेखक की कृति के भाव पर ध्यान रखते हुए शब्दों के स्थान पर भावों का अनुवाद ।

(3) अनुकरण (इमिटेशन) मूल कृति की रक्षा के लिए मूल के शब्दों और भावों में परिवर्तन करके अनुवाद । इन तीनों भेदों को प्राय: विद्वानों ने स्वीकार किया है ।

केसाग्रान्डे: के अनुसार अनुवाद के चार प्रकार हैं -

(1) व्यावहारिक अथवा परिणामवादी अनुवाद - इसके अन्तर्गत अनुवाद का सटीक होना आवश्यक है सौंदर्यपरक होना नहीं । वैज्ञानिक व तकनीकी अनुवाद इसके अन्तर्गत आते हैं ।

(2) सौंदर्यपरक अनुवाद- यह साहित्यिक अनुवाद के लिये आवश्यक है इसमें संवेदना, भावप्रवणता का होना आवश्यक है ।

(3) संस्कृतिपरक: अनुवाद - इस प्रकार के अनुवाद में संस्कृति शब्द का महत्व होता है मूल सामग्री में अभिव्यक्त संस्कृति को अखंड रखते हुए अनुवाद होना चाहिए ।

(4) भाषाशास्त्रीय - मूल व लक्ष्य भाषा के भाषा वैज्ञानिक आधार पर यह अनुवाद किया जाता है इस अनुवाद में भाषायी परिपक्वता आवश्यक है । कम्प्यूटर द्वारा किए जाने वाले अनुवाद इसी श्रेणी में आते है ।

केटफोर्ड: - केटफोर्ड: ने अनुवाद के तीन प्रकार बताये हैं -

(1) पाठ विस्तार के आधार पर अनुवाद को पूर्ण और आशिक रूप से विभाजित किया है ।

(2) भाषा के स्तर आधार पर अनुवाद को समस्त और सीमित प्रकारों में बाँटा गया है । इसके अन्तर्गत ध्वनि शब्द, लिपि, रूप व्याकरण का सीमित व समस्त स्तर पर अनुवाद किया जाता है । समस्त में एक इकाई का अनुवाद किया जाता है जबकि सीमित में सीमित स्तर पर अनुवाद होता है ।

(3) श्रेणी के आधार पर अनुवाद को मुक्त, शाब्दिक और मध्यमार्गी अनुवाद में विभाजित किया गया है । उपर्युका विवेचन में भारतीय व पाश्चात्य अनुवाद चिन्तकों के अनुवाद सम्बन्धी विचार व प्रकार प्रस्तुत किये गये है । अनुवाद के सभी प्रकार महत्वपूर्ण है किसी में भाषिक पक्ष पर विचार किया जाता है । तो किसी में विचार पक्ष पर । अच्छे अनुवाद में भाषा व विचार दोनों महत्त्वपूर्ण पक्षों पर विचार किया जाता है । कोई भी अनुवाद सम्पूर्ण नहीं हो सकता । अनुवाद के विविध प्रकारों में विभाजित करके इसको समझा अवश्य जा सकता है ।

8.6 अनुवादक के साधन एवं उपकरण

प्रत्येक तकनीकी कार्य करने के लिये कुछ विशिष्ट साधन व उपकरण आवश्यक होते हैं । उसी प्रकार अनुवाद जैसे महत्वपूर्ण कार्य को करने के लिये उचित साधन व उपकरणों का होना अत्यन्त आवश्यक है । किसी भी अनुवादक को अनुवाद कार्य के लिये विभिन्न प्रकार के शब्दकोश पारिभाषिक शब्द संग्रह, लोकोक्ति मुहावरा कोश, पर्यायवाची कोश आदि का आश्रय लेना पड़ता है । स्त्रोत भाषा के अच्छे शब्दकोश यदि द्विभाषी हों तो अनुवादक को सुविधा हो जाती है । अनुवाद के साधन का प्रयोग करने के लिये अनुवादक का योग्य होना पहली शर्त है । व्यक्ति अनुवादक के संदर्भ में यह आवश्यक है कि उसमें अनुवाद की नैसर्गिक प्रतिमा हो, साथ ही उसे व्याकरण और भाषा व्यवस्था की दृष्टि से स्त्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा का सम्यक ज्ञान होना चाहिये । आज अनुवाद कार्य का क्षेत्र बढ़ गया है । विज्ञान, प्रौद्योगिकी, तकनीक आदि से सम्बन्धित सामग्री के अनुवाद हेतु अनेक पारिभाषिक शब्द संग्रह (भौतिक, रसायन, जीवविज्ञान, आयुर्विज्ञान, इंजीनियरिंग) आदि से सम्बन्धित शब्दावलियों के कोश अलग-अलग प्रकाशित हो गये हैं । अत: इन सब सामग्री का होना अत्यन्त आवश्यक है । जिससे अनुवादक अपना अनुवाद कार्य उचित व सही ढंग से कर सके । विविध क्षेत्रों में हो रहे अनुवाद कार्यो में उस क्षेत्र विशेष की पर्याप्त जानकारी, संदर्भ व शब्दावली का ज्ञान अनुवादक को अवश्य होना चाहिये ।

8.7 सारांश

अनुवाद कार्य से तात्पर्य 'एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव समान व सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास है ।' वर्तमान में अनुवाद कार्य का क्षेत्र मौखिक क्षेत्र से बढ़कर विज्ञान, तकनीकी, संचार, पर्यटन, विधि, धर्म, दर्शन शिक्षा आदि तक व्यापक हो गया है । अनुवाद को भारतीय व पाश्चात्य अनुवाद चिन्तकों ने अनुवाद की प्रक्रिया प्रकृति व भाषिक आधार पर कई भागों में वर्गीकृत किया है । अनुवाद कार्य के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व अन्य दृष्टि से एक दूसरे के करीब आया है इससे एक देश को दूसरे देश की उपलब्धियों व विकास कार्यो की जानकारी व सहयोग प्राप्त हुआ है । अनुवाद द्वारा विविध भाषा-भाषी एक दूसरे से अनभिज्ञ न होकर परिचित हो गये हैं और एक-दूसरे देशों में आदान-प्रदान द्वारा ज्ञान व विज्ञान तकनीकी का लाभ उठा रहे है । अनुवाद कार्य में अनुवादक को परिभाषिक शब्दावली, पर्यायवाची कोष,

मुहावरा कोष, विज्ञान कोष, अलग-अलग क्षेत्रों से सम्बन्धित शब्दावली के कोष के साथ अनुवादक को मूल भाषा व लक्ष्य भाषा के ज्ञान के साथ व्याकरण का भी उचित ज्ञान होना आवश्यक है ।

8.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अनुवाद किसे कहते है? भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषा से स्पष्ट कीजिए ।
2. अनुवाद की आवश्यकता क्यों होती है? अनुवाद कार्य की बढ़ती आवश्यकता को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समझाइये ।
3. ई.ए. नायडा द्वारा बताये गये अनुवाद के विविध प्रकारों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए ।
4. अनुवाद की प्रकृति के आधार पर अनुवाद के वर्गीकरण को समझाइये ।

8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. सत्यदेव मिश्र, डॉ. समाश्रय सविता; **अवधारणा और आयाम,** सुलभ प्रकाशन, लखनऊ ।
2. डॉ. भ. ह. रुककर, डॉ. राजमल बोरा, **अनुवाद क्या है,** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली ।
3. डॉ. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर; **अनुवादकला,** प्रभात प्रकाशन, दिल्ली ।
4. डॉ रामप्रकाश कुलश्रेस्ठ, डॉ विजय कुलश्रेष्ठ; **प्रयोजन मूलक हिन्दी,** पंचशील प्रकाशन जयपुर ।
5. डॉ. आदिनाथ: सोनटक्के; **अनुवाद सिद्धान्त एवं प्रयोग,** चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर ।
6. डॉ. बापूराव देसाई, **प्रयोजन मूलक हिन्दी व्याकरण एवं पत्र लेखन,** विनय प्रकाशन, कानपुर ।

इकाई - 9

अनुवाद की प्रक्रिया, क्षेत्र और महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 अनुवाद की परम्परा

9.2.1 अनुवाद की भारतीय परम्परा

9.2.2 अनुवाद की पाश्चात्य परम्परा

9.3 अनुवाद की प्रक्रिया

9.4 अनुवाद के क्षेत्र

9.5 हिन्दी साहित्य में अनुवाद की परम्परा

9.6 अनुवाद का महत्व

9.7 सारांश

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.9 संदर्भ गन्ध

9.0 उद्देश्य

इससे पूर्व इकाई में आपने अनुवाद की परिभाषा व स्वरूप प्रकार का अध्ययन किया है, अब प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :-

- अनुवाद की भारतीय व पाश्चात्य परम्परा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- अनुवाद की प्रक्रिया को समझ सकेंगे ।
- अनुवाद के प्रयोग व अध्ययन क्षेत्र की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- हिन्दी साहित्य में अनुवाद की परम्परा समझ सकेंगे ।
- अनुवाद का महत्व व उसकी सीमाओं को समझ सकेंगे ।

9.1 प्रस्तावना

हमारे देश में प्राचीन युग में ही संस्कृत की सुदृढ़ भाष्य परम्परा थी किन्तु आधुनिक अर्थ में अनुवाद का विकास बीसवीं सदी की देन है । भारतवर्ष जैसे बहुभाषी देश में अनुवाद की आवश्यकता हमेशा बनी रहती है । वर्तमान में विश्वविद्यालयों में अनुवाद का शिक्षण-प्रशिक्षण भी दिया जा रहा है । अनुवाद की आवश्यकता, परम्परा व तकनीक, प्रविधि, प्रक्रिया और विषय क्षेत्र के संबंध ये काफी अध्ययन हो चुका है । आज अनुवाद एक स्वतंत्र अनुशासन है । साहित्य से अनुवाद का गहरा संबंध है क्योंकि भारतीय व पाश्चात्य दोनों भाषाओं में अनुवाद का विकास अपने प्रारम्भिक चरणों में साहित्यिक कृतियों के भावानुवाद, छायानुवाद अथवा भाष्यानुवाद से ही । प्रारंभ हुआ माना जाता है । विधि व शासन के अतिरिक्त तकनीकी साहित्य व मानविकी

साहित्य आदि अनुवाद के क्षेत्र माने जाते है । संस्कृतियों के विकास व परिवर्धन में अनुवाद में महत्वपूर्ण सेतु सिद्ध हो रहा है ।

9.2 अनुवाद की परम्परा

9.2.1 अनुवाद की भारतीय परम्परा

भारत में सदियों तक संस्कृत वाङ:मय की प्रमुखता थी । उसका प्राकृत, अपभ्रंश और देश की अन्य भाषाओं में अनुवाद किया जाता था । मुगल काल में तथा उसके पहले भी यहाँ फारसी के ज्ञाता रहे और उन्होने संस्कृत साहित्य की कृतियों का अनुवाद फारसी में किया । दाराशिकोह ने फारसी-पण्डितों से उपनिषदों का फारसी में अनुवाद कराया था । यहाँ से बौद्ध ग्रंथ विदेश ले जाकर चीनी में अनुवाद करने वाले चीनी तथा भारतीय विद्वान भी थे ।

सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में समान रुप से पाई जाने वाली प्रवृत्ति संस्कृत के पुराण, इतिहास और आध्यात्मिक ग्रंथों को अनुदित करने की है । इस दृष्टि से रामायण, महाभारत, भागवत, भगवद्गीता, उपनिषद आदि पूर्णत:, अंशत: एवं काव्याधार कथावस्तु के रुप में अनुवाद-क्षेत्र में आ गये । पंचतंत्र जयदेव का गीतगोविन्द कालिदास की सभी रचनाएँ - खासकर 'अभिज्ञान शाकुन्तल' और 'मेघ संदेश भारतीय भाषाओं में अनूदित किये गये हैं । फारसी तथा अरबी की लोकप्रिय रचनाओं का भी अनुवाद किया । उसी के फलस्वरुप सैहराब-रुस्तम लैला-मजनूं अरब की कहानियां, आदि कृतियाँ उनमें आ सकी है । ये रचनाएं उन्नीसवीं-बीसवीं सदियों में पहले अंग्रेजी में अनूदित होकर बाद में अंग्रेजी के माध्यम से भी अपनी भाषाओं में आई है ।

उन्नीसवीं-बीसवीं सदी में मुद्रण के प्रचार के साथ आधुनिक भारतीय अनुवाद परंपरा प्रारंभ होती है । उस युग में साहित्यिक 'सृजन में बंगाल अग्रणी रहा । बंगाल के बाद महाराष्ट्र का नाम आता है । कविता में भी टैगोर ने अंतर्राष्ट्रीय मानक स्थापित कर लिया । इसके फलस्वरुप सभी अन्य भारतीय भाषाएँ बंगला की कृतियों का अनुवाद बड़े जोर से करने लगीं । अब भी यह परंपरा चलती है ।

वर्तमान में किसी भाषा के खास लेखक का राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान सहसा उसकी रचनाओं के अनुवाद का कारण बनता है । प्रत्येक भाषा के विकास के लिए प्रयत्नशील सरकार -गैर-सरकारी संस्थाएँ चुने हुए साहित्यिकों की कृतियों का अनुवाद नियमित रुप से प्रस्तुत करती है । केन्द्रीय साहित्य अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट आदि संस्थाएँ, इस दिशा में प्रयत्नशील हैं । पत्रिकाएँ और गैर सरकारी भाषाओं के अनुवाद की परंपरा अब बड़ी सशक्त है।

9.2.2 अनुवाद की पाश्चात्य परम्परा

पश्चिमी जगत में. अनुवाद-चिंतन का प्रारंभिक केन्द्र रोम माना जाता है । अनुवाद का सबसे प्राचीनतम और प्रसिद्ध प्राप्त उदाहरण ई.पू. दूसरी शती में स्थापित रोसेट्टा शिलाफलक (रोसेट्टा स्टोन) पर मिलता है । उस शिला पर पुरानी मिस्त्री हेरोग्लीफिक एवं डेमोटिक लिपियों

और उनका ग्रीक में अनुवाद दिये गए हैं । मध्यम युग के पश्चिमी यूरोप में जो अनुवाद-कार्य हुआ वह क्लिष्ट धर्मग्रथियों तथा लैटिन में धर्म-विषयक सामग्री के अनुवाद तक सीमित रहा । नव जागरण युग में पश्चिमी यूरोप में अनुवाद की गति बड़ी तेज रही । सोलहवीं सदी में अनुवाद-क्षेत्र का सबसे बड़ा योगदान जर्मनी के मार्टिन लूथर का था ।

सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दियों में अनेक लोग धर्मेत्तर ग्रंथों के अनुवाद में प्रवृत हुए । ड्राइडेन ने अनुवाद की तीन शैलियाँ मानी है -

1. मैटाफेज - शब्द-प्रतिशब्द एवं पंक्ति-प्रति-पंक्ति भाषान्तरण ।
2. पैराफेज - लेखक की रचना पर ध्यान रखते हुए शब्दों की अपेक्षा भाव पर अधिक जोर।
3. इमिटेशन - अनुवादक मूल के शब्द व अर्थ को बदलने की आजादी ही नहीं लेता, बल्कि मूल के भाव को ध्यान में रखते हुए मूल शब्द व भाव की कुछ छोड़ देने की आजादी भी रखता है ।

मैथ्यू ऑर्नाल्ड अंग्रेजी साहित्य के बड़े समीक्षक तो थे ही, साथ ही वे बड़े अनुवाद-चिंतक भी थे । वे उन विशिष्ट पाठकों के लिए ग्रीक से अनुवाद करते थे जो मूल भाषा जानते थे और मूल रचना को सराह सकते थे । वे मूल रचना के प्रति अनुवादक के दायित्व पर बड़ जोर देते थे । उन्होने होमर काव्य के अनुवाद पर चार विद्वतापूर्ण भाषण दिये थे । इनका प्रकाशन 'ऑन ट्रान्सलेटिंग होमर' के शीर्षक से बाद में किया गया ।

बीसवीं सदी में अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अंग के रुप में एक नया वैज्ञानिक आयाम पा सका । सन् 1955 ई. से यूनेस्को के प्रश्रय से 'बाबेल' नामक अनुवाद पत्रिका का प्रकाशन होता आ रहा है । इस बहुभाषी पत्रिका में अनुवाद विज्ञान से सम्बन्धित प्रामाणिक लेख छपते हैं । जैसे एसी. कैटफोर्ड अनुवाद के भाषा वैज्ञानिक पक्ष पर प्रामाणिक विचार देते है ।

9.3 अनुवाद की प्रक्रिया

अनुवाद की क्या प्रक्रिया होती है अथवा अनुवाद किन-किन चरणों में सम्पन्न होता है । इस संबंध में विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत दिए हैं । डॉ. भोलानाथ तिवारी अनुवाद प्रक्रिया के पांच चरण मानते हैं -

1. पाठ-पठन 2. पाठ-विश्लेषण 3. भाषान्तरण
4. समायोजन 5. मूल से तुलना

नाइडा तथा कुछ अन्य चिन्तक -

1. पाठ-विश्लेषण 2. अन्तरण तथा 3. पुनर्गठन ये तीन चरण मानते है ।

डॉ. गोपीनाथन ने अनुवाद प्रक्रिया के दो पहलू माने हैं -

1. मूल पाठ्यसामग्री का विश्लेषण 2. समुचित समतुल्यता का निर्णय ।

संक्षेप में अनुवाद के निम्नलिखित चार चरण माने जा सकते हैं :-

1. **अर्थ सन्धान:** अनुवाद प्रक्रिया का प्रथम चरण स्रोत के पाठ का अर्थ संधान करना है । इस प्रक्रिया में मूल पाठ को मनोयोगपूर्वक पढ़कर अर्थ ग्रहण किया जाता है । अर्थ

ग्रहण के दौरान कोशों के साथ ही विषय के विशेषज्ञ की सहायता भी ली जाती है । अर्थ संधान की प्रक्रिया में अर्थ विज्ञान, अभिधा, लक्षणा व व्यंजना की प्रक्रिया से गुजर कर मूलार्थ को, लेखक की विचारधारा को हृदयंगम किया जाता है ।

2. **पाठ विश्लेषण :** पारिभाषिक शब्दों को तलाशना होता है । संस्कृतिमूलक शब्दावली, लोकोक्तियों और मुहावरों के लिए समान अर्थवत्ता वाले लक्ष्य भाषा में शब्द युग्म खोजने होते हैं तथा लक्ष्य भाषा की प्रकृति और संरचना के अनुसार अनुवाद अनुवाद की भाषिक योजना तैयार करनी होती हैं ।
3. **अंतरण और समायोजन :** यह अनुवाद प्रक्रिया का केन्द्रीय चरण है । इसमें स्रोतभाषा की सामग्री को अनुवादक लक्ष्य भाषा की निकटतम सहज समतुल्य अभिव्यक्तियों को समायोजित करके अंतरण करता है । इस प्रक्रिया में उसे एक से अधिक बार प्रारुप तैयार करना होता है तथा शब्दार्थ की दृष्टि से स्रोत भाषा के पाठ के अनुरूप लक्ष्य भाषा के पाठ को संयोजित और पुनर्गठित करना होता है ।
4. **परिष्कार और पुनर्गठन :** अनुवाद प्रक्रिया का यह अन्तिम चरण है । इस चरण के दौरान अनुवादक लक्ष्य भाषा की निजता, सहज प्रवाह, जीवंतता, शैली, वस्तुनिष्ठा, संप्रेषणीयता एवं दोषहीनता की दृष्टि से अनूदित सामग्री की जाँच करके अपेक्षित परिष्कार करता है ।

अनुवाद की अंतिम एवं सूक्ष्म प्रक्रिया तुलन-प्रक्रिया है । इस चरण में अनूदित पाठ की मूल से तुलना करके यह देखा जाता है कि विषय-वस्तु की दृष्टि से किसी स्थल पर अर्थ-संकोच, अर्थ-विस्तार, अर्थादेश एवं असंगति का दोष न हो और संपूर्ण सामग्री का लक्ष्य भाषा के पाठक के मन पर वही प्रभाव पड़े जो मूल सामग्री का स्रोत भाषा के पाठक पर पड़ता हो ।

9.4 अनुवाद के क्षेत्र

अनुवाद आजकल एक अनिवार्य प्रक्रिया सिद्ध हो चुकी है । अनुवाद का सबसे बड़ा क्षेत्र बातचीत का है । बातचीत में जब हम अपनी मातृभाषा से भिन्न भाषा में बोलते हैं तब हम खुद अनजाने में अनुवाद करते रहते हैं । साहित्य में विविध विधाओं के साथ ही साहित्येतर विषय भी अनुवाद के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं । अनुवाद के प्रमुख क्षेत्र इस प्रकार है :

1. **शासन - प्रशासन :** भारत की संघ सरकार की द्विभाषिक राजभाषा नीति के कारण देश में अनुवाद का एक लम्बा दौर आरम्भ हो चुका है । अत: सांविधिक एवं अंसाविधिक अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु हिन्दी में अधिकाधिक अनुवाद किया जा रहा है । इसके साथ ही केन्द्रीय और राज्य शासनों में राजभाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए द्विभाषिक नीति का अनुसरण किया जा रहा है । हिन्दी को राजभाषा घोषित किये जाने के फलस्वरूप यह आवश्यक हो गया कि शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए जरूरी सरकारी साहित्य राजभाषा में उपलब्ध कराया जाए । सन 1970 तक यह कार्य केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय सम्पादित करता रहा । बाद में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय को सौंपा गया वह कार्य गृह मंत्रालय को स्थानान्तरित कर दिया गया और मार्च, 1971 में केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो नामक अधीनस्थ कार्यालय की स्थापना हुई । भारत सरकार के

अनुवाद कार्य को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं - एक स्थायी महत्व की सामग्री जैसे-नियमावलियां, रजिस्टर, फार्म, कार्य विधि से संबंधित संहिताएं मैनुअल आदि । दूसरी कोटि में वह सामग्री आती है जिसका स्थानीय महत्त्व नहीं होता जैसे - संकल्प, सामान्य आदेश, अधिसूचनाएं, प्रेस विज्ञप्तियां, प्रशासनिक रिपोर्ट, सदन के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने वाले कागज, संधियां करार आदि । सांविधिक, जिसमें अधिनियम, अध्यादेश, बिल तथा सांविधिक नियमावलियों तथा उनके अंतर्गत बनाए गये फार्म शामिल हैं । विधि मंत्रालय के अधीन गठित राजभाषा (विधायी) आयोग प्रारंभ से ही इसके अनुवाद का कार्य कर रहा है तथा विधि महत्त्व की अन्य स्थायी सामग्री जिसमें लाइसेंस, परमिट, करार, टेंडर नोटिस आदि के अनुवाद प्रस्तुत करने का कार्य भी विधि मंत्रालय का राजभाषा खंड कर रहा है । दूसरी, गैर सांविधिक स्थायी सामग्री का अनुवाद कार्य केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो द्वारा किया जाता है । ब्यूरो में भारत सरकार के मंत्रालयों. विभागों तथा कार्यालयों का ही नहीं वरन उपक्रमों, निगमों एवं कम्पनियों आदि की सामग्री का अनुवाद कार्य उनके सहयोग से किया जाता है. । सरकारी साहित्य का स्वरूप इस प्रकार है -

1. सरकारी पत्र
2. अर्द्ध सरकारी पत्र
3. टिप्पणी (क) औपचारिक
   (ख) अनौपचारिक
4. अधिसूचनाएं
5. संकल्प
6. कार्यालय आदेश परिपत्र
7. पूछताछ/ निविदाएं / पूर्ति आदेश
8. प्रेस विज्ञप्ति / विज्ञापन
9. तार
10. प्रचार साहित्य
11. अपील सूचना
12. अन्तर्राष्ट्रीय संधि

2. संसदीय प्रणाली में अनुवाद : भारतीय संसद के दोनों सदनों - लोकसभा एवं राज्य सभा में प्रस्तुत किये जाने वाले अनेक दस्तावेज पहले अंग्रेजी में तैयार होते हैं किन्तु हिन्दी में भी उन्हें संसद में पेश करना अनिवार्य होता है । अत: उनका हिन्दी-अनुवाद किया जाता है । संसद में सांसद अंग्रेजी एवं विभिन्न भारतीय भाषाओं में अपने वक्तय देते हैं । उनके वक्तव्यों के हिन्दी तथा संविधान में स्वीकृत अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की व्यवस्था की जाती है । इसके साथ ही सांसदों के प्रश्न और उत्तर की

व्यवस्था हिन्दी तथा अंग्रेजी में अनिवार्य रुप से की जाती है । अनुवाद के इस कार्य में मशीनी उपकरणों की भी सहायता ली जा रही हैं ।

3. **शिक्षण-प्रशिक्षण :** विज्ञान एवं तकनीकी विषयों की उच्च शिक्षा तो अभी भी अंग्रेजी माध्यम से चल रही है किन्तु विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय के स्तर पर अनेक विषयों के शिक्षण / प्रशिक्षण का माध्यम हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ भी बनी हैं । अत: ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी महत्वपूर्ण पाठ्य पुस्तकों के निर्माण मे अंग्रेजी पुस्तकों से अनुवाद हमारी महती आवश्यकता है । इस क्षेत्र में अभी विपुल सामग्री का अनुवाद होना शेष है ।
4. **संस्कृति, धर्म, दर्शन :** विश्व स्तर पर देखा जाए तो सभी धर्मों की अपनी-अपनी विशिष्ट भाषाएँ रही है । धर्मों के प्रचार-प्रसार के साथ अन्य भाषा-भाषी भी उनके अनुयायी बन जाते हैं तो उनकी सुविधा के लिए धार्मिक ग्रंथों का लिप्यंतरण करना आवश्यक हो जाता है, यथा बंगाली मुसलमानों के लिए कुरान शरीफ के मूल पाठ का बंगला लिपि में अंतरण या गीता का देवनागरी से अन्य लिपियों में प्रकाशन और धर्म-प्रचारकों को धर्म-ग्रंथों की बातों को अनुयायियों की भाषाओं में अनुवाद करके बताना, समझाना पड़ता है, यथा हैदराबाद जैसे बहुभाषी शहर की चर्चा में अलग-अलग समय पर अंग्रेजी, मलयालम, तेलुगु, तमिल आदि भाषाओं में प्रार्थनाएं होती हैं । इसी कारण से बाइबिल का विश्व की अधिकांश भाषाओं में अनुवाद हो चुका है । भारतीय दर्शन के क्लासिक ग्रंथ श्रीमद भगवदगीता आदि ग्रंथों का अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हो चुका है । इसी प्रकार संस्कृत के मौलिक दार्शनिक ग्रंथों के अनुवाद हुए हैं और हो रहे हैं ।
5. **विधि और न्याय :** विधि एवं उच्च तथा उच्चतम न्यायालयों की भाषा प्राय: अंग्रेजी होती है । परन्तु निचले न्यायालयों की भाषा हिन्दी या प्रान्तीय भाषाएँ हैं । उच्च तथा उच्चतम न्यायालयों में अधिवक्ताओं द्वारा बहस, न्यायाधीशों द्वारा निर्णय तथा अन्य न्यायिक प्रक्रिया की भाषा अंग्रेजी ही है । इस क्षेत्र में अनुवाद की विशेष आवश्यकता है । अधिकांश लोग हिन्दी में अनुदित विधि की भाषा के प्रति यह अपेक्षा करते हैं कि वह साधारण बोल-चाल की भाषा में प्रस्तुत की जाए । विश्व के किसी भी सभ्य राष्ट्र की विधि बोलचाल की भाषा में प्राप्त नहीं है । विधि के अनवाद की भाषा की कसौटी पर कसना उचित नहीं है । इसका औचित्य विधि भाषा की आवश्यकताओं की दृष्टि से आंकना चाहिए । यदि विधि के क्षेत्र में हिन्दी का व्यापक प्रसार और प्रचार होने लगे तो भाषा स्वमेव ही सरल और स्वाभाविक लगने लगेगी ।
6. **विज्ञान, तकनीक तथा प्रोद्योगिकी :** भारतीय संविधान में हिन्दी को राजभाषा के रूप में मान्यता देने के उपरान्त सन् 1952 में शिक्षा मंत्रालय (हिन्दी विभाग) ने वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली बोर्ड के निर्देशन में तकनीकी तथा पारिभाषिक शब्दावली निर्माण का कार्य प्रारंभ किया गया । डॉ. आलोक रस्तोगी भी वैज्ञानिक तथा तकनीकी

शब्दावली के स्थायी आयोग द्वारा उन पर आधारित, स्वीकृत शब्दावली निर्माण सिद्धांत इस प्रकार है:

(1) अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को यथा संभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए ।

क. तत्वों और यौगिकों के नाम जैसे-हाइड्रोजन, कार्बन आदि ।

ख. तौल, माप और भौतिक परिमाण की इकाइयां यथा- डाइन, कैलोरी, एम्पियर्स आदि।

ग. ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए हैं - वोल्टा के नाम पर वोल्टमीटर, एम्पीयर के नाम पर एम्पीयर आदि ।

घ. वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, भू-विज्ञान आदि की द्विपदी नामावली ।

ङ. स्थिरांक जैसे g आदि ।

च. ऐसे शब्द जिनका आमतोर पर प्रयोग हो रहा है जैसे पेट्रोल, रेडार, इलेक्ट्रान, प्रोटीन, न्यूट्रोन आदि ।

छ. गणित और विज्ञान की अन्य शाखाओं के संख्यांक, प्रतीत, चिन्ह और सूत्र जैसे साइन, कॉ-साइन, टेंजेंन्ट आदि गणितीय संक्रियाओं में प्रयुक्त अक्षर रोमन ग्रीक वर्णमाला में होने चाहिए ।

(2) ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किये जा सकते हैं ।

(3) संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यत: अनुवाद किया जाना चाहिए ।

(4) हिन्दी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए । सुधार विरोधी ओर विशुद्धता वादी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए ।

(5) सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथा संभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए ओर इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो -

क. अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों और

ख. संस्कृत धातुओं पर आधारित हों ।

(6) ऐसे शब्द जो सामान्य प्रयोग के वैज्ञानिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं जैसे telegram, Telegraph के लिए तार Continent के लिए महाद्वीप आदि इसी रूप में व्यवहार किये जाने चाहिए ।

(7) अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के ऐसे विदेशी शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गए है । जैसे इंजन, मशीन, लावा, मीटर, लीटर, टार्च आदि इसी रूप में अपनाए जाने चाहिए ।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी में लिप्यंतरण - अंग्रेजी शब्दों का लिप्यंतरण इतना जटिल नहीं होना चाहिए कि उसके कारण वर्तमान देवनागरी वर्णो में नए चिन्ह प्रतीक शामिल करने की आवश्यकता पड़े । अंग्रेजी शब्दों का देवनागरीकरण करते समय यह

लक्ष्य होना चाहिए कि वह मानक अंग्रेजी उच्चारण के अधिकाधिक अनुरूप हो, और उनमें ऐसे परिवर्तन किये जाएं जो भारत के शिक्षित वर्ग में प्रचलित हों ।

(9) लिंग- हिन्दी में अपनाए गए अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को अन्यथा कारण न होने पर पुलिंग रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए ।

(10) संकर शब्द - वैज्ञानिक शब्दावली में संकर शब्द या Ionization के लिए आयनीकरण voltage के लिए वोल्टता, Saopnifier के लिए साबुनीकरण आदि के रूप में सामान्य और प्राकृतिक भाषा शास्त्रीय क्रिया के अनुसार बनाए गये है और ऐसे शब्द रूपों को वैज्ञानिक शब्दावली की आवश्यकताओं यथा सुबोधता, उपयोगिता और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए व्यवहार में लाना चाहिए ।

(11) वैज्ञानिक शब्दों में संधि और समास- कठिन संधियों का यथासंभव कम से कम प्रयोग करना चाहिए और संयुक्त शब्दों के लिए दो शब्दों के बीच हाइफन लगा देना चाहिए । जहाँ तक संस्कृत पर आधारित "आदि वृद्धि" का संबंध है, "व्यावहारिक", "लाक्षणिक" आदि प्रचलित संस्कृत तत्सम शब्दों में आदि वृद्धि का प्रयोग भी अपेक्षित है, परन्तु नव-निर्मित शब्दों में इससे बचा जा सकता है ।

(12) हलन्त-नए अपनाए गये शब्दों में आवश्यकतानुसार हलंत का प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए ।

(13) पंचमवर्ण का प्रयोग-पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करना चाहिए, परन्तु Lens, Patent। आदि शब्दों का लिप्यंतरण लेंस, पेंटेंट या पेटेन्ट न करके लेन्स, पेटेन्ट ही करना चाहिए ।

आयोग द्वारा प्रकाशित शब्दावली में तीन घटक हैं -

(क) अन्तर्राष्ट्रीय (ख) अखिल भारतीय तथा (ग) क्षेत्रीय ।

इनका विवेचन इस प्रकार है-सन् 1964 में विज्ञान शब्दावली - 1 प्रकाशित की गई जिसकी 40,000 समानकों मे से 70 प्रतिशत संस्कृत मूलक, 20 प्रतिशत अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली से लिप्यंतरित और 10 प्रतिशत क्षेत्रीय हिन्दी के शब्द थे ।

भारत जैसे विकासशील देशों की विकसित देशों की विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी सम्बन्धी नवीनतम उपलब्धियों एवं प्रगति की जानकारी प्राप्त करने के लिए अनुवाद की सहायता अपरिहार्य रुप से लेनी पड़ती है । विशिष्ट विज्ञानों के क्षेत्र में अधुनातन अन्वेषणों से परिचित होने के लिए भी अनुवाद का महत्व असंदिग्ध है । प्राय: प्रत्येक क्षेत्र के शोध से अवगत होने के लिए अनुवाद ही एक मात्र सहारा है ।

जहाँ तक विज्ञान अभियांत्रिकी एवं तत्संबंधी तकनीकी ज्ञान के अनुवाद का प्रश्न है इसमें भी परिवेश, उद्देश्य स्थान और पारिभाषिक शब्दावली महत्त्वपूर्ण है, इस प्रकार के अनुवादों में भाषा की अपेक्षा संकल्पना और उनका व्यवहार अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रभावी रहता है । जब तक व्यावहारिक अथवा व्यवहृत शब्दावली का प्रयोग नहीं होता तब तक चाहे वह विज्ञान हो, चाहे दर्शन, चाहे समाज शास्त्र और चाहे अन्य शाखाएं, सभी में भ्रमात्मक स्थितियां बनी रहेंगी ।

7. **संचार माध्यम. पत्रकारिता एवं फिल्म :** डबिंग रेडियो, दूरदर्शन तथा समाचार-पत्र में अनुवाद की उपयोगिता विशेष रुप से सामने आती है । विदेशों के अधिकांश समाचार अंग्रेजी में प्राप्त होते है जिनके अनुवाद-कार्य समाचार एजेन्सियों द्वारा किये जाते हैं । कभी कभी समाचारपत्रों के कार्यालयों में भी अनुवाद का कार्य किया जाता है ।

8. **फिल्म डबिंग :** एक भाषा विशेष में बनी हिट या महत्त्वपूर्ण फिल्मों को अन्य भाषाओं में "डब" करके प्रदर्शित किया जाता है । फिल्मों की डबिंग में न केवल मूल संवादों को लक्ष्य भाषा के सहज संवादों में अनुदित करना होता हैं, बल्कि लक्ष्य भाषा के संवादों की शब्दावली का चयन कुछ इस प्रकार करना होता है कि वह फिल्माये गये दृश्यों में अभिनेताओं की मुख-मुद्राओं, आंगिक चेष्टाओं तथा होंठों की गति-स्थिति के अनुसार हों, उदाहरणार्थ ऑस्कर एवार्ड विजेता फिल्म "गाँधी" का हिन्दी भाग अंग्रेजी फिल्म की डबिंग मात्र था किन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि फिल्म मूल रुप से हिन्दी में ही फिल्मायी गयी है और इस प्रतीती के पीछे असली कमाल संवाद-अनुवादक का ही था । इस प्रकार का अनुवाद वस्तुत: श्रमसाध्य कार्य है ।

9. **मानविकी, इसके विविध अनुशासन और मानविकी शब्दावली -** मानविकी अनुवाद का क्षेत्र बहुत विस्तृत है । काव्य से संगीत तक, अर्थशास्त्र से मनोविज्ञान तक यह फैला हुआ है । इसी प्रकार राजनीति शास्त्र सामाजिक शास्त्र आदि से सम्बद्ध पुस्तकों का अनुवाद करना चाहिए । प्रत्येक राष्ट्र, समुदाय के अपने भिन्न-भिन्न प्रतीक होते हैं उनका अपना विशिष्ट अर्थ होता है जैसे ब्रिटेन में "क्राउन" भारत में राजदण्ड' सत्ता के प्रतीक हैं । यदि अंग्रेजी में भारतीय राजदण्ड और क्राउन और हिन्दी में क्राउन को राजदण्ड कहें तो अनुवाद पढ़ने वाले को अर्थानुभूति भले ही हो जाए परन्तु गहनानुभूति नहीं हो पाएगी । मानविकी साहित्य में ललित कला, संगीत, मानव जीवन से संबंद्ध विभिन्न शास्त्र जो तकनीकी साहित्य में नहीं आते, जैसे-समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, दर्शन, धर्म, आदि समाविष्ट रहते हैं । सामान्य रूप से साहित्य का अर्थ केवल संबंधित भाषा के उपन्यास कहानी, निबंध और कहानी से लगाया जाता है । साहित्य का वास्तविक अर्थ इतना संकुचित नहीं है और न साहित्य को इतना गौण मानकर चलना चाहिए ।

मानविकी का अनुवाद एक जटिल प्रक्रिया है क्योंकि इसका संबंध भाव और चिंतन से अधिक है । अत: अनुवादक की वैयक्तिकता ओर उसकी प्रखरता मानविकी के क्षेत्र में अच्छे निष्कर्ष प्रदान करने में सक्षम होती है । अत: अच्छे अनुवादकों के लिए साहित्यिक अकादमियों को निरन्तर प्रशिक्षित करने के लिए योजनाबद्ध ढंग से कर्मशालाओं का आयोजन करना चाहिए जिससे इत्तर भाषाओं से जो भी आए वह ठीक-ठीक सुगम और सुन्दर हो ।

10. **पत्र पत्रिकाएं (साप्ताहिक/ पाक्षिक/ मासिक/)-** साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्र-पत्रिकाएं दैनिक समाचार पत्रों से भिन्न होती है । कुछ साप्ताहिक पत्रिकाएं अपने कलेवर में ज्ञान, विज्ञान, राजनीति, खेलकूद आदि पर बडे-छोटे लेखों को संगृहीत करके चलती है तो कुछ कविता, कहानी आदि के साथ अन्य क्षेत्रों की समन्वित करके, इसके

विपरीत कुछ आंचलिक साप्ताहिक पत्र दैनिक समाचार पत्रों के अनुरूप मुख्य-मुख्य और चटपटे समाचारों को लेकर मुद्रित होते हैं । साधारणतया इन साप्ताहिक प्रकाशनों में अनुवाद प्रकाशित नहीं होते हैं, अगर होते हैं तो ''सार-अनुवाद'' के रूप में अथवा संक्षिप्त विवरण के साथ, इन साप्ताहिक पत्रों में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'रोजगार समाचार' ही ऐसा पत्र हे जो "आठ" भाषाओं में प्रकाशित होता है । इसमें मूलत: नौकरियों के रिक्त स्थानों की विज्ञप्तियों प्रकाशित होती है, इसके साथ-साथ बेरोजगारों के लिए साक्षात्कार की तैयारी हेतु कुछ मूलभूत जानकारियां और सम्पादकीय भी ।

'रीडर्स-डाइजेस्ट' ''नामक मासिक पत्रिका में विविध सामग्रियों का समन्वय रहता है । यह पत्रिका हिन्दी में ''सर्वोत्तम'' नाम से प्रकाशित होती है । अंग्रेजी और हिन्दी के अतिरिक्त यह पत्रिका संसार की 14 अन्य भाषाओं में प्रकाशित होती है ।

9.5 हिन्दी साहित्य मे अनुवाद की परंपरा

आजकल साहित्य के अनुवाद पर विद्वान गंभीर चर्चा करते हैं । वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कविता का अनुवाद असंभव-सा है । वे अंग्रेजी का यह उद्धरण भी देते हैं कि काव्यानुवाद के दौरान जो कुछ नष्ट हो जाता है वही कविता हे । हिन्दी में एक तरफ इस प्रकार चिंतन जारी है, दूसरी तरफ अन्य भाषाओं की कविता का अनुवाद भी हिन्दी में होता आया है । ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर यह पता चलता है कि हिन्दी कवि अन्त भाषाओं के काव्य का अनुवाद बड़े प्रेम से करते आए हैं । भिन्न-भिन्न कवियों ने अपने-अपने ढंग से अनुवाद किया है ।

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी आधुनिक आर्यभाषा युग की भाषा है । शौरसेनी, अर्धमागधी आदि अपभ्रंशों से हिन्दी के विभिन्न रुप उत्पन्न माने जाते हैं । इस नयी भाषा में प्रारंभ में कुछ लोकगीत रचे गए और संस्कृत व अपभ्रंश की रचनाओं का अनुवाद किया गया । अपभ्रंश एवं मैथिली में समान अधिकार से काव्य रचकर विद्यापति अमर हो गए । उनकी एक उपाधि अभिनव जयदेव की थी । उन्होंने अपनी पदावली में जयदेव का अनुवाद और अनुकरण किया था ।

संत कवियों में अनेक कवि हठयोग पर संस्कृत में रचे छन्दों का अनुवाद अपने छन्दों में प्रस्तुत करते थे । महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर ने भगवद्गीता का अनुवाद मराठी में ज्ञानेश्वरी गीता के रुप में किया जो अलौकिक सिद्धियों की रचना मानी जाती हैं । संतों में प्राय: ऐसे थे जो अपनी जाति व सामाजिक स्थिति के कारण संस्कृत के अध्ययन के अधिकार से वंचित थे । यों सूफी कवि अधिकतर मुसलमान थे जो संस्कृत से बढ़कर फारसी का ज्ञान अधिक रखते थे । इसलिए संत व सूफी काव्य में संस्कृत का अनुवाद कम मिलता है ।

सगुण भक्तिकाल में संस्कृत काव्य के अनुवाद की धूम मची थी । सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवियों ने भागवत के दशमस्कंध की ही बातें ब्रजभाषा में लिखीं । वे मुख्यत: अनुवाद ही थी । सूरसागर एक प्रकार से भागवत का अनुवाद है । सूर ने भागवत के

प्रत्येक छंद का अनुवाद करने की प्रणाली स्वीकार नहीं की । उन्होंने भागवत की बातें मन में ग्रहण करक उन्हे अपनी कल्पना से रंजित करके ही ब्रजभाषा में प्रस्तुत किया ।

तुलसीदास ने संस्कृत काव्य का आश्रय खूब लिया । रामचरितमानस में उन्होंने स्वयं कहा कि वाल्मीकि रामायण और अन्य संस्कृत ग्रंथों से सामग्री ली है । समीक्षकों ने तुलसी के किये संस्कृत अनुवाद का विशेष अध्ययन किया है । रामनरेश त्रिपाठी ने लगभग बहत्तर ग्रंथों की सूची दी है जिनसे तुलसी ने कही शब्दानुवाद कर दिया तो कही भावानुवाद । कही उन्होने रुपांतरण का सहारा लिया है । केवट प्रसंग के शब्दानुवाद का उदाहरण इस प्रकार है

धीरज धरि तब कहहि निषादू ।
अब सुमंत्र परिहरहु विषादू । ।
तुम पंडित परमारथ ज्ञाता ।
धरहू धीर लखि विमुख विधाता ।

केवट-प्रसंग पर "मांगी नाव न केवट आना" वाली पंक्तियां तुलसी की अपनी नहीं, अध्यात्मरामायण की पंक्तियों .का अनुवाद हैं। आनदरामायण अध्यात्मरामायण, वाल्मीकि रामायण, श्रीमदभागवत गीता, शिवपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, वामनपुराण, प्रसन्नराघव आदि अनेक स्वीकृत ग्रंथों के पद्यों का अनुवाद तुलसी के रामचरितमानस में मिलता है ।

भक्तिकाल और रीतिकाल दोनों का प्रतिनिधित्व करने वाले केशवदास ने अपने को पंडितों के कुल में जात मन्दमति कहा है । उन्होंने मंदमति शब्द का तो विनय सूचित करने के लिए प्रयोग किया । वे संस्कृत काव्य और अलंकार शास्त्रादि के अच्छे ज्ञाता थे । इसी ज्ञान के आधार पर उन्होने हिन्दी में काव्य एवं काव्य-शास्त्रीय ग्रंथ लिखे । उनके प्रमुख ग्रंथ रामचन्द्रिका में कितने ही संस्कृत काव्यों के छदों का अनुवाद मिलता है । केशवदास और अन्य रीतिकालीन आचार्य कवियों ने संस्कृत के काव्य-शास्त्रीय ग्रंथों का विभिन्न प्रकार से अनुवाद किया । राजा जसवंत सिंह ने संस्कृत के चन्द्रालोक का अनुवाद किया था ।

रीतिकाल के सबसे लोकप्रिय एवं गागर मे सागर भरने वाले कवि बिहारी लाल अपनी मौलिक उक्तियों से पाठकों को प्रभावित करते हैं । किन्तु वे ऐसे चतुर अनुवाद हैं कि उनका कथन अनुवाद ही नहीं लगता । उन्होने आर्यासप्तशती, गाथासप्तशमी, अमरुकशतक आदि के पद्यों का भावानुवाद बड़ी कुशलता से किया है । बिहारी का

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु" वाला दोहा तक अनुवाद है । उसका मूल है -

यावन्न कोषविकासं प्राप्नोतीषद् मालती कलिका ।
मकरद-पान-लोभिन्! भ्रमर! तावदेव मर्दयसि । ।

उसी तरह प्रसिद्ध दूसरा दोहा है -

कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय ।
वा खाये बौराइ नर या पाये बीराय । ।

यह भी अनुवाद है । इसका मूल दोहा यह है -

सुवर्ण बहु यस्यास्ति तस्य न स्यात् कथ मद: ।
नामसाम्यादहो यस्य धुस्तुरो पि मदप्रद: । ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के युग-निर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने मुद्राराक्षस, चंडकौशिक, कर्पूरमंजरी, चन्द्रावली आदि नाटकों का अनुवाद किया । उन्होंने अंग्रेजी के मर्चेन्ट ऑफ वेनिस का रुपान्तरण किया - 'दुर्लभ बंधु' । जब पश्चिमी साहित्य अर्थात् अंग्रेजी साहित्य की नई विधाओं और रचनाओं का परिचय प्राप्त हुआ तब हिन्दी कवि और नाटककार अंग्रेजी से अनुवाद करने लगे । खण्डकाव्य धारा के प्रवर्तक श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के आदि का अनुवाद किया । आगे शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद लाला सीताराम बी.ए. ने किया । बच्चन और रांगेय राघव के अनुवाद तो प्रसिद्ध है ।

द्विवेदी-युग में अनेक स्तरीय निबंधों और उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में हुआ । स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी औश्र आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कई अंग्रेजी निबंधों का अनुवाद किया । शुक्ल जी ने अंग्रेजी के 'लाइट ऑफ एशिया' काव्य का अनुवाद ब्रजभाषा मे 'बुद्धचरित' नाम से किया था । द्विवेदी-युग और उसके बाद के वर्षा में अनुवाद की धूम मच गई । भारतीय भाषाओं में बंगला से ही सबसे अधिक अनुवाद किया गया । रवीन्द्रनाथ टैगोर और द्विजेंद्रलाल राय ही सबसे अधिक अनुदित हुए । टैगोर की सारी रचनाएं विभिन्न लोगों द्वारा अनूदित की गई । गीतांजलि सबसे अधिक बार अनूदित बंगला कविता है । शीघ्र ही अन्य भाषाओं के प्रमुख ग्रंथ हिन्दी में अनूदित होने लगे ।

देश के स्वाधीनता आंदोलन ने सारी भारतीय भाषाओं और हिन्दी को परस्पर जोड़ दिया तो उसके फलस्वरुप अन्य भाषाओं से हिन्दी में और हिन्दी के अन्य भाषाओं में अनुवाद का क्रम शीघ्रतर हो गया । वर्तमान युग में अनुवाद और रुपान्तरण की बड़ी धूम है । आदान-प्रदान के अन्तर्गत यह चल रहा है । अनेक विदेशी भाषाओं की कविता, उपन्यास आदि का, खासकर अंग्रेजी से भिन्न भाषाओं की रचनाओं का, अनुवाद हिन्दी में हो रहा है । रुसी एवं दक्षिण अफ्रीकी रचनाएं अब सबसे अधिक लोकप्रिय है । इस अनुवाद प्रक्रिया से हिन्दी साहित्य के आयाम विस्तृत हो रहे है । भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति बढ़ी है । अभिव्यक्ति की विविध भंगिमाओं का विकास भी हो सका है । सबसे बढ़कर हिन्दी साहित्य का कोष अत्यंत धनी बनता जा रहा है ।

9.6 अनुवाद का महत्व

अनुवाद का इतिवृत जितना प्राचीन है उतनी ही उसकी महत्ता है । कहा जाता है कि अनुवाद की परम्परा लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष से मिलती है । स्पष्ट है कि उसका महत्त्व भी तभी से आँका गया है । आज अनुवाद का महत्व प्रौद्योगिकी, विज्ञान और इलेक्ट्रानिकी की भाँति ही मूल्यवान हो गया है । अभिप्राय यह है कि अनुवाद वर्तमान समय की पहली आवश्यकता है और वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सर्वव्यापी है ।

डॉ. रीतारानी पालीवाल के अनुसार "मानव के पास आयु, समय और साधन की एक सीमा रहती है । हर व्यक्ति संसार की प्रत्येक भाषा नहीं सीख सकता । ऐसी स्थिति में अनुवाद ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा हम सभी भाषाओं से संपर्क स्थापित कर सकते हैं । वस्तुत: अनुवाद के माध्यम से ही विभिन्न भाषा-भाषी समाजों के बीच संवाद स्थापित होता है । विश्व सभ्यताओं के विकास में अनुवाद का अमूल्य योगदान रहा है । अनुवाद के अभाव में विश्व की

सभ्यताएँ "नदी के द्वीपों" की तरह एक-दूसरे से अलग-अलग हो जाती हैं । 'वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना चरितार्थ करता है अनुवाद । "

डॉ. जी गोपीनाथन ने अनुवाद को "सांस्कृतिक सेतु" की संज्ञा से अभिहित किया है । उनके अनुसार अनुवाद मानव सभ्यता के साथ विकसित हुई एक ऐसी तकनीक है जिसका आविष्कार मनुष्य ने बहुभाषिक स्थिति की विडम्बनाओं से बचने के लिए किया था ।

प्राचीनकाल की संस्कृतियों के विकास मे अनुवाद का भारी योगदान रहा है । बेबिलोन में बहुभाषाभाषी समाज था । अत: वहाँ शासकीय कामकाज में अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी । रोम के लोगों ने ग्रीक ग्रंथों एवं अरबों ने भारतीय ग्रंथों के अनुवाद के माध्यम से सांस्कृतिक विकास की नयी-नयी ऊँचाइयों प्राप्त कीं । बौद्ध धर्म के माध्यम से भारतीय ग्रंथों का अनुवाद चीन की भाषाओं में किया गया । इस प्रकार परस्पर अनुवादों के माध्यम से शनै: शनै: न केवल विश्व संस्कृति के विकास को दिशा मिली बल्कि आधुनिक विज्ञान की आधारभूमि भी तैयार होती गयी ।

अनुवादों की सहायता से ही विश्व साहित्य की अवधारणा अस्तित्व में आयी । उदाहरण के लिए भारत का प्राचीन कथा संग्रह "पंचतंत्र" अरबी एवं अन्य यूरोपीय भाषाओं में अनूदित होकर "अलिफ लैला" एवं "ईसप" आदि कहानी संग्रहों का आधार बना । जर्मन साहित्यकार गेटे ने कालिदास कृत "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" नाटक का अनुवाद पढ़कर ही "विश्व साहित्य" की परिकल्पना की । अनुवाद के माध्यम से ही प्रेमचन्द, टैगोर, चेखव, टालस्टाय, पाब्लो नेरुदा आदि की रचनाएँ संसार भर में चर्चित हुई । यही नहीं सांस्कृतिक आयोजनों, अन्तर्राष्ट्रीय कला-फिल्म समारोहों में अनुवाद के आधार पर ही पूरा विश्व एक मंच पर आता है तथा फिल्म डबिंग (जो अनुवाद का ही रुप है) के माध्यम से विश्व-कला चेतना से हम परिचित होते हैं ।

भारत जैसे बहुभाषाभाषी विकासशील देशों के राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास के लिए अनुवाद के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता नहीं हैं । विकासशील देशों की एक अन्य आवश्यकता विकसित देशों के वैज्ञानिक, शैक्षणिक, तकनीकी एवं व्यावसायिक साहित्य की अधिकाधिक जानकारी अपने देश के लोगों को सहज सुलभ कराने की होती है । इस प्रयोजन हेतु भी अनुवाद का महत्व स्वयं-सिद्ध है ।

क्लासिक ग्रंथों की जानकारी, विदेशी भाषा सीखने, स्वभाषा के विकास, तुलनात्मक अध्ययन आदि अनेकानेक क्षेत्रों में अनुवाद के महत्व से इंकार नही किया जा सकता । संक्षेपत: अनुवाद समकालीन मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास प्रथम सोपान है ।

संक्षेप में अनुवाद के महत्व को निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता है :-

1. अनुवाद धर्म, संस्कृति, दर्शन सम्बन्धी अन्त: संबंधों के विकास का सेतु है ।
2. पर्यटन, वाणिज्य व व्यापार के संवर्द्धन के लिए अनुवाद आवश्यकता है ।
3. राजनीति, कूटनीति तथा परराष्ट्र नीति के संवर्द्धन हेतु अनुवाद की उपयोगिता है ।
4. विधि, न्याय, प्रशासन, प्रजातंत्र आदि संबंधी ज्ञान के संवर्द्धन हेतु अनुवाद की महती भूमिका है ।

5. अनुवाद ज्ञान-विज्ञान, तकनीक, इंजीनियरों आदि के अद्युनातन ज्ञान का संवाहक है ।
6. आयुर्विज्ञान संबंधी शोधों से परिचित होने का एक मात्र रास्ता अनुवाद ही है ।
7. संवाद व मीडिया में अनुवाद का उल्लेखनीय योगदान है ।
8. तुलनात्मक साहित्य, सामान्य ज्ञान तथा विदेशी भाषा शिक्षण की दृष्टि से अनुवाद का महत्त्व अधिक है ।

अनुवाद के महत्व के साथ साथ उसकी कुछ सीमाएँ भी है जिसमें महत्वपूर्ण यह है कि ज्ञान के कुछ क्षेत्र जैसे धर्म, दर्शन, संस्कृति, काव्य व नाटक ऐसे है जिसमें अनुवाद शत प्रतिशत नहीं हो सकते । कभी कभी अनुवाद में अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है । वस्तुत: यह अनुवाद की सीमाएँ भी है तथा समस्याएँ भी है । परन्तु इसके समक्ष अनुवाद के महत्व व उपयोगिता को नकरा नहीं जा सकता है । पूर्ण रुप से यह कहा जा सकता है कि आज का युग विज्ञान व टेक्नोलॉजी के साथ साथ अनुवाद का भी युग है ।

9.7 सारांश

वर्तमान में अनुवाद का सर्वाधिक महत्व है । साहित्य तथा साहित्येत्तर विषयों में अनुवाद की भूमिका व योगदान उल्लेखनीय है । आज विज्ञान व प्रौद्योगिकी का युग है । हमारे देश का वैज्ञानिक साहित्य हिन्दी भाषा में अनुपलब्ध सा ही है इसलिए अनुवाद की सर्वाधिक आवश्यकता रहती है । सरकारी कार्यालयों में अनुवाद की भी एक अलग शैली होती है इसके लिए अनुवादक को सरकारी अनुवादक के विविध व्यावहारिक पक्षों का भी ध्यान रखना होता है।

संक्षेप में अनुवाद अपनी सीमाओं में रहते हुए मानवीय सभ्यता व संस्कृति, विश्व शान्ति व वसुधैव कुटुम्बकम की दृष्टि का परिचायक बन गया है ।

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अनुवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी भारतीय व पाश्चात्य परम्परा पर एक लेख लिखिए ।
2. अनुवाद के विविध क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए ।
3. वर्तमान समय में अनुवाद की उपादेयता पर प्रकाश डालिए ।
4. अनुवाद परम्परा की चर्चा करते हुए हिन्दी साहित्य में अनुवाद परम्परा पर एक लेख लिखिए ।
5. अनुवाद प्रक्रिया के विभिन्न सोपानों का वर्णन कीजिए ।

9.9 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर, **अनुवाद कला** प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली 1987 ।
2. भोलानाथ तिवारी, किरण वाला, **भारतीय भाषाओं से हिन्दी अनुवाद की समस्याएँ,** शब्दकार प्रकाशन दिल्ली, 1964
3. सत्यदेव मिश्र, रामाश्रय सविता**, अनुवाद अवधारणा और आयाम,** सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 1998

4. डॉ. आलोक कुमार रस्तौगी, **हिन्दी में व्यावहारिक अनुवाद,** सुमित पब्लिकेशन, दिल्ली, 1990.
5. भोलानाथ तिवारी, महेन्द्र चतुर्वेदी, **काव्यानुवाद की समस्याऐं,** शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, 1960.

इकाई - 10

संविधान मे हिन्दी व राजभाषा अधिनियम

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 हिंदी का विकास

10.3 राजभाषा संबंधी संवैधानिक उपबंध

10.4 राजभाषा अधिनियम 1963 तथा 1967

10.5 राजभाषा नियम 1976

10.6 राजभाषा आयोग तथा समितियाँ

10.7 सारांश

10.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.9 संदर्भ ग्रंथ

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

- इस इकाई में संविधान में हिन्दी की संवैधानिक स्थिति एवं अधिनियमों को जान सकेंगे।
- हिन्दी के प्रारंभिक स्वरूप से आधुनिक काल तक की विकास यात्रा को जान सकेंगे ।
- राजभाषा अधिनियम 1963 एवं 67 के संशोधित स्वरूप के माध्यम से इस अधिनियम की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- 1976 अधिनियम के माध्यम से हिन्दी के लिए किए गए प्रयासों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- राजभाषा आयोग तथा विभिन्न समितियों के गठन की स्थापना और उनके उद्देश्यों के बारे में जान सकेंगे ।
- राजभाषा हिन्दी के संबंध में संघ सरकार के दायित्वों की जानकारी भी प्राप्त करेंगे ।

10.1 प्रस्तावना

– आधुनिक काल के अम्युदय के साथ ही हिन्दी का भी जन्म हुआ । प्रथम स्वाधीनता आंदोलन से पूर्व हिन्दी का जो स्वरूप था उसमें परिवर्तन होने लगा ।स्वाधीनता सेनानियों ने हिन्दी को अपनाया और उसके के माध्यम से जन जागरण का कार्य भी किया । पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर प्रयोग में आने से हिन्दी का स्वरूप निखरता गया ।

– हिन्दी की क्षमताओं को देखते हुए गांधी जी, पुरूषोलमदास टंडन, काका कालेलकर सेठ गोविंददास आदि ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को अपनाने की अपील की ।

- स्वाधीनता के पश्चात संविधान निर्माण करते समय हिंदी के लिये लंबी बहस हुई और राजभाषा के रूप में हिन्दी को अपनाया गया ।
- संविधान में अनुच्छेद 345 से 351 के अंतर्गत राजभाषा के बारे में चर्चा की गई है । समय-समय पर संशोधन व नए अधिनियमों का निर्माण भी किया गया ।
- हिन्दी के विकास के लिए समितियों का गठन भी किया गया । 1०2 हिन्दी का विकास

10.2 हिन्दी का विकास

हिन्दी के प्रारंभिक स्वरूप से संविधान तक पहुंचने की यात्रा अत्यंत रोचक एवं लंबी है । प्रथम स्वाधीनता आंदोलन के साथ-साथ ही हिन्दी का बीज भी आकार ग्रहण करने लगा । 1857 के युद्ध में अलग-अलग रियासतों के राजा सामंतों ने सहयोग किया । इस युद्ध में असफलता हाथ लगी, लेकिन कई अर्थो में यह आंदोलन सफल रहा । सब से बड़ा कार्य यह हुआ कि टुकड़ो में बंटा राष्ट्र एक दूसरे का सहयोग करने के लिए प्रयत्नशील हुआ । दूसरा लोगों में राष्ट्र के प्रति जागरण या स्वाधीन चेतना का भाव जाग्रत होने लगा । इसी काल में हिन्दू मुस्लिम समुदायों के बीच बोली जाने वाली बोलियों उपबोलियों का मिला-जुला स्वरूप खडी बोली के रूप में प्रचलित होने लगा । इसमें अपरोक्ष रूप से उन भारतीय सिपाहियों का भी योगदान था, जो सामंतों और अंग्रेजों की सेना में थे । ये संपर्क के लिए अवधी, ब्रज, डिंगल, उर्दू फारसी आदि के सरल रूपों का उपयोग कर नई बोली गढ़ रहे थे । इस प्रकार धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक करणों के अतिरिक्त राजनीतिक हलचल से भी हिन्दी के स्वरूप को दिशा मिली ।

मुगल दरबारों में फारसी कचहरी की भाषा थी लेकिन संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी ही विद्यमान थी । यही कारण था कि अंग्रेजों ने अपने कर्मचारियों को हिन्दी पढ़ाने पर जोर दिया । पूरे उतर भारत में प्रचलित हिन्दी किसी समुदाय विशेष के दायरे में बंधी हुई नहीं थी । विशेष तथ्य यह है कि आम जनता ने फारसी और संस्कृत के प्रभाव से मुआ हो कर प्रांतीय एवं उस के मिले-जुले स्वरूप को अपनाया । इन्हीं परिस्थितियों में आर्य समाज के संस्थापक दयानंद सरस्वती ने एक भाषा के स्वप्न को देखा । उन्होने कहा- "भाई मेरी आँखे तो उस दिन को देखने को तरस रही है-जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा को समझने और बोलने लग जाएँ ।"

18वीं शती के उतरार्द्ध तक हिन्दी का प्रभाव इतना बढ़ गया कि अदालतों की भाषा फारसी के स्थान पर हिन्दी करने के लिए दबाव डाला गया । इस आंदोलन में देश के बड़े नेताओं जैसे राजनारायण बोस, सुरेन मुखर्जी, मदनमोहन मालवीय आदि ने भाग लिया और हिन्दी की राष्ट्रीय उपयोगिता पर बल दिया । इस संघर्ष को 18 अप्रेल 1900 में सफलता मिली, जब लाट मैकडोनाल्ड को अदालतों में नागरी लिपि में लिखी हिन्दी को मान्यता देने का आदेश निकालना पड़ा ।

हिन्दी के बढ़ते प्रभाव और उसकी क्षमताओं को जान कर फोर्ट विलियम कॉलेज ने हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों को बनवाया । नागरी प्रचारिणी सभा, काशी हिन्दी साहित्य सम्मेलन, दक्षिण भारत प्रचार सभा, गुजरात विद्यापीठ आदि संस्थायें हिन्दी के प्रचार-प्रसार में जुटी थीं ।

धार्मिक, सामाजिक क्षेत्र में बदलाव करने में मुख्य भूमिका निभाने वाली संस्थाओं जैसे ब्रह्म समाज, आर्य समाज रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसायटी ने भी हिन्दी के व्यापक प्रसार में विशेष योगदान दिया ।

राजनीतिक संस्थाओं में कांग्रेस के नेताओं ने भाषा के प्रश्न को गंभीरता से उठाया और आम जनता के मध्य बोली जाने वाली खड़ी बोली या हिन्दुस्तानी को अपनाया । लगभग सभी नेताओं ने इस भाषा के माध्यम से जन संवाद किया, जिससे हिन्दी का राष्ट्रीय स्वरूप और महत्व उजागर हुआ । महात्मा गांधी, सुभाषचन्द्र बोस, सेठ गोविन्ददास, पुरूषोत्तम दास टंडन, काका कालेलकर जैसे विद्वानों एवं कार्यकर्ताओं के निरंतर परिश्रम से हिन्दी का स्वरूप निखरता गया । ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस कार्य में अहिन्दी भाषी प्रांत के लोगों ने भी भरपूर योगदान दिया ।

साहित्य के क्षेत्र में लगभग आठरवीं शती के उत्तरार्द्ध से ही हिन्दी मे लेखन और प्रकाशन होने लगा। भारतेन्दु मण्डल के लेखकों ने हिन्दी मे ही पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया एवं कविता, कहानी, नाटक निबंध लिखे। महावीर प्रसाद द्वीवेदी जी ने हिन्दी के व्याकरण को सुधारा, उस के स्वरूप को और परिष्कृत किया । सन 1900 के आस -पास के इन रचनाओं ने अपने लेखन द्वारा भाषा प्रसार और राष्ट्र जागरण दोनों ही कार्य को एक साथ निभाया। इन सारे प्रयासों के परिणाम स्वरूप ही लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्दती और अँग्रेजी के व्यापक प्रयोग की तुलना मे हिन्दी का महत्व बढ़ने लगा। अब पूरे भारत मे एक ही भाषा की परीकल्पना सरकार होने लगी थी गांधी जी के स्वदेशी अपनाओं आंदोलन मे विदेशी सरकार , विदेशी वस्तुएं, विदेशी भाषा सबका बहिष्कार किया गया ।

"मेरा यह मत है की हिन्दी ही हिंदुस्तान की भाषा हो सकती है और होनी चाहिये । आप हिन्दी को भारत की राष्ट्र भाषा बनाकर हमे अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये । " गांधी जी ने हिन्दी को राष्ट्र भाषा का दर्जा देने की अपील की । इस कालावधि मे हिन्दी और उर्दू भाषा पर विवाद उठने लगा। हिन्दी और हिंदुस्तानी के बीच लंबी बहस छिड़ी , जो संविधान गठन के पूर्व तक चलती रही।

1946 की संविधान सभा की समिति ने डॉ. राजेंद्र प्रसाद जी की अध्यक्षता मे यह निर्णय लिया कि संविधान सभा का काम हिंदुस्तानी या अँग्रेजी मे किया जाएगा । लेकिन 14 जुलाई 1947 को जब संविधान सभा का सत्र प्रारंभ हुआ तब दूसरे दिन ही यह संसोधन किया गया कि "हिंदुस्तानी" के स्थान पर हिन्दी शब्द रखा जाए। फरवरी 1948 मे जब संविधान का प्रारूप प्रस्तुत हुआ उसमे इतना ही उल्लेख था कि संसद कि भाषा हिन्दी या अँग्रेजी होगी ।

इसके पश्चात 1949 मे राजभाषा के संबंध मे बहस हुई । हिन्दी संघ कि राजभाषा बने इसे स्वीकृति मिल गयी थी, किन्तु अंग्रेजी भी राजभाषा के रूप मे 15 वर्ष तक चले इस बात का विरोध होने लगा। इस के अलावा हिन्दी का स्वरूप क्या हो? अन्तराष्ट्रीय या भारतीय अंकों मे किसे मान्यता दी जाए। अँग्रेजी का प्रयोग कितने वर्षों तक हो?इन बिन्दुओं पर चर्चा हुई। संविधान सभा कि पार्टी मे बहस हुई , इस के पश्चात डॉ। अंबेडकर ने समझोते के रूप मे एक प्रस्ताव पेश किया । जिसमे 15 वर्ष तक अँग्रेजी का प्रयोग बनाए रखने तथा अंतर्राष्ट्रीय अंकों को अपनाने कि व्यवस्था रखी । इस संविधान सभा कि पार्टी मे विचार विमर्श हुआ और कुछ विचार

आए उन्हे मुंशी आयंगर सूत्र कहा जाता है । इस सूत्र को भी स्वीकार नहीं किया गया । संविधान सभा मे फिर बहस हुई जिसमे नेहरू जी, राजर्षि टंडन, सेठ गोविंद दास , मौलाना आजाद आदि ने विचार व्यक्त किए । अंत मे 14 सितंबर 1949 मे सभी पहलुओं पर विचार कर मुंशी अयांगर सूत्र मे आधार किया गया जिसे सभी ने स्वीकार किया। इस प्रकार यह निर्णय लिया गया कि- "संघ के कामकाज के लिए हिन्दी देश कि सामान्य भाषा हो । इसकी लिपि देवनागरी हो और वे अंक काम मे लाये जाए, जिन्हे भारतीय अंकों का अंतराष्ट्रीय रूप कहा जाता है।

10.3 राजभाषा संबंधी संवैधानिक उपबंध (संविधान में हिन्दी)

भारतीय संविधान में भाषा संबंधी विशिष्ट अनुच्छेद 120 तथा 210 के आरंभ में और भाग 17 मे लिखे गए हैं । भाग 17 में राज भाषा के संबंध में निर्देश दिए गए हैं । अनुच्छेद 345 से 351 के अंतर्गत संवैधानिक व्यवस्था की गई है उसे चार अध्यायों में बांटा गया है । इन अध्यायों के अनुच्छेदों मे संघ की भाषा, प्रादेशिक, भाषाओं, उच्चतम न्यायालय की भाषा के बारे में बताया गया है । प्रत्येक अनुच्छेद के पठन से पूर्व संसद की भाषा संबंधी जानकारी अनुच्छेद 120 तथा 210 को जागेंगे ।

संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा (भाग-5)

अनुच्छेद 120(1) - भाग (17) में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए संसद में कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा ।

परन्तु यथा स्थिति, राज्यसभा का सभापति या लोकसभा का अध्यक्ष अथवा उस रूप में कार्य करने वाला सदस्य, जो हिन्दी या अंग्रेजी में अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, उसकी मातृ भाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा ।

120(2) जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करें, तब तक इस संविधान के प्रारंभ से पन्द्रह वर्ष की अवधि के पश्चात यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगी मानों 'या अंग्रेजी में' शब्दों का उसमें से लोप कर दिया गया हो ।

विधानमंडल में प्रयोग की जाने वाली भाषा (भाग-6)

अनुच्छेद 210(1) - भाग 17 में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु अनुच्छेद 3458 के उपबंधों के अधीन रहते हुए राज्य के विधानमंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं में या हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा ।

परन्तु यथास्थिति अध्यक्ष, परिषद् का सभापति अथवा कार्यरत सदस्य, जो पूर्वोक्त भाषाओं में अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, उसकी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा (यह अनुच्छेद जम्मु कश्मीर पर लागू नहीं है)

210(2) - जब तक राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करें तब तक इस संविधान के प्रारंभ से पन्द्रह वर्ष की अवधि समाप्ति के पश्चात् यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो 'या अंग्रेजी में शब्दों का उसमें से लोप कर दिया गया हो ।

भाग - 17

अध्याय 1 : संघ की राजभाषा

अनुच्छेद 343(1) संघ की राजभाषा :- संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी । संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा । खण्ड (2) में यह व्यवस्था की गई है कि किसी बात के होते हुए भी संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि तक अर्थात् 26 जनवरी 1965 तक संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग पहले की तरह होता रहेगा । परन्तु राष्ट्रपति उक्त अवधि के दौरान आदेश द्वारा किसी काम के लिए अंग्रेजी के अलावा हिन्द के प्रयोग की अनुमति दे सकेंगे ।

खण्ड (3) में संसद को यह अधिकार दिया गया कि वह 1965 के बाद भी अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने की व्यवस्था कर सकती है ।

अनुच्छेद 344 राजभाषा के लिए आयोग और संसद की समिति :- खण्ड (1) राष्ट्रपति इस संविधान के प्रारंभ से पाँच वर्ष की समाप्ति पर तथा और प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर आदेश द्वारा एक आयोग का गठन कर सकते हैं, जो सरकारी प्रयोजन के लिए हिंदी के प्रयोग संबंधी स्थिति का अध्ययन कर रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा । इस आयोग में विधान की अष्टम अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं के प्रतिनिधि होंगे ।

(2) आयोग का कर्तव्य होगा कि वह राष्ट्रपति को -

(क) संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग

(ख) संघ के सभी या शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बंधनो,

(ग) अनुच्छेद 348 में वर्णित प्रयोजनों में से सब या किसी के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के

(घ) संघ के किसी एक या अधिक उल्लिखित प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने वाले अंकों के रूप,

(ङ) संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच पत्रादि की भाषा और उनके प्रयोग के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को निर्देशित किए गए किसी अन्य विषय के बारे में सिफारिश करें ।

(3) खण्ड (2) के अधीन अपनी सिफारिशें करने में आयोग भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का तथा लोक सेवाओं के संबंध में अहिंदी-भाषी क्षेत्रों के व्यक्तियों के न्यायसंगत दावों और हितों का सम्यक् ध्यान रखेगा ।

(4) तीस सदस्यों की एक समिति गठित की जायेगी जिसमें बीस लोक सभा के तथा इस ज्यसभा के सदस्य होंगे, जो क्रमश: लोकसभा, राज्य सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे ।

(5) खण्ड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों की परीक्षा करना तथा उस पर अपनी राय का प्रतिवेदन राष्ट्रपति को करना समिति का कर्तव्य होगा ।

(6) अनुच्छेद 343 में किसी बात के होते हुए भी, राष्ट्रपति खण्ड (5) में निर्दिष्ट रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् उस पर संपूर्ण रिपोर्ट के या उसके किसी भाग के अनुसार निर्देश जारी कर सकेगा ।

अध्याय 2 : प्रादेशिक भाषाएँ

अनुच्छेद 345 राज्य की राजभाषा/राजभाषाएँ :- अनुच्छेद 346 और 347 के अधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान मंडल सरकारी प्रयोजन के लिए उस राज्य में प्रयुक्त किसी भाषा या हिंदी के प्रयोग को प्राधिकृत कर सकेगा । परंतु जब तक विधान मंडल विधि द्वारा अन्य उपबन्ध जारी ना करें तब तक अंग्रेजी का प्रयोग जारी रहेगा ।

अनुच्छेद 346 एक राज्य और दूसरे के बीच में अथवा राज्य और संघ के बीच में संचार के लिए राजभाषा - इसमें यह व्यवस्था की. गई है कि संघ के शासकीय प्रयोजन के लिए तल्समम प्राधिकृत भाषा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच तथा किसी राज्य और संघ की बीच पत्रादि की भाषा होगी । परन्तु दो या अधिक राज्य चाहे तो आपसी करार के द्वारा अपने-अपने राज्य में पत्राचार के लिए हिन्दी को राजभाषा के रूप में अपना सकते हैं ।

अनुच्छेद 347 किसी राज्य के जनसमुदाय के किसी विभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध के अन्तर्गत मांग किए जाने पर राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि किसी राज्य की जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को राज्य द्वारा मान्यता दी जाए, तो वह निर्देश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए, जो वह विर्निदिष्ट करें, शासकीय मान्यता दी जाए ।

अध्याय 3 : उच्चतम न्यायालयों. उच्च न्यायालयों आदि की भाषा

अनुच्छेद 348, 349 में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की भाषा के बारे में प्रावधान किए गए हैं । अनुच्छेद 348 के अनुसार, जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करें तब तक, उच्चतम न्यायालयों तथा उच्च न्यायालयों में अधिनियमों और विधेयकों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा अंग्रेजी ही रहेगी । इसके साथ राज्यपाल को यह अधिकार दिया गया कि वह राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से अपने राज्य के उच्च न्यायालय में उस राज्य की राजभाषा या हिन्दी के प्रयोग को प्राधिकृत कर सकेगा । परन्तु संसद और विधान मंडलों द्वारा पारित विधेयकों, अध्यादेशों, विषयों, विनिमयों और अधिनियमों का प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी ही माना जाए । अनुच्छेद 349 में भाषा से संबंधित कुछ विधियों को अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है ।

अध्याय 4 : विशेष निर्देश

अनुच्छेद 350 शिकायतों को दूर करने के लिए लिखे जाने वाले अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा- इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति अपनी शिकायतों को दूर करने के लिए लिखे जाने वाले अभ्यावेदनों में संघ या राज्य में प्रयुक्त किसी भी भाषा का प्रयोग कर सकता है ।

350 (क) में प्रत्येक राज्य और राज्य के अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चे को उस की मातृभाषा में शिक्षा दिलाने का प्रावधान है । 350 (ख) के अंतर्गत भाषाई अल्पसंख्यक वर्गो के लिए विशेष अधिकारी होगा, जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा । विशेष अधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह इस संविधान के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक वर्गो के लिए उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करें और समय-समय पर अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत

करें । राष्ट्रपति ऐसी सभी रिपोर्टों को संसद के दोनों सदनों में रखवायेंगे और संबंधित राज्य सरकारों को आवश्यक कार्यवाही हेतु भिजवाएंगे ।

अनुच्छेद 351 - में हिन्दी भाषा के विकास के लिए निर्देश दिए गए हैं इसमें कहा गया है कि संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रचार प्रसार बढ़ाए, ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके । हिंदी का विकास इस प्रकार किया जाए कि वह अपनी प्रकृति को खोए बिना आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं के रूप, शैली और पदों को आत्मसात कर लें । जहाँ आवश्यक हो शब्द भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें ।

अष्टम (आठवीं) अनुसूची

(अनुच्छेद 344(1) और 351)

1. असमिया	2. उड़िया	3. उर्दू
4. कन्नड	5. कश्मीरी	6. गुजराती
7. तमिल	8. तेलुगु	9. पंजाबी
10. बंगला	11. मराठी	12. मलयालम
13. संस्कृत	14. सिंधी	15. हिंदी
16. नेपाली	17. मणिपुरी	18. कोंकणी

टिप्पणी :- संविधान में संशोधन द्वारा सन् 1956 में सिंधी को तथा 1992 में नेपाली, कोंकणी, मणिपुरी को सम्मिलित किया गया ।

राष्ट्रपति के आदेश :

राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग की व्यवस्था करते समय सरकार ने इस बात का ध्यान रखा कि हिंदी ना जानने वाले अन्य भाषा-भाषियों को असुविधा ना हो । इसलिए सन् 1952 में 55 के राष्ट्रपति के आदेशों द्वारा धीरे-धीरे कुछ कार्यो के लिए अंग्रेजी के अलावा हिंदी के प्रयोग की अनुमति दी गई । अनुच्छेद 343(2) में दी गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति ने पहला आदेश 27 मई 1952 को जारी किया, जिसमें राज्यों के राज्यपालों, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों तथा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की अधिसूचना के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी और अंतर्राष्ट्रीय अंकों के अतिरिक्त देवनागरी अंकों को प्राधिकृत किया । राष्ट्रपति का दूसरा आदेश 1955 में गृहमंत्रालय ने निकाला जिसमें संघ के विभिन्न शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी के प्रयोग को प्राधिकृत किया गया । इन प्रयोजनों में जनता से पत्र व्यवहार, प्रशासनिक रिपोर्टों तथा संसद में प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्टों, राज्य सरकारों के पत्र व्यवहार, संधियों और करार, अन्य देशों की सरकार उनके दूतावासों तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ पत्र व्यवहार आदि सम्मिलित किए गए । सरकार ने इस दिशा में कदम बढ़ाते हुए वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों वाली आयोग तथा हिंदी निदेशालय की स्थापना की ।

अनुच्छेद 344 (1) के अनुसरण में सन् - 1955 में ही राष्ट्रपति द्वारा राजभाषा आयोग की नियुक्ति की गई । इस सिफारिशों की जांच के लिए लोक सभा और राज्य सभा के

क्रमश: बीस और दस सदस्यों की समिति गठित की गई । समिति ने सहमति प्रकट की कि सरकारी कामकाज में अंग्रेजी का प्रयोग बनाए रखा जाए. इसके साथ राजभाषा के विकास हेतु तैयारियाँ की जाएगी । समिति की सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात राष्ट्रपति ने सन् 1960 में एक विस्तृत आदेश जारी किया ।

10.4 अधिनियम 1988 तथा 1967

अधिनियम 1963,26 जनवरी 1965 को लागू हुआ । इस के पूर्व संविधान के अनुच्छेद में यह कहा गया था कि 26 जनवरी 1965 से हिन्दी संघ की राजभाषा होगी । जब यह समयावधि पूरी होने लगी तो अहिन्दी प्रांतों में विरोध बढ़ने लगा । विशेष रूप से दक्षिण भारत में यह मांग होने लगी कि अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखा जाए । इस विवाद के समाधान के रूप में यह निर्णय लिया गया कि 15 वर्ष की अवधि के बाद भी अंग्रेजी जारी रहेगी । इस हेतु राजभाषा अधिनियम 1963 पारित हुआ ।

इस अधिनियम के अंतर्गत सरकार एवं संसद के प्रयोजनों के लिए हिन्दी या अंग्रेजी के प्रयोग को स्वीकार किया गया । राजभाषा के संबंध में तीस संसदीय सदस्यों की समिति का गठन भी किया तथा उच्च न्यायालय के निर्णयों में उस राज्य की भाषा, हिन्दी या अंग्रेजी के प्रयोग को प्राधिकृत किया तथा अंग्रेजी में उसके अनुवाद की व्यवस्था की । अधिनियम 1963 का यथासंशोधित रूप :-

यथा संशोधित राजभाषा अधिनियम 1963

(1963 का अधिनियम सं० 19 - 10 मई, 1903)

उन भाषाओं का, जो संघ के राजकीय प्रयोजनों, संसद में कार्य के संव्यवहार, केन्द्रीय और राज्य अधिनियमों और उच्च न्यायालयों में कतिपय. प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लायी जा सकेंगी, उपबन्ध करने के लिए अधिनियम ।

भारत गणराज्य के चौदहवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो -

1. संक्षिप्त नाम और प्रारम्भ -

(1) यह अधिनियम राजभाषा अधिनियम, 1963 कहा जा सकेगा ।

(2) धारा जनवरी 3,1965 के 26 वें दिन को प्रवृत होगी और इस अधिनियम के शेष उपबन्ध उस तारीख को प्रवृत्त होंगे, जिसे केन्द्रीय सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करें और इस अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों के लिए विभिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी ।

2. **परिभाषाएं -** इस अधिनियम में, जब तक प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो -

(क) 'नियत दिन' से, धारा (3) के सम्बन्ध में, जनवरी 1965 का 26वा दिन अभिप्रेत है और इस अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध के सम्बन्ध में वह दिन अभिप्रेत है, जिस दिन को वह उपबन्ध प्रवृत होता है -

(ख) हिन्दी से वह हिन्दी अभिप्रेत है, जिसकी लिपि देवनागरी है ।

3. संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए और संसद में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा का बना रहना-

संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष की कालवधि की समाप्ति हो जाने पर भी, हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा, नियत दिन से ही -

(क) संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए, जिनके लिए वह उस दिन से ठीक पहले प्रयोग में लायी जाती थी, तथा

(ख) संसद में कार्य के संव्यवहार के लिए, प्रयोग में लायी जाती रह सकेंगी

परन्तु संघ और किसी ऐसे राज्य के बीच, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग में लायी जायेगी:

परन्तु जहाँ किसी ऐसे राज्य के, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है और किसी अन्य राज्य के, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, बीच पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी को प्रयोग में लाया जाता है, वहां हिन्दी में ऐसे पत्रादि के साथ-साथ उसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भेजा जायेगा

परन्तु यह और भी कि इस उपधारा की किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जायेगा कि वह किसी ऐसे राज्य को, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संघ के साथ या किसी ऐसे राज्य के साथ जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है या किसी अन्य राज्य के साथ जिसने हिन्दी को अनी राजभाषा के रूप में अपनाया है, या किसी अन्य राज्य के साथ, उसकी सहमति से, पत्रादि के प्रयोजन के लिए हिन्दी को प्रयोग में लाने से निवारित करती है और ऐसे किसी मामले में उस राज्य के साथ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बाध्यकर न होगा ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहाँ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी या अंग्रेजी भाषा-

(i) केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और दूसरे मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के बीच,

(ii) केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी नियम या कम्पनी या उसके किसी कार्यालय के बीच;

(iii) केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व के या नियंत्रण के किसी निगम या कम्पनी या उसके किसी कार्यालय के और किसी ऐसे निगम या कम्पनी या कार्यालय के बीच प्रयोग में लायी जाती है, वहाँ उस तारीख तक, जब तक पूर्वोक्त संबंधित मंत्रालय, विभाग, कार्यालय या निगम या कम्पनी का कर्मचारीवृन्द हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता ऐसे पत्रादि का अनुवाद, यथास्थिति, अंग्रेजी भाषा या हिन्दी में भी दिया जाएगा ।

(3) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के हाते हुए भी, हिन्दी और अंग्रेजी भाषा दोनों ही -

(i) संकल्पों, साधारण आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों या प्रेस विज्ञप्तियों के लिए, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियन्त्रण में के किसी निगम या कम्पनी द्वारा या ऐसे निगम या कम्पनी के किसी कार्यालय द्वारा निकाले जाते हैं या किए जाते हैं

(ii) संसद के किसी सदन या सदनों के समकक्ष रखे गये प्रशासनिक तथा अन्य प्रतिवेदनों और राजकीय कागज-पत्रों के लिए:

(iii) केन्द्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या उसकी ओर से या केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कम्पनी द्वारा या ऐसे निगम या कम्पनी के किसी कार्यालय द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए तथा निकाली गयी अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञापत्रों, सूचनाओं और निविदा प्रारूपों के लिए प्रयोग में लायी जायेंगी ।

(4) उपधारा (1) या उपधारा (2) या उपधारा (3) के उपबन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह है कि केन्द्रीय सरकार धारा 8 के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा उस भाषा या उन भाषाओं का उपलब्ध कर सकेगी जिसे या जिन्हें संघ के राजकीय प्रयोजन के लिए, जिसके अन्तर्गत किसी मंत्रालय, विभाग, अनुभाग या कार्यालय का कार्यकरण है प्रयोग में लाया जाना है और ऐसे नियम बनाने में राजकीय कार्य के शीघ्रता और दक्षता के साथ निपटारे का तथा जन-साधारण के हितों का सम्यक ध्यान रखा जाएगा और इस प्रकार बनाये गये नियम विशिष्टतया यह सुनिश्चित करेंगे कि जो व्यक्ति संघ के क्रियाकलाप के संबंध में सेवा कर रहे हैं और यह भी कि केवल इस आधार पर कि वे दोनों ही भाषाओं में प्रवीण नहीं है उनका कोई अहित नहीं होता है

(5) उपधारा (1) के खण्ड (क) के उपबन्ध और उपधारा (2) उपधारा (3) और उपधारा (4) के उपबन्ध तब तक प्रवृत्त बने रहेंगे जब तक उनमें वर्णित प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए ऐसे सभी राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा, जिन्होंने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संकल्प पारित नहीं कर दिये जाते और जब तक पूर्वोक्त संकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ऐसी समाप्ति के लिए संसद के हर एक सदन द्वारा संकल्प पारित नहीं कर दिया जाता ।

4. राजभाषा के संबंध में समिति -

(1) जिस तारीख को धारा 3 प्रवृत्त होती है, उससे दस वर्ष की समाप्ति के पश्चात राजभाषा के सम्बन्ध में एक समिति, इस विषय का संकल्प संसद के किसी भी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी से प्रस्तावित और दोनों सदनों द्वारा पारित किये जाने पर, गठित की जाएगी ।

(2) इस समिति में तीस सदस्य होंगे, जिनमें से 20 लोक सभा के सदस्य होंगे तथा दस राज्य सभा के सदस्य होंगे जो क्रमश: लोक सभा के सदस्यों तथा राज्य सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे ।

(3) इस समिति का कर्तव्य होगा कि वह संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रयोग में की गयी प्रगति का पुनर्विलोकन करें और उस पर सिफारिशें करते हुए राष्ट्रपति को प्रतिवेदन करे और राष्ट्रपति उस प्रतिवेदन को संसद के हर एक सदन के समकक्ष रखवायेगा और सभी राज्य सरकारों को भिजवायेगा ।

(4) राष्ट्रपति उपधारा (3) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर और उस पर राज्य सरकारों ने यदि कोई मत अभिव्यक्त किये हों तो उन पर विचार करने के पश्चात् उस समस्त प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निर्देश निकाल सकेगा । परन्तु इस प्रकार निकाले गये निदेश धारा 3 के उपबन्धों में असंगत नहीं होंगे ।

5. केन्द्रीय अधिनियमों आदि का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद - (1) नियत दिन को और उसके पश्चात् शासकीय राजपत्र में राष्ट्रपति के प्राधिकार से प्रकाशित -

(क) किसी केन्द्रीय अधिनियम का या राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश का अथवा

(ख) संविधान के अधीन या किसी केन्द्रीय अधिनियम के अधीन निकाले गये किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि का हिन्दी में अनुवाद उसका हिन्दी में प्राधिकृत पाठ समझा जायेगा ।

(2) नियत दिन से ही उन सब विधेयकों के, जो संसद के किसी भी सदन में पुन: स्थापित किये जाने हों और उन सब संशोधनों के, जो उनके संबंध में संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किये जाने हों, अंग्रेजी भाषा के प्राधिकृत पाठ के साथ-साथ उनका हिन्दी में अनुवाद भी होगा जो ऐसी रीति से प्राधिकृत किया जायेगा. जो इस अधिनियम के अधीन बनाये गये नियमों द्वारा विहित की जाये ।

6. **कतिपय दशाओं में राज्य अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद -**

जहाँ किसी राज्य के विधान मंडल ने उस राज्य के विधान मंडल द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में प्रयोग के लिए हिन्दी से भिन्न कोई भाषा विहित की है वहां, संविधान के अनुच्छेद 348 के खण्ड (3) द्वारा अपेक्षित अंग्रेजी भाषा में उसके अनुवाद के अतिरिक्त, उसका हिन्दी में अनुवाद उस राज्य के शासकीय राजपत्र में उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से नियत दिन को या उसके पश्चात प्रकाशित किया जा सकेगा और ऐसी दशा में ऐसे किसी अधिनियम या अध्यादेश का हिन्दी में अनुवाद हिन्दी भाषा में उसका प्राधिकृत पाठ समझा जायेगा ।

7. **उच्च न्यायालयों के निर्णयों, आदि में हिन्दी या अन्य राजभाषा का वैकल्पिक प्रयोग-**

नियत दिन से ही या तत्पश्चात् किसी भी दिन किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से . अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी या उस राज्य की राजभाषा का

प्रयोग उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा पारित या दिये गये किसी निर्णय, डिग्री या आदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा और जहां कोई निर्णय, डिग्री या आदेश (अंग्रेजी भाषा से भिन्न) ऐसी किसी भाषा में पारित किया या दिया जाता है वहाँ उसके साथ-साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी होगा ।

8. नियम बनाने की शक्ति -

(1) केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) इस धारा के अधीन बताया गया हर नियम, बनाये जाने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र. संसद के हर एक सदन के समक्ष. उस समय जब वह सत्र में हो, कुल मिलाकर तीस दिन की कालावधि के लिए, जो एक सत्र में या दो क्रमवर्ती सत्रों में समाविष्ट हो सकेगी रखा जायेगा और यदि उस सत्र के, जिसमें वह ऐसे रखा गया हो या ठीक पश्चातवर्ती सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई उपान्तर करने के लिए सहमत हो जाएँ या दोनों सदन सहमत हो जायें कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् यथास्थिति वह नियम ऐसे उपन्तरित रूप में ही प्रभावशील होगा या उसका कोई भी प्रभाव न होगा ।

9. कतिपय उपबन्धों का जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू न होना - धारा 8 और धारा 7 के उपबन्ध जम्मु व कश्मीर राज्य को लाग नहीं रहेंगे ।

अधिनियम 1967 :-

राजभाषा अधिनियम 26 जनवरी 1965 से लागू हुआ । इसके पश्चात् भी दक्षिण भारत भाषा संबंधी विवाद उठता रहा । हिन्दी के राजभाषा के स्वरूप को लेकर भी बहस थमी नहीं' । तब नेहरू जी ने संसद में यह आश्वासन दिया कि 1965 के बाद भी अंग्रेजी का प्रयोग जारी रहेगा । इसी आश्वासन को संवैधानिक रूप देने -के लिए राजभाषा अधिनियम (1963) में संशोधन किया गया । यह संशोधन 1 16 दिसम्बर 1967 कहा गया । सरकार ने भाषा नीति के संबंध में 18 जनवरी व 968 को एक संकल्प पारित किया । जिसमें केन्द्र सरकार को कामकाज में हिन्दी. के प्रयोग को बढ़ाने की जिम्मेदारी सौंपी। गई । इस संकल्प में आठवीं अनुसूची में उल्लिखत सभी भाषाओं के विकास की जिम्मेदारी भी सौंपी गई । अखिल भारतीय सेवाओं में भर्ती परीक्षा में संविधान में दी गई भाषाओं के प्रयोग की व्यवस्था की गई एवं संघ सेवाओं और पदों की भर्ती के लिए अभ्यर्थियों के लिए अंग्रेजी या हिन्दी का ज्ञान अनिवार्य कर दिया गया ।

10.5 राजभाषा अधिनियम 1978

राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 8 द्वारा प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए राजभाषा नियम 1978 बना । यह 17 जुलाई 1976 को बना । यह अधिनियम राजभाषा के विकास में सहायक सिद्ध हुआ । इस अधिनियम को सभी केन्द्र सरकार के कार्यालय और

केन्द्र के अधीन निगमों पर लागू किया गया । इसके अंतर्गत भारत के राज्यों को तीन क्षेत्रों 'क' 'ख' 'रा में बांटा गया । इन क्षेत्रों में हिन्दी-अंग्रेजी में पत्र व्यवहार तथा अनुवाद की व्यवस्था की गई । सभी प्रकार की सूचनाओं, नोटिस, लाइसेंस, आदेश, निविदा, रिपोर्ट आदि को भी हिंदी अंग्रेजी में जारी करने की व्यवस्था की गई । इसके साथ ही कर्मचारियों के हिन्दी के कार्यसाधक ज्ञान प्राप्ति के लिए भी ध्यान दिया गया । इस अधिनियम का यथासंशोधित रूप :-

विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय

(राजभाषा विभाग)

नई दिल्ली, 28 जून 1976

(राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976)

सा० का०नि0 1052 - केन्द्रीय सरकार, राजभाषा अधिनियम, 1983(1983 का 19) की धारा 3 की उपधारा (4) के साथ पतित धारा 8 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए निम्नलिखित नियम बनाती है, अर्थात् -

1. संक्षिप्त नाम; विस्तार और प्रारम्भ

(1) इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 है ।

(2) इन नियमों का विस्तार, तमिलनाडू राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर होगा ।

(3) ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख को प्रवृत्त होंगे ।

2. परिभाषाएं

इन नियमों में, जब तक कि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो -

(क) 'अधिनियम' से राजभाषा अधिनियम, 1983(1963 का 19) अभिप्रेत है;

(ख) केन्द्रीय सरकार के कार्यालय में निम्नलिखित भी सम्मिलित है, अर्थात् -

(1) "केन्द्रीय सरकार का कोई मंत्रालय, विभाग या कार्यालय,

(2) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त आयोग, समिति या अभिकरण का कोई कार्यालय; और

(3) केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी का कार्यालय,

(ग) 'कर्मचारी' से केन्द्रीय सरकार के कार्यालय में नियोजित कोई व्यक्ति अभिप्रेत है,

(घ) 'अधिसूचित कार्यालय' से नियम 10 के उपनियम (4) के अधीन अधिसूचित कार्यालय अभिप्रेत

(ङ) 'हिन्दी में प्रवीणता' से नियम 9 में यथावर्णित प्रवीणता अभिप्रेत है;

(च) 'क क्षेत्र' से बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के राज्य तथा दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है

(छ) 'ख क्षेत्र' से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब के राज्य तथा अंडमान और निकोबार द्वीप तथा चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है

(ज) ग क्षेत्र' से, खंड (च) और (छ) में निर्दिष्ट से भिन्न राज्य और संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है,

(झ) 'हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान' से नियम 10 में यथावर्णित कार्यसाधक ज्ञान अभिप्रेत है ।

3. राज्यों आदि, केन्द्रीय सरकर के कार्यालयों से भिन्न, के साथ पत्रादि

1. केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से 'क' क्षेत्र के राज्य को या ऐसे राज्य में (केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से भिन्न) किसी कार्यालय या व्यक्ति को पत्रादि, असाधारण दशाओं के सिवाय हिन्दी में होंगे, तथा यदि कोई पत्रादि उनमें से किसी को अंग्रेजी में भेजे जाते है तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा ।

2. केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से -

(क) 'ख' क्षेत्र के राज्य को या ऐसे राज्य में (केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से भिन्न) किसी कार्यालय को पत्रादि सामान्यतया हिन्दी में होंगे और यदि पत्रादि उसे अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उसके साथ-साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा ।

परन्तु यदि कोई ऐसा राज्य यह वांछा करता है कि किसी विशिष्ट वर्ग या प्रवर्ग के पत्रादि या उसके कार्यालयों में से किसी के लिए आशयित पत्रादि, उतनी अवधि तक जो सम्बन्धित राज्य की सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट की जाए, अंग्रेजी में या हिन्दी में, दूसरी भाषा में अनुवाद सहित, भेजे जाएं तो ऐसे पत्रादि उसी रीति से भेजे जाएंगे

(ख) क्षेत्र के राज्य में किसी व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी में अथवा अंग्रेजी भेजे जा सकते हैं।

3. केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से ग क्षेत्र के राज्य को या ऐसे राज्य में (केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से भिन्न) किसी कार्यालय या व्यक्ति को पत्रादि अंग्रेजी में होंगे ।

4. उपनियम (1) और (2) में किसी बात के होते हुए भी, ग क्षेत्र में के केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से 'क' क्षेत्र या 'ख' क्षेत्र के राज्य को या ऐसे राज्य में (केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से भिन्न) किसी कार्यालय या व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी में या अंग्रेजी में हो सकते हैं ।

4. केन्द्रीय सरकार के कार्यालय के बीच पत्रादि

(क) केन्द्रीय सरकार के मंत्रालय या विभाग या दूसरे मंत्रालय या विभाग के बीच पत्रादि हिन्दी में या अंग्रेजी में हो सकते हैं ।

(ख) केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और 'क' क्षेत्र में स्थित संलग्न या अधीनस्थ कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी में होंगे और ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार, ऐसे कार्यालय में हिन्दी का कार्य-साधक ज्ञान प्राप्त व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने के लिए सुविधाओं और उनके आनुषंगिक विषयों को ध्यान में रखते हुए, समय-समय पर अवधारित करें

(ग) 'क' क्षेत्र में स्थित, खंड (ख) में विनिर्दिष्ट से भिन्न केन्द्रीय सरकार के कार्यालय के बीच पत्रादि हिन्दी में होंगे।

(घ) 'क' क्षेत्र और 'ख' क्षेत्र या ग क्षेत्र में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिंदी में या अंग्रेजी में हो सकते हैं ।

(ङ) 'ख' क्षेत्र या 'ग' क्षेत्र में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी में या अंग्रेजी में हो सकते हैं, परन्तु ऐसे पत्रादि के साथ उनका दूसरी भाषा में अनुवाद -

(1) जहाँ पत्रादि 'क' क्षेत्र या 'ख' क्षेत्र के कार्यालय को संबोधित है, वहां यदि आवश्यक हो तो, पहुंच के स्थान पर उपलब्ध कराया जाएगा

(2) जहाँ पत्रादि ग क्षेत्र में के कार्यालय को संबोधित है वहां ऐसे पत्रादि के साथ-साथ उपलब्ध कराया जाएगा

परन्तु यह और कि दूसरी भाषा में ऐसा अनुवाद उपलब्ध कराने की अपेक्षा नहीं की जाएगी यदि पत्रादि किसी अधिसूचित कार्यालय को संबोधित है ।

5. **हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर-**नियम 3 और नियम 4 में किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी में पत्रादि के केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से उत्तर हिन्दी में होंगे ।

6. हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का ही प्रयोग - अधिनियम की धारा 3 की उप-धारा (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह दायित्व होगा कि वे यह सुनिश्चित कर लें कि ऐसे दस्तावेज हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही में तैयार किए जाते हैं, निष्पादित किए जाते हैं या जारी किये जाते हैं।

7. **आवेदन, अभिवेदन, आदि -**

(1) कर्मचारी कोई आवेदन, अपील या अभिवेदन हिन्दी में या अंग्रेजी में कर सकता है ।

(2) उपनियम (1) में निर्दिष्ट कोई आवेदन, अपील या अभिवेदन जब भी हिन्दी में किया जाए या उसमें हिन्दी में हस्ताक्षर किए जाएं तो उसका उत्तर हिन्दी में दिया जाएगा ।

(3) जब कोई कर्मचारी यह वांछा करता है कि सेवा विषयों से (जिसमें अनुशासनिक कार्यवाइयां सम्मिलित है) संबंधित कोई आदेश या सूचना, जिसका कर्मचारी पर तामील किया जाना अपेक्षित है, यथास्थिति, हिन्दी में या अंग्रेजी में होनी चाहिए तो वह उसे बिना किसी अनुचित विलम्ब के उसी भाषा में दी जाएगी ।

8. **केन्द्रीय सरकार के कार्यालय में टिप्पणी का लिखा जाना -**

(1) कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पणी या कार्यवृत्त हिन्दी में या अंग्रेजी में लिख सकता है और उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में भी प्रस्तुत करें ।

(2) केन्द्रीय सरकार का कर्मचारी, जिसे हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त है, किसी हिन्दी दस्तावेज के अंग्रेजी अनुवाद की मांग तब के सिवाय नहीं कर सकता जब दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का है।

(3) यदि कोई ऐसा प्रश्न उठता है कि अमुक दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का है या नहीं तो उसका विनिश्चय विभाग या कार्यालय के अध्यक्ष द्वारा किया जाएगा ।

(4) उपनियम (1) में किसी बात के हाते हुए भी, केन्द्रीय सरकार, आदेश द्वारा ऐसा अधिसूचित कार्यालय विनिर्दिष्ट कर सकती है जहां टिप्पण, प्रारूपण और ऐसे अन्य

शासकीय प्रयोजनों के लिए जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, उन कर्मचारियों द्वारा जिन्हें हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है, केवल हिन्दी का प्रयोग किया जाएगा ।

9. हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त कर्मचारी के बारे में यह समझा जाएगा कि उसे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है, यदि-

(क) उसने मैट्रिक्स परीक्षा या उसकी कोई समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा, हिन्दी की परीक्षा के माध्यम के रूप में अपनाकर, उत्तीर्ण की है; अथवा

(ख) स्नातकोत्तर परीक्षा में अथवा स्नातकोतर परीक्षा की समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिन्दी उसका एक वैकल्पिक विषय थी; अथवा

(ग) वह इन नियमों से उपाबद्ध प्रारूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिन्दी में प्रवहणता प्राप्त है ।

10. **हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान -** (1) कर्मचारी के बारे में समझा जाएगा कि उसने हिन्दी का कार्य साधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है -

(क) यदि उसने -

(1) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिन्दी विषय के साथ उत्तीर्ण की है; अथवा

(2) केन्द्रीय सरकार की हिन्दी प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा. या, जब उस सरकार द्वारा किसी विशिष्ट प्रवर्ग के पदों के संबंध में ऐसा विनिर्दिष्ट किया जाए, उस योजना के अंतर्गत कोई निम्नतर परीक्षा उत्तीर्ण की है; अथवा

(3) केन्द्रीय सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है; अथवा

(ख) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्रारूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।

(2) केन्द्रीय सरकार के कार्यालय के कर्मचारिवृन्द के बार में सामान्यतया यह समझा जाएगा कि उन्होंने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है यदि उस कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारिवृन्द में से अस्सी प्रतिशत ने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।

(3) केन्द्रीय सरकार या केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त निर्दिष्ट कोई अधिकारी यह अवधारण कर सकेगा कि केन्द्रीय सरकार के कार्यालय के कर्मचारिवृन्द ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है या नहीं ।

(4) केन्द्रीय सरकार के उन कार्यालयों के नाम, जहाँ के कर्मचारिवृन्द ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, राजपत्र में अधिसूचित किए जाएंगे ।

परन्तु यदि केन्द्रीय सरकार की यह राय है कि किसी अधिसूचित कार्यालय में काम करने वाले और हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर्मचारिवृन्द का प्रतिशत किसी तारीख से

उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट प्रतिशत से गिर गया है तो वह राज-पत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकती है कि उक्त कार्यालय उस तारीख से अधिसूचित कार्यालय नहीं रहेगा ।

11. मैन्यूअल. संहिलाएं और अन्य प्रक्रिया संबंधी साहित्य, स्टेशनरी के सामान, आदि -

(1) केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैन्यूअल, संहिताएं और अन्य प्रक्रिया संबंधी साहित्य, हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में द्विभाषिक रूप में, यथास्थिति, मुद्रित किया जाएगा साइक्लोस्टाइल किया जाएगा और प्रकाशित किया जाएगा ।

(2) केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग में लाए जाने वाले प्रारूपों और रजिस्टरों के शीर्ष हिन्दी और अंग्रेजी में होंगे ।

(3) केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग के लिए लिखे गए, मुद्रित या उत्कीर्ण लेख तथा स्टेशनरी की अन्य मदें और हिन्दी और अंग्रेजी में होंगी ।

परन्तु केन्द्रीय सरकार, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझती है तो साधारण या विशेष आदेश द्वारा, केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय को इस नियम के सभी या किन्हीं उपबंधों से छूट दे सकती है ।

12. अनुपालन का उत्तरदायित्व - (1) केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह -

(1) यह सुनिश्चित करें कि अधिनियम और इन नियमों के उपबंधों का समुचित रूप से अनुपालन किया जाता है, और

(2) इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जांच-पड़ताल के उपाय करें ।

(3) केन्द्रीय सरकार अधिनियम और इन नियमों के उपबंधों के अनुपालन के लिए अपने कर्मचारियों और कार्यालयों को समय-समय पर ऐसे निर्देश जारी कर सकती है जैसे कि आवश्यक हों ।

10.6 राजभाषा आयोग तथा समितियाँ

स्वाधीनता के उपरांत राजभाषा के रूप में हिन्दी को अपनाया तो गया लेकिन उसके क्रियान्वयन में कठिनाई उत्पन्न होने लगी । अंग्रेजी लंबे समय से आधिपत्य जमाए थी इसलिए हिन्दी में काम-काज की समस्या उत्पन्न होने लगी । राजभाषा हिन्दी के समक्ष शब्दकोष, पारिभाषिक शब्दावली, टंकण, संदर्भग्रंथ, जैसी कई समस्याएं निरंतर आने लगी । इन कठिनाइयों को देखते हुए राजभाषा आयोग एवं समितियों का निर्माण हुआ । 1955 में राष्ट्रपति ने राजभाषा आयोग की स्थापना की । इस आयोग ने कई सिफारिशें की जिसे जांचने के लिए एक समिति का निर्माण भी हुआ । इसके पश्चात अधिनियम 1963 तथा 67 में हिन्दी के विकास के लिए तथा सरकारी प्रयोजनों में हिन्दी के प्रयोग के लिए व्यवस्था की गई । इस संबंध में विभिन्न समितियों का गठन किया गया जो हिन्दी के शासकीय प्रयोग की कठिनाइयों को दूर करती है तथा इस संबंध में कार्यो की निगरानी भी करती है । विभिन्न समितियों के नाम -

– केन्द्रीय हिंदी समिति

– राजभाषा कार्यान्वयन समितियां

– केन्द्रीय राजभाषा समिति

इन समितियों पर विस्तार पूर्वक जानकारी अगली इकाई में प्राप्त करेंगे ।

10.7 सारांश

हिन्दी को कई उतार चढ़ाव के बाद संविधान में राजभाषा का दर्जा प्राप्त हुआ । हिन्दी लिखने बोलने एव भावों को प्रकट करने में किसी अन्य भाषा से अधिक क्षमतावान है । यही कारण है कि विरोध के पश्चात भी हिन्दी का प्रयोग एवं विकास निरंतर जारी है ।

संविधान के 17 वें अध्याय संसद, कार्यपालिका एवं न्यायालय में हिन्दी में कार्य करने हेतु विभिन्न अनुच्छेदों में विस्तार पूर्वक चर्चा की गई । राजभाषा एवं विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के बारे में भी व्यवस्था की गई हिन्दी के लिए राजभाषा अधिनियम 1963 एवं 67 अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । इसके अंतर्गत हिन्दी के साथ अंग्रेजी के प्रयोग को जारी रखने का निर्णय लिया गया । केन्द्रीय कार्यालयों एवं उनके अधीन निगमों आदि में भी विभिन्न आदेशों सूचनाओं आदि को हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों में निकालने का प्रावधान किया गया । 1967 के संशोधन के तहत हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने का संकल्प लिया गया । भारतीय सेवाओं में भर्ती के लिए संविधान में दी गई भाषाओं के प्रयोग की व्यवस्था की गई जो कि अत्यंत आवश्यक था । इसके साथ भर्ती के अभ्यर्थियों के लिए हिन्दी या अंग्रेजी का ज्ञान अनिवार्य करने का निर्णय लिया गया ।

राजभाषा अधिनियम 1976 के तहत भाषा के आधार पर भारत के राज्यों तीन भागों में वर्गीकरण किया गया । इन तीन भागों 'क' 'ख' ग के मध्य किस प्रकार पत्र व्यवहार होगा इसका उल्लेख किया गया ।

1955 में राजभाषा आयोग का गठन हुआ । इसके पश्चात विभिन्न केन्द्रीय समितियों का गठन किया गया जो शासकीय कार्यो में हिन्दी के प्रयोग की जांच करती है तथा बाधाओं का निस्तारण भी करती है ।

10.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. हिन्दी की संवैधानिक स्थिति पर लेख लिखिए ।
2. संविधान में प्रादेशिक भाषाओं का किस उपबंध में उल्लेख किया गया है, समझाए?
3. अधिनियम 1963 को संक्षेप में लिखिए ।
4. भाषा के आधार पर राज्यों को कितने भागों में बांटा गया है?
5. हिंदी के विकास के लिए किए गए प्रयासों पर अपना मत प्रकट कीजिए ।

10.8 संदर्भ ग्रंथ

1. अवधेश मोहन गुप्त: **राजभाषा सहायिका,** प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1999
2. डॉ. रामबाबू शर्मा : **राजभाषा हिंदी की कहानी,** अंकुर प्रकाशन नई दिल्ली
3. डॉ. भोलानाथ तिवारी : **राजभाषा हिंदी,** प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

4. श्री सुधाकर द्विवेदी हिंदी : **अस्तित्व की तलाश,** राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
5. कैलाशचंद्र भाटिया व मोती लाल चतुर्वेदी: **हिंदी भाषा विकास और स्वरूप,** ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली

इकाई - 11

राजभाषा हिन्दी का स्वरूप एवं कार्यान्वयन

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 राजभाषा के राम में हिन्दी का विकास

11.2.1 आदिकाल में हिन्दी का स्वरूप

11.2.2 मध्यकाल में हिन्दी का स्वरूप

11.2.3 आधुनिक काल में हिन्दी का स्वरूप

11.2.4 स्वाधीनता का संघर्ष और राजभाषा के रूप में हिन्दी का विकास

11.3 राजभाषा का महत्त्व

11.3.1 राष्ट्रभाषा

11.3.2 संपर्क भाषा

11.4 राजभाषा क्रियान्वयन समितियाँ

11.5 राष्ट्रपति का आदेश, 1960

11.6 सारांश

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.8 संदर्भ ग्रंथ

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- राजभाषा हिन्दी का स्वरूप पूर्व में क्या था? हिन्दी ने अपनी विकास यात्रा कैसे तय की? साहित्य के इतिहास और भाषा के विकास में क्या परिवर्तन हुए? इस ग्यारहवीं इकाई में इन सभी का परिचय आप प्राप्त कर सकेंगे ।
- आदिकाल, मध्यकाल व आधुनिक काल में राजभाषा का विकास कैसे हुआ? परिस्थितियों व वातावरण ने भाषा के रूप को कैसे बदला? इन सभी की जानकारी को समझ सकेंगे ।
- स्वतंत्रता आंदोलन के समय हिन्दी भाषा का रूप किस तरह से बना? स्वाधीनता संघर्ष के समय हिन्दी देश की राष्ट्रभाषा के रूप में पहचानी गई । यह सब जान पाएँगे ।
- आजादी के बाद देश में भाषा की आवश्यकता को महसूस किया गया । संविधान में राजभाषा के प्रश्न पर विचार किया गया और एक विशेष अवधि तक ही पहले राजभाषा को लागू किये जाने पर प्रस्ताव पारित किया गया । यह जानकारी पा सकेंगे ।

- स्वाधीनता के बाद राजभाषा के रूप में हिन्दी को स्थान मिला । हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न समितियों का निर्माण किया गया, गठन किया गया । हिन्दी के विकास के प्रयास आरम्भ किये गए । इन सब का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।

11.1 प्रस्तावना

हिन्दी भाषा के स्वरूप निर्धारण में अपभ्रंश, अवहट्ट, पुरानी हिन्दी का बड़ा महत्व है । अपभ्रंश की लोकप्रियता से साहित्यिक भाषा बनने में विद्यापति, अमीर खुसरो और संत कवियों का योगदान रहा है । साथ ही उपभाषाओं और बोलियों में विशेष रूप से अवधी, ब्रज, खड़ी बोली का महत्त्वपूर्ण योगदान है, जिससे हिन्दी विकसित हुई । आधुनिक काल तक आते-आते हिन्दी को दक्खिनी हिन्दी, हिंदुई, हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा और राजभाषा के नामों से जाना गया । फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद हिन्दी के बनने की प्रक्रिया तीव्र हुई । भारतेंदु युग के रचनाकारों ने हिन्दी गद्य व हिन्दी का विकास पत्र-पत्रिकाओं व साहित्य के माध्यम से किया । द्विवेदी युग में आकर खड़ी बोली हिन्दी का व्यावहारिक स्वरूप परिमार्जित एवं परिष्कृत हुआ । स्वाधीनता के बाद हिन्दी एक मजबूत कड़ी के रूप में पूरे भारतवर्ष की भाषा बनी । हिन्दी को राजभाषा घोषित किया गया । राजभाषा के रूप में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए, उसके समुचित कार्यान्वयन के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया गया । राजभाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग की व्यवस्था के लिए राष्ट्रपति का पहला आदेश सन् 1952 में निकाला और अन्य विस्तृत 1960 में ।

11.2 राजभाषा के रूप में हिन्दी का विकास

11.2.1 आदिकाल में हिन्दी का स्वरूप

सामान्य जन भाषा से राष्ट्रभाषा, राजभाषा के रूप में हिन्दी के परिवर्तन की विकास यात्रा लगभग 1000 सालों की है । हिन्दी के प्रारम्भिक स्वरूप को जानने के लिए हमें साहित्य के इतिहास व भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करना होगा कि हिन्दी का उद्गम स्रोत कहीं है? भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा को तीन भागों में विभाजित किया है ।

(1) प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल

(2) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल

(3) आधुनिक भारतीय आर्य भाषा काल ।

हिन्दी साहित्य-इतिहास के काल विभाजन को देखें तो उसे भी आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल में विभक्त किया गया है । हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल या आदिकाल में जो साहित्य व भाषा मिलती है वह अपभ्रंश है । इस काल में प्राकृत का प्रभाव घटने और अपभ्रंश का दायरा बढ़ने लगता है । अपभ्रंश उस समय के जन सामान्य के बोलचाल की भाषा थी । अपभ्रंश का अर्थ था अशुद्ध, भ्रष्ट अर्थात् वह भाषा जो अपने स्थान से गिर चुकी हो । इसमें देशीपन अधिक दिखाई पड़ता है ।

विद्यापति के शब्दों में - ' 'देसिल बअना सब जन मिट्ठा । " अपभ्रंश कालीन कवियों ने इस भाषा को सजीव बनाया और इसका विकास किया । प्रारम्भ में यह भाषा कुछ जाति-विशेष के लोगों में यथा - आभीर व गुर्जर लोगों में बोली जाती थी । प्राकृत के बाद जो लोकभाषा थी उसी से अपभ्रंश का नाम ग्रहण किया । भाषा के रूप में इसका विकास पश्चिम क्षेत्र में अधिक दिखलाई पड़ता है । इस भाषा की यह विशेषता थी कि यह भाषा व्याकरण के जटिल नियमों से मुक्त होकर बनी । इससे भाषा का प्रवाह तीव्र रूप में बढ़ा । इस समय की प्रसिद्ध रचना 'कीर्तिलता' की भाषा अवहट्ट जिसमें अपभ्रंश का ही परिवर्तित रूप है । इस काल में भाषा की दृष्टि से कुछ नई चीजें सामने आई । विभक्तियों का लोप, क्रियापदों में नवीनता, परसर्गो का प्रयोग आदि में नवीनता दिखाई पड़ती है । इस भाषा में अनेक क्षेत्रीय शब्दों का आगमन भी दिखाई पड़ता है । प्रारम्भिक हिन्दी का, पुरानी हिन्दी का रूप उत्तरकालीन अपभ्रंश में देखा गया था । आरम्भिक हिन्दी से खड़ी बोली हिन्दी का रूप सामने आता है । 'प्राकृत पैगलम व राउलवेल' पुरानी हिन्दी के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं । हिन्दी साहित्य के विद्वानों व इतिहासकारों ने गहन अध्ययन किया और भाषागत प्रवृतियों के आधार पर यह देखा कि अपभ्रंश, अवहट्ट प्रारम्भिक हिन्दी मे खड़ी बोली राजस्थान का रूप मिश्रित था । आरम्भिक हिन्दी जो अभी तक गुमनामी के अँधेरे में थी, वह अब प्रकाश में आई । स्पष्ट रूप से 19 वीं शताब्दी में हिन्दी खड़ी बोली के रूप में प्रतिष्ठित हुई । हिन्दी साहित्य के आदिकाल में नाथ साहित्य में गुरु गोरखननाथ के पद खड़ी बोली के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं । कवि चंदरवदायी ने डिंगल के रासो में खड़ी बोली का प्रयोग किया, जो आज भी आधुनिक है । ग्यारहवीं शती मे नामदेवों के गीतों में इसी बोली के दर्शन होते हैं । सोलहवीं शती में संत एकनाथ, संत तुकाराम, कान्होबा ने भी खड़ी बोली में कविताएँ रची । संत रामदास, देवदास व दयाबाई की रचनाओं में खड़ी बोली का प्रयोग दिखलाई पड़ता है । डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार 'स्कूल की भाषा जो पश्चिम उत्तरप्रदेश, पूर्वी पंजाब, मध्य भारत, मध्यप्रदेश और राजस्थान के कुछ अंशों में बोली जाती है वही खड़ी बोली है । कुछ विद्वान खड़ी बोली को ही हिन्दुस्तानी का पर्याय मानते हैं ।

ग्रियर्सन द्वारा पुकारी जाने वाली हिन्दुस्तानी, हरिशचन्द्र द्वारा पुकारी जाने वाली खड़ी बोली, शेखबजन और खुसरो द्वारा पुकारी जाने वाली देहलवी ही खड़ी बोली है । सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य की रचनाओं में खड़ी बोली का रूप दिखाई पड़ता है, वहीं संधा भाषा के प्रतीकों पर आधारित भाषा का प्रयोग किया गया है ।

आदिकाल के ही प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो ने हिन्दवी का प्रयोग उत्तर भारत में प्रचलित आम भाषा के लिए किया । इनका साहित्य अरबी-फारसी और हिन्दी के मिश्रण का योग है । अनेक भाषाओं के जानकार होने के नाते उन्होंने सभी भाषाओं में रचनाएँ लिखी । लेकिन अरबी-फारसी और हिन्दी में उनका बड़ा योगदान रहा । इनकी पहेलियाँ-मुकरियाँ बहुत प्रसिद्ध हुई । कुछ उदाहरण निम्न हैं -

पहेली : **एक थाल मोती से भरा**
सबके सिर पूर औंध धरा

	चारो और वह थाल फिरे,	
	मोती उसका एक न गिरे ।	**(आसमान)**
	बीसो का सर काट दिया	
	ना मारा ना खून किया ।	**(नाखून)**
मुकरी :	**सगरी रैन मोरे संग जागा**	
	भोर मई तो बिछुड़न लागा	
	वा के बिछुडत फाटे हिया,	
	ए सखि साजन? ना सखि दिया ।	
दो सुखना :	**रोटी जली क्यों?**	
	घोड़ा अड़ा क्यों?	
	पान सड़ा क्यों?	**(फेरा न था)**

अमीर खुसरों ने आम जनता के बोलचाल की भाषा को साहित्यक रचना के लिए काम में लिया । भाषा के इसी रूप का खड़ी बोली के रूप में विकास हुआ । इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रारम्भिक दौर में इतिहास की दृष्टि से - अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद बिन तुगलक, फिरोजशाह तुगलक आदि ने आम बोलचाल की भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग करना आरंभ किया तथा संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी प्रयुक्त होने लगी । आदिल शाही शासकों ने दक्खिनी हिन्दी को आम बोलचाल की भाषा समझ कर उसे पूरा सम्मान दिया ।

एक तथ्य यह है कि उत्तर भारत के सभी लोदी वंश, खिलजी वंश, मुगल वंश के शासकों ने हिन्दी अथवा हिंदवी को बढ़ावा दिया । इतिहास में यह भी महत्त्वपूर्ण है कि औरंगजेब जो अपनी क्रूरता के लिए जाना जाता है, उसने अपने शासनकाल में हिन्दी को बढ़ावा दिया । वह स्वयं एक विद्वान व कवि हृदय था ।

आदिकाल के साहित्य की सामग्री व भाषागत परिवर्तनों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक हिन्दी का रूप जो हिंदवी, खड़ी बोली, हिंदुस्तानी के रूप में मिलता है, उसमें साहित्य सृजन बोलचाल की भाषा से ही प्राप्त हुआ है । दक्खिनी में लिखी गद्य पद्य साहित्य रचनाओं में भले सीमित हों, पर खड़ी बोली के विकास में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान है । प्रारम्भिक हिंदी के स्वरूप को जानने के लिए अत्यंत उपयोगी है ।

11.2.2 मध्यकाल में हिन्दी का स्वरूप

हिन्दी भाषा के स्वरूप में आदिकालीन भाषा जो अपभ्रंश से प्रारंभ हुई वह जनभाषा, खड़ी बोली तथा दक्खिनी के रूप में प्रतिष्ठित होकर नये कलेवर व साहित्यिक रूपों में आ गई । आदिकाल के साहित्य से यह जनभाषा के रूप में मध्यकाल में आई तब वह क्षेत्र विशेष में महत्वपूर्ण होकर अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी की उपभाषाओं के अन्तर्गत आ गई । यह अवधी भाषा गंगा के उत्तर में जौनपुर जिले से इलाहाबाद के भू-प्रदेश की भाप बन गई । इस

प्रदेश की भाषा को पूर्वी या कोसली भाषा भी कहा गया । कोसल अवध का प्राचीन नाम है, अतएव अवधी नाम पड़ा । अवधी की तीन विभाषाएँ स्वीकार की गई हैं -

1. पश्चिमी 2. केन्द्रीय 3. पूर्वी

इस समस्त क्षेत्र में इस भाषा का व्याकरणिक रूप समान सा है, कुछ स्थानीय विशेषताऐ उपलब्ध होती हैं । अवध प्राचीन काल से ही साहित्यिक चेतना का केंद्र रहा है । भगवान रामचन्द्र जी की जन्मस्थली यही है । यहाँ के सैकड़ों कवियों ने इस भाषा को अपनाया । उत्तरी भारत में यह भाषा महाकाव्यों की उपयुक्त भाषा बनी । यह वही भाषा है जिसमें गोस्वामी तुलसीदास ने अद्वितीय ग्रंथ रामचरितमानस' व जायसी ने 'पद्मावत' की रचना की । साहित्यिक दृष्टि से यह भाषा बहुत महत्त्वपूर्ण है । तुलसीदास जी ने अवधी का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया जो जनभाषा के रूप में प्रचलित थी । जनभाषा के प्रति उन्हें अगाध प्रेम था-

का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए सींच ।
काम जु आवे कामरी कालै करिज कुमाच ।।

उन्होंने साहित्यिक हिन्दी के दो प्रधान रूपों - पश्चिमी तथा पूर्वी को समान रूप से अपनाया । अवधी । रामचरित मानस', रामलला नहछू को रचा तो ब्रजभाषा में कवितावली, विनयपत्रिका, गीतावली, दोहावली की चना की ।

जायसी की भाषा भी अवधी है, जो लोक में समझी जाती थी । जनभाषा अवधी को पूरा-पूरा महत्त्व दिया । गयसी का दृष्टिकोण बड़ा उदार है -

"तुरकी अरबी हिंदुई भाषा जेती आहि ।
जेहीं मँह मारग प्रेम कर सबै सराहै ताहिं । ।

इसी जनभाषा से उन्होंने भावनात्मक एकता का प्रचार-प्रसार भी किया । भाषा को अधिकाधिक सरल व रस रूप प्रदान किया । जायसी के पास संस्कृत के तत्सव व तद्भव शब्दों का भंडार था, वही अरबी, फारसी र तुर्की की शब्दावली से उन्हें परिहेज नहीं था ।

"चीर चरुह और चंदन चोला ।
हीर हार नग नाग अमोला ।।
नैन गगन रवि बिनु अँधियारे ।
ससि मुख आँसू टूट जनु तारो । ।

भाषिक विकास की दृष्टि से पद्मावत, चाँदावत मधुमालती तथा रामचरितमानस इन चार ग्रंथों का अवधी में अत्यधिक महत्त्व था । इनके अतिरिक्त भी मध्यकाल में सैकड़ों रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

मध्यकाल की सभी साहित्यिक भाषाएँ मध्यदेश की ही बोलियों का परिष्कृत रूप थी । विशेष रूप से वैदिक भाषा, ब्राह्मण ग्रंथों की भाषा तथा संस्कृत प्राकृत काल की मुख्य भाषा पालि, शौरसेनी प्राकृत का ही एक रूप थी । पालि भाषा केवल मगध की ही नहीं, मध्यदेशीय शौरसेनी से विकसित हुई । ग्यारहवीं शती में मध्यदेश की जनभाषा के रूप में ब्रजभाषा का विकास हुआ । वह उत्तर की सांस्कृतिक और राजकाज की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित की गई । एक ओर वीरता और शौर्य के भावों से परिपुष्ट हो कर नई भाषा में नवीन शक्ति का संचार

हुआ, दूसरी ओर, मध्ययुग के भक्ति आंदोलन में प्रमुख माध्यम के रूप में अभिव्यक्त हुई । मध्यकाल में सामंतों ने अपने दरबारों में अपभ्रंश भाषा को स्थान दिया और इसी भाषा में उनके यश व शौर्य की गाथाएँ व स्तुतियाँ छंदबद्ध की गई ।

शौरसेनी अपभ्रंश ब्रजभाषा के निकटतम पूर्ववर्ती भाषा थी । बाद में यह जनभाषा के पद से अलग होती है । ब्रजभाषा के विकास में जिन पिछले सौ वर्षो की परंपरा का प्रभाव है । उसमें न जाने कितने ही मिश्रण हैं । प्राचीन से नया बनने तक जितने सोपान इस भाषा को पार करने पड़े हैं, उन सभी की कुछ न कुछ विशेषताएँ हैं । ऐसा माना जाता है कि ईसवी 1000 के लगभग शौरसेनी अपभ्रंश से ब्रजभाषा का जन्म हुआ है ।

डॉ. सुनीति कुमार चार्दुज्या के अनुसार - "ब्रजभाषा पुरानी शौरसेनी भाषा की सबसे महत्त्वपूर्ण और शुद्ध प्रतिनिधि भाषा है, तथा हेम व्याकरण के अपभ्रंश दोहे की भाषा इसी की पूर्व पीठिका है।"

बारहवीं से चौदहवीं शताब्दी की सभी प्रान्तीय बोलियों ने ब्रजभाषा के निर्माण में बड़ा योगदान दिया, जिससे ब्रजभाषा नई शक्ति, नई चेतना व नई प्रेरणा लेकर प्रगति के पथ पर आगे बढ रही थी । गोरखनाथ जी की बानी में भी ब्रजभाषा का प्रयोग अधिक प्राप्त होता है । अपनी साधना के सहज विचारों, उपदेशों तथा चर्चाओं में वे ब्रज भाषा के पदों का ही लिखते थे । एक उदाहरण निम्न है -

"त्रिभुवन डसति गोरखनाथ डीठी । मारो सपणीं जगाई ल्यों भौरा ।
जिन मानी स्रपिणी ताकों कहा करै जौंरा ।
सापणी कहैं मैं अबला बलिया । ब्रह्मा विस्त महादेव छलिया ।
माता माती सपनी सदसौ दिसि धावै । गोरखनाथ गारूड़ी पवन वेगि त्यावै ।

ब्रजभाषा में बहुत से संतों की वाणियाँ भी मिलती है । पद-शैली का प्रयोग निर्गुण संतों ने किया । मध्यकाल के प्रमुख संत कवियों में - नामदेव धन्ना, पीपा सेन, कबीर, रैदास, फरीद, नानक, मीराँबाई जैसे प्रमुख नाम हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है । नामदेव की रचनाओं में ब्रह्म का स्वरूप तो रेखता शैली में हैं, किन्तु भावपुर्ण रचनाएँ ब्रजभाषा में ही है । कबीरदास की भाषा यद्यपि सधुक्कड़ी है, किन्तु ब्रजभाषा का प्रभाव अधिक दिखलाई पड़ता है ।

'सोई उपाय करि यहु दुख जाई । ए सब परिहरि विषै सगाई ।
माया मोह जोर जर आगी । ता सँग जरसि कवन रस लागी ।।

रैदास की वाणी व नानक देव के 'गुरुग्रंथ साहिब' के पद व साखियों में ब्रजभाषा दिखाई देती है । भक्त कवयित्री मीरा की मातृभाषा यद्यपि राजस्थानी थी । उनके गीत राजस्थानी तथा गुजराती के मिश्रित रूप में मिलते हैं । ब्रज से संबंध होने के कारण उनके पदों में शुद्ध ब्रजभाषा मिलती हैं

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ ।
गिरधर म्हारो सींचो प्रितम देखत रूप लुभाऊँ ।
+ + +

मेरी उनकी प्रीत पुरानी उन बिल पल न रहाऊँ ।

मध्यकालीन साहित्य में कवियों ने अवधी, ब्रज के विकास में सहयोग किया । हिंदीतर प्राप्तों के होते हुए अनेक कवियों ने ब्रजभाषा की समृद्धि में अपना योगदान दिया । इन्हीं भाषाओं ने आगे विकसित होकर हिंदी के स्वरूप निर्धारण में अपना योगदान दिया ।

11.2.3 आधुनिक काल में हिन्दी का स्वरूप

आधुनिक काल तक अपनी विकास यात्रा तय करते हुए हिंदी भाषा को कई नामों से जाना गया । प्रारम्भिक रूप में अपभ्रंश, दक्खिनी हिन्दी, खड़ी बोली, हिंदवी, हिंदुई, हिंदुस्तानी, राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा के नाम से हिंदी को अभिहित किया गया । आदिकाल में यह भाषा सिद्धों, नाथों की अभिव्यक्ति का साधन बनी । मध्यकाल में यह संत कवियों की भाषा बनी । रीतिकाल में यह ब्रजभाषा के रूप में प्रयुक्त होती रही और आधुनिक काल में हिंदी काव्यभाषा बन कर चारों तरफ फैलती-फूलती गई ।

सन् 1800 में लॉर्ड वेलेजली ने कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की । इस कॉलेज में युवा अंग्रेज शासकों को भारतीय भाषाएँ, विधि आदि विषय पढ़ाए जाते थे । इस कॉलेज में हिंदुस्तानी विभाग के अध्यक्ष जॉन गिलक्राइस्ट नियुक्त हुए । उन्होंने पहली बार हिंदी पढ़ाने के लिए दो व्यक्तियों को नियुक्त किया, वे लल्लू जी लाल और सदल मिश्र थे । इनकी भाषा को खड़ी बोली कहा गया । भाषा के विकास में साहित्य जगत में दो नाम विशेष रूप से उभर कर आये -

1. राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद 2. राजा लक्ष्मण सिंह

राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद ने हिंदी और उर्दू को नजदीक लाने की कोशिश की, लेकिन राजा लक्ष्मण सिंह ने संस्कृत की तत्सम शब्दावली को अधिक बढ़ाया । राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद ने हिंदी को व्यापक रूप से प्रसारित करने के लिए, हिंदी को सरल और सहज बनाने के लिए उर्दू के शब्दों का प्रयोग किया । राजा लक्ष्मण सिंह विशुद्ध हिंदी के पक्षधर थे । वे उर्दू को मुसलमानों की और हिंदी को हिंदुओं की भाषा मानते थे । इन दोनों की साहित्यकारों ने हिंदी-उर्दू को नजदीक लाने का प्रयास किया । इनके प्रयासों से यद्यपि हिंदी का ज्यादा भला तो नहीं हुआ, पर इनके प्रयास सराहनीय रहे ।

आधुनिक काल तक आते-आते गद्य की आवश्यकता को गहराई से महसूस किया जाने लगा । भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र का आगमन हिंदी साहित्य में कई नूतन प्रवृत्तियों के समावेश से होता है । यह काल सही अर्थो में नवीन चेतना का काल, वैज्ञानिक काल, गद्य काल के नाम से जाना जाता है । इस काल में भारतीय इतिहास व साहित्य के परिवेश में बड़ा बदलाव दिखाई पड़ता है । इसी काल में आकर भारतीय जनमानस राष्ट्रीयता और वैचारिक एकता की भावना से परिपूर्ण होता है । नई अर्थव्यवस्था व नई शिक्षा पद्धति से भारतीय जनता में ऐसी चेतना दिखाई पड़ती है, जिसके आधार पर वे अपनी समस्याओं को दूर करने की कोशिश करने लगे । इसी काल में छापेखाने का आविष्कार होता है । ईस्ट इंडिया कम्पनी ने बम्बई में मुद्रण कार्य शुरू किया । सर्वप्रथम राजा राममोहन राय ने पत्र निकालने की पहल की । राजा

राममोहनराय, दयानन्द सरस्वती व विवेकानन्द आदि विचारकों तथा ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज और थियॉसॉफिकल सोसायटी संस्थाओं ने समाज में फैली कुरीतियों, अंधविश्वासों, जाति प्रथा तथा आडम्बरों को दूर करने का प्रयास किया ।

आधुनिक काल की इन सभी पृष्ठभूमि की प्रवृत्तियों ने साहित्य के बदलने व बनने में पूरा योग दिया । भारतेंदु युगीन कवियों ने अपनी कविताओं में राष्ट्रीयता व समाज सुधार की भावना, देश प्रेम की प्रवृत्तियों को तो कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया ही साथ ही पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना योगदान दिया ।

भारतेंदु जी ने 'कविवचन सुधा' और 'हरिशचन्द्र चन्द्रिका' का संपादन भी किया । नाटक, निबंध आदि की रचना द्वारा उन्होंने खड़ी बोली की गद्य शैली के निर्धारण में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था । इस काल के कवियों ने कहीं-कहीं उर्दू शैली की कविताओं का सृजन किया । लेकिन काव्य रचना के लिए ब्रज भाषा को ही उपयुक्त माना । काशी नगरी प्रचारिणी सभा का जन्म इस काल की उल्लेखनीय घटना रही । शोध कार्य और शोध ग्रंथों के प्रकाशन को प्रोत्साहित किया गया ।

भारतेंदु युग के बाद साहित्य में द्विवेदी युग आता है, जिसका नामकरण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से होता है । इस काल को 'जागरण सुधार काल' भी कहा जाता है । भारतेंदु युगीन साहित्यकार अपनी कविताओं में भारत दुर्दशा का वर्णन करते हैं, वहीं द्विवेदी युगीन कवि भारतीय जनमानस को स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रेरणा तथा बलिदान का मार्ग भी दिखाते हैं । सन् 1900 में 'सरस्वती' का प्रकाशन इलाहाबाद से हुआ । 1903 में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के सम्पादक बने । इस युग की कविता में विषय की दृष्टि से अपार वैविध्य एवं नवीनता आई । द्विवेदी जी के प्रयत्नों से खड़ी बोली काव्य की मुख्य भाषा बनी । गुप्त जी, गोपालशरण सिंह स्नेही, लोचन प्रसाद पाण्डेय आदि ने तो कविता में खड़ी बोली का प्रयोग करने लगे । द्विवेदीजी भाषा की शुद्धि तथा वर्तनी की एकरूपता के प्रबल समर्थक थे । इस युग की काव्य भाषा व्याकरण की दृष्टि से सामान्यत: शुद्ध है तथा वर्तनी की दृष्टि से भी स्थिर है । हिंदी के सभी छंदों का ही नहीं, संस्कृत-वृतों का तथा उर्दू का भी प्रयोग दिखलाई पड़ता है । द्विवेदी युग की साहित्य को महत्वपूर्ण देन ही भाषा की थी । खड़ी बोली को परिमार्जित कर नवीनता का समावेश किया । द्विवेदी जी ने पहली बार व्याकरण के स्वरूप को निश्चित किया । द्विवेदी युग में पत्र-पत्रिकाओं का भी कार्य उल्लेखनीय रहा, जिसने स्वाधीनता प्राप्ति व देशवासियों की भावनाओं को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य किया ।

बालकृष्ण भट्ट का 'हिंदी प्रदीप' व प्रताप नारायण मिश्र का 'ब्राह्मण' पत्र अधिक महत्त्वपूर्ण रहे । विविध पत्र-पत्रिकाओं के साथ निबंध विद्या का भी विकास हुआ । द्विवेदीयुगीन काव्य राष्ट्रीयता, जागरण, सुधार व उच्च आदर्शों का काव्य है । खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण और विकास का श्रेय भी इसी कालखण्ड को जाता है । इस काल में प्रेस के आविष्कार से समाचार पत्रों को सहयोग मिला, साहित्य में सक्रियता बढ़ी । साहित्य के नये रूपों और विधाओं का जन्म हुआ । हिंदी प्रदेश की जनता अपने सारे जीवन को नये ढंग से

व्यवस्थित कर रही थी, अपने को युग के अनुकूल बना रही थी । इसलिए भाषा को भी युग की नई चेतना की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम बनाने की चेष्टा की गई ।

द्विवेदी युग के बाद आधुनिक काल में छायावाद-युग आता है, जो अपने पूर्ववर्ती युगों से एक नई भावधारा को जन्म देता है । यह युग भारत की पहचान की खोज का युग है । यह समय भारत के आधुनिकीकरण का समय है, जो देश के पुनर्जागरण से सम्बद्ध है । छायावादी युग में केवल राष्ट्रीय ही नहीं मानव मात्र की स्वाधीनता के मूल्य की प्रतिष्ठा दिखाई पड़ती है । देश का पूरा नेतृत्व गाँधीजी की अहिंसावादी नीति से जुड़ता है । छायावादी काव्य साहित्य में भाव बोध और शिल्पगत नवीनता के कारण जाना जाता है । राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता और वैयक्तिक प्रेम प्रधान कविताओं के दर्शन होते हैं । काव्य के साथ इस युग के गद्य का भी अपना स्थान है । यह युग उपन्यास, नाटक की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है ही पत्र पत्रिकाओं के विकास में भी अपनी भूमिका का निर्वाह करता है । 'सरस्वती' के बाद इस युग में 'चाँद', माधुरी, विशाल भारत, मर्यादा, हंस आदि पत्रिकाओं का सम्पादन हुआ ।

छायावादी युग में मासिक पत्र-पत्रिकाओं के साथ साप्ताहिक पत्रों का प्रचलन भी प्रारंभ हो गया था। 'हिंदी नवजीवन', 'कर्मवीर', 'दैनिक विश्वमित्र' व 'आज' का प्रकाशन हुआ । इन पत्रों ने स्वाधीनता-संग्राम के लिए जनमत तैयार करने के साथ-साथ साहित्यिक गतिविधियों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । इस युग में काव्य की भाषा को लेकर थोड़ा विवाद दिखलाई पड़ता है ।

ब्रजभाषा को लेकर यह तर्क था कि सूर, तुलसी, बिहारी जैसे कवियों की भाषा यही थी, जिसे बढ़ाना चाहिए जबकि खडी बोली का रूप अव्यवस्थित है । परिणाम यह हुआ कि साहित्यकारों ने गद्य के लिए खड़ी बोली का प्रयोग किया और पद्य के लिए ब्रजभाषाकार प्रचलित भाषा के साथ इस काल में भाषा के नैसर्गिक सौन्दर्य पर अधिक बल दिया था ।

इस काल में कई युगों की प्रवृत्तियों के साथ-साथ भाषा का रूप भी बदलता रहा । कविताओं में वह ब्रज के रूप में गद्य में वह खड़ी के रूप में प्रयुक्त होती हुई नये-नये कलेवर ग्रहण करती रही।

11.2.4 स्वाधीनता का संघर्ष और राजभाषा के रूप में हिन्दी का विकास

स्वाधीनता संघर्ष के दौरान हिंदी का जो स्वरूप निर्धारित किया गया उसमें राजनेताओं, देशभक्तों की अग्रणी भूमिका रही । स्वाधीनता की महत्ती आवश्यकता के साथ ही साथ भाषा की आवश्यकता भी महसूस की गई । स्वाधीनता संघर्ष में स्वदेशी वस्तुओं का स्वागत और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार हुआ । स्वदेशपन के प्रभाव से निज भाषा की बात पर विचार किया गया । समाज सुधारकों और प्रबुद्ध लोगों द्वारा यह कहा जाने लगा कि पूरे भारतवर्ष में हिंदी भाषा के द्वारा ही एकसूत्रता कायम की जा सकती है । हिंदी के इसी रूप को लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक से लेकर सुब्रह्मण्यम भारती तक ने राष्ट्रभाषा कह कर पुकारा । आजादी की लड़ाई में महात्मा गाँधी ने भाषा को सबसे बड़े हथियार के रूप में प्रयोग किया ।

अखिल भारतीय काँग्रेस की स्थापना से हिंदी को बढ़ावा मिला । 1936 के काँग्रेस अधिवेशन मैं डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में 'राष्ट्रभाषा सम्मेलन'' का भी आयोजन किया

गया । इस सम्मेलन में महात्मा गाँधी, काका कालेलकर, पुरुषोतमदारस टंडन, पं. जवाहर लाल नेहरू जैसे उत्कृष्ट कोटि के नेताओं ने भाग लिया, जिसमें अन्तर्प्रादेशिक कार्य राष्ट्रभाषा हिंदी में करने के लिए सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित हुआ । डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि - ' 'मैं हिंदी के प्रचार, राष्ट्रभाषा के प्रचार को राष्ट्रीयता का मुख्य अंग मानता हूँ । मैं चाहता हूँ कि यह भाषा ऐसी ही हो जिससे हमारे विचार आसानी से साफ-साफ स्पष्टतापूर्वक व्यक्त हों । "सेठ गोविंद दास ने भी राष्ट्रभाषा आंदोलन में अपनी भूमिका निभाई । उन्होंने कई पत्रों का भी संपादन किया और राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को स्थापित किया । राष्ट्रीय एकता के रूप में हिंदी एक मजबूत कड़ी के रूप में स्थापित हुई ।

11.3 राजभाषा का महत्त्व

15 अगस्त, 1947 को भारत को स्वतंत्रता की प्राप्ति हुई । डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में यह निर्णय सन् 1946 को ही ले लिया गया था कि सभा के कामकाज की भाषा हिंदुस्तानी या अंग्रेजी होगी, पर कोई भी सदस्य अध्यक्ष की अनुमति से सदन में अपनी मातृभाषा में भाषण दे सकेगा । 14 जुलाई 1947 को यह संशोधन प्रस्तुत किया गया कि हिंदुस्तानी के स्थान पर हिंदी शब्द रखा जाय । प्रारंभ में जो संविधान का प्रारूप प्रस्तुत किया गया था, उसमें राजभाषा विषयक कोई धारा नहीं थी ।

14 सितम्बर, 1949 को संविधान सभा ने हिंदी को भारत की राजभाषा बनाने का निर्णय लिया । 26 जनवरी, 1950 को संविधान के तहत इसे लागू भी कर दिया गया । संवैधानिक स्वीकृति के बाद भी 13 वर्षो तक अधिनियम नहीं बने । 1963 में राजभाषा अधिनियम पारित हुआ । 1976 में राजभाषा संबंधी नियम बने । इन नियमों के निर्धारण के साथ-साथ हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए समय-समय पर समितियों का निर्माण किया गया, ताकि हिंदी भाषा के समक्ष आ रही समस्याओं को दूर किया जा सके और भाषा का विकास किया जा सके । स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद एक या अनेक भाषा 7 भाषाओं का प्रयोग किया जा सकता था, जो राज्य के कार्यकलापों में प्रत्येक नागरिक के विचारों के आदान-प्रदान का साधन बन सके और राष्ट्र की आत्मा को व्यक्त कर सके । हिन्दी इस रूप में अनंतकाल से देश के विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच एक सेतु का कार्य संपादन करती चली आ रही थी । उसकी इस प्रवृत्ति और चेतना को हमारे संविधान निर्माताओं ने पहचाना और हिंदी को ही राजभाषा के रूप में मान्यता देकर उसका सम्मान किया । हिंदी अधिकाधिक देशवासियों की भाषा है, मातृभाषा है । हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में जहाँ अंग्रेजी का प्रवेश कम है, वहाँ हिंदी ही समझी जाती है । हिंदी की सरलता, वैज्ञानिकता के कारण ही इसे भारत संघ की शासकीय भाषा के रूप में - मान्यता मिली । हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त हुआ ।

11.3.1 राष्ट्रभाषा

किसी भी राष्ट्र के लिए सर्वाधिक महत्त्व राष्ट्रभाषा का होना चाहिए । राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी ने देश की सबसे बड़ी आवश्यकता राष्ट्रभाषा को ही बताया था । 15 अगस्त,

1947 को जब हमारा देश स्वतंत्र हुआ तब एक ध्वज, एक संविधान, एक राष्ट्रगान के समानान्तर भाषा की बात सामने आई । संविधान सभा में चर्चा हुई कि भारत संघ की राष्ट्रभाषा क्या हो? अधिकांश सदस्यों का मत था कि हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया जाना चाहिए, लेकिन इसके विरोध में कुछ स्वर सुनाई पड़े । यह कहा जाने लगा कि जिस प्रकार भारत में रहने वाला भारतीय है, उसी प्रकार भारत में बोली जाने वाली प्रत्येक भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा न देकर हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया गया और लिपि के रूप में देवनागरी लिपि स्वीकार की गई ।

प्रश्न यह है कि भारत देश की राष्ट्रभाषा कौन-सी है?

राष्ट्रभाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जो समूचे राष्ट्र में संविधान जैसी लागू हो सके, पूरे देश का कामकाज और शिक्षण जिस भाषा में हो सके । इस रूप में हम देखते हैं तो इस समय वैज्ञानिक तौर पर ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसके माध्यम से समूचे देश का काम-काज होता हो, जो सभी प्रान्तों में बोली, समझी जाती हो । केन्द्र सरकार व राज्य सरकार के कार्यालयों में भाषा हिंदी को स्वीकार किया गया है । सरकारी पक्ष से हट कर लोक पक्ष की बात करते हैं तो पाते हैं कि हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा रही है और है । हिंदी विगत से ही वह भाषा है जिसने अंग्रेजी शासन के खिलाफ वातावरण बनाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । मराठी विद्वान वैशंपायन ने कहा कि देश की सर्वांगीण उन्नति में राष्ट्रभाषा का पद यही भाषा प्राप्त कर सकती है जिसमें उच्च शिक्षण, विज्ञान की परिभाषा, व्यापार की व्यापकता, एक सामान्य भारतीय होने की क्षमता, समस्त भारतीय भाषाओं की शब्दावली से एकरूपता, अखंडता लिखने और व्यापक समसूत्रता सुनने, बोलने, समझने, लिखने में सिर्फ सरल ही हमारी रागात्मक प्रियता भी प्राप्त करती हो, हमसे अपनेपन का नानता भी जोड़ती हो, भारत की अंखडोपासना में राष्ट्रभाषा का पद पा सकती है । जब हम इन गुणों के संदर्भ में हिंदी को परखते हैं तो पाते हैं कि हिंदी में ये सभी गुण विद्यमान हैं । हिंदी की सरलता और व्यापकता को ध्यान में रखते हुए बंगाल के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री केशवचंद सैन, जो राष्ट्रभाषा हिंदी के अगुआ माने जाते हैं, के सुझाव पर 48 वर्ष की उम्र में हिंदी सीखी और आर्य समाज के माध्यम से हिंदी को घर-घर तक पहुँचाया ।

नेहरू जी ने प्रधानमंत्री बनने के बाद अपने एक लेख में कहा है कि - "हिन्दुस्तान में हम अपनी प्रांतीय भाषाओं का विकास करने के लिए बँधे हुए हैं । यह ठीक ही है कि हमारी महान प्रांतीय भाषाओं का विकास हो साथ ही हमें एक अखिल भारतीय भाषा भी चाहिए । यह भाषा अंग्रेजी या कोई विदेशी जबान नहीं हो सकती, हालाँकि मैं मानता हूँ कि उसकी जगतव्यापी स्थित और हिन्दुस्तान में उसके वर्तमान व्यापक ज्ञान के कारण अंग्रेजी का हमारी भावी प्रवृतियों में महत्त्वपूर्ण हाथ रहेगा । अखिल भारतीय भाषा कोई हो सकती है तो वह सिर्फ हिन्दी या हिन्दुस्तानी ।"

हिंदी ही भारत संघ की राष्ट्रभाषा का पद पाने की हकदार है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जो समूचे देश की एकता को कड़ी में बाँधे रख सकती है और राष्ट्रभाषा के पद की सच्ची अधिकारिणी है ।

11.3.2 संपर्क भाषा

संपर्क भाषा का तात्पर्य उस भाषा से है जो दो व्यक्तियों को आपस में जोड़ देती है । दो अलग-अलग' भाषाओं के बोलने वालों के बीच स्थापित करने का माध्यम बनती है । संपर्क में आने वाले दो व्यक्तियों में से एक की भाषा हिंदी हो और दूसरे की भाषा हिंदी से इतर हो । ऐसी स्थिति में वे संपर्क भाषा से अपना व्यवहार कर सकते हैं ।

संपर्क भाषा बड़ी महत्वपूर्ण है । जैसे इंग्लैण्ड की अंग्रेजी भाषा और फ्रांस की फ्रेंच भाप है, उसी तरह भारत की हिंदी भाषा है । यह समझना त्रुटिपूर्ण है कि जहाँ जहाँ दो भिन्न भाषा-भाषी संपर्क में आते है वहाँ हिंदी ही संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग में लाई जाती है । देश में हिंदी के अतिरिक्त कई और भी भाषाएँ हैं जो भिन्न समुदायों में संप्रेषण के माध्यम में काम आती हैं, जैसे नागामी (नागालैण्ड एवं असम) । अंग्रेजी भी हमारे यहाँ संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है । सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के साथ हिंदी का जो भाषिक परिवेश है, वह विश्व की अन्य भाषाओं की तुलना में विलक्षण है । हिंदी क्षेत्र के अन्तर्गत बोलचाल में संपर्क-भाषा के रूप में इसी भाषा का प्रयोग किया जाता है । हिंदी की अन्यतम विशेषता यह है कि अपने मूल क्षेत्र से बाहर के स्थानों में स्थानीय भाषाओं के सम्मिश्रण से हिंदी विविध रूप एवं विविध नामों से जन सामान्य में संपर्क-भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है ।

11.4 राजभाषा क्रियान्वयन समितियाँ

राजभाषा अधिनियम, 1963 में धारा 3(3) में सरकारी कार्यालयों से जारी होने वाले दस्तावेजों में हिंदी और अंग्रेजी के अनिवार्य रूप से प्रयोग पर बल दिया गया । नियम, अधिनियम सभी सरकारी पत्रों को हिंदी-अंग्रेजी में जारी करने की व्यवस्था की गई ।

सरकारी कामकाज के लिए भारत में विभिन्न भाषायी क्षेत्रों को तीन वर्गो में बिभाजित किया गया ।

क क्षेत्र : उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, बिहार, हरियाणा तथा अंडमान-निकोबार संघ राज्य क्षेत्र ।

ख क्षेत्र : पंजाब, चंडीगढ़, महाराष्ट्र, गुजरात संघ राज्य क्षेत्र ।

ग क्षेत्र : देश के दक्षिण और पूर्वी तट के सभी राज्य और संघ राज्य क्षेत्र ।

इन तीनों क्षेत्रों के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकार के कार्यालयों के बीच औचित्य न हो तब तक अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी और देश की अन्य भाषाओं में पत्र व्यवहार के लिए निम्न प्रकार से होगा -

1. केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से 'क' क्षेत्र के राज्य सरकार के या ऐसे राज्य में स्थित केन्द्रीय सरकार से अलग अन्य कार्यालय या व्यक्ति को हिंदी में ही भेजे जाएंगे, किन्तु असाधारण मामलों में यदि कोई पत्र अंग्रेजी भी भेजा जाता है तो उसके साथ हिंदी अनुवाद भी साथ होगा ।
2. केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से 'ख' क्षेत्र के राज्य सरकार को या राज्य में स्थित केन्द्रीय सरकार से भिन्न कार्यालय को सामान्य रूप से पत्र हिंदी में ही

भेजे जाएंगे । यदि कोई पत्र अंग्रेजी में भेजा जाता है तो उसके साथ हिंदी अनुवाद भी होगा ।

3. ग क्षेत्र में राज्य सरकार के या ऐसे राज्य में स्थित केन्द्रीय सरकार से अलग किसी अन्य कार्यालय या व्यक्ति को पत्र हिंदी या अंग्रेजी में भेजे जा सकते हैं । इसमें यह भी व्यवस्था की गई है कि सभी कर्मचारी अपनी सुविधा से अपनी अपील हिंदी या अंग्रेजी में दे सकते हैं ।

1. केन्द्रीय हिन्दी समिति :

सर्वप्रथम गृह मंत्रालय में सन् 1964 में हिंदी सलाहकार समिति का गठन हुआ था । बाद में यह अनुभव किया गया कि इस प्रकार की एक सर्वोच्च समिति गठित की जाय तो प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में हिंदी कार्यान्वयन पर ध्यान रखे । 5 सितम्बर, 1967 को केन्द्रीय हिंदी समिति का पुनर्गठन किया गया । हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा सरकारी कामकाज में हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग और विभिन्न विभागों द्वारा किए गए कार्यो का समन्वय करने वाली यह सर्वोच्च समिति है । प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गठित इस समिति में केन्द्रीय सरकार के ग्यारह मंत्री एवं राज्यमंत्री, राज्यों के आठ मुख्यमंत्री, सात संसद सदस्य और हिंदी के दस विशिष्ट विद्वान होते हैं । राजभाषा विभाग के सचिव एवं भारत सरकार के हिंदी सलाहकार इस समिति के सदस्य सचिव हैं । समय-समय पर इस समिति की बैठकें होती रहती हैं, किन्तु वर्ष में कम से कम एक बैठक का होना आवश्यक होता है । इस समिति द्वारा लिए गए निर्णय भारत सरकार के निर्णय माने जाते हैं, क्योंकि सभी मंत्रालयों के मंत्री और कई प्रदेशों के मुख्यमंत्री इस समिति के सदस्य होते हैं ।

2. हिंदी सलाहकार समितियां :

राजभाषा हिंदी के उचित कार्यान्वयन और उससे सम्बन्धित समस्याओं के समाधान के लिए सन् 1964 में हिंदी सलाहकार समिति का गठन किया गया । इसकी उप समितियाँ भी गठित की गई । विधि मंत्रालय में भी इस प्रकार की समिति गठित की गई । 2 दिसम्बर, 1967 की केन्द्रीय हिंदी समिति की पहली बैठक में यह निर्णय लिए गए ।

1. सभी मंत्रालयों को हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा उत्तरोत्तर विकास के विषयों पर हिंदी सलाहकारों से परामर्श लेना चाहिए ।
2. सभी मंत्रालयों में समिति की संख्या कितनी हो, इस पर विचार करना चाहिए।
3. गैर सरकारी सदस्यों में कैसे व्यक्तियों को नामित किया जाय?

राजभाषा विभाग के समय-समय पर इन समितियों की कार्य पद्धति पर सलाह भी दी गई है । ये समितियाँ मंत्रालयों, विभागों में हिंदी की प्रगति की समीक्षा भी करती है । हिंदी, के प्रयोग को बढ़ाने के तरीके सोचती हैं और राजभाषा नीति के अनुपालन के लिए ठोस कदम उठाती हैं । नियमानुसार इनकी बैठकें तीन महिने में एक बार अवश्य

होनी चाहिए । सामान्यत: इन समितियों का कार्यकाल तीन वर्ष का होता है । इसके अध्यक्ष मंत्रालय के मंत्री महोदय होते हैं ।

3. राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ.

हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा प्रयोग की समीक्षा करने के लिए प्रत्येक मंत्रालय / विभाग में एक-एक राजभाषा कार्यान्वयन समिति बनाई गई है । राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन कार्यालय ज्ञापन संख्या 6/63/64 राजभाषा दिनांक 10.12.1964 के आधार पर सन् 1965 में किया गया । जिसकी अध्यक्षता साधारण तथा संयुक्त सचिव विभाग प्रमुख तथा कहीं-कहीं अपर सचिव स्तर के अधिकारी करते हैं । संबद्ध तथा अधीनस्थ कार्यालयों में भी, जहाँ चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों को छोडकर 25 अथवा उससे अधिक कर्मचारी हैं, राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ बनाई गई हैं । इनकी बैठकें हर तिमाही में एक बार बुलाई जानी आवश्यक हैं । इस समिति को मोटे तौर पर निम्नलिखित कार्य सौंपे गए -

1. हिंदी के प्रयोग के सम्बन्ध में गृह मंत्रालय के अनुदेशों के कार्यान्वयन की जाँच-परख करना और उसके बारे में आरम्भिक तथा अन्य कार्यवाही करना ।
2. तिमाही प्रगति रिपोर्टों का पुनरीक्षण ।
3. कार्यान्वयन संबंधी समस्याओं को देखना और उसका हल निकालना ।
4. कार्यान्वयन संबंधी समस्याओं को देखना और उसका हल निकालना ।
5. हिंदी के प्रशिक्षण के अनुदेशों की अनुपालना तथा हिंदी टाईपिंग और आशुलिपि में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए कर्मचारियों को भेजना ।

4. केन्द्रीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति :

राजभाषा विभाग के सचिव तथा भारत सरकार के हिंदी सलाहकार की अध्यक्षता में सभी मंत्रालयों / विभागों के कार्यान्वयन समितियों में समन्वय का कार्य यह समिति करती है । विभिन्न समितियों के अध्यक्ष तथा मंत्रालयों में राजभाषा का कार्य सम्पादन करने वाले निदेशक तथा उप सचिव इसके सदस्य होते हैं । यह समिति यथासंशोधित राजभाषा अधिनियमों के उपबंधों तथा सरकारी प्रयोजनों के लिए हिंदी के प्रयोग और केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के गृह मंत्रालय द्वारा समय-समय पर जारी किए अनुदेशों के कार्यान्वयन में हुई प्रगति का पुनरीक्षण करती है । उनके अनुपालन में पाई गई कमियों और कठिनाईयों को दूर करने के लिए उपायों पर विचार करती है ।

5. संसदीय राजभाषा समिति.

राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 4 के अंतर्गत यह समिति गठित की गई है । इसमें लोकसभा के 20 व राज्यसभा के 10 सदस्य होते हैं । इनका चुनाव एकल संक्रमणीय पद्धति से किया जाता है । इस समिति में 10-10 सदस्यों वाली तीन उपसमितियाँ बनाई गई हैं, प्रत्येक उपसमिति का एक समन्वयक होता है । यह समिति केन्द्र सरकार के अधीन आने वाली सरकार द्वारा वित्त घोषित सभी संस्थानों का समय-समय पर निरीक्षण करती है और राष्ट्रपति को रिपोर्ट प्रस्तुत करती है । राष्ट्रपति

इस रिपोर्ट को संसद के प्रत्येक सदन में रखवाते हैं और राज्य सरकारों को भिजवाते हैं । राजभाषा के क्षेत्र में यह सर्वोच्च अधिकार प्राप्त समिति है ।

6. नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ

बड़े-बड़े नगरों में जहाँ केन्द्रीय सरकार के दस या दस से अधिक कार्यालय हैं, वहाँ नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया गया है । सन् 1976 के आदेश के अनुसार इनका गठन किया गया है । इनकी बैठकों में हिंदी प्रशिक्षण, हिंदी टाईपराइटिंग तथा हिंदी आशुलिपि के प्रशिक्षण, देवनागरी लिपि टाइपराइटरों की उपलब्धि आदि के संबंध में आने वाली कठिनाइयों के बारे में चर्चा की जाती है और नगर के विभिन्न कार्यालयों में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए जो उपाय किए गए हैं उनसे परस्पर लाभ उठाया जाता है ।

जिन नगरों में नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन होगा, उनकी बैठकों में अपने-अपने कार्यालय के प्रतिनिधि के रूप में राजभाषा अधिकारी भाग लेते हैं । सन् 1970 के आदेश द्वारा इसके कार्यो का विस्तार कर निम्नलिखित कार्य निश्चित किए गए -

1. राजभाषा नियम / अधिनियम और सरकारी कामकाज में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के संबंध में भारत सरकार द्वारा जारी किए गए आदेशों और हिंदी के प्रयोग से संबंधित वार्षिक कार्यक्रम के कार्यान्वयन की स्थिति की समीक्षा ।
2. नगर में केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के सम्बन्ध में किए जाने वाले उपायों पर विचार करना ।
3. हिंदी के टाइपिस्टों, आशुलिपिकों आदि की उपलब्धी की समीक्षा ।
4. हिंदी, हिंदी टाइपिंग तथा हिंदी आशुलिपि के प्रशिक्षण से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार ।

इनकी बैठकें वर्ष में दो बार होती हैं । इनकी अध्यक्षता नगर के वरिष्ठतम अधिकारी करते हैं । इन समितियों में स्थित सभी केन्द्रीय सरकारी कार्यालयों तथा उपक्रमों के प्रतिनिधि भाग लेते हैं । अपने-अपने कार्यालयों की तिमाही प्रगति रिपोर्ट की समीक्षा करते हैं । हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए सुझाव देते हैं ।

11.5 राष्ट्रपति का आदेश, 1960

ग्रह मंत्रालय की दिनांक 27 अप्रेल, 1960 की अधिसूचना संख्या 2/8/60 रा.भा. की प्रतिलिपि ।

अधिसूचना :

राष्ट्रपति का यह आदेश आम जानकारी के लिए प्रकाशित किया जाता है -

आदेश

नई दिल्ली, दिनांक 27 अप्रेल, 1960

लोकसभा के बीस सदस्यों और राज्यसभा के दस सदस्यों की एक समिति प्रथम राजभाषा आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के लिए और उनके विषय में अपनी राय राष्ट्रपति के समक्ष पेश करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 344 के खण्ड (4) के उपबंधों के

अनुसार नियुक्त की गई थी । समिति ने अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति के समक्ष 8 फरवरी, 1949 को पेश कर दी । नीचे रिपोर्ट की कुछ मुख्य बातें दी जा रही है, जिनसे समिति के सामान्य दृष्टिकोण का परिचय मिल सकता है -

संसदीय समिति की सिफारिश -

क. राजभाषा के बारे में संविधान में बडी समन्वित योजना दी हुई है । इसमें योजना के दायरे में बाहर जाए बिना स्थिति (फ्रेमवर्क) के अनुसार परिवर्तन करने की गुंजाइश है ।

ख. विभिन्न प्रादेशिक भाषाएँ राज्यों में शिक्षा और सरकारी कामकाज के माध्यम के रूप में तेजी से अंग्रेजी का स्थान ले रही हैं । यह स्वाभाविक ही है कि प्रादेशिक भाषाएँ अपना उचित स्थान प्राप्त कर लें । अत: व्यावहारिक दृष्टि से यह बात आवश्यक हो गई है कि संघ के प्रयोजनों के लिए कोई एक भारतीय भाषा काम में लाई जाए किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि यह परिवर्तन किसी नियत तारीख का ही हो । यह परिवर्तन धीरे-धीरे इस प्रकार किया जाना चाहिए कि कोई गड़बड़ी न हो और कम-से-कम असुविधा हो ।

ग. सन् 1964 तक अंग्रेजी मुख्य राजभाषा और हिंदी सहायक राजभाषा रहनी चाहिए । सन् 1964 में हिंदी संघ की मुख्य राजभाषा हो जाएगी, किन्तु उसके पश्चात् अंग्रेजी सहायक राजभाषा के रूप में चलती रहनी चाहिए ।

घ. संघ के प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी के प्रयोग पर कोई रोक इस समय नहीं लगाई जानी चाहिए और अनुच्छेद 343 के खण्ड (3) के अनुसार इस बात की व्यवस्था की जानी चाहिए कि एन 1964 के पश्चात् भी अंग्रेजी का प्रयोग इन प्रयोजनों के लिए, जिन्हें संसद विधि द्वारा उल्लिखत करे, तब तक होता रहे जब तक कि वैसा करना आवश्यक रहे ।

ङ. अनुच्छेद 351 का यह उपबंध कि हिंदी का विकास ऐसे किया जाए कि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इस बात के लिए पूरा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए कि सरल और सुबोध शब्द काम में लाए जाएं ।

रिपोर्ट की प्रतियाँ संसद के दोनों सदनों के पटल पर 1959 के अप्रैल मास में रख दी गई थीं और रिपोर्ट पर विचार-विमर्श लोकसभा में 2 से 4 सितम्बर, 1959 तक और राज्यसभा में 8 और 9 सितम्बर, 1949 को हुआ था । लोकसभा में इस पर विचार-विमर्श के समय प्रधानमंत्री ने 4 सितम्बर, 1959 को एक भाषण दिया था । राजभाषा के प्रश्न पर सरकार का जो दृष्टिकोण है उसे उन्होंने अपने इस भाषण में मोटे तौर पर व्यक्त कर दिया था ।

2. अनुच्छेद 344 के खण्ड (6) द्वारा दी गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति ने समिति की रिपोर्ट पर विचार किया है और राजभाषा आयोग की सिफारिशों पर समिति द्वारा अभिव्यक्त राय को ध्यान में रखकर इसके बाद निम्नलिखित निर्देश जारी किए हैं -

3. शब्दावली :

आयोग की जिन मुख्य सिफारिशों को समिति ने मान लिया, वे निम्नलिखित हैं -

(1) शब्दावली तैयार करने में मुख्य लक्ष्य उसकी स्पष्टता, यथार्थता और सफलता होनी चाहिए;

(2) अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली अपनाई जाए या जहाँ भी आवश्यक हो, अनुकूल कर लिया जाए;

(3) भारतीय भाषाओं के लिए शब्दावली का विकास करते समय लक्ष्य यह होना चाहिए कि उसमें जहाँ तक हो सके, अधिकतम एकरूपता हो;

(4) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावली के विकास के लिए जो प्रयत्न केन्द्र और राज्यों में हो रहे हैं उसमें समन्वय स्थापित करने के लिए समुचित प्रबंध किए जाने चाहिए । इसके अतिरिक्त समिति का यह मत है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सब भारतीय भाषाओं में जहाँ तक हो सके, एकरूपता होनी चाहिए और शब्दावली लगभग अंग्रेजी में अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली जैसी ही होनी चाहिए । इस दृष्टि से समिति ने यह सुझाव दिया है कि इस क्षेत्र में विभिन्न संस्थाओं द्वारा किए गए काम में समन्वय स्थापित करने और उसकी देखरेख के लिए तथा सब भारतीय भाषाओं में प्रयोग में लाने की दृष्टि से एक प्रमाणिक शब्दकोश निकालने के लिए एक ऐसा स्थायी आयोग कायम किया जाए जिसके सदस्य मुख्यत: वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीविद हों ।

शिक्षा मंत्रालय निम्नलिखित विषय में कार्यवाही करे -

क. अब तक किए गए काम पर पुनर्विचार और समिति द्वारा स्वीकृत सामान्य सिद्धान्तों के अनुकूल शब्दावली का विकास / विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में वे शब्द, जिनका प्रयोग अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में होता है, कम-से-कम परिर्वतन के साथ अपना लिए जाएँ अर्थात् मूल शब्द वे होने चाहिए जो कि आजकल अंतरराष्ट्रीय शब्दावली में काम आते हैं । भारतीयकरण किया जा सकता है।

ख. शब्दावली तैयार करने के काम में समन्वय स्थापित करने के लिए प्रबंध करने के विषय में सुझाव देना;

ग. विज्ञान और तकनीकी शब्दावली के विकास के लिए समिति के सुझाव के अनुसार स्थायी आयोग का निर्माण ।

4. प्रशासनिक संहिताओं और अन्य कार्यविधि साहित्य का अनुवाद :

इस आवश्यकता को दृष्टि में रखकर कि संहिताओं और अन्य कार्यविधि साहित्य के अनुवाद में प्रयुक्त भाषा में किसी हद तक एकरूपता होनी चाहिए, समिति ने आयोग की यह सिफारिश मान ली है कि यह सारा काम एक अभिकरण को सौंप दिया जाए ।

शिक्षा मंत्रालय सांविधिक नियमों, विनियमों और आदेशों के अलावा बाकी सब संहिताओं और अन्य कार्यविधि साहित्य का अनुवाद करे । साहित्यिक नियमों, विनियमों और आदेशों का अनुवाद संविधियो के साथ अनुवाद के साथ घनिष्ठ रूप से संबद्ध है, इसलिए यह काम विधि

मंत्रालय करे । इस बात का पूरा प्रयत्न होना चाहिए कि सब भारतीय भाषाओं में इन अनुवादकों की शब्दावली में जहाँ तक हो सके, एकरूपता रखी जाए ।

5. प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग को हिंदी का प्रशिक्षण :

(क) समिति द्वारा अभिव्यक्त मत के अनुसार, पैंतालीस वर्ष से कम आयु वाले सब केन्द्रीय कर्मचारियों के लिए सेवाकालीन हिंदी प्रशिक्षण प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए । तृतीय श्रेणी के ग्रेड से नीचे के कर्मचारियों और औद्योगिक संस्थाओं तथा कार्य-प्रभारित कर्मचारियों के संबंध में यह बात लाग न होगी । इस योजना के अंतर्गत नियत तारीख तक विहित योग्यता प्राप्त कर सकने के लिए कर्मचारियों को कोई दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए । हिंदी भाषा की पढ़ाई के लिए सुविधाएँ प्रशिक्षणार्थियों को मुफ्त मिलती रहनी चाहिए ।

(ख) शिक्षा मंत्रालय हिंदी टाइपराइटरों के मानक की-बोर्ड (कुंजी-पटल) के विकास के लिए शीघ्र कदम उठाए ।

6. हिंदी प्रचार :

क. आयोग की इस सिफारिश से कि यह काम करने की जिम्मेदारी अब सरकार उठाए, समिति सहमत हो गई है । जिन क्षेत्रों में प्रभावी रूप से काम करने वाली गैर सरकारी संस्थाएँ पहले से ही विद्यमान हैं, उनमें उन संस्थाओं को वित्तीय और अन्य प्रकार की सहायता दी जाए और जहाँ ऐसी संस्थाएँ नहीं हैं वहाँ सरकार आवश्यक संगठन कायम करें ।

शिक्षा मंत्रालय इस बात की समीक्षा करे कि हिंदी प्रचार के लिए जो वर्तमान व्यवस्था है वह कैसी चल रही है । साथ ही यह समिति द्वारा सुझाई गई दिशाओं में आगे कार्यवाही करें।

ख. शिक्षा मंत्रालय, वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय परस्पर मिलकर भारतीय भाषा विज्ञान, भाषाशास्त्र और साहित्य संबंधी अध्ययन तथा अनुसंधान को प्रोत्साहन देने के लिए समिति द्वारा सुझाए गए तरीके से आवश्यक कार्यवाही करे और विभिन्न भारतीय भाषाओं को परस्पर निकट लाने के लिए और अनुच्छेद 351 में दिए गए निर्देश के अनुसार हिंदी का विकास करने के लिए आवश्यक योजना तैयार करें ।

7. केन्द्रीय सरकारी विभाग के स्थानीय कार्यालयों के लिए भरती :

(क) समिति की राय है कि केन्द्रीय सरकारी विभागों के स्थानीय कार्यालय अपने आंतरिक कामकाज के लिए हिंदी का प्रयोग करें और जनता के साथ पत्र-व्यवहार में उन प्रदेशों की प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग करें ।

अपने स्थानीय कार्यालयों में अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी का उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग करने के वास्ते योजना तैयार करने में केन्द्रीय सरकारी विभाग इस आवश्यकता को ध्यान में रखे कि यथासंभव अधिक-से-अधिक मात्रा में

प्रादेशिक भाषाओं में फॉर्म और विभागीय साहित्य उपलब्ध कराकर वहाँ की जनता को पूरी सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए ।

(ख) समिति की राय है कि केन्द्रीय सरकार के प्रशासनिक अभिकरणों और विभागों में कर्मचारियों की वर्तमान व्यवस्था पर पुनर्विचार किया जाए, कर्मचारियों का प्रादेशिक आधार पर विकेन्द्रीकरण कर दिया जाए, इसके लिए भरती के तरीकों और अहर्ताओं में उपयुक्त संशोधन करना होगा । स्थानीय कार्यालयो में जिन कोटियों के पदों पर कार्य करने वालों की बदल मामूली तौर पर प्रदेश के बाहर नहीं होती, उन कोटियों के संबंध में यह सुझाव कोई अधिवास संबंधी प्रतिबंध लगाए बिना सिद्धांतत: मान लिया जाना चाहिए ।

(ग) समिति आयोग की इस सिफारिश से सहमत है कि केन्द्रीय सरकार के लिए यह विहित कर देना न्याय सम्मत होगा कि उसकी नौकरियों में लगने के लिए एक अर्हता यह भी होगी कि उम्मीदवार को हिंदी भाषा का सम्यक् ज्ञान हो । पर ऐसा तभी किया जाना चाहिए, जबकि इसके लिए काफी पहले से सूचना दे दी गई हो और भाषा-योग्यता का विहित स्तर मामूली हो तथा इस बारे में जो भी कमी हो उसे सेवाकालीन प्रशिक्षण द्वारा पूरा किया जा सकता हो ।

यह सिफारिश अभी हिंदी भाषी क्षेत्रों के केन्द्रीय सरकारी विभागों में ही कार्यान्वित की जाए, हिंदीतर भाषा-भाषी क्षेत्रों के स्थानीय कार्यालयों में नहीं ।

(को (ख) और (ग) में दिए गए निर्देश भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग के अधीन कार्यालयों के संबंध में लागू न होंगे ।

8. प्रशिक्षण संस्थान :

(क) समिति ने यह सुझाव दिया है कि नेशनल डिफेंस एकेडमी जैसे प्रशिक्षण संस्थानों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही बना रहे, किन्तु शिक्षा संबंधी कुछ या सभी प्रयोजनों के लिए माध्यम के रूप में हिंदी का प्रयोग शुरू करने के लिए उचित कदम उठाए जाएँ ।

रक्षा मंत्रालय अनुदेश पुस्तिकाओं इत्यादि के हिंदी प्रकाशन आदि के रूप में समुचित प्रारम्भिक कार्यवाही करें, ताकि जहाँ भी व्यवहार हो वहाँ शिक्षा के माध्यम के रूप में हिंदी का प्रयोग सुगम हो जाए।

(ख) समिति से सुझाव दिया कि प्रशिक्षण संस्थानों में प्रवेश के लिए अंग्रेजी और हिंदी दोनों ही परीक्षा के माध्यम हों, किन्तु परीक्षार्थियों को यह विकल्प रहे कि वे सब या कुछ परीक्षा पत्रों के लिए उनमें से किसी एक भाषा को चुन लें और एक विशेष समिति यह जाँच करने के लिए नियुक्ति जाए कि नियत कोटा प्रणाली अपनाए बिना प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग परीक्षा के माध्यम के रूप में कहाँ तक शुरू किया जा सकता है ।

रक्षा मंत्रालय को चाहिए कि वह प्रदेश परीक्षाओं में वैकल्पिक माध्यम के रूप में हिंदी का प्रयोग शुरू करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करे और कोई नियम

कोटा प्रणाली अपनाए बिना परीक्षा के माध्यम के रूप में प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग आरंभ करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त करे ।

9. अखिल भारतीय सेवाओं और उच्चतर केन्द्रीय सेवाओं में भरती -

(क) परीक्षा का माध्यम - समिति की राय है कि (1) परीक्षा का माध्यम अंग्रेजी बना रहे और कुछ समय पश्चात् हिंदी वैकल्पिक माध्यम के रूप में अपना ली जाए । इसके बाद जब तक आवश्यक हो, अंग्रेजी और हिंदी दोनों ही परीक्षार्थी के विकल्पानुसार परीक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने की छूट हो; (2) किसी प्रकार की नियम कोटा प्रणाली अपनाए बिना परीक्षा के माध्यम के रूप में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग शुरू करने की व्यवहार्यता की जाँच करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की जाए ।

कुछ समय के पश्चात् वैकल्पिक माध्यम के रूप में हिंदी का प्रयोग शुरू करने के लिए संघ लोक सेवा आयोग के साथ परामर्श करके गृह मंत्रालय आवश्यक कार्यवाही करे । वैकल्पिक माध्यम के रूप में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग करने से गंभीर कठिनाइयाँ पैदा होने की संभावना है । इसलिए वैकल्पिक माध्यम के रूप में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग शुरू करने की व्यवहार्यता की जाँच करने के लिए विशेषज्ञ समिति नियुक्त करना आवश्यक नहीं है।

(ख) भाषा विषयक प्रश्न पत्र - समिति की राय है कि सम्यक् सूचना के बाद समान स्तर के दो अनिवार्य प्रश्न-पत्र होने चाहिए, जिनमें से एक हिंदी तथा दूसरा हिंदी से भिन्न किसी भारतीय भाषा का होना चाहिए और परीक्षार्थीको यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वह इनमें से किसी एक को चुन ले । अभी केवल एक ऐच्छिक हिंदी परीक्षा-पत्र शुरू किया जाए । प्रतियोगिता के फल पर चुने गए जो परीक्षार्थी इस परीक्षा-पत्र में उत्तीर्ण हो गए हों, उन्हें भरती के बाद जो विभागीय हिंदी परीक्षा देनी होती है, उसमें बैठने और उसमें उत्तीर्ण होने की शर्त से छूट दी जाए ।

10. **अंक -** जैसा कि समिति का सुझाव है, केन्द्रीय मंत्रालयों का हिंदी प्रकाशनों में अंतरराष्ट्रीय अंकों के अतिरिक्त देवनागरी अंकों के प्रयोग के संबंध में एक आधारभूत नीति अपनाई जाए, जिसका निर्धारण इस आधार पर किया जाए कि वे प्रकाशन किस प्रकार की जनता के लिए है और उसकी विषयवस्तु क्या है । वैज्ञानिक, औद्योगिकीय और सांख्यिकीय प्रकाशनों में, जिनमें केन्द्रीय सरकार का बजट संबंधी साहित्य भी शामिल है, बराबर अंतरराष्ट्रीय अंकों का प्रयोग किया जाए ।

11. अधिनियमों, विधेयकों इत्यादि की भाषा -

(क) समिति ने यह राय दी है कि संसदीय विधियाँ अंग्रेजी में रहें, किंतु उनका प्रामाणिक हिंदी अनुवाद उपलब्ध कराया जाए ।

संसदीय विधियाँ अंग्रेजी में रहें, किंतु उसके प्रामाणिक हिंदी अनुवाद की व्यवस्था करने के वास्ते विधि मंत्रालय आवश्यक विधेयक उचित समय पर पेश करे । संसदीय विधियों का प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद कराने का प्रबंध भी विधि मंत्रालय करे ।

(ख) समिति ने राय जाहिर की है कि जहाँ कहीं राज्य विधानमंडल में पेश किए गए विधेयकों या पास किए गए अधिनियमों का मूल पाठ हिंदी से भिन्न किसी भाषा मे हैं, वहाँ अनुच्छेद 348 के खंड(3) के अनुसार अंग्रेजी अनुवाद के अलावा उसका हिंदी अनुवाद भी प्रकाशित किया जाए ।

राज्य की राजभाषा में पाठ के साथ-साथ राज्य विधेयकों, अधिनियमों और अन्य सांविधिक लिखतों (लिखित सामग्री) के हिंदी अनुवाद के प्रकाश के लिए आवश्यक विधेयक उचित समय पर पेश किया जाए ।

12. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की भाषा -

राजभाषा आयोग ने सिफारिश की थी कि जहाँ तक उच्चतम न्यायालय की भाषा का सवाल है, उसकी भाषा इस परिवर्तन का समय आने पर अंततः हिंदी होनी चाहिए । समिति ने यह सिफारिश मान ली है । आयोग ने उच्च न्यायालयों की भाषा के विषय में प्रादेशिक भाषाओं तथा हिंदी के पक्ष-विपक्ष में विचार किया और सिफारिश की कि जब भी इस परिवर्तन का समय आए, उच्च न्यायालयों के निर्णयों, आज्ञप्तियों (डिक्रियों) और आदेशों की भाषा सब प्रदेशों में हिंदी होनी चाहिए, किंतु समिति की राय है कि राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से आवश्यक विधेयक पेश करके यह व्यवस्था करने की गुंजाइश रहे कि उच्च न्यायालयों के निर्णयों, आज्ञप्तियों और आदेशों के लिए उच्च न्यायालय में हिंदी राज्यों की राजभाषाएँ विकल्पतः प्रयोग में लाई जा सकेंगी ।

समिति की यह राय है कि उच्चतम न्यायालय अंततः अपना सब काम हिंदी में करे, यह सिद्धांत रूप में स्वीकार्य है और इसके संबंध में समुचित कार्यवाही उसी समय अपेक्षित होगी, जबकि इस परिवर्तन के लिए समय आ जाएगा ।

जैसा कि आयोग की सिफारिश की तरमीम करते हुए समिति ने सुझाव दिया है, उच्च न्यायालयों की भाषा के विषय में यह व्यवस्था करने के लिए आवश्यक विधेयक विधि मंत्रालय उचित समय राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से पेश करें कि निर्णयों, आज्ञप्तियों और आदेशों के प्रयोजनों के लिए हिंदी और राज्यों की राजभाषाओं का प्रयोग विकल्पतः किया जा सकेगा ।

13. विधि क्षेत्र में हिंदी में काम करने के लिए आवश्यक प्रारंभिक कदम -

मानक विधि शब्दकोश तैयार करने, केन्द्र तथा राज्य के विधान निर्माण से संबंधित सांविधिक ग्रंथ का अधिनियम करने, विधि शब्दावली तैयार करने की योजना बनाने और जिस संक्रमण काल में सांविधिक ग्रंथ और साथ ही निर्णय विधि अंशतः हिंदी और अंग्रेजी में होंगे, उस अवधि में प्रारंभिक कदम उठाने के बारे में आयोग ने जो सिफारिशें की थीं और उन्हें समिति ने मान लिया है । साथ ही समिति ने यह सुझाव भी दिया

है कि संविधियों के अनुवाद और विधि शब्दावली तथा कोषों से संबंधित संपूर्ण कार्यक्रम की समुचित योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने के लिए भारत की विभिन्न राष्ट्रभाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विशेषज्ञ का एक स्थायी आयोग या इस प्रकार कोई उच्च स्तरीय निकाय बनाया जाए । समिति ने यह राय भी जाहिर की है कि राज्य सरकारों को परामर्श दिया जाए कि वे भी केन्द्रीय सरकार से राय लेकर इस संबंध में आवश्यक कार्यवाही करें ।

समिति ने सुझाव को दृष्टि में रखकर विधि मंत्रालय (यथासंभव सब भारतीय भाषाओं में प्रयोग के लिए) सर्वमान्य विधि शब्दावली की तैयारी और संविधियों के हिंदी में अनुवाद संबंधी पूरे काम के लिए समुचित योजना बनाने और पूरा करने के लिए विधि विशेषज्ञों के एक स्थायी आयोग का निर्माण करे ।

14. हिंदी के प्रगामी प्रयोग के लिए योजना का कार्यक्रम -

गृह मंत्रालय एक योजना कार्यक्रम तैयार करे और आवश्यक कार्यवाही करे ।

संसदीय समिति ने यह राय दी थी कि अंग्रेजी को सन् 1956 के पश्चात् हटाना व्यावहारिक नहीं है । अतएव सन् 1963 में अधिनियम पारित हुआ । यह अनुभूति हुई कि इसमें कई बातें स्पष्ट नहीं हैं । इसके स्पष्टीकरण के लिए इस अधिनियम सें संशोधन किया गया ।

11.6 सारांश

हिंदी को राजभाषा की यात्रा तय करने में कई शताब्दियाँ लगी है । हिंदी को जन भाषा, राष्ट्रभाषा और संपर्क भाषा के बनने में विभिन्न परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है । हिंदी आज राजभाषा बनी है तो इसके पीछे संघर्ष का लम्बा इतिहास है । राजभाषा हिंदी के स्वरूप निर्धारण से पूर्व हिंदी अपने प्रारंभिक काल से गुजरते हुए मध्यकाल से होते हुए आधुनिक काल में नये रूपों को ग्रहण किया है ।

आदिकाल में हिंदी का स्वरूप अपभ्रंश और अवहट्ट के रूप में मिलता है । यह रूप देशीपन और जनभाषा के एकदम निकट था । सिद्ध साहित्य, जैन व नाथ साहित्य की महत्वपूर्ण रचनाएँ इसी भाषा में प्राप्त होती हैं । मध्यकाल तक आते-आते हिंदी भाषा उपभाषाओं से जुड़ती है जिनमें अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी प्रमुख हैं । यह अवधी भाषा केंद्र बिंदु के रूप में सामने आती है, जो महाकाव्यों की भाषा बनती है । यह भाषा भी जनभाषा के अधिक निकट थी । भाषा में सरलता व सरसता के कारण अधिक प्रचलित हो पाई थी ।

आधुनिक काल में हिंदी काव्य भाषा के रूप में प्रसार पाती है । हिंदी काव्य ब्रज भाषा में अधिक लिखा गया । कविता में ब्रज का प्राधान्य दिखाई पड़ता है वहीं गद्य में खड़ी बोली का अधिक प्रयोग हुआ है । इस काल में गद्य की विविध विधाएँ विकसित होती हैं । पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से महत्त्वपूर्ण पत्रों का संपादन हुआ जिससे राष्ट्रीयता व भाषा दोनों का ही प्रचार-प्रसार हुआ । इसी काल में खड़ी बोली को व्याकरण सम्मत बनाकर परिष्कृत एवम् परिमार्जित किया गया । भाषा में नवीनता लाने का प्रयास किया गया ।

स्वाधीनता संघर्ष के दौरान हमारे राजनेताओं और समाज सुधारकों के द्वारा यह प्रयास किये जा रहे थे कि भाषाई एकता से जनमानस को एकसूत्र में बाँधा जा सकता है । कई संस्थाओं ने राष्ट्रभाषा संपर्क भाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार किया । इससे भी हिंदी का विस्तार हुआ । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा घोषित किया गया । राज्य या प्रशासन की भाषा को ही राजभाषा कहा गया । संविधान के प्रावधानों के अनुसार संविधान लागू होने के पंद्रह वर्षा बाद अर्थात् 1965 तक हिंदी को राजभाषा का स्थान लेना था, किंतु 1967 में हुए संशोधन के अनुसार अंग्रेजी को सह राजभाषा के रूप में जारी रखने का संकल्प किया गया ।

राजभाषा के कार्यान्वयन के लिए विभिन्न समितियाँ गठित की गयी । मुख्य ध्येय हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार करना है । ऐसी योजनाओं और कार्यक्रमों का निर्धारण करना है कि अधिकाधिक जन सामान्य तक हिंदी विकसित हो सके ।

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. राजभाषा हिंदी की विकास यात्रा को समझाइये ।
2. आधुनिक काल में हिन्दी के स्वरूप निर्धारण पर लेख लिखिए ।
3. राजभाषा और राष्ट्रभाषा के अंतर को स्पष्ट कीजिए ।
4. राजभाषा कार्यान्वयन के लिए गठित समितियों का उल्लेख कीजिए ।
5. हिंदी सलाहकार समिति पर टिप्पणी लिखिए ।
6. राष्ट्रपति का आदेश 1960 की महत्ता पर प्रकाश डालिए ।

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. इकबाल अहमद (संपा.); **राजभाषा हिंदी प्रगति और प्रयाण,** राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
2. डॉ. मणिक मृगेश; **राजभाषा विविधा,** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
3. कैलाश चंद्र भाटिया, मोतीलाल चतुर्वेदी, **हिंदी भाषा विकास और स्वरूप,** ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2001
4. शंकर दयाल सिंह, **हिंदी राष्ट्रभाषा, राजभाषा, जनभाषा,** किताबघर, नई दिल्ली, 1995

इकाई -12

कार्यालयी हिंदी की भाषिक प्रकृति एवं प्रशासनिक शब्दावली

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 कार्यालयी हिंदी से तात्पर्य
12.3 कार्यालयी हिंदी की प्रकृति और स्वरूप
12.4 कार्यालयी हिंदी की भाषिक प्रकृति
12.4.1 अभिधा का प्रयोग
12.4.2 एकार्थता
12.4.3 अलग पारिभाषिक शब्द
12.4.4 समस्त्रोतीयता का अभाव
12.4.5 शैली भेद
12.4.6 लैटिन शब्दों के हिन्दी समानक
12.4.7 शब्द संक्षेपों का प्रयोग
12.4.8 निर्वैयक्तिक भाषा रूप
12.4.9 अनुवाद की छाया
12.5 कार्यालयी हिंदी का मुहावरा
12.6 प्रशासनिक शब्दावली
12.7 प्रशासनिक शब्दावली निर्माण के सिद्धान्त
12.8 मानकीकरण की प्रक्रिया
12.9 वाक्यांश और अभिव्यक्तियाँ
12.10 पदनाम
12.11 विभागीय नाम
12.12 उपाधियाँ और डिप्लोमा आदि
12.13 कार्यालयी भाषा की प्रकृति के अनुसार प्रशासनिक शब्दावली का विकास
12.14 सारांश
12.15 अभ्यासार्थ प्रश्न
12.16 संदर्भ ग्रन्थ

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- कार्यालय की संकल्पना से अवगत हो सकेंगे ।
- कार्यालय के कामकाज के रूप से परिचित हो सकेंगे ।
- कार्यालय की कार्यविधि से परिचित हो सकेंगे ।
- कार्यालय में प्रयुक्त भाषा की प्रकृति से परिचित हो सकेंगे ।

- कार्यालय में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे ।
- प्रशासनिक शब्दावली का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- प्रशासनिक शब्दावली के मानकीकरण एवं निर्माण के सिद्धान्तों से परिचित हो सकेंगे ।
- प्रशासनिक शब्दावली का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- भाषा की प्रकृति के अनुरूप शब्दावली के प्रयोग के बारे में जानेंगे, और
- प्रशासनिक शब्दावली की प्रकृति से परिचय प्राप्त होगा ।

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आपको कार्यालयी हिंदी की प्रकृति, स्वरूप और भाषिक प्रकृति के बारे में जानकारी प्राप्त होगी । कार्यालयी भाषा प्रयोजन मूलक हिंदी की एक भाषागत स्वतंत्र प्रयुक्ति है, जिसकी स्वतंत्र पारिभाषिक शब्दावली है, तथा स्वतंत्र प्रयोग का धरातल है । हालाँकि कार्यालयी भाषा स्वतंत्रता के बाद कार्यालयों में अंग्रेजी के स्थान पर या उसके साथ-साथ भारत की राजभाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग अनुवाद के माध्यम-से करने के कारण कार्यालयी भाषा के रूप में अस्तित्व में आई है, अत: इस पर अनुवाद की छाया आज भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है । अंग्रेजी से हिंदी में कार्यालयी भाषा की प्रकृति एवं परम्परा विकसित होने के कारण अर्थवत्ता की दृष्टि से यह आज भी अंग्रेजी भाषा के शब्दों व संकल्पनाओं की अर्थवत्ता पर आश्रित है, और यही कारण है कि आज कार्यालयी हिंदी स्वतंत्र रूप से बोलचाल की हिंदी या साहित्यिक हिंदी से अपनी भिन्न स्वतंत्र प्रकृति बना ली है जिसका विवेचन इस इकाई में किया गया है ।

12.2 कार्यालयी हिंदी' से तात्पर्य

कार्यालयी हिंदी कार्यालय में प्रयुक्त भाषा रूप है अर्थात् कार्यालयी हिंदी से तात्पर्य कार्यालयों में प्रचलित हिंदी भाषा के उस स्वतंत्र प्रयुक्ति से है जिसकी अपनी स्वतंत्र परिभाषा है, प्रयोग के रूप में जिसका स्वतंत्र धरातल एवं परम्परा है । सामान्यत: कार्यालयी हिंदी को राजभाषा या ' official language' के रूप में जाना जाता है ।

कार्यालयी संकल्पना के अंतर्गत सबसे उच्च राष्ट्रपति के कार्यालय से लेकर सबसे नीचले या छोटे कार्यालय एकक सरपंच कार्यालय सम्मिलित है । चूँकि प्रमुख कार्य प्रशासन विषयक होता है अत: कार्यालयी भाषा को प्रशासनिक भाषा के नाम से भी जाना जाता है ।

12.3 कार्यालयी हिंदी की प्रकृति और स्वरुप

संविधान सभा ने 12 सितंबर, 1949 से 14 सितंबर, 1949 तक भारत सरकार की राजभाषा के संबंध में बहसें की तथा व 14 सितंबर, 1949 को सर्वसम्मति से देवनागरी में लिखित हिंदी भारत की राजभाषा बन गई । भारत के संविधान में राजभाषा विषयक समस्त प्रावधान भाग-5 भाग-6 और भाग- 17 में हैं । संविधान के इन्हीं राजभाषा विषयक उपबंधों के माध्यम से तथा विविध समितियों, राष्ट्रपति के आदेशों, आयोगों, नियमों, संकल्पों कार्यक्रमों के

माध्यम से राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन के लिए कदम उठाए गये हैं तथा सरकारी कार्यालयों में राजभाषा के रुप में हिंदी को एक प्रयोजनमूलक भाषा के रुप में विकसित होने का मौका मिला हैं । आरंभ में अंग्रेजी भाषा में सम्पन्न कार्यालयी कामकाज की देखा देखी करके अनुवाद के माध्यम से हिंदी में कामकाज करने की कोशिश की गई ।

कार्यालयी कामकाज में चूँकि समस्त निर्णय फाइलों पर लिए जाते हैं तथा फाइलों को प्रस्तुत किया जाता है तथा उन पर विभिन्न अधिकारी निर्णय लेने के लिए टिप्पणियाँ लिखते है अत: अंग्रेजी में एक लम्बे समय तक कार्यालयी कामकाज होने के कारण तथा स्वतंत्र भारत में भी हिंदी के भारत की राजभाषा घोषित होने के बावजूद भी द्विभाषिकता के रुप में ऊपरी स्तर पर चूंकि कार्यालयी भाषा के रुप में अंग्रेजी हावी रही हैं । अत: कार्यालयी भाषा की अधिकांश अभिव्यक्तियाँ, टिप्पणियाँ, पारिभाषिक शब्द आदि पहले अंग्रेजी में प्रचलित हुए, बाद में उनका हिंदी में अनुवाद कर लिया गया ।

फाइलों में निर्णय लेने के बाद विविध प्रकार के मसौदे सरकारी कामकाज में प्रचलित हैं, यथा- पत्र अर्धसरकारी पत्र, ज्ञापन, कार्यालय ज्ञापन, आदेश, कार्यालय आदेश, परिपत्र, सूचना, अधिसूचना, प्रेस विज्ञप्ति, तार, निविदा, पूर्ति-आदेश, लाइसेंस, परमिट, प्रमाण-पत्र आदि । कार्यालयी हिंदी भाषा में प्रचलित ये मसौदे मूलत: अंग्रेजी की परम्परा में प्रचलित हुए हैं तथा हिंदी में अंग्रेजी से सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों रुपों में अनुवाद के माध्यम से ग्रहण किये गये हैं तथा प्रयोग के कारण प्रचलित होकर हिंदी मसौदे की परंपरा के रुप में प्रचलित हो गए हैं ।

कार्यालयी हिंदी चूँकि सूचना प्रधान हिंदी हैं अत: यह वैयक्तिक शैली के रुप में न पनपकर कार्यालयी शैली के रुप में पनपी हैं । अत: कार्यालयी हिंदी की प्रकृति भी इसी के अनुसार बनी हैं।

12.4 कार्यालयी हिंदी की भाषिक प्रकृति

कार्यालयी हिंदी की भाषिक प्रकृति को निम्नलिखित शीर्षकों के रुप में रखकर आसानी से समझा जा सकता है -

12.4.1 अभिधा का प्रयोग

कार्यालयी हिंदी में प्राय: अभिधा का प्रयोग होता है; लक्षणा-व्यंजना का प्रयोग नहीं होता हैं, जबकि साहित्यिक हिंदी में लक्षणा-व्यंजना का भरपूर प्रयोग होता हैं । पर कार्यालयी हिंदी में मात्र अभिधा का ही प्रयोग होता है; जैसे- फाइल प्रस्तुत हैं; विचाराधीन कागज आदि ।

12.4.2 एकार्थता

एकार्थता भी कार्यालयी भाषा की प्रकृति में हैं । साहित्यिक भाषा में अनेकार्थता बहुअर्थता या पर्यायवाचिता का अवकाश होता हैं लेकिन कार्यालयी हिंदी में इनके लिए, साथ ही, अलंकारों आदि के लिए कोई स्थान नहीं । कार्यालयी हिंदी का प्रकार्य चूँकि भाषा के माध्यम से सूचनाओं का आदान-प्रदान करके कार्यालयी कामकाज को सम्पन्न करना होता है अत: उसमें

प्रयुक्त शब्दों का एकार्थी होना अत्यंत आवश्यक होता है अन्यथा सूचनाओं के आदान-प्रदान में दिक्कत होगी और कोई चालक व्यक्ति शब्दजाल या बहु अर्थता का फायदा अपने पक्ष में निर्णय कराकर उठा सकता हैं । इसीलिए कार्यालयी हिंदी में एकार्थी शब्दों का प्रयोग इसकी प्रकृति का ही अंग है ।

12.4.3 अलग पारिभाषिक शब्द:

कार्यालयी हिंदी चूँकि अंग्रेजी भाषा की देखादेखी करके पनपी है तथा विशिष्ट भाषा क्षेत्र होने के कारण कार्यालयी हिंदी के स्वतंत्र पारिभाषिक शब्द हैं जो कि कार्यालयी हिंदी की प्रकृति के सर्वथा अनुरूप ही हैं;

जैसे - प्रशासन (Administration), लेखा (Accounts), निविदा (Tender), निदेशक (Director), अताशे (Attache), शपथ पत्र (Affidavit) आदि ।

12.4.4 समस्रोतीयता का अभाव

कार्यालयी हिंदी की मूल प्रकृति में समस्रोतीयता का सूत्र समाहित हैं । हिंदी में समस्रोतीयता के स्तर का शब्द रचना में पूरा का पूरा ध्यान रखा जाता हैं लेकिन कार्यालयी हिंदी में समस्रोतीयता का अभाव देखने को मिलता हैं;

जैसे - चाहे उपसर्गों का प्रयोग हो (उपजिला, अरजिस्ट्रीकृत, उप-रजिस्ट्रार आदि) या प्रत्ययों का प्रयोग हो (मूद्राबंद. स्टानपित, बातिलीकरण आदि) या फिर समासों का प्रयोग क्यों न हो (मतदानबूथ, जिलाधीश, बजट-प्राक्कलन, आर्थिक सलाहकार, अनुवाद ब्यूरो आदि) । इनमें समस्रोतीयता का बंधन कहीं भी दिखाई नहीं देता ।

12.4.5 शैली भेद

कार्यालयी हिंदी भाषा की प्रकृति में एक सबसे बड़ी ऐसी विशेषता है जो उसे अन्य भाषा शैलियों से अलग बताती है और यह विशेषता शैली भेद की हैं । इसका प्रमुख कारण यह है कि हिंदी के कार्यालयी भाषा बनने से पहले हिंदी भाषा प्रदेशों में प्राय: उर्दू के कार्यालयी भाषा में शब्द पनप चुके थे; जैसे- अदालत, जिला, तहसील, सूबा, परगना, कुर्की, जमानत, हलफनामा, मुचलका, सरकार, खजाना, दफ्तर, मुकद्दमा आदि ।

आजादी के बाद संस्कृत के आधार पर पारिभाषिक शब्द निर्माण का कार्य किया गया तथा विदेशी परंपरा के शब्दों से बचा गया । अत: परंपरा के रक्षण के कारण संस्कृत से प्रचुर मात्रा में शब्द लिए गए तथा निर्मित किए गए । उर्दू परंपरा के प्रचलित शब्दों के लिए भी संस्कृत परंपरा के शब्द बना लिए गए जो कि कार्यालयी हिंदी में प्रचलित हो गए । प्रयोक्ता कभी एक परंपरा के शब्द का प्रयोग करता है तो कभी दूसरी परंपरा के शब्द का । इस तरह से कार्यालयी हिंदी में संस्कृत निष्ठ और उर्दू निष्ठ शैलियाँ प्रचलित हो गई हैं;

जैसे - Application,-अर्जी, आवेदन पत्र; Agreement - करारनामा हलफनामा; Office- दफ्तर, कार्यालय; Court- अदालत, न्यायालय; Officer अफसर, अधिकारी आदि ।

12.4.6 लैटिन शब्दों के हिंदी समानक

कार्यालयी हिंदी में मूल लेटिन शब्दों के हिंदी समानक प्रयुक्त हो रहे हैं; जैसे- Adhoc- तदर्थ, Antidated- पूर्व दिनांकित, Bonafide- सद्भाव से, वास्तविक, असली, Cum- व, और, एवं Data ,आधार, तथ्य, आँकडे, Ex-grati- अनुग्रहपूर्वक, Ex-officio- पदेन,Liaision- संपर्क, malafide - कदाशय बदनीयत, Proviso- परंतुक, शर्त आदि ।

12.4.7 शब्द संक्षेपों का प्रयोग

कार्यालयी हिंदी की प्रकृति में शब्द संक्षेपों के प्रयोग को मान्यता प्राप्त है । कार्यालयी हिंदी के कुछ शब्द संक्षेप इस प्रकार हैं.

शब्द संक्षेप (अंग्रेजी)	पूर्ण शब्द (अंग्रेजी)	शब्द संक्षेप (हिंदी)	पूर्ण शब्द (हिंदी)
C.L	Causal leave	आ.छु	आकस्मिक छुट्टी
D.O	Demi official	अ.स	अर्ध सरकारी
D.A	Daily allowance	दै.भ	दैनिक भत्ता
D.A	Dearness Allowance	म.भ	महँगाई भत्ता
E.L	Earned Leave	अ.छु	अर्जित छुट्टी
M.L	Medical Leave	चि.छु	चिकित्सा छुट्टी
A.D	Assistant Director	स.नि.दे	सहायक निदेशक
A.O	Administrative Officer	प्र.अ.	प्रशासनिक अधिकारी
L.D.C	Lower Divisional Clerk	नि.श्रे.लि	निम्न श्रेणी लिपिक
U.D.C	Upper Divisional Clerk	उ.श्रे.लि	उच्च श्रेणी लिपिक

12.4.8 निर्वैयक्तिक भाषारुप

कार्यालयी कार्यप्रणाली में पद की गरिमा होती है तथा पदों पर नियुक्त व्यक्ति सदैव बने नहीं रहते । वे स्थानांतरित होते रहते हैं या फिर सेवा काल पूरा होने पर निवृत होते हैं । अत: कार्यालयी कार्यप्रणाली में व्यक्ति की सत्ता न होकर पद की सत्ता होती है और अधिकार भी संबंधित पद पर नियुक्त व्यक्ति अधिकारी की संज्ञा प्राप्त करता हैं ।

कार्यालयी हिंदी का प्रयोग शासन तंत्र के पद पर नियुक्त कोई व्यक्ति करता है जो भाषा प्रयोग के समय व्यक्ति न होकर तंत्र का एक अंग होता हैं । इसलिए वह वैयक्तिक रुप से कुछ न कहकर सरकारी तंत्र की ओर से कुछ कहता हैं जिसके कारण उसकी भाषा वैयक्तिक न होकर निर्वैयक्तिक हो जाती हैं । और यही कारण है कि हिंदी की अन्य प्रयुक्तियों में कर्तृवाच्य की प्रधानता रहती है जबकि कार्यालयी हिंदी में कर्मवाच्य की प्रधानता होती हैं ।

कार्यालयी हिंदी में कथन व्यक्ति सापेक्ष न होकर व्यक्ति निरपेक्ष होता है अर्थात कर्तृत्व विहीन होता हैं । उदाहरण के लिए- सर्वसाधारण को एतद्द्वारा सूचित किया जाता है कि.., अद्योहस्ताक्षरकर्त्ता को सूचित करने का निर्देश हुआ है कि.. सूचना दी जाती है कि.....,

कार्यवाही की जा सकती है, स्वीकृती दी जा सकती है, देखा गया है/ पाया गया है /महसूस किया गया हैं कि..... आदि ।

12.4.9 अनुवाद की छाया

कार्यालयी हिंदी में टिप्पण, आलेखन, प्रारूपण, संक्षेपण, पल्लवन आदि अंग्रेजी अनुवाद की परंपरा में विकसित हुए हैं; अत: कार्यालयी हिंदी पर अनुवाद की छाया स्पष्ट रुप से दिखाई देती है । कई बार हिंदी में स्वतंत्र रुप से भी मसौदा लेखन करने पर व्यक्ति आदतन सोचता अंग्रेजी में है तथा विचारों का अनुवाद हिंदी में करता जाता है जिससे अंग्रेजी की छाया हिंदी पर दिखने लगती हैं । कार्यालयी हिंदी की प्रकृति से प्रभावित हो जाती हैं । सरकारी पत्राचार में प्रयुक्त हिंदी नियमावलियों आदि में प्रयुक्त हिंदी इसका स्पष्ट प्रमाण हैं ।

12.5 कार्यालयी हिंदी का मुहावरा

कार्यालयी हिंदी की परंपरा का कार्यालयी अंग्रेजी की परंपरा से सीधा संबंध होने के कारण अनुवाद की छाप स्पष्ट रुप से दिखती हैं । अत: कार्यालयी हिंदी के मुहावरे पर अंग्रेजी की स्पष्ट छाप दिखती हैं,। चूँकि अंग्रेजी और हिंदी दोनों अलग-अलग स्वतंत्र भाषाएँ है अत: दोनों का कहने का ढंग या भाषाओं का मुहावरा समान न होना स्वाभाविक ही हैं । दोनों भाषाओं का मुहावरा भिन्न होने के कारण अनुवाद की समस्या उठ, खड़ी होती हैं ।

अंग्रेजी में लिखे कार्यालयी पत्र की आरंभिक पंक्तियाँ होंगी- 'With reference to your letter no.....Dated.....I am directed to say that...' आदि । यदि इसके लिए लिखा जाए की आपके पत्र सं- ..... दिनांक.. ..... के संदर्भ में मुझे कहने का निदेश हुआ है..... तो यह अभिव्यक्ति हिंदी के मुहावरों के अनुरूप नहीं होगी । हिंदी का प्रचलित मुहावरा है- 'आपके पत्र सं.... ..... दिनांक..... के संदर्भ में मुझे आपको सूचना देनी है कि..... ।

इसी तरह- 'Undersigned is directed to say that .....' के लिए 'अधोहस्ताक्षरकर्ता को कहने का निदेश हुआ हैं' । होना चाहिए- निर्देशानुसार सूचित किया जाता है कि. ....' कई बार पत्र के अंत में अंग्रेजी में लिखा जाता है- ' A line in reply will be appreciated' इसके लिए कई बार हिंदी में अनुवाद किया जाता है- 'उत्तर में एक पंक्ति प्रशंसित रहेगी' जो हिंदी मुहावरे की दृष्टि से अनुकूल नहीं हैं । हिंदी के मुहावरे के अनुरूप इसके लिए उपयुक्त होगा- दत्तर की प्रतीक्षा रहेगी / उत्तर देकर अनुगृहीत करें / उत्तर देने की कृपा करें ।

इसी तरह ' Early orders are solicited' के लिए लिखा जाता है- 'शीघ्र आदेश प्रार्थित हैं' जबकि होना चाहिए - 'प्रार्थना है कि शीघ्र आदेश दें' ।

इसी तरह 'No admission without permission' के लिए हिंदी में लिखा जाता है- 'बिना अनुमति के प्रवेश करना मना है' जबकि हिंदी मुहावरे के अनुरूप होना चाहिए- 'अनुमति लेकर प्रवेश करें / पूछकर आएँ ।

इस तरह स्पष्ट है कि कार्यालयी हिंदी अनुवाद के माध्यम से प्रचलित होने के कारण अनुवाद की छाया इस पर अत्यधिक हैं । मूल सामग्री का भावार्थ न लेकर शब्दानुवाद होने के कारण वाक्य क्लिष्ट, दुरूह, बोझिल एवं हिंदी मुहावरे से भिन्न बना दिए जाते हैं । अंग्रेजी के लम्बे-लम्बे वाक्यों को हिंदी में यथावत् रुप में अनुवाद करने से भी कार्यालयी हिंदी में हिंदी भाषा के मुहावरे के प्रयोग की जगह अंग्रेजी भाषा के मुहावरे अनुवाद के माध्यम से यथावत् रखने के मोह में प्रचलित करने की कोशिश की जाती हैं जिससे कार्यालयी हिंदी भाषा बोझिल बन जाती हैं ।

वैसे कार्यालयी हिंदी की अभिव्यक्ति सामर्थ्य में इसके बावजूद भी जबरदस्त इजाफा हुआ है तथा वह दुनिया की किसी भी भाषा की बराबरी करने योग्य बन गई हैं ।

12.6 प्रशासनिक शब्दावली

प्रशासन में प्रयुक्त भाषा कार्यालयी भाषा में जिन पारिभाषिक शब्दों का उपयोग होता हैं, उसे पारिभाषिक शब्दयुक्त भाषा कहते हैं । प्रशासन या कार्यालय में प्रयुक्त शब्दावली प्रशासनिक शब्दावली है । भारत में प्रयोजनमूलक क्षेत्रों की प्रशासनिक शब्दावलियाँ तैयार करने की जवाबदारी भारत सरकार के स्थायी आयोग वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग' नई दिल्ली की हैं । इस आयोग द्वारा विविध प्रयोजनमूलक क्षेत्रों की प्रशासनिक शब्दावलियाँ तैयार की गई हैं, जिनका प्रयोग संबंधित क्षेत्रों में होता हैं । आयोग ने कार्यालयी या प्रशासनिक क्षेत्र की पारिभाषिक शब्दावली 'प्रशासनिक शब्दावली' (Glossary of Administrative Terms) पहले ही प्रकाशित की है जिसके कई परिशोधित संस्करण निकाले गए है । 1968 से लेकर अब तक इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं । वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, पश्चिमी खंड-7 रामकृष्णपुरम् नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'प्रशासनिक शब्दावली' प्रशासनिक क्षेत्र में कार्य करने वाले लोगों को निःशुल्क उपलब्ध कराई जाती है ।

प्रशासनिक शब्दावली में लगभग 17000 प्रविष्टियाँ हैं जो पाँच उपखण्डों में विभाजित हैं । प्रथम उप खंड में आधारभूत प्रशासनिक शब्द हैं, दूसरे उपखंड में वाक्यांश और अभिव्यक्तियाँ, तीसरे उपखंड में पदनाम, चौथे उपखंड में विभागीय नाम तथा पाँचवें उपखंड में विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा संस्थानों की डिग्रियों, डिप्लोमाओं और प्रमाण पत्रों के हिंदी पर्याय दिए गए हैं । यह शब्दावली प्रशासनिक कार्य हेतु अत्यंत उपयोगी हैं।

12.7 प्रशासनिक शब्दावली निर्माण के सिद्धांत

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने पारिभाषिक शब्दावली निर्माण के कुछ सिद्धांत बनाए हैं जिन्हें पारिभाषिक शब्दावलियों में प्रकाशित किया गया हैं । जैसे-

1. अंतर्राष्ट्रीय शब्दों की यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रुपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषा की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण किया जाना चाहिए ।
2. प्रतीक रोमन लिपि में अंतर्राष्ट्रीय रुप में ही रखे जाऐंगे ।

3. ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किए जा सकते है, जैसे - क ख, ग आदि ।
4. संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यत: अनुवाद किया जाना चाहिए ।
5. पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता और अर्थ की परिशुद्धता का ध्यान रखना चाहिए।
6. विदेशी प्रचलित शब्दों को अपना लेना चाहिए ।
7. अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी में लिप्यंतरण हो ।
8. हिंदी में अपनाए गए अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को पुल्लिंग में ही प्रयोग करना चाहिए ।
9. संकर शब्दों का निर्माण सरलता, सुबोधता, संक्षिप्तता एवं उपयोगिता हेतु किया जाए ।
10. पारिभाषिक शब्दों में संधि और समास क्लिष्ट न हो ।
11. हलंत का प्रयोग किया जाए ।
12. पंचम वर्ण का प्रयोग किया जाए ।

साथ ही आयोग ने ग्रहण (Adoption), अनुकूलन (Adaptation) और नवनिर्माण (Coinage) के माध्यम से प्रभूत मात्रा में पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया हैं ।

12.8 मानकीकरण की प्रक्रिया

प्रत्येक शब्दावली मानकीकरण की प्रक्रिया से गुजरती है तथा प्रशासनिक शब्दावली भी इसका अपवाद नहीं है । पारिभाषिक शब्दावली निर्माण का कार्य पहले व्यक्तिगत स्तर पर किए जाने के कारण इस क्षेत्र में शब्दगत पर्यायवाचिता प्रचलित होने लगी थी;

जैसे-	Director	- निदेशक, निर्देशक, संचालक
	Government	- सरकार, शासन
	Workshop	- कार्यशाला, कार्यगोष्ठी कर्मशाला, गोष्ठी, संगोष्ठी

इसीलिए यह आवश्यक था कि इस तरह की अराजकता पैदा न हो । अत: वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने शुरुआत से ही शब्दावली के मानकीकरण के पक्ष पर ध्यान दिया तथा प्रत्येक पारिभाषिक शब्द स्वतंत्र एवं पूर्ण बनाया ।

उदाहरण के लिए - अंग्रेजी में Action तथा Processing दो अलग-अलग प्रशासनिक क्षेत्र के पारिभाषिक शब्द हैं जिनके लिए क्रमश: पारिभाषिक शब्द बनाए गए हैं- कार्रवाई और कार्यवाही । इसी तरह Order, Direction, तथा Instruction के लिए क्रमश: शब्द बनाए गए हैं 'आदेश, निदेश और निर्देश ।

12.9 वाक्यांश और अभिव्यक्तियाँ

सरकारी या कार्यालयी हिंदी में टिप्पणियों, वाक्यांशों अभिव्यक्तियों आदि का भी बखूबी प्रयोग होता है अत: प्रशासनिक शब्दावली में टिप्पणियों, वाक्यांशों, अभिव्यक्तियों को भी स्थान दिया गया हैं;

जैसे:-

Above given	उपरिलिखित, ऊपर दिया हुआ
Accordind	के अनुसार
Acting in Good Faith	सद्भाव से कार्य करते हुए
Advice Awaited	सलाह की प्रतीक्षा हैं
As Early as possible	यथासंभव शीध्र
By Hand	दस्ती
Date of Maturity	परिपक्वता तारीख
Decision is Awaited	निर्णय की प्रतिक्षा हैं
Give Details	विस्तृत जानकारी दें
In Liew of	के बदले में
Is hereby informed	को सूचित किया जाता हैं
Objectionable Action	आपत्तिजनक कार्य
Sanctioned as proposed	प्रस्ताव के अनुसार मंजूर
Will you please state	कृपया बताएँ
Yours Faithfully	भवदीय, भवदीया
Yours sincerely	आपका, भवदीय
Yours Truly	आपका, भवदीय

12.10 पदनाम

पदों के नाम को पदनाम (Designation) कहा जाता हैं । कार्यालयी हिंदी में पदनामों की भरमार हैं । कार्यालय या प्रशासनिक भाषा के ये पदनाम अंग्रेजी से अनूदित होकर हिंदी में प्रयुक्त एवं प्रचलित हुए हैं ।

जैसे- Administration Officer- प्रशासनिक अधिकारी, Account Clerk- लेखा लिपिक, Accounts Officier- लेखा अधिकारी, Assistand Director- सहायक निदेशक, depantyDirector-उपनिदेशक, Joint director- संयुक्त निदेशक, Director- निदेशक, Director General- महानिदेशक, Commissioner, Labour Officer- श्रम अधिकारी आदि ।

12.11 विभागीय नाम

विभाग या कार्यालय के नामों को विभागीय नाम कहा जाता हैं । सरकारी संकल्पना में राष्ट्रपति का कार्यालय, उपराष्ट्रपति का कार्यालय, अध्यक्ष- लोकसभा, राज्यसभा का कार्यालय, प्रधानमंत्री कार्यालय, मंत्रालय, महानिदेशालय, मंडल कार्यालय, क्षेत्रीय कार्यालय, मुख्यालय, कार्यालय, विभाग, अनुभाग, सम्बद्ध या अधीनस्थ कार्यालय आदि आते हैं । पारिभाषिक शब्दावली में इनके नाम अंग्रेजी-हिंदी में दिए हुए हैं;

जैसे-' Accident and Emergency Department दुर्घटना और आपात विभाग, Central Administrative Tribunal केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, Directorate General महा-निदेशालय, Election Commission चुनाव आयोग, union Public service Commission संघ लोक सेवा आयोग, धधा Staff Selection Commission कर्मचारी चयन आयोग आदि ।

12.12 उपाधियाँ और डिप्लोमा आदि

प्रशासनिक या कार्यालयी भाषा क्षेत्र में अनेक लोग अनेक पदों पर कार्य करते हैं तथा उनके पदों की प्रकृति एवं पद की प्रतिष्ठा के अनुसार उन पदों पर नियुक्ति हेतु शैक्षणिक योग्यताओं का होना आवश्यक होता हैं । उपाधियाँ और डिप्लोमा आदि महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि प्रदान करते हैं पर पदों की पात्रता इन्ही उपाधियों और डिप्लोमा आदि से होने के कारण प्रशासनिक शब्दावली में अंतिम खंड उपाधियाँ और डिप्लोमा आदि से संबंधित दिया गया हैं जैसे-

Bachelor of Arts(B.A.)	कला स्नातक (क.स्ना.)
Master of Arts(M.A.)	कला निष्जात (क.नि.)
Bechelor of Dance(B. Dance)	नृत्य स्नातक (नृ.स्ना.)
Bachelor of Engineering (B.E)	इंजीनियरी स्नातक (इ.स्ता.)
Doctor Of Philosophy (Ph.D.)	विद्यावाचस्पति (वि.वा)
P.G Diploma in Translation	अनुवाद स्नातकोत्तर डिप्लोमा
Pre-University (P.U.C)	पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम

12.13 कार्यालयी भाषा की प्रकृति के अनुसार प्रशासनिक शब्दावली का विकास

प्रशासनिक शब्दावली की विकास यात्रा कार्यालयी भाषा की प्रकृति के अनुसार आगे बढ़ी हैं । प्रशासनिक शब्दावली का प्रथम संस्करण 1968 में आया, द्वितीय संस्करण 1974, तृतीय संस्करण 1996 में तथा छठवीं संस्करण संशोधित और परिवर्धित रुप में 2002 में कंप्यूटर डाटाबेस आधारित प्रकाशित हुआ हैं । प्रशासनिक शब्दावली की हिंदी में विकास यात्रा अत्यंत उत्कृष्ट है तथा इसी कारण से कार्यालयों में सुविधाजनक रुप से बखूबी हिंदी में कार्य हो रहा हैं । जिससे कार्यालयी हिंदी की स्वतंत्र पहचान बनी हैं ।

12.14 सारांश

कार्यालयी हिंदी की भाषिक प्रकृति और प्रशासनिक शब्दावली के संबंध में आपने इस इकाई 12 में अध्ययन किया । कार्यालयी हिंदी कार्यालय में प्रयुक्त हिंदी भाषा का प्रयोजनमूलक, रुप हैं जिसका प्रयोग अंग्रेजी अनुवाद की परंपरा के माध्यम से विकसित होते हुए आज अपनी स्वतंत्र पहचान बना चुका हैं तथा एक स्वतंत्र प्रयोजनमूलक हिंदी भाषा की कार्यालयी प्रयुक्ति के रुप में अपनी पहचान बना चुका हैं । इस भाषा रुप का अपना स्वतंत्र

प्रयोग क्षेत्र है तथा स्वतंत्र धरातल हैं, साथ ही इसकी विशेषताएँ भी अपनी ही विशिष्ट है । प्रशासनिक हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली पूर्ण रुप में विकसित हो चुकी है तथा वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने प्रशासनिक शब्दावली के कई संस्करण प्रकाशित किए हैं जो इस क्षेत्र में कार्यरत लोगों को निःशुल्क उपलब्ध हैं । प्रशासनिक भाषा हिंदी के प्रशासनिक शब्दों का अब कोई भी टोटा नहीं हैं । प्रशासनिक शब्दों के प्रयोग के कारण इस भाषा रुप की अपनी स्वतंत्र पहचान हैं ।

12.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कार्यालयी हिंदी से क्या तात्पर्य है?
2. किन्ही चार लैटिन के शब्दों के हिंदी समानक बताइए ।

12.16 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. रामगोपाल सिंह, **प्रयोजनमूलक भाषा और अनुवाद,** 2001 पार्श्व प्रकाशन, झवेरी बाड़, रिलीफ रोड, अहमदाबाद
2. डॉ. रामगोपाल सिंह; **प्रयोजनमूलक हिंदी,** 2005 पार्श्व प्रकाशन, झवेरी बाड़, रिलीफ रोड, अहमदाबाद
3. डॉ. रामगोपाल सिंह; **भाषिक स्वरुप: संरचना और कार्य,** 2009 नवभारत प्रकाशन, डी-62 6, गली न. 1, अशोक नगर, दिल्ली
4. डॉ. रामगोपाल सिंह; **प्रशासनिक शब्दावली,** 2002 वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, पश्चिमी खंड- 7 रामकृष्णपुरम् नई दिल्ली- 110066

इकाई - 13

प्रशासनिक पत्राचार के विविध रूप एवं टिप्पणी लेखन

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 प्रशासकीय पत्रों के विविध रूप

13.2.1 आवेदन पत्र (Application)

13.2.2 प्रत्यावेदन-पत्र (Representations)

13.2.3 प्रतिवेदन (Reports)

13.2.4 पुनरावेदन (Appeal)

13.3 टिप्पणी लेखन

13.3.1 नेमी टिप्पणी

13.3.2 नियमित टिप्पणी

13.4 सारांश

13.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.6 सन्दर्भ ग्रंथ

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

- प्रशासकीय पत्रों के विविध रूपों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- टिप्पणी लेखन को समझ सकेंगे ।

13.1 प्रस्तावना

प्रशासकीय पत्र शासन की कार्यपद्धति या शासकीय कामकाज से ही सम्बन्धित होते हैं । कभी-कभी ये अशासकीय संस्थानों एवं व्यक्तियों आदि की और से भी तैयार किए जाते हैं । अपने रचना-विचार में ये पत्र कार्यालयीय पत्रों से किंचित् भिन्नता लिए रहते हैं । क्योंकि कार्यालयीय पत्रों में पत्रावली का सन्दर्भ, पत्र-संख्या आदि का तो उल्लेख होता ही है, पर उसमें शासकीय आदेश या राजाज्ञा का वह अंश नहीं होता जो शासन द्वारा कार्यालय के कामकाज विषयक पत्रों में निहित रहता है ।

प्रशासकीय पत्र ऐसे होते हैं जो सरकारी कार्यकलाप के सुचारु रूप से संचरण के लिए सरकारी कार्यालयों, मंत्रालयों, विविध समवायों के मध्य व्यवहारिक रूप में प्रयोग किए जाते हैं । प्रशासनिक पत्रों में पत्र उच्चाधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थों, अधीनस्थ कार्यालयों को अथवा अपने से उच्च अधिकारियों के लिए लिखे जाते हैं । जब उच्चाधिकारियों को पत्र लिखे जाते हैं, तब मंत्रालयों या उनसे निर्देशन पाने के लिए प्रयोग किए जाते हैं, परन्तु अधीनस्थ कार्यालयों

को निर्देश देने तथा आदेश पालनार्थ लिखे जाते हैं । लेकिन कुछ पत्र इन दोनों स्थितियों से भिन्न स्थितियों में भी लिखे जाते हैं । कभी वे अपनी माँग के लिए होते हैं, तो कभी शिकायत के रूप में भी होते हैं । आवेदन पत्र का स्वरूप व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक पत्रों से भिन्न होता है किन्तु व्यावसायिक पत्रों से कुछ साम्य रखता है । कार्यालयीय पत्र भी व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा व्यावसायिक पत्रों से भिन्न होते हैं, क्योंकि इनके द्वारा शासन विभिन्न गतिविधियों, आदेशों, सूचनाओं तथा निर्णयों की सूचनाएँ व्यक्ति एवं विभागों को देना है ।

13.2 प्रशासकीय पत्रों के विविध रूप

13.2.1 (क) आवेदन -पत्र (Application)

13.2.2 (ख) प्रत्यावेदन -पत्र (Representative)

13.2.3 (ग) प्रतिवेदन (Report)

13.2.4 (घ) पुनरावेदन (Appeat)

13.2.1 आवेदन पत्र (Application)

आवेदन पत्र व्यावहारिक पत्रों की श्रेणी में आता है, लेकिन इसका रचना-विधान अन्य व्यावहारिक पत्रों से भिन्नता लिए रहता है । इसका मूल कारण यह होता है कि पत्र लेखक तथा उद्दिष्ट अधिकारी के मध्य कोई विशेष सम्बन्ध न होने के कारण इस प्रकार के पत्रों में विनम्रता और औपचारिकता की अधिकता होती है ।

आवेदन पत्र के प्रकार :-

आवेदन विविध विषयों और विविध आवश्यकताओं के अनुरूप सदैव लिखे जाते रहते हैं । आवेदन पत्र के प्रमुख प्रकारों का उल्लेख निम्न लिखित प्रकार से हैं -

i. नियुक्ति हेतु आवेदन पत्र
ii. अवकाश हेतु आवेदन पत्र
iii. स्थानानान्तरण / पदोन्नति हेतु आवेदन पत्र
iv. अग्रिम धन / शिक्षा एवं चिकित्सा सुविधा हेतु आवेदन पत्र
v. शुल्क मुक्ति / अनुदान हेतु आवेदन पत्र

1. उदाहरण -

(क) नियुक्ति हेतु आवेदन पत्र सेवा में

सेवा मे,

प्राचार्य
आर्यकन्या महाविद्यालय
अल्मोडा(उ०प्र०)

विषय :- लिपिक पद हेतु आवेदन पत्र ।

सन्दर्भ - आपका विज्ञापन. नव भारत टाइम्स, दिनांक 24मई. 1983

महोदय

सन्दर्भगत विज्ञापन से मुझे विदित हुआ है कि आपके कार्यालय में एक लिपिक का स्थान रिक्त हुआ है । मैं उक्त पद के लिए अपना प्रार्थना-पत्र आपकी सेवा में प्रस्तुत करता हूँ।

मेरी शैक्षिक योग्यता एवं अनुभव निम्न प्रकार है -

1. मैने उ०प्र० माध्यमिक शिक्षा परिषद से हाई स्कूल परीक्षा वर्ष 1978 में द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की है ।
2. मैने उक्त परिषद की इण्टरमीडिएट परीक्षा वर्ष 1960 में द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की है ।
3. मैंने कुमाऊँ विश्वविद्यालय से बी०ए० की परीक्षा हिन्दी सामान्य, हिन्दी साहित्य, अंग्रेजी साहित्य और अर्थशास्त्र विषय लेकर वर्ष 1982 में द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण की है ।
4. मैंने रूबी कमर्शियल कॉलेज नैनीताल से हिन्दी टाईपिंग का एकवर्षीय कोर्स पूरा किया है तथा मेरी टाईपिंग की स्पीड 30 शब्द प्रति घण्टा है ।
5. मैं अध्ययन काल में ही सायंकाल पार्ट टाइम मे लिपिक का कार्य दो वर्ष से प्राइवेट संस्थान में करता रहा हूँ ।
6. मैं बीस वर्षीय स्वस्थ एवं सक्रिय युवक हूँ तथा फुटबाल और क्रिकेट का खिलाड़ी हूँ ।

उक्त शैक्षिक योग्यताओं एवं अनुभव आदि के प्रमाणपत्रों को प्रतियाँ संलग्न करते हुए मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आपके कार्यालय में उक्त पद पर सेवा करने का अवसर प्रदान करें । मुझे आशा ही नहीं विश्वास है कि मैं आपको अपने कार्य और व्यवहार से किसी असन्तोष का कारण नहीं होने दूँगा ।

उचित निर्णय की आशा के साथ

आपका विश्वासपात्र

(चन्द्रेश प्रकाश शर्मा)

संलग्न :- पाँच प्रमाण पत्रों की सत्यापित प्रतियाँ

दिनांक - 30 मई, 1983

उदाहरण दो -

प्राचार्य

सेठ जी०पी० पोदार कॉलेज

नवलगढ़ - 333042

विषय :- प्रवक्ता के लिए आवेदन पत्र

महोदय

आपके विज्ञापन हिन्दुस्तान टाइम्स दिनांक 1 अप्रैल, 1983 से मुझे ज्ञात हुआ है कि आपके कॉलेज में अर्थशास्त्र विषय के प्रवक्ता का पद रिक्त है ।

एक अभ्यर्थी के रूप में उक्त पद के लिए मैं अपना आवेदन पत्र प्रस्तुत कर रहा हूँ । मेरी शैक्षिक योग्यताएँ एवं कार्यानुभव सहित संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं-

1. नाम	:	सुधीर कुमार
2. पिता का नाम	:	श्री जगतनारायण
3. जन्म आयु	:	6 जून, 1960 बीस वर्ष (लगभग)
4. डाक का पता	:	सुधीर कुमार 24/6 बड़ा बाजार, बरेली (उ०प्र०)
5. शैक्षिक योग्यताएँ		(i) हाई स्कूल (उ०प्र० परिषद) 1976, प्रथम श्रेणी 615 प्रतिशत (ii) इण्टरमीडिएट (उ०प्र० परिषद) 1978 प्रथम श्रेणी 61 प्रतिशत (iii) बी०ए० (अंग्रेजी साहित्य, हिन्दी साहित्य एवं अर्थशास्त्र सहित)1980, द्वितीय श्रेणी 58 प्रतिशत (iv) (आगरा विश्वविद्यालय)एम०ए०(अर्थशास्त्र)ऐ1982,प्रथम श्रेणी 63 प्रतिशत
6. शोध	:	परीक्षा/परिणाम के पश्चात् मैं अर्थशास्त्र विषय में पी०एच०डी० उपाधि के लिए आगरा कॉलेज के प्रोफेसर डी. भट्टाचार्य के निर्देशन में शोध कार्यरत हूँ ।
7. अध्यापन अनुभव	:	मैं वर्तमान में राष्ट्रीय महाविद्यालय, बरहन, आगरा में जुलाई 1982 से अर्थशास्त्र के प्रवक्ता पद पर कार्यरत हूँ जहाँ स्नातक स्तर की कक्षाएँ संचालित होती है।
8. प्रकाशन	:	इकॉनामिक टाइम्स, योजना आदि में समय-समय पर अर्थशास्त्र विषयक निबन्ध प्रकाशित होते रहे हैं ।
9. शिक्षणेतर कार्यकलाप	:	अपने महाविद्यालय में अध्ययन काल में विभिन्न सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं एवं वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेता रहा हूँ तथा अखिल भारतीय नाटक प्रतियोगिता नैनीताल 1979 में सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार प्राप्त कर चुका हूँ । अखिल भारतीय वाद-विवाद प्रतियोगिता 1980 में पौद्दार महाविद्यालय से ही प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर चुका हूँ। इसके अतिरिक्त मैं बैडमिण्टन और टेबिल-टेनिस का कॉलेज इलैवन का प्रतिनिधित्व करता रहा हूँ ।
10. अन्य	:	मैं 23 वर्षीय स्वस्थ एवं सक्रिय कर्मशील युवक हूँ ।

मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि नियुक्ति होने पर मैं पूर्ण निष्ठा एवं परिश्रमपूर्वक कार्य करूँगा तथा मेरे अध्ययन एवं व्यवहार से आपको कभी शिकायत का अवसर प्राप्त नहीं होगा ।

प्रमाणपत्रों एवं प्रशंसापत्रों की सत्यापित प्रतिलिपियाँ संलग्न हैं ।

मुझे आशा ही नहीं विश्वास है कि आप एक बार मुझे कॉलेज में सेवा का अवसर अवश्य ही प्रदान करेंगे ।

संलग्न :- सत्यापित प्रमाणपत्रों की प्रतिलिपियाँ- 12

भवदीय

(हस्ताक्षर)
सुधीर कुमार

13.2.2 प्रत्यवेदन (Representation)

प्रत्यावेदन के समानान्तर अन्य शब्दों अभिवेदन, अभ्यावेदन का भी उल्लेख मिलता है । प्रत्यावेदन सरकारी कार्यालयों अथवा किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी कार्यालय अथवा अधिकारी, कर्मचारी द्वारा किए गए निर्णय, आरोप अथवा कार्य के विरूद्ध पुनर्विचार करने हेतु उस अधिकारी के उच्च पदस्थ अधिकारी को सम्बोधित करके लिखा जाता है ।

प्रत्यावेदन उस स्थिति में लिखा या दिया जाता है जब किसी अधिकारी, कर्मचारी या व्यक्ति के प्रति किसी प्रकार की कार्यवाही (चाहे वह अनुशासनात्मक ही क्यों न हो) के आदेश निर्गत हो जाते हैं । ऐसी स्थिति में अपने विरूद्ध निर्गत आदेश के निर्णयों, लगाए गए आरोपों तथा निर्दिष्ट दण्ड के सम्बन्ध में पुनर्विचार करने हेतु अपने उच्चाधिकारी से निवेदन किया जाता है ।

प्रत्यावेदन के प्रारूप में सप्रमाण और सतर्क अपना पक्ष प्रस्तुत किया जाता है । इस प्रकार प्रत्यावेदन के निम्नलिखित अंग होते हैं

(अ) आरम्भ	:	वस्तुस्थिति का उल्लेख
(आ) मध्य	:	तथ्यों के साक्ष्य में लगाए गए आरोपों / की गई कार्यवाही / निर्णय आदि का खण्डन और वैधानिक चुनौती ।
(इ) अन्त	:	वैधानिक संगति का उल्लेख
(ई) प्रार्थना	:	पुनर्विचार हेतु निवेदन
(उ) संलग्नक	:	पक्ष समर्थन हेतु सम्बन्धित प्रपत्रादि

आरम्भ में प्रारूपकार को की गई कार्यवाही अथवा वस्तुस्थिति का परिचय अथवा समुचित जानकारी सम्बोधित अधिकारी को देनी होती है । मध्य भाग में प्रारूपकार उन सभी तथ्यों विगत कार्यवाहियों या नियमों का उल्लेख करता है जो उसका पक्ष समर्थन करते हैं तथा कार्यवाही के असंगत या विधि के विरूद्ध होने के लिए चुनौती देता है । तीसरे भाग में अपनी चुनौती की पुष्टि में उन सभी संगत, नियम, परिनियमों, अधिनियमों तथा कानूनी निर्णयों का उल्लेख करता है जो उसके पक्ष का समर्थन करते हैं और अन्त में वह सभी तर्क संगत और विधिसंगत उल्लेखों के साथ उच्चाधिकारी से अपने प्रति की गई कार्यवाही अथवा निर्णय के विरूद्ध न्याय की माँग करता है तथा वैधानिक संगति का निरूपण करते हुए कार्यवाही के औचित्य का ध्यान दिलाकर पुनर्विचार करने का निवेदन करता है ।

प्रत्यावेदन का उदाहरण

सेवा में

_____ (पदाधिकारी का पदनाम)

_____ (विभाग का नाम)

_____(कार्यालयीय पता)

_____(स्थान एवं पिनकोड)

विषय _____

सन्दर्भ:_____ का आदेश पत्र -संख्या_____ दिनांक _____

मान्यवर महोदय,

सेवा में सविनय निवेदन है कि _____ के पत्रसंख्या _____ दिनांक _____ (जो संलग्नक_____पर है) का अवलोकन करें जिसमें मेरे विरूद्ध कहा गया है कि _____ इस सम्बन्ध में तथ्य मे है कि _____

1. _____
2. _____
3. _____

इसी सम्बन्ध में यह निवेदन भी है कि ऐसे ही एक मामले श्री _____ बनाम_____ में मान्य उच्च न्यायालय_____का निर्णय वाद संख्या _____में _____रहा है । इसी प्रकार_____- विभाग में श्री_____ के मामले में सरकार द्वारा निर्णय किया गया है कि _____है । संलग्नक संख्या _____द्रष्टव्य है ।

विश्वास है कि उक्त तथ्यों के प्रकाश में आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे तथा इस प्रत्यावेदन पर पुनर्विचार करके इस सम्बन्ध में उचित निर्णय लेकर अनुगृहीत करेंगे ।

संलग्नक : - चार

भवदीय

हस्ताक्षर_____

(नाम:_____)

स्थान : .....

पद का नाम_____

दिनांक : .....

पूरा पता_____

स्थान_____पिन_____

13.2.3 प्रतिवेदन (Report)

प्रतिवेदन का अंग्रेजी शब्द रिपोर्ट (Report) है तथा इसका प्रयोग कभी- कभी रिप्रिजेण्टेशन (Representation) के हिन्दी पर्याय के रूप में भी किया जाता है । पर अब

इसके लिए अभिवेदन या प्रत्यावेदन शब्द ही स्वीकार किए जा चुके हैं । भारत सरकार द्वारा पारिभाषिक शब्द संग्रह (1962) में यद्यपि उसका अर्थ रिप्रिजेण्टेशन का हिन्दी शब्द 'प्रतिवेदन' ही दिया गया है ।

प्रतिवेदन या रिपोर्ट सरकारी कार्यालयों, स्वायत्त संस्थानों, निगमों और निकायों में होने वाली भिन्न- भिन्न बैठकों की कार्यवाही एवं निर्णयों की सूचना को प्रसारित या प्रकाशित किये जाने हेतु तैयार किया जाता है । पर कभी-कभी ये प्रतिवेदन अपनी प्रकृति से दूसरे रूप में भी तैयार होते हैं या किए जाते हैं । अत: इसका स्वरूप निम्न रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

(i) वार्षिक या विवरणात्मक प्रतिवेदन

(ii) शिकायती प्रतिवेदन

(iii) गोपनीय प्रतिवेदन

सामान्य विवरणात्मक या वार्षिक प्रतिवेदन विभिन्न कार्यालयों, निकायों, निगमों या संस्थानों की विविध बैठकों की कार्यवाही का ऐसा लिखित रूप होता है जो 'कार्यवृत्त (मिनिट्स) न होकर भी निर्णय के रूप में कर्मचारियों को अवगत कराने के लिए तैयार किया जाता है । शिकायती प्रतिवेदन किसी राजाज्ञा, निर्णय अथवा कार्यालय आदेश के विरूद्ध किसी व्यक्ति, संस्थान के कुछ व्यक्तियों अथवा ट्रेड युनियनों को उनके अधिकारों पर होने वाले आघात के विरूद्ध लिखा या तैयार किया जाता है और उसके माध्यम से न्यायोचित माँग की जाती है तथा निर्णय के लिए निवेदन किया जाता है । गोपनीय प्रतिवेदन सरकारी कार्यालयों में सुधार लाने या व्यवस्था को सुचारू रूप से बनाए रखने के लिए अधीनस्थ कर्मचारियों एवं अधिकारियों के कार्य व्यवहार एवं चाल-चलन के सम्बन्ध में वित्तीय वर्ष की समाप्ति पर उच्चाधिकारियों को लिखा जाता है जिसमें किसी भी कर्मचारी या अधिकारी को वर्ष भर के कार्य कलाप और कार्यालय में किए गए उसके उचित एवं अनुचित व्यवहार का उल्लेख किया जाता है । यदि गोपनीय प्रतिवेदन में उसके कार्य-शैथिल्य या अकर्मण्यता का उल्लेख गम्भीर होता है तो उस कर्मचारी या अधिकारी की वार्षिक वेतनवृद्धि रोकने की संस्तुति भी की जा सकती है । पर ऐसे गोपनीय प्रतिवेदन की सूचना उच्चाधिकारी द्वारा सम्बन्धित कर्मचारी या अधिकारी को अवश्य दी जाती है । ऐसी स्थिति में वह 'शिकायती प्रतिवेदन' प्रेषित कर सकता है ।

13.2.4 पुनरावेदन पत्र (Appeal)

पुनरावेदन पत्र एक प्रकार से ऐसा आवेदन है जिसे पुन: अधिकारी के विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है । इसमें वस्तुस्थिति का यथार्थ एवं सटीक परिचय, उसकी प्रभावकारी स्थितियाँ, भावी सम्भावनाओं का उल्लेख करते हुए विचारणीय समस्या के निदान के लिए निवेदन किया जाता है।

अपील दो प्रकार की हो सकती है -

(अ) **व्यक्तिगत पुनरावेदन -** राज्य सरकार या किसी कार्यालय के वरिष्ठ अधिकारी को प्रस्तुत किया जाने वाला पुनरावेदन रूप में किसी कार्यरत या आदेशादि से प्रभावित व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाता है ।

(आ) **जन पुनरावेदन -** जनप्रतिनिधियों, किसी संस्था के कई सदस्यों द्वारा किसी राज्यादेश या सामाजिक-राजनैतिक-आर्थिक प्रशासनिक निर्णय से उत्पन्न असंगतियों से मुक्ति के लिए सामूहिक रूप में लिखित जनता के लिए विचारार्थ पुनरावेदन प्रस्तुत किया जाता है ।

सेवा में

कुलपति,
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर - 302004
-उचित माध्यम से-

विषय:- उचित विकल्प की सुविधा प्रदान करने हेतु पुनरावेदन ।

महोदय

सविनय निवेदन है कि मैं पत्राचार संस्थान, राजस्थान विश्वविद्यालय में एम०ए० हिन्दी(उत्तरार्ध) का छात्र हूँ । विश्वविद्यालय के परीक्षा विभाग के पंत्राक 141 / आईसीसी. / 82 के सन्दर्भ में निम्नलिखित तथ्य आपकी सेवा में विचारार्थ प्रस्तुत करता हूँ ।

1. पत्राचार पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विद्यार्थियों को पंचम, प्रश्नपत्र के लिए जो विकल्प दिए गए हैं, उनमें भाषा का विकल्प नहीं दिया गया है ।
2. तथ्य यह है कि निजी (Private) विद्यार्थियों या महिला विद्यार्थियों को इसमें भाषा का विकल्प लेने की छुट मिली हुई है ।
3. मैंने एम.ए पूर्वार्द्ध परीक्षा में भाषा विज्ञान सम्बन्धी प्रश्न-पत्र में अच्छे अंक (65%) प्राप्त करने पर यह भाषा विकल्प देने का अनुरोध किया था ।
4. पत्राचार के हिन्दी विभागाध्यक्ष ने अपने पत्रांक 334 / आईसीसी. / 81 द्वारा इस शर्त के साथ यह विकल्प देना स्वीकार किया था कि मुझे न तो इस विकल्प के लिए पाठ भेजे जाएंगे और न सम्पर्क कार्यक्रम की सुविधा दी जाएगी । विभागाध्यक्ष की इस शर्त को मैंने स्वीकार कर लिया था और तदनुसार अक्तूबर 81 में परीक्षा आवेदन-पत्र में भी यही विकल्प भरा था ।
5. पत्राचार संस्थान के पत्रांक 141 / आईसीसी. / 82, दिनांक 15 फरवरी, 82 द्वारा सूचित किया है कि विश्वविद्यालय के परीक्षा विभाग ने यह विकल्प स्वीकार नहीं किया है क्योंकि इसके अध्यापन की व्यवस्था पत्राचार संस्थान में नहीं हैं तथा संस्थान द्वारा आधारित विकल्पों में से ही किसी एक विकल्प को चुनने का निर्देश दिया है ।

मैंने अपने पत्र में यह अनुरोध विश्वविद्यालय के किया कि चूँकि मेरी परीक्षाएँ 16 मार्च, 1982 से प्रारम्भ हो रही है । अत: मेरे लिए इस समय विषय में परिवर्तन करके नये चार प्रश्न-पत्र तैयार करना असम्भव है । फिर इसमें मेरी कोई गलती नहीं है क्योंकि मुझे

हिन्दी के विभागाध्यक्ष द्वारा सशर्त यह विकल्प चुनने की अनुमति दी गई थी । अतएव मुझे भाषा विकल्प में ही परीक्षा के बैठने को अनुमती प्रदत्त करने हेतु मैं अपना पुनरावेदन प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

पत्राचार संस्थान के निदेशक एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष ने अपनी संस्तुतियों के साथ मेरी यह प्रार्थना परीक्षायोजक के पास सहानुभूतिपूर्वक विचार करने एवं अनुमती प्रदान करने के लिए भेज दी थी किन्तु उन्होंने अब आकर अनुमती देने से इन्कार कर दिया है ।

अत: मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस मामले में सहानुभूतिपूर्वक विचार करने तथा मुझे प्रार्थित विकल्प में ही परीक्षा देने की अनुमति के आदेश निर्गत करने की कृपा करे ताकि मैं बिना एक वर्ष की हानि उठाए परीक्षा में बैठ सकूं ।

भवदीय
(कमलेश कुमार)
ए.मए. हिन्दी (उत्तरार्द्ध)
अनुक्रमांक 16125
पुत्र डी. अरविन्द कुमार
गोपीनाथ जी के मन्दिर के पास
मण्डाला - 333701

दिनांक.....

जन पुनरावेदन (Public Appeal)

बन्धुओं!

नैनीताल की नैनी झील पर हमें खासा नाज है । इस मनोरम झील से हम विदेशी सैलानियों को भी लुभाते हैं । यह झील नहीं होती तो सम्मोहन आधा भी नहीं होता । लेकिन अब ये झील धीरे धीरे मर रही है । अपनी सुन्दरता खोकर मलबे और प्रदूषण का जमाव बनती जा रही है । इसके लिए ज्यादातर प्रकृति से आदमी की छेड़छाड़ ही जिम्मेदार हैं

झील के किनारे पर बने बेढंगे और सिनेमा के सेट जैसे होटलों के शहर नैनीताल में झील नहीं होती तो नैनीताल नहीं होता । लेकिन अब इस झील के पास आकर प्रकृति की सुन्दर छटा की बजाय दर्शकों का सामना गंधाते, गाढ़े हुए पानी से होता है । ताजा वैज्ञानिक अध्ययनों के मुताबिक नैनी झील में इतना ज्यादा प्रदूषण है कि यहाँ का पानी आदमी के पीने लायक नहीं रह गया है । गन्दगी से चलते इसकी मछलियों के मरने की खबरें भी आती रही हैं और यह भी देखने मे आया है कि झील में नहाने पर कभी-कभी बदन पर चकते हो जाते हैं । करीब दो साल पहले कुमाऊँ विश्वविद्यालय के डॉक्टर एस. एम. दास के जाँच दल ने कहा था कि मलबा जमा होने के कारण नैनी झील की पारदर्शिता घट कर महज 1.5 मीटर रह गई है और पानी गन्दल-हरा होने के साथ-साथ आक्सीजन की बेहद कमी है । पिछले 80 वर्षो में लगभग 15 फुट मलबे के जमाव और मेगनीश्यिम कोबाल्ट, सीसा, जस्ता वगैरह धातुओ की मौजूदगी ने इस झील को सबसे ज्यादा नुकसान पहुँचाया है । झील के लिए एक बड़ा खतरा उन 25-26

गन्दे नालों से है जो विभिन्न हिस्सों से झील में गिरते हैं । ध्यान देने योग्य यह है कि इसी झील का बीस लाख गैलन पानी नैनीताल के लोगों को पीने के काम आता है ।

झील को सुन्दर बनाने के उपाय भी कई वर्षों से किये जा रहे हैं । लेकिन उनका नतीजा स्तरीय बहसों और कागजी फैसलों से आगे नहीं बढ़ पाया । लगभग साढ़े नौ लाख रूपये की लागत से झील के किनारे दीवारें लगाने का काम शुरू हुआ, पर यह दीवार अभी तक अधूरी है ।

कुछ साल पहले नैनी झील का बड़ा हिस्सा जमीन धसकने से दब गया था । इस दुर्घटना में 150 जाने गई । इसके बाद से और लगातार गाद जमने के कारण झील उथली हो गई है । कोई 15 साल पहले यह झील 2 मीटर बारिश होने से लबालब हो उठती थी, पर आज डेढ़ मीटर से भी कम बारिश होने पर पूरी भर जाती है । यानी इस दौरान आधा मीटर तक मिट्टी की तह यहाँ जम गई है । मिट्टी के इस बढ़ते जमाव ने घासपात और पानी में होने वाली दूसरी वनस्पतियों के लिए उपजाऊ जगह का काम किया है । किसी जमाने की स्वच्छ निर्मल नैनीझील अब जमी मिट्टी के बोझ से दबी, शैवाल से घिरी गँदले जल का जमाव हो गई है ।

झील को गन्दे पानी से बचने के लिए कंक्रीट का बना, अँकूठी के आकार का एक 'ड्रेन' (निकास मार्ग) बनाने का सुझाव है । अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से भी सहायता का वादा है और वेनटीयर की भूमिगत मल निर्यात- सुरंग की योजना भी बनी है, जो मलमूत्र को झील में जाने से तो रोकेगी ही, उसे खाद मे भी बदल सकेगी । आज जरूरत इस बात की है कि नैनीझील को बचाने के लिए सरकारी कोशिशों का मुँह न देखा जाए, बल्कि जन आन्दोलन चलाए जाएँ जो इस झील के महत्व के प्रति लोगों को जागरूक कर सकें और सरकारों के आँख-कान भी खोल सकें ।

विनित

नैनीताल के नागरिक

1. _____

2. _____

3. _____

13.3 टिप्पणी लेखन

किसी भी पत्र, परिपत्र, सूचना अथवा प्रस्ताव आदि का प्रारूप तैयार करते समय उस पर पहले से अंकित टिप्पण तथा टिप्पणियों को ध्यान से रखा जाना है ।

टिप्पण का अर्थ है- टिप्पणी लिखने का कार्य । अंग्रेजी में इन्हें नोटिस हई (Noting) और नोट (Note) कहते हैं । टिप्पणी वह अभ्युक्त है जो किसी भी विचाराधीन विषय अथवा पत्र आदि के निस्तारण के लिए लिखी जाती है और टिप्पणी-टिप्पण लिखने की प्रक्रिया है । टिप्पणी के अर्थ में अंग्रेजी का एक अन्य शब्द रिमार्क भी प्रयुक्त होता है ।

टिप्पणी विचाराधीन विषय के निपटारों के लिए पूर्व संदर्भ, वर्तमान तथ्य और नियमाधीन सुझाव के साथ सहायक अथवा अनुभाग अधिकारी द्वारा लिखी जाती है । टिप्पणी में विचाराधीन विषय से संबद्ध सभी तथ्यों को स्पष्ट रूप से संक्षेप में अंकित किया जाता है ।

यदि पत्र आवेदन में कोई गलत तथ्य दिया गया है तो उस पर अभियुक्ति (Rework) लिख दिया जाता है । संदिग्ध विषय को स्पष्ट किया जाता है । उपलब्ध होने की स्थिति में मामले से संबद्ध पूर्व निर्णय, नियम, अधिनियम आदि का भी उल्लेख कर दिया जाता है । यदि फाइल किसी अन्य विभाग को भेजकर वहाँ से कोई राय अथवा सूचना प्राप्त की गई होती है, तो टिप्पणी में उसका भी उल्लेख कर दिया जाता है । विचाराधीन मामलों पर यदि किसी अधिकारी ने कोई आदेश दे रखा है तो टिप्पणी में उसे भी शामिल किया जाता है । टिप्पणी में विचाराधीन विषय का इतिहास और विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत कर दिए जाते हैं । इस तरह टिप्पणी में तटस्थ भाव से संपूर्ण विषय से संबद्ध सभी बातों का सार प्रस्तुत करके सुझाव दिया जाता है । इससे अधिकारी का कार्य सरल हो जाता है और शीघ्रता से निर्णय ले सकता है । टिप्पणी समाप्त होने पर टिप्पणकर्त्ता टिप्पणी के बाई ओर अपने आद्य हस्ताक्षर (Initial) करके दिनांक लिख देता है ।

टिप्पणियाँ कई प्रकार की होती है । इनके अधिक प्रचलित प्रकार हैं -

13.3.1 नेमी टिप्पणी (Routine Notes) -

जिस आवती (प्राप्त डाक) के मामलों की फाईल तैयार की जाती है और उन पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखी जाती हैं, वे नेमी टिप्पणियाँ कहलाती हैं । ये टिप्पणियाँ प्राय: सामाजिक महत्व की होती हैं ।

13.3.2 नियमित टिप्पणी (Regular Notes) -

किसी आवती अथवा शासकीय मामले में निर्णय पर पहुँचने के लिए अधिकारियों के बीच होने वाला विचार-विमर्श टिप्पणी रूप में फाईल में अंकित किया जाता है, उसे नियमित टिप्पणी कहते हैं । इस प्रकार की टिप्पणियाँ जब एक विभाग के भीतर विभिन्न अधिकारियों के बीच सीमित रहती है, तो वे अंतराविभागीय टिप्पणियाँ कहलाती है । और नियमों के स्पष्टीकरण, संबद्ध सूचना प्राप्ति अथवा परामर्श के दूसरे विभागों द्वारा लिखी गई टिप्पणियाँ अंतविभागीय टिप्पणियाँ कहलाती हैं ।

जो नियमित टिप्पणियाँ सहायक द्वारा अपने विभागीय उच्चाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, वे सहायक स्तर की टिप्पणियाँ कहलाती है ।

नियमित टिप्पणियों में अधिकारी स्तर की टिप्पणियाँ अत्यन्त महत्त्व की होती है । इनका संबंध प्रशासन व्यवस्था से होता है और इस प्रकार की टिप्पणियाँ समक्ष अधिकारी ही लिख सकते हैं । इन्हें स्वत: पूर्ण टिप्पणी (Self Contained Notes) कहते हैं ।

टिप्पणियों की भाषा स्पष्ट और संयत होती है । निष्पक्षता और तटस्थता और विचार प्रधान होना आवश्यक होता है । वह सदा अन्य पुरूष और कर्मणि प्रयोग में लिखी जाती है ।

किसी मामले के निपटारे के लिए जो अंतिम आलेखन तैयार किया जाता है, उसका आधार ये टिप्पणियाँ और अभियुक्तियाँ ही होती हैं । प्रारूपण या आलेखन वास्तव में टिप्पणी कार्य का ही परिणाम होता है । प्रारूपण एक कला भी है और शास्त्र भी जिसमें बहुत सतर्कता, सावधानी और यथा-तथ्य लेखन की आवश्यकता होती है । प्रारूप में दिन, संदर्भ, किसी तथ्य

अंकन में जरा-सी चूक या भूल के घातक और दूरगामी परिणाम होते हैं । प्रारूप मे विचाराधीन विषय के सभी मुद्दे बहुत संक्षेप में लिखे जाते हैं । विस्तारण-विषय के सभी पक्षों पर प्रकाश डाला जाता है, टिप्पणी के सभी पक्षों की पूर्वापर संदर्भ सहित स्थापना होती और विशेषण के द्वारा अकाट्य निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश की जाती है ।

13.4 सारांश

प्रशासकीय पत्र शासन की कार्यपद्धति या शासकीय कामकाज से ही सम्बन्धित होते हैं । प्रशासकीय पत्र अधिकारियों द्वारा उच्चाधिकारियों एक मंत्रालय से दूसरे मंत्रालयों को आवेदन पत्र के रूप में या प्रतिवेदन के रूप में अथवा प्रत्यावेदन (या अभिवेदन) के रूप में सुस्पष्ट, संयत, औपचारिक भाषा में तथ्यात्मक रूप में लिखे जाते हैं । ऐसे पत्रों का रचना विधान अन्य सामान्य पत्रों से भिन्न होता है और जिस अधिकारी को लिखा जाता है उससे कोई सम्बन्ध न होने के कारण शिष्टाचार के शब्द 'नमस्ते, 'नमस्कार', 'प्रणाम' आदि का उल्लेख नहीं किया जाता है । भारत सरकार की 'कार्यालय' पद्धति' के अनुसार 'टिप्पणियाँ' वे बाते है जो विचाराधीन कागजों के बारे में इसलिए लिखी जाती है कि मामले को निपटाने में सुविधा हो ।

13.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रशासकीय पत्र क्या होते हैं?
2. प्रशासकीय पत्र कितने प्रकार के होते हैं?
3. आवेदन पत्र में प्रकार तथा नियुक्ति के लिए लिपिक पद हेतु प्राचार्य को आवेदन पत्र लिखिए?
4. टिप्पणी लेखन को सविस्तार लिखिए?

13.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रमेश तरूण, **प्रयोजनमूलक हिन्दी,** नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
2. शिवनारायण चतुर्वेदी; **टिप्पणी-प्रारूप,** वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2003
3. भोलानाथ तिवारी, विजय कुल श्रेष्ठ, **पत्र-व्यवहार निर्देशिका,** वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2003

इकाई - 14

मसौदा लेखन, बैठक, प्रतिवेदन, संक्षेपण एवं पल्लवन

इकाई की रूप रेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 मसौदा लेखन : स्वरूप, प्रकृति

14.2.1 मसौदा तैयार कर्त्ता

14.2.2 मसौदा. रचना-विधि

14.2.3 मसौदा. भाषा, शैली

14.3 बैठक : स्वरूप, प्रयोजन, प्रकार

14.3.1 आयोजन

14.3.1.1 नियोजन पक्ष

14.3.1.2 आयोजन पक्ष

14.3.1.3 संयोजन पक्ष

14.4 प्रतिवेदन

14.4.1 उद्देश्य

14.4.2 प्रकार

14.4.3 लेखन की मुख्य बातें

14.4.4 आवश्यक तत्त्व

14.4.5 अंग

14.4.6 नमूना

14.5 संक्षेपण

14.5.1 तात्पर्य

14.5.2 संक्षेपण और सार लेखन में अंतर

14.5.3 संक्षेपण प्रकार

14.5.3.1 निरन्तर विधि से संक्षेपण

14.5.3.2 सारणी बद्ध संक्षेपण

14.5.4 संक्षेपण का महत्त्व

14.5.5 संक्षेपण की प्रक्रिया

14.5.6 संक्षेपण : विशेषताएँ

14.5.7 कार्यालय में संक्षेपण लेखन

14.5.8 संक्षेपण लेखन : महत्वपूर्ण बातें ।

14.5.9 संक्षेपण : उदाहरण
14.6 पल्लवन
14.6.1 तात्पर्य
14.6.2 पल्लवन का महत्त्व
14.6.3 पल्लवन प्रक्रिया
14.6.4 पल्लवन. विशेष उल्लेखनीय बातें
14.7 शब्दावली
14.8 सारांश
14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
14.10 संदर्भ गन्ध

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- मसौदा लेखन के स्वरूप, प्रकृति को जान सकेंगे ।
- पत्राचार के विभिन्न नमूनों के आधार पर मसौदा लेखन का कार्य कर सकेंगे ।
- सरकारी समितियों की बैठकों के आयोजन, नियोजन और संयोजन के बारे में जान सकेंगे।
- प्रतिवेदन के तात्पर्य, प्रकार से परिचित होकर प्रतिवेदन का प्रारूप तैयार करने की क्षमता प्राप्त कर सकेंगे ।
- संक्षेपण और पल्लवन का अर्थ, महत्त्व समझा सकेंगे ।
- संक्षेपण-पल्लवन की प्रक्रिया समझ कर अनुच्छेद का संक्षेपण और वाक्य-सूक्ति का भाव-पल्लवन कर सकेंगे ।

14.1 प्रस्तावना

आपने अपने मित्रों, परिचितों एवं सम्बन्धियों को पत्र लिखे ही होगे, छात्र-जीवन में छुट्टी के लिए प्रिंसिपल साहब को आवेदन-पत्र लिखा ही होगा । वैसे ही सरकारी विभागों में विभिन्न प्रशासनिक कार्यो के निपटान के लिए मसौदे तैयार होते हैं । सरकारी पत्राचार में मसौदा लेखन की एक निर्धारित प्रक्रिया होती है । सरकारी पत्राचार में प्रारूपण या मसौदा लेखन का अधिक महत्त्व है । उन्नत आलेख (Advanced Drafting) शासकीय एवं कार्यालयी पत्र व्यवहार का प्रमुख अंग है ।

14.2 मसौदा लेखन : स्वरूप, प्रकृति

अंग्रेजी के Drafting शब्द के तीन पर्याय माने जाते हैं -

प्रारूपण, आलेखन और मसौदा या मसविदा तैयार करना । किन्तु भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय द्वारा नियुक्त वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग केवल प्रारूपण एवं मसौदा लेखन को ही अधिकृत शब्द मानता प्रारूपण का सीधा-साधा अर्थ है-पत्राचार का पहला

और कच्चा रूप । मसौदा लेखन में से अभिप्राय उस प्रक्रिया से है। जिसमें से गुजर कर पत्र आदि को भेजने लायक बनाया जाता है । पत्र-प्राप्ति पर टिप्पणी कार्य खत्म होने के पश्चात् उसके आधार पर पत्रोत्तर का जो रूप तैयार किया जाता है, उसे प्रारूपण, मसौदा कहा जाता है।

सरकारी पत्राचार उचित अधिकारी द्वारा आदेश दिए जाने पर निर्मित होता है । ऐसे पत्रों में कार्यालय की मान-मर्यादा भी जुड़ी रहती है । इसलिए शासकीय पत्राचार तैयार करते समय संग्रहीत समस्त सामग्री, तथ्यों, पूर्व पत्रों का तथ्य परक, वैज्ञानिक विधि सम्मत मसविदा तैयार करना पड़ता है व अनुमोदनार्थ उच्च अधिकारियों के पास भेजना पड़ता है ।

14.2.1 मसौदा तैयार कर्त्ता

मसौदा सरकारी तंत्र के अंग रूप में निर्मित होता है । इसे निम्न में से कोई भी तैयार कर सकता है :-

1. कार्यालय सहायक (Assistant Officer)
2. वरिष्ठ लिपिक (U.D.C.)
3. अनुभाग अधिकारी (Section Officer)

14.2.2 मसौदा रचना-विधि

मसौदा लिखने का एक निश्चित क्रम है । उसका पालन करने पर निरपेक्ष मसौदा लिखा जाना सम्भव है ।

1. निर्धारित प्रपत्र (Forms) / अनुक्रम-पत्र (Note Sheet) का उपयोग ।
   सरकारी कार्यालय में प्रारूप का एक निश्चित प्रपत्र तैयार किया जाता है ।
2. पत्राचार के सही रूप का चयन -
   सरकारी कार्यालय में सभी सूचनाएँ एक ही प्रकार से नहीं भेजी जाती । विभिन्न प्रकार की सूचनाओं के संप्रेषण के लिए पृथक्-पृथक् रचना रूप होते हैं, यथा-सरकारी पत्र, अर्द्धसरकारी पत्र, पृष्ठांकन अनुस्मारक, ज्ञापन आदि ।
3. हाशिया छोड़ना -
   पत्राचार के उपर्युक्त रूप-चयन के बाद प्रारूपण का कार्य प्रारम्भ होता है । अनुक्रम पत्र के मध्य में दोनो ओर काफी हाशिया छोडकर लिखा जाता है ताकि टीप लिखने व संशोधन के लिए स्थान रहे ।
4. लेखन -
   1. **संख्या -** सबसे पहले पृष्ठ के मध्य भाग में कार्यालय की विशेष जावक संख्या (Issue Number) लिखी जाती है ।
   2. **संस्थान का नाम -** संख्या के ठीक एकदम नीचे मध्य में सरकार, मंत्रालय, विभाग और निगम का उल्लेख होता है ।
   3. **प्रेषक-उल्लेख -** बाँयी और क्रमश: पंक्तियों में प्रेषक नाम, पद, विभाग, सरकार का लेखन होगा ।

4. **प्रेषिती उल्लेख -** बाद में सेवा में लिखकर पाने वाले का नाम, पद व पता लिखा जाता

5. **स्थान-तिथि -** प्रेषिति का उल्लेख होने के बाद दाँयी और पहले स्थान, फिर तिथि लिखी जाती है । तिथि सदैव पहले शक संवत् में व बाद में ईस्वी सन् में लिखी जाती

6. **विषय -** संबोधन से पहले विषय लिखकर लगाया जाता है व संक्षेप में विषयोल्लेख किया जाता है ।

7. **संदर्भ -**पत्राचार लम्बे समय से चल रहा हो तो संदर्भ दिया जाना चाहिए ।

8. **सम्बोधन -** चूँकि सरकारी पत्राचार वैयक्तिक नहीं होते । अत: उनमें सम्बोधनों की विविधता नहीं होती । महोदय / महोदया से काम चल सकता है ।

9. आगे के मुख्य भाग मे विषयवस्तु को तीन भागों-सन्दर्भ विषय स्थापन व निष्कर्ष में व्यक्त किया जाता है ।

10. **स्वनिर्देश -** अंत मे दाँयी ओर भवदीय / भवदीया आपका (SUBSCRIPTION) स्वनिर्देश रहता है । अनौपचारिक एवं अन्तर पत्राचार मे स्वनिर्देश नहीं रहता है ।

11. **हस्ताक्षर -** स्वनिर्देश के ठीक नीचे हस्ताक्षर होने के उपरांत ही पत्र अधिकृत बनता है । जो प्रतियाँ बाहर भेजी जाती हैं, उन पर पूरे हस्ताक्षर एवं कार्यालय प्रति पर संक्षिप्त हस्ताक्षर होते हैं।

12. **पद नाम -** हस्ताक्षर के नीचे पद लिखा जाता है । यदि हस्ताक्षर करने वाला अपने से उच्च अधिकारी के लिए हस्ताक्षर कर रहा है तो उसे "कृते" शब्द लिखकर हस्ताक्षर करने चाहिए ।

13. संलग्नक पत्र के एकदम नीचे संलग्न (Enclosures) शीर्षक देकर जो पत्र, कागजात परिपत्र साथ मे भेजे जाते है उनकी संख्या व सन्दर्भ लिखे जाते हैं ।

14. **पृष्ठांकन -** पृष्ठांकन सदैव पत्राचार की समाप्ति के बाद आरम्भ होता है । 'द्य' अलग भी हो सकता है । पत्र समाप्ति होने के बाद थोड़ा सा स्थान छोड़ते हुए बाँयी ओर संख्या, दाँयी ओर तिथि लिखते हैं । अगली पंक्ति में बाँयी ओर को 'प्रतिलिपि प्रेषित लिखकर सम्बन्धित व्यक्तियों के नाम, पद आदि लिखकर अन्त मे दांयी ओर हस्ताक्षर एवं पद संज्ञा लिख देते हैं ।

15. महत्त्वपूर्ण बाते :-

(क) आवश्यक मामलों में यह लिख देना चाहिए कि सम्बन्धित अधिकारी / विभाग / मंत्रालय सरकार से उस पत्र की उत्तर की अपेक्षा किस तारीख तक की जा रही है ।

(ख) टंकित प्रतियों को पांडु लिपि से मिला लिया जाना चाहिए ।

(ग) पत्र की किसी भी प्रकार की काट-छाँट होने पर अधिकारी उस पर आद्य अक्षर (Initial) करे । जो पत्र डाक के अलावा उसी दिन तुरंत या अविलम्ब भेजा

जाना है उस पर आज ही प्रेषित करे (Must Out Today) दूत या चपरासी द्वारा (By Messangers / Peon) अविलंब कार्यवाही करे (For Immediate Action), अत्यावश्यक (Most Important) व तत्काल (Urgent) लिखना चाहिए ।

(घ) प्रारूप तैयार होने के उपरांत हस्तलिखित प्रति सम्बद्ध अधिकारी के पास अनुमोदनार्थ भेजते समय "अनुमोदनार्थ प्रारूप' (Draft For Approval orD.F.A) लिखा जाता है ।

14.2.3 - मसौदा : भाषा, शैली

अभी आपने मसौदा-लेखन के स्वरूप और लेखन की महत्वपूर्ण बातों की -जानकारी प्राप्त की । यहाँ हम प्रयुक्त होने वाली भाषा और शैली की चर्चा करेंगें ।

शब्दावली :- कार्यालयी हिन्दी एक प्रयुक्ति है । इसकी अपनी एक विशिष्ट शब्दावली है, जिनका प्रयोग कार्यालयी सन्दर्भ में होता है । निम्न वाक्यांश प्रयुक्त किए जाते रहे हैं :-

- पत्र का मसौदा अनुमोदन के लिए प्रस्तुत है ।
- स्वच्छ-पत्र हस्ताक्षर के लिए प्रस्तुत है ।
- आवतियों को डाकस्तर पर अवलोकन के लिए भेजें ।
- सम्बन्धित कागज-पत्रों के साथ मसौदा तैयार प्रस्तुत किया जाए ।

मसौदा लेखन मे मसौदा, अनुमोदन, आवती डाकस्तर, अवलोकन, कागज-पत्र कार्यालय ज्ञापन, प्रतिसूचना, अनुमति आदि तकनीकी शब्दों का प्रयोग कार्यालयी सन्दर्भ में किया जाता है । चूँकि शब्दावली का स्रोत महत्त्वपूर्ण नहीं होता । इसलिए संस्कृत, अंग्रेजी आदि की मिश्रित शब्दावली का प्रयोग किया जा सकता है । कर्मवाच्योन का प्रयोग :- चूँकि कार्यालयी हिन्दी में वाक्य प्रयोग व्यक्ति निरपेक्ष होता है, निर्णय लेने का दायित्व व्यक्ति का नहीं, तन्त्र का होता है, अत: वाक्य रचना में कर्म की प्रधानता होती है । इसलिए वाक्यों में कर्मवाव्यों का ही प्रयोग होता है । यथा- श्रीमती रंजना को परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाती है ।

शैली -कार्यालयी हिन्दी का प्रथम कार्य सूचनाओं का आदान-प्रदान है, फलत: इसका भाषिक स्वरूप सूचना प्रधान और औपचारिक होता है । वर्तमान में दो कार्यालयी शैलियों का प्रयोग किया जाता है -

1. संस्कृतनिष्ठ हिन्दी (स्वतंत्रता उपरांत तकनीकी शब्दावली से संयुक्त)
2. उर्दूनिष्ठ हिन्दी (अरबी-फारसी परंपरा से प्राप्त) हालाँकि दोनों भाषा रूपों का आधारभूत व्याकरण एक है, परन्तु शब्दावली भिन्न-भिन्न है ।

14.3 बैठक : स्वरूप, प्रयोजन, प्रकार

हम भली-भाँति जानते हैं कि सरकारी और गैर-सरकारी कार्यालयों में किसी भी गम्भीर विषय या समस्या पर गहन विचार-विमर्श करके अन्तिम निर्णय तक पहुँचने के लिए विभिन्न बैठकों का आयोजन, गठन किया जाता है । बैठक में सम्बन्धित विषय के विभिन्न पक्षों पर

विस्तृत चर्चा की जाती है और अन्त में सम्बन्धित सुझावों एवं प्रस्तावों को ध्यान में रखकर उपस्थित सदस्यों द्वारा सामूहिक निर्णय लिया जाता है ।

वस्तुत: समितियों के गठन से किसी भी विषय या समस्या पर गम्भीर गहन विचार-विमर्श हो सकता है एवं सर्वमान्य, निरपेक्ष निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है । सामूहिक निर्णय से वैयक्तिक पक्षपात की सम्भावना कम हो जाती है और व्यक्ति-विशेष के अधिकारों के दुरूपयोग की आशंका भी न्यून हो जाती है । गठित समितियों के लोग निश्चित समय पर एक साथ बैठकर विषय के प्रत्येक पक्ष पर वृहद चर्चा करते हैं एवं बाद में निर्णय लेते हैं ।

सरकारी विभागों में विभागों उपक्रमों में विशेषज्ञ समिति, सलाहकार समितियाँ, कार्यान्वयन समितियों, चयन, समितियों, विभागीय, पदोन्नति समितियाँ होती हैं, जो अपने-अपने विषयों के लिए गठित की जाती हैं । इन समितियों में कई सदस्य मनोनीत किए जाते हैं । इनमें एक अध्यक्ष और एक सचिव तो होता ही है । किसी भी समिति में न्यूनतम तीन सदस्यों का मनोनयन अनिवार्य होता है ताकि निर्णय लेने में दुविधा न हो । सरकारी समितियों के गठन की घोषणा भारत सरकार या राज्य सरकार के राजपत्र में प्रकाशित संकल्प द्वारा की जाती है । गैर-सरकारी समितियों की घोषणा संस्था सामान्य सूचना द्वारा करते हैं ।

14.3.1 बैठकों का आयोजन -

गठित समितियों के आयोजन की जब कभी आवश्यकता होती है तब-तब सम्बन्धित अधिकारियों के मध्य विचार-विमर्श होता है । यह विचार-विमर्श बैठक आयोजन की तिथि, विषय को लेकर होता है । इसमें कई बार बैठक की अनिवार्यता एवं आवश्यकता को ध्यान में रखकर टिप्पणी लिखकर उच्चाधिकारियों को वास्ते अनुमोदन के लिए भेजा जाता है । उच्चाधिकारियों से अनुमोदन प्राप्त होते ही बैठक आयोजन की तैयारी प्रारंभ की जाती है । बैठक में आयोजन के तीन पक्ष होते हैं :-

1. नियोजन
2. आयोजन
3. संयोजन

14.3.1.1 नियोजन पक्ष

किसी भी समस्या पर विचार-विनिमय करते और निर्णय लेने के लिए जब किसी समिति का गठन किया जाता है तब सम्बन्धित समिति के सदस्यों का विधिवत् नामांकन, मनोनयन या चयन किया जाता है । साथ ही साथ समिति का विषय-क्षेत्र भी निर्धारित किया जाता है कि निर्धारित बैठक में किस-किस विषय पर चर्चा की जानी है । इसके उपरांत मनोनीत सदस्यों से पत्र- व्यवहार कर समिति की सदस्यता-स्वीकृति हेतु अनुरोध किया जाता है ।

जब सभी सदस्यों की स्वीकृति आ जाती है, तब बैठक की तारीख निर्धारित की जाती है । बाहर से आने-वाले पदाधिकारियों की सुविधा का ध्यान रखा जाता है । कोशिश यही की जाती है कि तारीख सभी के लिए सुविधाजनक हो । इसके बाद कार्यसूची निर्मित की जाती है ।

इसमें विचारणीय विषयों को टंकित या लिखा जाता है । कार्यसूची बनाते समय अध्यक्ष एवं सचिव का पूर्वानुमोदन आवश्यक होता हैं । इसका लाभ यह है कि सदस्य होने वाली बैठक में विचारणीय क्षेत्रों, विषय पर अपना मत निर्धारित कर लें, चिन्तन कर लें ताकि चर्चा में कोई कठिनाई न हो । इसके अतिरिक्त अन्य कोई सूचना भी सदस्यों को प्रेषित करनी हो तो सम्बन्धित सामग्री सदस्यों को प्रेषित कर दी जाती है ।

14.3.1.2 आयोजन पक्ष -

बैठक के नियोजन को असली जामा पहनाने से पूर्व आयोजन पक्ष को सुदृढ़ बनाना होता है । यह एक प्रकार का प्रशासनिक एवं व्यवस्थापक कार्य है । सबसे पहले बैठक कक्ष की व्यवस्था की जाती है । कक्ष समिति- सदस्यों के बैठने की दृष्टि से व्यवस्थित एवं पर्याप्त होना चाहिए । इसमें भी अध्यक्ष एवं समिति-सचिव के पद स्थान निर्धारित किए जाते हैं । कक्ष बड़ा हो सदस्य अधिक हों तो सुश्राव्यता के लिए माईक की व्यवस्था की जाती प्रत्येक सदस्य की सीट पर लेखन सामग्री यथा-सम्बन्धित कागज-पत्र, पेड, पेन्सिल, पेन आदि को फाईल में रखा जाता है, ताकि सदस्यों को यदि कुछ लिखना हो तो उन्हें असुविधा न हो ।

बाहर से आने वाले अतिथियों के ठहरने का प्रबन्ध अतिथिगृहों में किया जाता है । अतिथि -गृह से बैठक स्थल तक लाने-ले जाने का प्रबन्ध भी किया जा सकता है ।

बैठक के दौरान जलपान एवं बैठक उपरांत मध्याह्न का भोजन (लंच) भी सुविधानुसार कराया जा सकता बाहर से आए हुए सदस्यों को यात्रा-भत्ता आदि बिलों का भूगतान कराने के लिए लेखा अनुभाग को भी सूचित किया जाता है । साथ ही, आवश्यकता पड़ने पर आशुलिपिक या टेपरिकॉर्डर की भी व्यवस्था की जा सकती है ।

14.3.1.3 संयोजन पक्ष -

समिति का सचिव सामान्यत: बैठक का संयोजन करता है । बैठक की कार्यवाही प्रारम्भ होते ही सचिव सदस्यों का स्वागत करता है । वह प्रारम्भ में ही बैठक की आवश्यकता, विचारणीय विषयों का संक्षिप्त परिचय देता है । तदुपरांत कार्यवाही प्रारम्भ हो जाती है । कार्यसूची में दिए विषयों को चर्चा के लिए क्रमश: प्रस्तुत किया जाता है । चर्चा क्रम में उभरे बिन्दुओं, सुझावों को सचिव नोट करता जाता है ।

कार्यसूची में दर्शाए विषयों पर चर्चा समाप्त होने के उपरांत यदि कोई सदस्य अन्य विषय पर बहस करना चाहता है तो उसे अध्यक्ष से अनुमति लेनी पड़ती है ।

अन्त में अध्यक्ष महोदय अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में चर्चा में आए बिन्दुओं को संक्षिप्ति देता हुआ आवश्यक मुद्दों पर अपनी राय देता है और कभी-कभी अपने प्रस्ताव भी प्रस्तुत करता है । अंत में सचिव द्‌वारा धन्यवाद ज्ञापन से ही बैठक समाप्त हो जाती है ।

बैठक की समाप्ति के उपरांत बैठक की कार्यवाही का कार्यवृत्त-प्रारूप तैयार किया जाता है । बैठक में उठाए गए विषयों के निर्णयों को संक्षिप्त रूप दिया जाता है । इसका अध्यक्ष द्‌वारा अनुमोदन किया जाता है और सचिव एवं अध्यक्ष के हस्ताक्षर बाद कार्यवृत्त की एक-एक प्रति बैठक में पधारे सदस्यों को भेज दी जाती है ।

14.4 प्रतिवेदन

प्रतिवेदन शब्द अंग्रेजी के "रिपोर्ट" शब्द का हिन्दी रूपांतरण है । प्रशासनिक एवं तकनीकी आयोग "रिपोर्ट" के लिए "प्रतिवेदन" शब्द को ही मानक मानता है । पत्रकारिता में "रिपोर्टिग" और "प्रतिवेदन" दोनों शब्दों का प्रयोग होता रहता है । साहित्य में "रिपोर्ट" के कलात्मक और सर्जनात्मक रूप को "रिपोर्ताज" कहा जाता है । वस्तुत: यह शब्द "फ्रेंच" भाषा से लिया गया है । अंग्रेजी शब्द कोश में रिपोर्ट के निम्न अर्थ दर्शाए हैं:-

To Bring back, as an answer , news or account of anything , to give an account of specially a formal.

अर्थात् उत्तर के रूप में कोई समाचार या वृत्तान्त लाना, कोई औपचारिक, आधिकारिक या मँगवाई गई रिपोर्ट । 'वृहद् हिन्दी कोष' में "रिपोर्ट" के निम्न अर्थ दिए हैं-सूचनार्थ घटना-विशेष का विस्तृत वर्णन, प्रतिवेदन, कार्य का विवरण एवं ज्ञातव्य बातों का विवरण ।

अर्थात प्रतिवेदन एक प्रकार का लिखित विवरण है, जिसमें किसी कार्य या जाँच के विविध तथ्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता है ।

14.4.1 उद्देश्य

एक समय था जब व्यक्ति का जीवन और कार्य एक स्थान और एक क्षेत्र तक सीमित था । लेकिन ज्ञान-विज्ञान के आविष्कारों, प्रचार-माध्यमों के अभूतपूर्व विकास, कारोबार, व्यवसाय की जटिलताओं ने बैंकों, वित्तीय संस्थानों, कम्पनियों का आविर्भाव कराया । आज व्यापार एवं सम्बन्ध सुदृढ़ तभी हो सकते हैं जब व्यक्ति सारे वैश्विक संस्थाओं से अद्यतन रह सके । इसके लिए रिपोर्ट ही एकमात्र सहारा है । आज जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है, जहाँ रिपोर्ट का प्रचलन न हो ।

इस प्रतिवेदन का प्रयोजन उन लोगों को किसी भी कार्य या विषय के बारे में यथावश्यक सूचना देना है जो उससे सम्बन्धित तो है किन्तु उसे सभी तथ्यों की जानकारी नहीं है । इसमें किसी भी जाँच, अनुसंधान के निष्कर्षो की औपचारिक जानकारी होती है । ये प्रतिवेदन किसी भी घटना, समारोह, उत्सव, संगोष्ठी, उद्घाटन, सभा, जुलूस, बैठक आदि के बारे में भी लिखे जा सकते हैं । इसमें परिणामों के अलावा सुझाव एवं स्तुतियां भी दी जा सकती हैं । प्रतिवेदन सरकारी, गैर सरकारी सभी संस्थाओं की स्थिति के बारे में लिखे जाते हैं । बैठक का कार्यवृत्त भी एक प्रकार का प्रतिवेदन ही होता है ।

आज के वैश्विक भूमण्डलीकरण की गला-काट प्रतिस्पर्धी युग में किसी व्यवसाय को प्रारम्भ करने से पूर्व यह जानकारी अपरिहार्य हो जाती है कि यह कार्य प्रारम्भ करना शुभ होगा या नहीं । इस सम्बन्ध में बाजार की स्थिति का सम्यक अध्ययन प्रतिवेदन द्वारा ही सम्भव है । इसमें विभिन्न ज्ञात-अज्ञात तथ्यों की जाँच, सर्वेक्षण, अन्वेक्षण, साक्षात्कार, विश्लेषण आदि द्वारा निष्कर्षो को प्रमाणित किया जाता है ।

14.4.2 प्रकार

प्रतिवेदन के विषय असंख्य हैं । ये प्रतिवेदन किसी व्यक्ति समिति या आयोग द्वारा लिखे जाते हैं । प्रतिवेदन का वर्गीकरण निम्न आधारों से किया जाता है ।

1. अवधि :
   1. आवधिक रिर्पोट यथा- दैनिक, साप्ताहिक, मासिक ।
   2. विशेष अवसर या स्थिति से सम्बद्ध होती है ।
2. उद्भव-स्थान :-

   रिपोर्ट उद्भव-स्थान के आधार पर सरकारी, गैर-सरकारी, सार्वजनिक, प्राधिकृत स्वैच्छिक आदि भेद किए जा सकते हैं ।
3. कार्य-

   कुछ रिपोर्ट सूचनात्मक, सिफारिशी, विश्लेषणात्मक होती हैं ।
4. विषय :-

   लेखा, निरीक्षण, कार्मिक, आर्थिक, विज्ञापन, सुरक्षा, साख, उत्पादन, विपणन, व्यापार, बैंकिंग आदि विभागों में रिपोर्ट इसके अन्तर्गत आती है ।
5. क्षेत्र / अंचल :-

   प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से बम्बई-कोलकता, उत्तर भारत आदि अंचलो की रिपोर्ट भी उपयोगी बन जाती हैं ।
6. बाह्राकृति :-

   ज्ञापन, पत्र-शैली, मुद्रित, औपचारिक आदि रिपोर्ट ।
7. मानकीकृत रूप :

   सांविधिक रिपोर्ट-लेखा परीक्षक की रिपोर्ट, निरीक्षक रिपोर्ट, निदेशक रिपोर्ट आदि ।
8. लक्ष्य -

   ऊर्ध्वमुखी-वरिष्ठ अधिकारियों को प्रस्तुत ।

   अधोमुखी-संस्था अध्यक्ष द्वारा ग्राहकों-शेयर धारियों को प्रेषित रिपोर्ट ।

उक्त आधारों की पृष्ठभूमि में सुविधा की दृष्टि से प्रतिवेदन के दो रूप माने जाते हैं :-

1. औपचारिक
2. अनौपचारिक

औपचारिक प्रतिवेदन उसे कहते हैं, जौ सरकार या किसी संस्था या विशिष्ट अधिकारी के आदेशानुसार किसी कार्य-विशेष के बारे में तैयार किया जाता है । इसमें निष्कर्षो के साथ-साथ सुझाव एवं स्तुतियाँ भी दी जाती हैं । इसके निम्न रूप देखने में आते हैं-समिति का प्रतिवेदन, आयोग का प्रतिवेदन-विभागीय प्रतिवेदन, आवधिक प्रतिवेदन, विशेषज्ञ का प्रतिवेदन, संगोष्ठी का प्रतिवेदन, सभा का प्रतिवेदन, वित्तीय प्रतिवेदन, निदेशकों का प्रतिवेदन ।

अनौपचारिक प्रतिवेदन उसे कहते है जो एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्तियों के पास भेजे जाने वाले पत्रों की भाँति निर्मित किए जाते है । इसमें लेखन के कोई निश्चित नियम नहीं होते । इस प्रकार के प्रतिवेदन निम्न रूप से हैं -

1. आवधिक प्रतिवेदन - वार्षिक त्रैमासिक, मासिक ।
2. संस्था द्वारा प्रस्तुत प्रगति विवरण
3. जाँच समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन ।
4. संगोष्ठी / सम्मेलन का प्रतिवेदन ।
5. व्यावसायिक प्रतिवेदन ।

14.4.3 प्रतिवेदन लेखन की मुख्य बातें

चूँकि प्रतिवेदन किसी भी संस्था या कार्य का निरपेक्ष आईना होता है । अत: प्रतिवेदक को इसकी पूरी योजना बनानी होती है । प्रतिवेदन लेखन को निम्न आरेख से जाना जा सकता है :-

उद्देश्य निर्धारण:- प्रारम्भिक रूपरेखा का निर्माण
सभी महत्त्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी
पुराने प्रतिवेदनों, फाइलों, नियम, पुस्तकों, प्रपत्रों द्वारा सूचना संग्रहण
सर्वेक्षण, साक्षात्कार द्वारा आँकडों का एकत्रीकरण ।
एकत्रित तथ्यों का वर्गीकरण, सारणीयन, विश्लेषण
निष्कर्षो एवं सुझावों की रूपरेखा ।
कच्चा प्रतिवेदन निर्माण
सदस्यों द्वारा अन्तिम विचार-विमर्श
संशोधन एवं परिमार्जन
टंकण कराना, हस्ताक्षर करना, प्रस्तुत करना ।

प्रतिवेदन स्वत: स्पष्ट एवं स्वत: पूर्ण होना चाहिए । इसमें संक्षिप्तता का ध्यान रखा जाना चाहिए । महत्त्वपूर्ण तथ्य, वो भी सत्य, विश्वसनीय, पूरे हों, उन्हें क्रमबद्ध सतर्क प्रस्तुत किए जाएँ । बात की पुष्टि में आंकड़े व तालिकाएँ भी दी जानी चाहिए । प्रतिवेदन की भाषा सरल, स्पष्ट व निर्वैयक्तिक होनी चाहिए । साथ ही लाक्षणिक भाषा एवं तकनीकी शब्दों से बचना चाहिए।

यद्यपि प्रतिवेदन लेखन के निश्चित नियम तो नहीं है किन्तु अच्छे प्रतिवेदन में निम्न बातों का ध्यान रखा जा सकता है :-

1. प्रारम्भ में विषय प्रतिपादक शीर्षक दिया जाना चाहिए ।
2. प्रतिवेदन के वृहद् होने पर अध्यायों में विभक्त किया जा सकता है ।
3. प्रतिवेदन मौलिक, शोधपरक हो तो उपयोगी ग्रंथों, पाण्डुलिपियों की सूचना संदर्भरूप में दी जा सकती है ।

4. प्रतिवेदन के काफी बड़ा हो जाने पर अन्त में आवश्यक सुझाव देते हुए उसका सारांश भी दिया जा सकता है ।
5. प्रतिवेदन के अन्त में प्रतिवेदक के हस्ताक्षर अवश्य होने चाहिए ।

14.4.4 आवश्यक तत्व

संस्थाओं के स्वरूप और उद्देश्य की भिन्नता के अनुसार प्रतिवेदन के अनेक रूप हो सकते हैं किन्तु उनमे मूल तत्त्व एक समान ही रहते है :

1. स्पष्टता
2. संक्षिप्तता
3. शुद्धता
4. संपूर्णता
5. रोचकता
6. निवैयक्तिकता

1. **स्पष्टता :-** स्पष्टता का तात्पर्य यह है कि आपने जिस उद्देश्य के विषय का निरूपण किया है उस उद्देश्य की पूर्ति पाठक के पास पहुँचने के बाद हो जानी चाहिए । वस्तुत: स्पष्ट चिंतन के बाद ही स्पष्ट लेखन का आविर्भाव होता है तभी भाषा का सरल स्पष्ट रूप तभी सम्भव बनेगा जब विचार धारा व्यवस्थित तार्किक श्रृंखला पर आधारित हो ।
2. **संक्षिप्तता -** संक्षिप्तता से तात्पर्य है केवल विषय-वस्तु या प्रासंगिक बातों का समावेश । इसमे आवश्यक विवरण एवं ब्यौरों का विशेष स्थान है । विषय से सम्बद्ध आवश्यक बात छूटनी नहीं चाहिए ।
3. **शुद्धता -** प्रतिवेदन में तथ्यों की शुद्धता अत्यंत आवश्यक है । इसके अभाव मे गलत निष्कर्ष या निर्णय लिए जाने की पूरी संभावना बनी रहेगी । एक पहलू यह है कि जिस विषय पर आपको प्रतिवेदन प्रस्तुत करना है, उससे सम्बन्धित तथ्यों की आपको पूरी जानकारी होनी चाहिए । अन्यथा जानकारी के अभाव में जो प्रतिवेदन बनेगा वह भ्रामक बनेगा ।
4. **संपूर्णता -** सम्पूर्णता से तात्पर्य विषय की सम्पूर्ण जानकारी ही अभिप्रेत है । प्रतिवेदन ऐसा होना चाहिए जो विषय और वस्तुस्थिति का समग्रचित्र प्रस्तुत करने मे समर्थ हो । प्रतिवेदन पाठकों की समस्त संभावित जिज्ञासाओं को शांत करने वाला हो ।
5. **रोचकता -** प्रतिवेदन में रोचकता की अपेक्षा रहती है । यह पाठकों का ध्यानाकर्षित करने वाली है ।

   रोचकता लाने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए :-

   – पाठक की जानकारी का स्तर
   – पाठक के अनुरूप भाषा का चयन -
   – पुनरावृत्ति का अभाव - भाषा में प्रवाह

निर्वैयक्तिकता :- प्रतिवेदन अन्य पुरूष शैली में लिखा जाता है । प्रतिवेदन के स्वयं के आग्रह, मान्यताओं से प्रतिवेदन प्रभावित नही होना चाहिए तभी निरपेक्षता एवं प्रमाणिकता आ सकती है।

14.4.5 प्रतिवेदन : अंग -

प्रतिवेदन लेखक को प्रतिवेदन लिखने से पूर्व उसका एक ढाँचा बना लेना चाहिए । यही है प्रतिवेदन का आयोजन । प्रतिवेदन तैयार करते समय निम्न अंग ध्यान में रहने चाहिए :-

1. **प्राधिकार :-** उस आदेश, अनुदेशन का उल्लेख जिसके तहत प्रतिवेदन तैयार किया जा रहा है ।
2. **विचारणीय विषय :-** इसके अन्तर्गत प्रतिवेदक जिस विषय पर प्रतिवेदन लिखने जा रहा हो उसका उल्लेख करता है । यदि विषय बड़ा हो तो विशिष्ट पहलू का भी उल्लेख कर लेगा ।
3. **सूचना :- संकलन की कार्यविधि :-** इसमे विषय से सम्बन्धित सूचना आंकड़े या सामग्री प्राप्त करने के आधारों, स्रोतों का उल्लेख किया जाएगा ।
4. **सूचना विश्लेषण :-** इसके अन्तर्गत एकत्रित सूचना का वैध विश्लेषण व निर्वचन करता है ।
5. **निष्कर्ष :-** एकत्रित सूचना एवं विश्लेषण के आधार पर प्रतिवेदक कुछ निष्कर्षो पर पहुँचता है ।
6. **सिफारिश :-** अपने निष्कर्षो के आधार पर प्रतिवेदक विषय के सम्बन्ध मे अपनी अनुशंसाएँ भी करता है । यही वह हिस्सा है जिसमे लेखक का लेखन -कौशल व बुद्धिमता का परिचय मिलता है।

14.4.6 नमूना

प्रतिवेदन की रूपरेखा का प्रारूप निम्न रूप से समझा जा सकता है ।

प्रतिवेदन की रूपरेखा

1. शीर्षक
2. विषय सूची
3. प्रतिवेदन के मुख्य बिन्दु
4. आमुख
5. (क) प्रतिवेदन का मूल पाठ
   (ख) प्रमुख संस्तुतियाँ
6. परिशिष्ट (तालिका, सन्दर्भ सूची आदि)

उदाहरणार्थ - हानि उठाने वाली शाखा के संदर्भ में रिपोर्ट

.....

.....

.....

सं. सं.....क्षेत्रीय कार्यालय का नाम व पता तारीख

प्रिय महोदय,

विषय :-..... शाखा के संबध मे रिपोर्ट ।

आपके द्वारा उपर्युक्त शाखा, जो कि पिछले तीन वर्ष से लगातार हानि दिखा रही है के संबध मे जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए मुझे निर्देश दिया गया था । तदनुसार, मेरी ओर से निम्नलिखित रिपोर्ट सादर प्रस्तुत है :-

..... शाखा जो कि एक कस्बाई शाखा है, पिछले तीन साल से हानि दिखा रही है । उसके कारण, मेरी जाँच के अनुसार निम्नलिखित हैं : -

(1) .....के वर्ष मे जब उक्त शाखा खोली गई थी तब इस इलाके में अन्य बैंकों की केवल तीन शाखाएँ थी, लेकिन बाद में उन शाखाओं की संख्या बढ़ती चली गई । फलत: आज हमारी शाखा को अन्य बैंकों की छह शाखाओं से मुकाबला करना पड़ता है ।

(2) अन्य बैंकों की शाखाएँ खुले और आकर्षक परिसरों में कार्यरत हैं । उनकी तुलना में अब हमारी शाखा का परिसर ग्राहकों के लिए उतना आकर्षक नहीं रहा है ।

(3) हमारी शाखा की प्रचार-सामग्री भी केवल अंग्रेजी में है जब कि अन्यत्र स्थानीय भाषा की प्रचार-सामग्री का जोर से उपयोग किया जा रहा है ।

(4) ग्राहकों को आकृष्ट करने के लिए अन्य बैंक-शाखाएँ विभिन्न आकर्षक योजनाओं मे काफी पैसा खर्च कर रही हैं जब कि हमारे सीमित संसाधन भारी अड़चन बने हुए है ।

(5) उक्त शाखा द्वारा प्रदत्त ऋणों में ऐसे मामले 5० प्रतिशत से भी अधिक है, जिनमे वसूली बिल्कुल नहीं हो पा रही है । वसूली न होने के कारणों में प्रमुख कारण है - शाखा के स्टाफ प्रमुख मे टीम - भावना का अभाव, जिसके मूल मे यूनियनों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा है ।

(6) जमा राशियों में भी उपर्युक्त कारण से गिरावट आई है और ऐसी स्थिति मे वेतनमानों में वृद्धि होती ही रही है ।

सिफारिशें :-

1. शाखा के परिसर में तो सुधार किया जाए या नए परिसर में शाखा को स्थानांतरित किया जाए।
2. प्रचार -अभियान के लिए बजट की सीमा बढ़ाई जाए ।
3. स्टाफ के पारस्परिक विवादों को दूर करने के प्रधान कार्यालय के कार्यपालकों को आमंत्रित कर स्टाफ के साथ आंतरिक बैठक की जाए ।
4. कारोबार - वृद्धि में योगदान देने वाले कर्मचारियों को सम्मानित या पुरस्कृत किया जाए। इसके विविध मानदंडों में ऋण-वसूली को भी अहमियत दी जाए ।

आशा है, उपर्युक्त सूचना भावी कार्रवाई के लिए उपयोगी सिद्ध होगी ।

भवदीय

क्षेत्रीय प्रबन्धक

14.5 संक्षेपण

संक्षेपण का शाब्दिक अर्थ संक्षिप्त या छोटा करना है । संक्षेपण अंग्रेजी के Precis Writing का हिन्दी प्रतिशब्द है । जब किसी वक्तव्य, लेख, निबन्ध, अनुच्छेद आदि में व्यक्त भावों को मूल की अपेक्षा अत्यंत कम (मूल का लगभग एक तिहाई)शब्दो में व्यक्त किया जाता है, उसे संक्षेपण कहते हैं ।

14.5.1 तात्पर्य -

आज के वैज्ञानिक युग में प्रत्येक व्यक्ति कम से कम समय में अधिकाधिक सूचना-प्राप्ति की तलाश में रहता है । ऐसा तभी संभव है, जब उसे सभी विषयों के बारे में संक्षिप्त सूचना मिलती रहे । सम्बद्ध विषय की सम्पूर्ण सामग्री के महत्त्वपूर्ण तथ्यों का कम से कम शब्दों में आकलन संक्षेपण कहलाता है । संक्षेपण को सार लेखन, संक्षिप्तीकरण, संक्षिप्त, लेखन सारांश लेखन आदि नामों से अभिहित किया जाता है । यद्यपि पर्याय रूप में सभी नामों का एक ही अर्थ होता है किन्तु कार्यालयी हिन्दी के सन्दर्भ में इसे संक्षेपण ही कहा जाता है ।

14.5.2 संक्षेपण और सार लेखन में अन्तर -

यद्यपि इन दो शब्दो में बाह्य अन्तर प्रतीत नहीं होता किन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है । कार्यालयी सन्दर्भ में दोनो में अंतर है । सार लेखन में व्यक्ति सभी महत्त्वपूर्ण तथ्यों व केन्द्रक को प्रस्तुत करने की अपेक्षा केवल उस मूल तथ्य केंद्रक को प्रस्तुत करता हैं जिसके चारों ओर मूल विवरण का विकास होता है । जबकि संक्षेपण में विवरण के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण तथ्य को क्रमबद्ध एवं सुनियोजित ढंग से अपनी भाषा में संक्षिप्त करके लिखा जाता है । जिससे सम्बद्ध अधिकारी पूरी जानकारी से अवगत हो सकें । सार ऐसा नही है उसमे मूल की सूचना होती है ।

वस्तुत: संक्षेपण मे लेखक समस्त महत्त्वपूर्ण तथ्यों को संक्षिप्त व सुगठित भाषा व व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करता है । इसमें मूल विषय से सम्बद्ध विचारों को ही महत्त्व दिया जाता है । अनावश्यक तर्क वितर्क एवं दोहरान से बचा जाता है ।

14.5.3 संक्षेपण : प्रकार

संक्षेपण के मुख्यरूप से दो प्रकार होते हैं :-

1 निरन्तर विधि से संक्षेपण 2. सारणीबद्ध संक्षेपण

14.5.3.1 निरन्तर विधि से संक्षेपण :-

किसी लेख, भाषण या आख्या आदि का संक्षेपण इस निरन्तर विधि से ही किया जाता है । इसमे ध्यातव्य यह है कि संक्षेपण मूल का एक तिहाई ही हो एवं भाषण में उद्धृत सभी

बातों का सार हो । कार्यालयों में कभी-कभी ऐसा होता है कि एक ही विषय पर अनेकानेक पत्र आते रहते हैं । उन्हें सक्षम अधिकारी के समक्ष अलग-अलग प्रस्तुत करने में समय लगता है । अत: उन सभी पत्रों में व्यक्त तथ्यों का निरन्तर विधि से संक्षेपण कर अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है ।

14.5.3.2 सारणीबद्ध संक्षेपण

जब एक ही विषय पर अनेक पत्र प्राप्त होते हैं तब सारणी बद्ध विधि का प्रयोग किया जाता है जब एक अधिकारी एक ही विषय पर दूसरे अधिकारियों को पत्र लिखकर तथा उस विषय पर उनके पत्र उत्तर प्राप्त होने पर सम्बद्ध अधिकारी को सबका संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करना इसी विधि में सम्भव होता है । इसमे पत्रांक, प्रेषक, प्रेषिती एवं विषय का समेकित अध्ययन संक्षिप्त रूप में सामने आ जाता है । सारणी बद्ध संक्षेपण में सारणी का प्रारूप निम्न प्रकार से होता है :

14.5.4 संक्षेपण का महत्व

समाज मे वाचाल व्यक्ति को मिथ्याभाशी व गैर गम्भीर व्यक्ति माना जाता है । समाज की भाँति साहित्य मे भी संक्षिप्तीकरण का महत्त्व असंदिग्ध है । प्राचीन काल में सूत्र-साहित्य का पर्याप्त लेखन हुआ है । हिन्दी साहित्य-इतिहास में बिहारी को गागर में सागर भरने की ख्याति प्राप्त है । शेक्सपियर ने स्वीकार किया कि संक्षिप्तता ही वाग्वैदग्ध्य की मूल आत्मा है ।

आज के यांत्रिक जीवन में दैनंदिन जीवन में विभिन्न क्रिया कलापों में सुगम मार्ग खोज निकालना प्रयत्न लाघव द्वारा सम्भव है । इसी प्रकार भाषा व्यवहार में भी संक्षेपण का अत्यधिक महत्त्व है । आज के व्यस्ततम जीवन में इसकी उपयोगिता और अधिक बढ़ गई है । समयाभाव के कारण व्यक्ति कम से कम समय में अधिकाधिक कार्य करना चाहता है । व्यावहारिक दृष्टि से कुशल वक्ता, संवाददाता, लेखक, वकील, सरकारी अधिकारी आदि सभी का संक्षेपण के बिना काम नहीं चलता । सामान्य रूप से आप देखते है कि आपका मित्र जो अभी-अभी फिल्म देखकर आया है वह तीन घण्टे की फिल्म को आपके सामने 15-20 मिनिट में पूरी तरह व्यक्त कर देता है ।

14.5.5 संक्षेपण की प्रकिया

संक्षेपण या सार लेखन एक कला है । इसे आदर्श बनाने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना होगा:-

1. **वाचन -** मूल अनुच्छेद का वाचन दो-तीन बार सावधानीपूर्वक किया जाए । सार-लेखन की शुरूआत तब तक नहीं करनी चाहिए जब तक कि मूल विषय का भावार्थ समझ में न आए ।
2. **रेखांकन -** मूल अनुच्छेद पढ़ने के बाद महत्त्वपूर्ण तथ्यों विचारो को रेखांकित किया जाना चाहिए । इससे विचारों की प्रमाणिकता खण्डित नहीं होगी ।

3. **क्रमबद्धता :-** मूल में व्यक्त विचारों भावों व तथ्यों को क्रमबद्ध रूप से संयोजित कर मूल अनुच्छेद का एक-तिहाई रूप में सार बनाया जाय ।
4. **कच्चा प्रारूप :-** संक्षेपण को अन्तिम रूप देने से पहले यह देख लेना चाहिए कि सभी महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश हुआ या नहीं ।
5. **निशिद्धता :-** संक्षेपण तैयार करते समय मूल में उल्लिखित कहावतें-मुहावरे-वाक-प्रचार व अलंकार हटा दिए जाएँ ।
6. मूल कथा का शीर्षक देने के लिए केन्द्रीय भाव की खोज करनी चाहिए । शीर्षक सार्थक संक्षिप्त, आकर्षक व विषय-वस्तु का केन्द्रीय भाव लिए होना चाहिए । इसके लिए विषय वस्तु को खण्डो में विभक्त कर मूल विचार को पेंसिल से रेखांकित करते रहना चाहिए ।
7. **भाषा-शैली :-** संक्षेपण मे वाक्यांश एकाधिक एक शब्द सूचक (One Word) का प्रयोग किया जाए । अन्य पुरूषशैली मै लिखा जाए । भूतकालिक वाक्य न बनाए जाएँ ।

14.5.6 संक्षेपण विशेषताएँ

1 विषय-वस्तु के मूल भाव की संक्षिप्त सरल अभिव्यक्ति संक्षेपण की मुख्य विशेषता होती है।

2 मूल अनुच्छेद मे व्यक्त विचारों एवं भावों की क्रमबद्ध स्थापना से सुसंगतता स्थापित होती है।

3 मूल विचारों व भावों को बिना उलझाए स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए ।

4 संक्षेपण की भाषा सरल होनी चाहिए । इसमे कठिन शब्दों अस्पष्ट वाक्यांशों व क्लिष्ट शब्दावली से बचा जाना चाहिए ।

आदर्श संक्षेपण वह कहा जाता है जो अल्प समय में, अल्प श्रम में सहजता से मूल विषय को संक्षेपण में प्रस्तुत कर सके ।

क्रम संख्या	पत्र संख्या	दिनांक	प्रेषक का नाम व पता	प्रेषित का नाम व पता	विषय का संक्षिप्त रूप

14.5.7 -कार्यालय में संक्षेपण लेखन

कार्यालयी सन्दर्भ मे संक्षेपण का अत्यधिक महत्त्व है । विविध कार्यालयों में विविध कार्यो में व्यस्तता के कारण अधिकारियों के पास समयाभाव होता है । उन्हें यथा शीघ्र-पत्रों पर आदेश देने होते है । अत: समय-पाबंदी की अनिवार्यता को ध्यान में रखकर यदि सहायक सम्बन्धित विषय वस्तु को न्यूनतम शब्दो में वांछित प्रस्तुति देता है तो कार्यवाही मे विलम्ब नही हो सकता ।

सरकार द्वारा नियुक्त समितियों-आयोगों के प्रतिवेदन भी आकार में वृहद् होते हैं जिन्हे पढ़ पाना समय-श्रम साध्य होता है । ऐसी स्थिति में सम्बन्धित अधिकारी का संक्षेपण गुण ही

कार्यवाही को त्वरित भी कर सकता है और लम्बित भी । इस प्रकार संक्षेपण की उपयोगिता कार्यालयो में कार्य -प्रणाली के बराबर रहती है ।

14.5.8 संक्षेपण लेखन महत्त्वपूर्ण बातें

संक्षेपण एक कला है, जिसे अध्ययन और अभ्यास द्वारा सँवारा जा सकता है । किसी मूल अवतरण की संक्षिप्ति की क्रियाविधि आप 14.5.5 मे देख चुके हैं ।

इसके अतिरिक्त जिन बातों का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए वे निम्न हैं :-

1. व्यक्ति को अपनी ओर से कुछ भी जोड़ने का अधिकार नहीं रहता न ही तर्क -वितर्क कर सकता है ।
2. संक्षेपक को एक बार मूल अंश अवश्य पढ लेना चाहिए । क्योंकि अधिकारी को उसी आधार पर निर्णय लेना है ।
3. संक्षेपण सदैव अन्य पुरुष में ही लिखा जाता है तथा इसमे क्रियाओं के रूप भी आवश्यकतानुसार बदल जाते है ।
4. संक्षेपण का प्रथम वाक्य प्रस्तावना के रूप में होता है । इससे अधिकारी को विषय की जानकारी हो जाती है ।
5. संक्षेपक को स्वयं की टिप्पणी से बचना चाहिए ।

14.5.9 संक्षेपण : उदारण

अभ्यास एक

भारतीय दर्शन लोगों के दर्शन से बिल्कुल अलग है । यह तीन लक्षणों में विशिष्ट है । प्रथम इसकी निरन्तरता है । भारतीय विचारक लगभग तीन हजार वर्षो से प्रकृति और संसार के आशय के विषय में निरन्तर सोच-विचार करते रहे हैं । केवल चीनी ही ऐसी इतिहास रखते हैं । दूसरे यह सर्वसम्मत है । मोटे तौर पर सभी भारतीय विचारक इस तथ्य को मानते हैं कि अपने यथार्थ स्वरूप मे तथा महत् अर्थ में जगत एक एकीकृत एकता है और यह एकता आध्यात्मिक है । जगत जैसा कि वह दिखायी देता है, निश्चय ही एक इकाई नहीं है बल्कि विषम अनेकता है । कहना यह है कि इसमें असख्य व्यक्तियों और वस्तुओं का संकलन दिखायी देता है । इसलिए जो वास्तविक जगत है और जैसा कि वह नजर आता है उसमें अवश्य अन्तर होगा । यह अन्तर इस प्रकार कहा जा सकता है कि जगत एक यथार्थ है जो स्वयं को अनेकता में व्यक्त करता है जिस प्रकार संगीत के टुकड़ों का अन्तर्निहित विषय रागों के माध्यम से व्यक्त होता है जो एक ही संगीत-विचार को प्रकट करते है मोटे तौर पर यह सच है कि सभी भारतीय विचारकों ने इस अन्तर को स्वीकारा है । तीसरा लक्षण और यहाँ हम दर्शन तथा धर्म के सम्बन्ध पर आते हैं भारतीय दर्शन कभी भी बौद्धिक व्यापार तक सीमित नही रहा । इसमे शक नहीं है कि औपचारिक रूप में यह सत्य की खोज है, पर भारत में दर्शन सत्य की खोज के अतिरिक्त कहीं अधिक काम करता है । यह एक जीवन पद्धति की खोज करता है, उसे लागू करता है । वास्तव मे अन्तिम उपाय के रूप मे भारतीय दर्शन का यह व्यावहारिक प्रभाव निश्चित रूप से भारतीय दार्शनिकों की सुनिश्चित धारणा का परिणाम है ।

भारतीय दर्शन सिखाता है कि जीवन का एक आशय और लक्ष्य है, आशय की खोज हमारा दायित्व है, और अन्त में उस लक्ष्य को प्राप्त कर लेना, हमारा विशेष अधिकार है । इस प्रकार दर्शन जो कि आशय को उद्घाटित करने की कोशिश करता है और जहाँ तक उसे इसमें सफलता मिलती है, वह इस लक्ष्य तक अग्रसर होने की प्रकिया है । कुल मिलाकर आखिर यह लक्ष्य क्या है? इस अर्थ में यथार्थ की प्राप्ति वह है जिसमें पा लेना केवल जानना नहीं है, बल्कि उसी का अंश हो जाना है । इस उपलब्धि में बाधा क्या है हे बाधाएँ कई हैं, पर इसमें प्रमुख है-अज्ञान अशिक्षित आत्मा नहीं है यहाँ तक कि यथार्थ संसार भी नही है यह दर्शन ही है, जो उसे शिक्षित करता है और अपनी शिक्षा से उसे उस अज्ञान से मुक्ति दिलाता है, जो यथार्थ दर्शन नहीं होने देता है । इस प्रकार एक दार्शनिक होना एक बौद्धिक अनुगमन करना नही हैं बल्कि एक शक्तिप्रद अनुशासन पर चलना है, क्योंकि सत्य की खोज में लगे हुए सही दार्शनिक को अपने जीवन को इस प्रकार आचरित करना पड़ता हैं ताकि उस यथार्थ से एकाकार हो जाए जिस वह खोज रहा है । वास्तव में यही जीवन का एकमात्र सही मार्ग है और सभी दार्शनिक को इसका पालन करना होता है, और दार्शनिक ही नहीं, बल्कि सभी मनुष्यों को क्योंकि सभी मनुष्यों के दायित्व और नियति एक ही हैं ।

(डी) संक्षेप

भारतीय दर्शन में कुछ विलक्षणताएँ है । प्रथम यह तीन-चार हजार वर्षो से निरंतर चला आ रहा है, जैसे प्रकृति और संसार संबंधी चिंतन । दूसरे, इसमें विचारों की सहमति है, जैसे यह कि जगत यथार्थ में आध्यात्मिक दृष्टि से एक इकाई है । भले ही वह देखने में अनेक रूप है । वास्तव में जगत् एक ही है जो अपने को अनेकता में व्यक्त यह अनेकता करता है । इस प्रकार है जिस प्रकार संगीत तो एक है जो टुकड़ों या विषम रागों में व्यक्त होता है । तीसरे, भारतीय दर्शन औपचारिक रूप से सत्य की खोज करता है और साथ में व्यावहारिक जीवन पद्धति की खोज करके उसे लागू करता है । यह उसका व्यावहारिक पक्ष है । भारतीय दर्शन जीवन के लक्ष्य की खोज करके उसे पाने की प्रक्रिया भी बताता है । लक्ष्य को पा लेना उसे केवल जानना नहीं है, बल्कि उसका अंश हो जाना है, इस उपलब्धि में प्रमुख बाधा है अज्ञान जिसे दर्शन ही दूर कर सकता है । इस प्रकार दार्शनिक को स्वयं अनुशासित होना पड़ता है, ताकि वह यथार्थ से एकाकार हो जाए । इसी नाते अनुशासित आचरण का पालन सभी मनुष्यों को करना होता है।

पल्लवन

14.6 पल्लवन

आप संक्षेपण के रूप को जान चुके हैं । आप भली-भाँति जान चुके हैं कि 'संक्षेपण' में किसी विस्तृत अंश को छोटा किया जाता है । "पल्लवन" संक्षेपण का ठीक उल्टा है । "पल्लवन" का शाब्दिक अर्थ है - विस्तार करना भाव पल्लवन का तात्पर्य होता है -

किसी सूत्र, वाक्य, उक्ति, सूक्ति, कहावत, काव्य, पंक्ति आदि में छिपे भावों को विस्तार पूर्वक उजागर करना । अंग्रेजी में इसके लिए "एम्पलिफिकेशन' (Amplification) "एक्सपेंशन" (Expansion) आदि शब्दों का प्रयोग किया होता है ।

14.6.1 पल्लवन : तात्पर्य

"पल्लवन" उपस्थित सामग्री के विषय में विद्यार्थियों की बौद्धिक क्षमता के परीक्षण हेतु परीक्षा में पूछे जाने वाली सामग्री होती है । यों पल्लवन का अर्थ है - पल्लवित करना, विकास करना, खोलना आदि । अपठित सामग्री का वह रूप जिसके विस्तार पूर्वक सार-लेखन की अपेक्षा की जाती है । इस अर्थ में 'पल्लवन' संक्षिप्तीकरण का ठीक उलटा होता है । इसमे दी गई सामग्री का संक्षेपण नहीं, विस्तार करना होता है । यद्यपि सार-लेखन में एक शब्द सीमा होती है, किन्तु पल्लवन में इस विस्तार की कोई सीमा नहीं होती । "पल्लवन" अपने कथन का दो गुना भी हो सकता है और एक निबन्धकार लेख रूप भी अपना सकता है । "पल्लवन" लेखक की बौद्धिक क्षमता, तर्क शक्ति, शब्दों की पकड़ या भाषा क्षमता की कसौटी होता है ।

14.6.2 पल्लवन : महत्त्व

पढ़ने, लिखने और बोलने मे "पल्लवन" का महत्त्वपूर्ण स्थान है । सामान्य से सामान्य वाक्यों में भी हम इसका प्रयोग करते हैं । कभी-कभी आप कथ्य को अलंकृत, सुन्दर रूप से प्रस्तुत करने के लिए पल्लवन की आवश्यकता महसूस करते हैं - जैसे 'वह भागा' की अपेक्षा 'वह हिरण की तरह भागा । वाक्य की न केवल अधिक प्रभावी अभिव्यक्ति होगी अपितु सौन्दर्य की सृष्टि भी होगी ।

दैनिक जीवन में हम पाते हैं कि कम शब्दों, वाक्यों में कहे गये भावों व विचारों से हर आदमी आसानी से समझ नहीं पाता । कभी-कभी कुछ ऐसे सुगठित वाक्य भी आ जाते हैं, यदि उनका विस्तार न किया जाए तो वे समझ से परे हो जाते हैं । ऐसी स्थिति में भाव विचार के तार-तार को अलग-अलग कर समझने की आवश्यकता महसूस होती है । ऐसी हजारों सूक्तियाँ हैं जिनका अर्थ विस्तार किए बिना उनका समग्र भाव बोध से परे होता है । व्यवहारिक शब्द में तब बच्चे घर माँ-बाप से, विद्यालय में अध्यापकों से अपनी जिज्ञासाओं की पूर्ति करते हैं, मैं आपके कहने का मतलब समझा नहीं, जरा विस्तार से बताओ आदि वाक्य पल्लवन की अपेक्षा करते हैं । पल्लवन का महत्व इस कारण से बढ़ जाता है कि एक छोटी सी पंक्ति का अर्थ भावना संवेदना के स्तर पर उतर कर कितनी गहराई से किया जा सकता है । इस रूप में पल्लवन न केवल विद्यार्थियों की बौद्धिक क्षमता अपितु भावात्मक सोच संवेदना-दृष्टि का भी परीक्षण करता है । कोई भी काव्य, उक्ति, कहावत, कथन, सिद्धान्त, सूक्ती, पल्लवन के आधार सामग्री के रूप में दी जा सकती है । निश्चित ही ऐसी सामग्री का एक विशिष्ट संवेदवनात्मक अर्थ होता है, सन्दर्भ होता है - युगीन परिवेश से उसका कोई सार्थक्य होता है तो अर्थो संवेदनाओं और सन्दर्भ की इन परतों को खोलना उनका रूप स्पष्ट करना और इस विषय में अपनी अर्थ दृष्टि रखना ही विद्यार्थियों की कसौटी होता है ।

पल्लवन विद्यार्थियों की मौलिक लेखन क्षमता और मौलिक सोच के विकास का एक आधार बनाने का कार्य करता है, साथ ही व्यवहार के स्तर पर भाषा के रूप-निर्माण और अर्थ-सन्दर्भ की व्यापकता की खोजबीन करता है । भाषिक प्रयोगों-कहावतों, मुहावरों की विशिष्ट व्यापक जानकारी पल्लवन द्वारा ही उद्घाटित होती है । पल्लवन इन्हीं व्यापक अर्थ-सन्दर्भो, सम्भावनाओं की तलाश करता है ।

14.6.3 पल्लवन: क्रिया विधि

कल्पना करें कि आपको "फलदायी वृक्ष हमेशा झुका रहता है" शीर्षक का पल्लवन करना है । आप इसके विषय में सोचिए और इस विषय पर विभिन्न पहलुओं के बारे में एक संक्षिप्त सी रूपरेखा बना लें । सोचने पर आप निम्न रूप से संक्षिप्त रूपरेखा बना सकते हैं :-

1. कथन का मूल विचार क्या है?
2. कथन का सरल शब्दों में विस्तार?
3. कथन को दैनिक जीवन से जोडना?
4. साहित्य में आए समानांतर कथनों से पुष्टि करना ।
5. भारतीय इतिहास एवं परंपरा में आए उदाहरणों से कथन की पुष्टि करना ।
6. कथन के विपरीत उदाहरणों के दुष्प्रभाव बताकर भी कथन की पुष्टि करना ।

चूँकि पल्लवन निबन्ध की अपेक्षा संक्षिप्त होता है, प्राय: एक-दो अनुच्छेदों का होता है, अत: चिन्तन के दो-तीन आधार लेकर उनका क्रमिक विकास किया जा सकता है । पल्लवन कवि की उक्ति से ही समाप्त करें यह आवश्यक तो नहीं किन्तु ऐसा हो सके तो श्रेष्ठ रूप होगा । उक्त उदाहरण को निम्न रूप से पल्लवित किया जा सकेगा -

'फलदायी वृक्ष हमेशा झुका रहता है"

ज्ञानी व्यक्ति और फलदायी वृक्ष एक समान होता है । ज्ञानी व्यक्ति अपने ज्ञान से संसार का कल्याण करने में सदैव तत्पर होता है । उसमें विनय और सहिष्णुता होती है । सृष्टि के कल्याण के लिए वह सदैव कर्मरत रहता है । ठीक उसी प्रकार जैसे फलदायी वृक्ष अपने फलों के बोझ से झुका रहता है । अपने मीठे-मीठे फलों से सृष्टि की क्षुधा शांत करता है और अपनी घनी छाया से मुसाफिरों को शारीरिक आराम और सुख शान्ति पहुँचाता है ।

विद्या सदैव विनय सिखाती है । अल्पज्ञानी ही अपने ज्ञान के अहं से फूला नहीं समाता । जैसे अधजल गगरी जरा-सा हिलने-डुलने पर छलक उठती है लेकिन पूरा भरा हुआ घड़ा कभी छलकता नहीं है । ठीक उसी तरह ज्ञानी व्यक्ति धीर-गम्भीर होता है । उनमें ज्ञान का अहं नहीं कर्म की तत्परता होती है । वे बोलने में कम और काम से ज्यादा विश्वास करते हैं । ऐसे व्यक्तियों से अहंकार और अकड़ न होकर एक विनम्रता और मित्रता का भाव होता है । वे दूसरों के सदैव सहायक रहते हैं । उन्हें सृष्टि का यह मूल मन्त्र ज्ञात होता है कि व्यक्ति के कर्म ही उसकी गती और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं । अपने सदकर्मों, मीठी वाणी एवं ऊँचे विचारों से वे सदैव संसार के हित में कार्य करते दिखाई देते हैं । ऐसे ही व्यक्ति को इंगित करके रहीम ने कहा है -

बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर,
पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर ।

अर्थात् पद या नाम ऊँचा होने से जनता की भलाई नहीं होती - वृक्ष वही श्रेष्ठ होता है जो फल भी दे और छाया भी ।

पूत के पाँव पालने में नजर आते हैं
होनहार बिरवान के होत चीकने पात ।

जो होनहार व्यक्ति होते हैं उनके लक्षण बचपन में ही नजर आने लगते हैं । रानी लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगना बचपन से ही वीर कर्मों में लीन मनोवृत्ति वाली थी । महान व्यक्ति या आत्मा सांसारिक बातों से इतर अपनी कर्म शक्ति को सदैव सही कर्मों में ही लगाते हैं । बालक के लक्षण बता देते हैं कि वह आगे चलकर क्या करने वाला है । तो प्रतिभाशाली बालक होते हैं प्रारम्भ से ही आम बालकों से अलग-थलग नजर आने लगते हैं । शेरे मैसूर, टीपू सुल्तान, शिवाजी महाराज, चन्द्रगुपा तमाम ऐसे नामों को गिनाया जा सकता है जो बचपन से ही अपने भविष्य का संकेत देने लगे थे । महाभारत कभी न घटता यदि धृतराष्ट्र ने दुर्योधन की बाल महत्त्वाकांक्षाओं को रोक लिया होता । यदि भीष्म हर बार मौन न हर गए होते । दुष्ट व्यक्ति की मनोवृत्ति बालपन से धृष्टताओं में लगी रहती है, जबकि सदव्यक्ति बालपन से दूसरों का आदर सत्कार करने वाला, आज्ञाकारी मेहनती, समय का पाबन्द, अध्ययनशील होता है । इसी प्रकार जो वृक्ष फलदायी होते हैं उनके पत्ते शुरू से ही चिकने और सुघड़ होते हैं रोगहीन होते हैं। अच्छा पुत्र बालपन से ही माता, पिता का आज्ञाकारी होता है ।

उक्त उदाहरण से आप भली-भाँति समझ सकते हैं कि पल्लवन में दिए गए शब्दों को किस प्रकार आप विश्लेषित कर सकते हैं । मूल विचार को समझ लेने के बाद उसके विभिन्न बिन्दुओं को क्रमश: लिखते जाएँ व आवश्यकता होने पर उदाहरण, उद्धरण, काव्यांश द्वारा अपना मत पुष्ट कर सकते हैं ।

14.6.4 पल्लवन : ध्यातव्य बातें -

पल्लवनकर्त्ता को पल्लवन करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए -

1. दी गई सामग्री को भली-भाँति पढ़ते रहना चाहिए और तब तक पढ़ते रहना चाहिए जब तक कि उसका आशय स्पष्ट न होने लगे ।
2. आपके द्वारा गृहीत विचारों-भावों को सुविधानुसार क्रमश: रूपरेखा बनाकर प्रारूप बना लें।
3. अपने मत के समर्थन में ठोस आधार प्रस्तुत करने चाहिए ।
4. अपने ही कथन में विरोधाभास ने हो इसलिए सम्भावित विरोधी सत्यों को भी प्रकट कर अपने मत की पुष्टि की जानी चाहिए ।
5. एक सुलझा हुआ दृष्टिकोण व वैचारिक क्रम अपनाना चाहिए । ताकि विचारों की अभिव्यक्ति में पुनरुक्ति व उलझाव न हो ।
6. यदि समय हो तो समर्थन हेतु साम्य कथन प्रस्तुत कर सकते हैं' ।
7. पल्लवन की भाषा मूल सामग्री की भाषा सें साम्य रखती हुई होनी चाहिए ।

8. यह माना जाता है कि पल्लवन की कोई शब्द सीमा नहीं होती, किन्तु व्यर्थ के शब्द कौतूक एवं अनावश्यक विस्तार से बचना चाहिए ।
9. पल्लवन छोटे-छोटे वाक्यों व सरल स्पष्ट भाषा में होना चाहिए । इसमें न, तो अप्रासंगिक बातों विस्तार की संभावना होती है न ही टीका टिप्पणी, आलोचना की ।
10. पल्लवन उत्तम या मध्यम पुरूष में न लिखा जाकर अन्य पुरूष में ही लिखा जाना चाहिए। अर्थात् इसमे न तो 'मैं" तुम शैली का प्रयोग- होता है न ही संवाद शैली का ।

14.7 शब्दावली

मसौदा	-	पत्राचार का कच्चा प्रारूप
अनुदेश	-	हिदायते
अध्याक्षर	-	नाम के आरंभ के अक्षर
आवती	-	बाहर से आने वाला पत्र
अवलोकन	-	देखना
तंत्र	-	व्यवस्था
पावती	-	प्राप्ति सूचना
अनुमोदन	-	पूर्व स्वीकृति
कार्यसूची	-	बैठक पूर्व चर्चा किए जाने वाले विषयों का व बैठक का संक्षिप्त विवरण
कार्यवृत	-	बैठक उपरांत लिए गए निर्णयों व बैठक की सम्पूर्ण कार्यवाही का संक्षिप्त विवरण ।
पुनरुक्ति	-	एक बार कही बात को फिर से कहना ।
आलंकारिक	-	कार्यवृत्त पुनरुक्ति आलंकारिक
पल्लवन	-	अलंकारों से युक्त
सूक्ति	-	शास्त्रों में आई अच्छी सूत्रात्मक उक्ति / अच्छा कथन ।
ग्रहीत	-	ग्रहण किए गए ।
शब्द कौतुक	-	शब्द चमत्कार ।
अन्य पुरूष	-	वक्ता, श्रोता के अलावा अन्य, यथा-वह वो. वे, उनका आदि।
संवाद	-	बातचीत ।

14.8 सारांश

मसौदा लेखन उस प्रक्रिया को कहते हैं, जिसमें से गुजर कर पत्राचार के विभिन्न प्रकारों को भेजने लायक बनाया जाता है । किसी विषय या समस्या पर गहनता गम्भीरता से विचार करने के लिए समितियों का गठन किया जाता है । इनके सदस्यों की बैठक सम्बन्धित विषय के विभिन्न पक्षों पर विचार विमर्श कर प्रस्ताव-सुझाव प्रस्तुत करती है । यह कार्य तीन सोपानों में सम्पूर्ण होता है - आयोजन, नियोजन एवं संयोजन । प्रतिवेदन एक प्रकार से विवरण है जिसमें किसी जाँच या क्रियाकलाप का लेखा-जोखा है । यह प्रतिवेदन सभा समारोह संगोष्ठी,

जुलूस का भी हो सकता है । प्रतिवेदन के कई रूप होते हैं मुख्यत: आयोग प्रतिवेदन, समिति प्रतिवेदन, संगोष्ठी प्रतिवेदन, वार्षिक प्रतिवेदन होते हैं ।

संक्षेपण कार्यालयी संदर्भ में बहुत उपयोगी होते हैं । मूल पत्र के सभी महत्त्वपूर्ण तथ्यों का कम से कम शब्दों में आंकलन ही संक्षेपण है । संक्षेपण महत्त्वपूर्ण सभी तथ्यों की समन्वित क्रमिक प्रस्तुति होता है । संक्षेपण स्वयं में पूरा होता है तथा महत्वपूर्ण तथ्यों का क्रमबद्ध रूप होता है जिसका केन्द्र बिन्दु है - संक्षिप्तता । पल्लवन संक्षेपण का उलटा है । उसमें मूल में वस्तु या भाव के विस्तार तथा अलंकरण की प्रवृत्ति काम आती है । रूपरेखा चिन्तन बिन्दुओं का विकास, कथन पुष्टि द्वारा किसी भी कथन सूक्ति का पल्लवन किया जा सकता है ।

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रतिवेदन के मुख्य प्रकार कौन-कौन से हैं?
2. प्रतिवेदन से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए ।
3. संक्षेपण से क्या तात्पर्य है? इसके प्रकार व विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए ।
4. पल्लवन की प्रक्रिया और महत्त्व को स्पष्ट कीजिए ।

14.10 संदर्भ ग्रंथ

1. भारत भूषण, 1981; **प्राज्ञ पाठशाला,** राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, नई दिल्ली ।
2. के. एन. दुबे, 1971, **'एडमिनिस्ट्रेटिव हिन्दी',** राष्ट्रीय प्रकाशन अकादमी, मसूरी ।
3. गोपीनाथ श्रीवास्तव, 1968, **सरकारी कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग',** लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।
4. कैलाशनाथ भाटिया; **कामकाजी हिन्दी,** तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली ।
5. कृष्ण कुमार गोस्वामी**, 'व्यावहारिक हिन्दी और रचना',** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली ।
6. गणेश प्रसाद गुप्ता, **'संक्षेपीकरण',** गुप्ता प्रकाशन, नई दिल्ली -5 ।

इकाई - 15

वैज्ञानिक व तकनीकी हिंदी भाषा

इकाई की रुप रेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 वैज्ञानिक व तकनीकी भाषा से तात्पर्य

15.3 वैज्ञानिक व तकनीकी हिंदी भाषा का स्वरुप

15.3.1 हिंदी भाषा की वैज्ञानिक ध्वनि व्यवस्था

15.3.2 हिंदी भाषा की वैज्ञानिक लिपि व्यवस्था

15.3.3 हिंदी भाषा का वैज्ञानिक रुप में विकास

15.4 देवनागरी हिंदी वर्तनी एवं अंकों का मानकीकरण

15.5 भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रुप

15.6 वैज्ञानिक व तकनीकी भाषा की जटिलता का प्रश्न

15.7 वैज्ञानिक व तकनीकी हिंदी भाषा का महत्व

15.8 सारांश

15.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

15.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ्ने के बाद आप :-

- हिंदी भाषा की प्रकृति के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- हिंदी भाषा की वैज्ञानिकता के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- हिंदी भाषा की ध्वनि व्यवस्था व लिपि व्यवस्था को समझ सकेंगे ।
- देवनागरी वर्तनी के मानकीकरण के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रुप के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
- हिंदी के शब्दों की रचना विषयक जानकारी ग्रहण कर सकेंगे ।
- हिंदी भाषा की वाक्य व्यवस्था व विराम व्यवस्था से परिचय प्राप्त हो सकेगा।
- वैज्ञानिक व तकनीकी हिंदी भाषा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।

15.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आप हिंदी भाषा के संबंध में सामान्य जानकारी प्राप्त कर ही चुके हैं । इस इकाई में हिंदी भाषा की वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रकृति के बारे में आपको गहन जानकारी मिलेगी । स्वतंत्रता से पूर्व भारत में हिंदी का प्रयोग बोलचाल की भाषा, साहित्यिक, धार्मिक-दार्शनिक विषयों की भाषा के रुप में ही होता था । स्वतंत्रता के पश्चात् हिंदी को

संवैधानिक रुप में राजभाषा के तौर पर मान्यता मिलने के पश्चात् हिंदी का प्रयोग विविध प्रयोजनमूलक क्षेत्रों में होने लगा । परिणामस्वरुप वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्रों में हिंदी के प्रयोग के कारण उसे वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों की अभिव्यक्ति के अनुरूप ढलना पड़ा । उसमें पारिभाषिक शब्दों का प्रभूत मात्र में द्रुत गति से विकास हुआ तथा देवनागरी वर्तनी और अंकों का मानकीकरण करना पड़ा । साथ ही विराम व्यवस्था भी अंग्रेजी की सहायता से विकसित की गई । वैज्ञानिक एवं तकनीकी हिंदी भाषा के इन्ही विविध पक्षों से संक्षेप में आपको जानकारी इस इकाई में मिलेगी तथा आप वैज्ञानिक एवं तकनीकी हिंदी भाषा की प्रकृति से भलीभाँति परिचित होंगे ।

15.2 वैज्ञानिक एवं तकनीकी भाषा से तात्पर्य

वैज्ञानिक एवं तकनीकी भाषा से तात्पर्य हिंदी भाषा की वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रकृति से हैं । इस इकाई में हिंदी भाषा की ध्वनि से लेकर विविध स्तरीय वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रकृति से आपको परिचय प्राप्त होगा । हिंदी भाषा का विकास एक सुदीर्घ परंपरा में क्रमश: संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, पुरानी हिंदी, मध्यकालीन हिंदी एवं आधुनिक खड़ी बोली हिंदी के रुप में हुआ हैं । भारत लम्बे समय तक गुलाम रहा । अत: भारत में बाहरी शासकों के साथ बाहर की भाषाऐं भी यहाँ आती रहीं और यहाँ की भाषाओं के साथ वे भी यहाँ विकसित होती रहीं । इस परम्परा में अरबी-फारसी और खड़ी बोली के संसर्ग से उर्दू भाषा पैदा हुई तथा बाद में अंग्रेजों के समय से यहाँ अंग्रेजी का बोलबाला व्याप्त है ही ।

किसी भी देश में बाहर की भाषाओं के आगमन और पैर पसारने के साथ ही उस देश की सभ्यता और संस्कृति आदि का प्रभाव भी भाषा के शब्दों आदि के माध्यम से आने लगता हैं और सांझा संस्कृति विकसित होने लगती हैं । हिंदी भाषा ने अरबी-फारसी-तुर्की-उर्दू-अंग्रेजी आदि भाषाओं से प्रचुर मात्रा में प्रभावक तत्वों को ग्रहण किया हैं तथा अपनी अभिव्यक्ति क्षमता में बखूबी वृद्धि की हैं । बाकी परंपरा से प्राप्त उसकी वैज्ञानिक एवं तकनीकी व्यवस्था तो है ही, इस इकाई में भाषा की संरचना की इस प्रकृति की जानकारी दी जाएगी ।

15.3 वैज्ञानिक एवं तकनीकी हिंदी भाषा का स्वरुप

वैज्ञानिक एवं तकनीकी भाषा हिंदी का परिचय इस इकाई में प्राप्त होगा ।

15.3.1 हिंदी भाषा की वैज्ञानिक ध्वनि व्यवस्था :

(क) स्वर ध्वनियाँ :

स्वर ध्वनियाँ वे ध्वनियाँ है जिनके उच्चारण में हवा अबाध गति से मुखविवर से निकल जाती हैं अर्थात् स्वर उन ध्वनियों को कहते है जो स्वयं उच्चरित होती हैं ।

हिंदी की स्वर ध्वनियाँ इस प्रकार हैं

मूल स्वर	:	अ, इ, उ,	= 3
दीर्घ स्वर	:	आ, ई, ऊ	=3
संयुक्ता स्वर	:	अ+इ =ए	
		अ+उ = ओ	

		अ+ई = ऐ	
		अ+ऊ =औ	= 4
अंग्रेजी से आगत स्वर:	:	आं	=1
कुल स्वर ध्वनियाँ			**= 11**

परंपरागत व्याकरणों में स्वरों के अंतर्गत ऋ, अं, अ - इन तीन ध्वनियों को रखा जाता हैं जो व्याकरणिक एवं भाषागत वैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से ठीक नहीं । ऋ = र+इ, अं = अ + न् तथा अ: = अ+ह या अ का विसर्गयुक्त रुप हैं । अत: ये स्वर और व्यंजन के मिश्रित रुप या संयुक्त रुप हैं, स्वर तो बिल्कुल नहीं ।

(ख) स्वर ध्वनियों की मात्राएँ :

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ ऑ

'अ' की कोई मात्रा नहीं हैं । यह स्वयं आता हैं । अन्य स्वर स्वतंत्र रुप से स्वयं आते हैं तथा प्रतिनिधि के रुप में -उनकी मात्राएँ आती हैं । 'ऑ स्वर अंग्रेजी से आगत हैं । इसके न्यूनतम विरोधी युग्म उपलब्ध है, जैसे हाल (हालचाल), हॉल (बड़ा कमरा), बाल (सिर के), बॉल (गेंद), बोल (बोलना) आदि ।

(ग) व्यंजन ध्वनियाँ

व्यंजन ध्वनियाँ वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में हवा मुखविवर में अबाध गति से नहीं निकलती । वायु मार्ग में कोई न कोई पूर्ण या अपूर्ण अवरोध अवश्य उपस्थित होता हैं । अर्थात व्यंजन ध्वनियाँ वे ध्वनियाँ हैं जो स्वर की सहायता से उच्चरित होती हैं ।

हिंदी की व्यंजन ध्वनियाँ इस प्रकार हैं.

क वर्ग	:	क ख, ग घ, ङ	= 5
च वर्ग	:	च, छ, ज, झ, न	= 5
ट वर्ग	:	ट, ठ, ड, ढ, ण	= 5
त वर्ग	:	त, थ, द, ध, न	= 5
प वर्ग	:	प, फ, ब, भ, म	= 5
अंतस्थ	:	य, व	= 2
लुंठित	:	र	= 1
पार्श्विक	:	ल	= 1
ऊष्म	:	श, ष, स, ह	= 4
संयुक्त ध्वनियाँ	:	क्ष=क़+ष	= 1
		त्र=त+र = 1	
		ज्ञ=ग+>- = 1	
हिंदी की विकसित ध्वनियाँ	:	ड़,ढ़ =	= 2
अरबी-फारसी से आगत ध्वनियाँ	:	क, ख, ग, ज, फ =	=5

कुल व्यंजन ध्वनियाँ = 43

यदि इसमें

ऋ, अं, अ: = 3

को जोड़ दिया जाए तो हिंदी कीव्यवहत व्यंजन ध्वनियाँ होंगी = 46

(घ) चंद्र बिंदु :

यदि 'न' उच्चारण की दृष्टि से 1 मात्रा है तो 'न्' उच्चारण की दृष्टि से आधी (1/2) मात्रा हैं । उच्चारण की दृष्टि से 'न' की चौथाई मात्रा (1/4) चंद्र बिंदु (~) हैं जैसे :- हंस - हँस, सास - साँस, गोद - गोंद आदि । ड़,ढ ध्वनियाँ पालि - प्राकृत - अपभ्रंश काल में तद्भवीकरण की प्रक्रिया में विकसित हुए है : यथा- उड्डयन>उड़ना,कीट>कीड़ा, शाहिका>साड़ी, पाषाण>पहाड़, घोटक>घोडा, घोटिका>घोड़ी आदि । इसी तरह साढ्>साढ़े, पत>पढ़, मंडूक>मेंढक, क्वाथ>काढ़ा, वृद्व>बूढ़ा, वृद्वि>बाढ़, वर्ध>बढ़, कुष्ठ>कोढ़ आदि ।

15.3.2 हिंदी भाषा की वैज्ञानिक लिपि व्यवस्था :

हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी लिपि है । देवनागरी लिपि की वर्ण व्यवस्था पूर्णत: वैज्ञानिक क्रम में हैं । यह आक्षरिक लिपि हैं । इस वैज्ञानिक क्रम में मूल स्वर तीन -अ, इ, उ तथा इन मूल स्वरों से तीन दीर्घ स्वरों - अ+अ =आ, इ+इ = ई, उ+उ = ऊ और इनसे चार संयुक्त स्वरों - अ+इ = ए, अ+ई = ऐ, अ+उ = ओ, अ+ऊ= ओं का विकास इसे वैज्ञानिक रुप से वर्णक्रम बद्धता की कसौटी पर सर्वोत्तम क्रमबद्धता के रुप में खरा सिद्ध करते हैं ।

अ,आ-कंठ, इ, ई-तालु, उ ,ऊ-ओष्ठ, ए, ऐ-कंठतालु, ओ, औ-कंठओष्ठय रुप में उच्चारण के क्रम भी इसे सर्वोत्कृष्ट क्रमबद्ध वर्णमाला की कसौटी पर खरा सिद्ध करते हैं । क, च, ट, त, प में वर्ण क्रमबद्धता की वैज्ञानिक कसौटी का पूर्ण रुप से पालन दिखता हैं । पाँचों वर्गो में पहला, तीसरा और पाँचवीं वर्ण अल्पप्राण और दूसरा तथा चौथा वर्ण महाप्राण भी वैज्ञानिकता की कोटि में इसे ले जाता हैं ।

पाँचों वर्गो के अंतिम पाँचों -ड, त्र, ण, न, म अनुनासिक होने से भी वर्णक्रम व्यवस्था वैज्ञानिक सिद्ध होती हैं । संयुक्त स्वर स्वरों के अंतिम छोर पर संयुक्त व्यंजन व्यंजनक्रम के अंतिम छोर पर रखे होने से भी यह क्रम पूर्णत: वैज्ञानिक आधार लिए हुए हैं ।

15.3.3 हिंदी भाषा का वैज्ञानिक रुप में विकास

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि हिंदी भाषा संस्कृत-पालि-प्राकृत-अपभ्रंश की परंपरा में आगे चलकर क्रमश: विकसित हुई हैं । अत: इसका विवेचन निम्नानुसार किया जा सकता है -

(क) 1000 ई० से 1500 ई० तक :

एक हजार ई० के आसपास विभिन्न अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय भाषाएँ निकली हैं । हिंदी का उद्गम शोरसैनी अपभ्रंश से 1000 ई० के आसपास हुआ माना जाता हैं । अत: इस भाषा ने अपना आरंभिक रुप इस अपभ्रंश से ही लिया है तथा तद्भवीकरण की परंपरा में ध्वनि

शब्द और व्याकरण विकसित हुआ हैं । इस काल में हिंदी भाषा डिंगल-पिंगल के रुप में आगे बढ़ी । हिंदी के आदिकालीन कवियों की भाषा में इस भाषा के नमूने देखे जा सकते हैं ।

(ख) 1500 ई० से 1800 ई० तक :

1500 से 1800 ई० तक आते - आते हिंदी का रुप स्थिर हो चुका था अत: उसकी उपभाषाओं या बोलियों में भी साहित्यिक रचनाएँ उत्कृष्टता पर पहुँच गई थीं । ब्रजभाषा और अवधी भाषा इस समय की हिंदी के नाम पर प्रमुख भाषाएँ रही हैं । इस काल में हिंदी भाषा की ध्वनि, शब्द, एवं व्याकरण में खूब अधिक परिवर्तन आए हैं तथा प्रभाव भी बहुत अधिक आत्मसात् हुए हैं । अरबी-फारसी की ध्वनियाँ और शब्द प्रचुर मात्रा में गृहीत हुए ।

इस काल को साहित्य के इतिहास में मध्यकाल के नाम से जाना जाता हैं । तुलसीदास, सूरदास आदि इस काल के प्रसिद्ध कवि हैं ।

(ग) 1800 ई० से अब तक :

इस काल में हिंदी भाषा की प्रकृति वैज्ञानिक एवं तकनीकी स्वरुप की निर्मित हुई । 1800 ई० में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना होने तथा अंग्रेज अधिकारियों के लिए इसे एक प्रशिक्षण केंद्र के रुप में उपयोग में लाए जाने के कारण हिंदी हिंदुस्तानी विभाग इस कॉलेज में जॉन गिलक्रिस्ट के प्रिंसिपल के पद पर विराजित होते हुए खोले गए तथा खड़ी बोली गद्य के आरंभ के रचनाकारों श्री लल्लूलाल जी, सदल मिश्र आदि ने इसी कॉलेज में रहते हुए रचनाएँ प्रस्तुत की । लल्लूलाल जी का प्रेम सागर ग्रंथ भी इसी कॉलेज के माध्यम से प्रकाशित हुआ ।

1826 में हिंदी में पत्रकारिता की शुरुआत होने से पत्रकारिता की हिंदी की नींव पड़ी जो आगे चलकर भारतेंदु काल, द्विवेदी काल, गाँधी या तिलक काल तथा स्वतंत्रोतर काल में चरम उत्कर्ष पर पहुँची ।

स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् हिंदी को राजभाषा के रुप में संवैधानिक मान्यता प्राप्त हुई तथा हिंदी के विविध प्रयोजनमूलक रुप पनपे तथा विकसित होकर वटवृक्ष बनें । यह काल हिंदी भाषा के विकास का सबसे अधिक उत्कृष्ट काल हैं ।

15.4 देवनागरी हिंदी वर्तनी एवं अंकों का मानकीकरण

देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी के भारत की राजभाषा बनने के बाद समग्र भारत में इसका प्रयोग एवं विकास द्रुत गति से होने के कारण भारत सरकार ने 1961 में मानकीकरण करने के लिए एक समिति बनाई जिसने 1962 में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी । 1967 में सरकार ने एक पुस्तिका प्रकाशित करके देवनागरी वर्तनी एवं अंको का मानकीकरण किया । इससे हिंदी की वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रकृति में और अधिक इजाफा हुआ हैं ।

(क) मानक हिंदी वर्णमाला और अंक

इस मानकीकरण के माध्यम से देवनागरी हिंदी वर्तनी की मानक वर्णमाला और अंको का निर्धारण किया गया हैं ।

(ख) संयुक्त वर्ण

(1) खड़ी पाई वाले व्यंजन

खड़ी पाई वाले व्यंजनों का संयुक्त रुप खड़ी पाई को हटाकर ही बनाया जाना चाहिए यथा ख्याति, लग्न, व्यास, कच्चा, छज्जा आदि ।

(2) अन्य व्यंजन

(अ) 'क' और 'फ' के संयुक्ताक्षर पक्का, दफतर, आदि की तरह बनाए जाँऐ ।

(आ) ड, छ, ट, त. ड, ढ. द और ह के संयुक्ताक्षर हल चिह्न लगाकर ही बनाए जाँऐ जैसे:-वाड्मय, लड्डू बुड्ढा, विद्या, चिह्न, ब्रह्मा आदि ।

(इ) संयुक्त 'र' के प्रचलित तीनों रुप रहेंगें, यथा- प्रकार, धर्म, राष्ट्र ।

(ई) 'श्र' का प्रचलित रुप ही मान्य रहेगा इसे 'श' रुप में नहीं लिखा जाएगा । त+र के संयुक्त रुप के लिए 'त्र' के रुप में लिखना होगा किन्तु 'क्र' को 'ऋ' के रुप में नहीं लिखा जाएगा ।

(उ) हल चिह्न वर्ण से बनने वाले संयुक्ताक्षर के द्वितीय व्यंजन के साथ 'इ' की मात्रा का प्रयोग संबंधित व्यंजन के तत्काल पूर्व ही किया जाएगा न कि पूरे युग्म से पूर्व यथा:- कुट्टिम द्वितीय, बुद्धिमान, चिह्नित आदि ।

(ग) विभक्ति चिह्न

(क) हिंदी में विभक्ति चिह्न सभी प्रकार के संज्ञा शब्दों में प्रतिपादिक से प्रथक लिखे जाएँ : जैसे- राम ने, राम को, राम से आदि । सर्वनाम शब्दों में ये चिह्न प्रतिपादिक के साथ मिलाकर लिखे जाएँ. जैसे- उसने, उसको, उससे, उसमें आदि ।

(ख) सर्वनामों के साथ यदि दो विभक्ति चिह्न हो तो उनमें से पहला मिलाकर और दूसरा पृथक लिया जाएँ जैसे- उसके लिए, इसमें से आदि ।

(ग) सर्वनाम और विभक्ति के बीच 'ही', 'तक' आदि निपात हो तो विभक्ति पृथक लिखी जाएँ :- जैसे - आप ही के लिए, मुझ तक को आदि ।

(घ) क्रियापद

संयुक्त क्रियाओं में सभी अंगभूत क्रियाएँ पृथक-पृथक लिखी जाएँ: जैसे - पढ़ा करता है, आ सकता है, जाया करता है, बढ़ते चले जा रहे हैं आदि ।

(ङ) हाइफन

वैज्ञानिक व तकनीकी हिंदी भाषा में हाइफन का विधान स्पष्टता के लिए किया गया है:

(क) द्वंद्व समास में पदों के बीच हाइफन रखा जाए: जैसे-राम-लक्ष्मण, चाल-चलन, पढ़ना-लिखना, खाना-पीना आदि ।

(ख) 'सा' जैसा आदि से पूर्व हाइपान रखा जाए: जैसे- तुम-सा, राम-जैसा, चाकू-से-तीखे आदि ।

(ग) तत्पुरुष समास में हाइपान का प्रयोग केवल वहीं किया जाए जहाँ उसके भ्रम होने की संभावना हो: जैसे- भू-तत्व ।

(घ) कठिन संधियों से बचने के लिए भी हाइफन का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे - द्वि-अक्षर, द्वि-अर्थक आदि ।

(च) अव्यय

तक, साथ आदि अव्यय सदा पृथक लिखे जाएँ, जैसे- आपके साथ, यहाँ तक आदि । नियमानुसार सभी अव्यय पृथक लिखे जाने चाहिए । सम्मानार्थक श्री और जी अव्यय भी पृथक ही लिखे जाने चाहिए । समस्त पदों में प्रति, मात्र आदि अव्यय पृथक नहीं लिखे जाते, जैसे - प्रतिदिन, प्रतिशत, मानवमात्र, यथा समय आदि ।

(छ) अनुस्वार और अनुनासिकता

अनुस्वार ()और अनुनासिकता (^) दोनों ही प्रचलित रहेंगे ।

(क) संयुक्त व्यंजन के रुप में जहाँ पंचमाक्षर के बाद सवर्गीय शेष चार वर्णो में से कोई वर्ण हो तो एकरूपता और मुद्रण/लेखन कर सुविधा के लिए अनुस्वार का ही प्रयोग करना चाहिए; जैसे - गंगा, चंचल, ठंडा, संध्या, संपादक आदि । सदि भ्रम या पुन: उच्चारण करने में दिक्कत आए तो बचना चाहिए ।

(ख) चंद्रबिंदु के बिना प्राय: अर्थ में भ्रम की गुंजाइश होती है; जैसे- हंस-ह्न्स आदि अत: चंद्रबिंदु का प्रयोग करना चाहिए । जहाँ तक टाइपिंग का सवाल है तो कम्प्यूटर में भी टाइप करते समय यदि किसी वर्ण के मत्थे पर मात्रा लगी हो तथा उच्चारण चंद्रबिंदु का होने के कारण चंद्रबिंदु लगाना हो तो यंत्र वहाँ चंद्रबिंदु न लगाकर स्पेस छोड़ देता हैं । अत: ऐसे संदर्भ में चंद्रबिंदु की जगह बिंदु का इस्तेमाल करना चाहिए; जैसे- नहीं, मैं, में आदि । इसके सिवाय जहाँ टंकणगत आवश्यकता न हो तथा जहाँ चंद्रबिंदु का उच्चारण रखना अभीष्ट हो वहाँ बिना किसी भी छूट के किया जाए; जैसे- कहीं, हँसना, सँवारना, मुँह, बूँद आदि ।

(ज) विदेशी ध्वनियाँ

क, ख, ग, ज, फ और ऑ का प्रयोग अर्थगत परिशुद्धता के लिए जहाँ अपेक्षित हो वहाँ करना चाहिए; जैसे- खाना-खाना, राज-राजू, फन-फून, ताक-ताक, गौर-गौर, बाल-बॉल आदि ।

हिंदी में कुछ शब्द ऐसे है जिनके दो-दो रुप बराबर चल रहे है तथा विद्वत्समाज में दोनों रुपों की एक जैसी मान्यता हैं । इनकी एकरुपता आवश्यक नहीं समझी गई तथा द्विरुपता को छूट दी गई;

जैसे- गरदन/गर्दन, गरमी/गर्मी, बरफ/बर्फ, बिलकुल/बिल्कुल, सरदी/सर्दी, कुरसी/कुर्सी, भरती/भर्ती, फुरसत/फुर्सत्, बरदाश्त/बर्दाश्त, वापिस /वापस, आखीर /आखिर, बरतन / बर्तन, दोबारा / दुबारा, दूकान / दुकान, बीमारी / बिमारी आदि ।

(झ) हल चिह्न

संस्कृत मूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी में सामान्यत: संस्कृत रुप ही रखा जाए, परंतु जिन शब्दों के प्रयोग में हिंदी में दल चिह्न लुप्त हो चुका है, उनमें उसको फिर से लगाने का यत्न न किया जाए; जैसे- महान, विद्वान आदि के न में ।

(ण) स्वन परिवर्तन

संस्कृत मूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी को ज्यों का त्यों ग्रहण किया जाए, अत: 'ब्रह्मा' को 'ब्रम्हा', चइन' को 'चिन्ह', 'उच्छण' को उरिण के रुप में बदलना उचित नहीं । इसी प्रकार ग्रहीत, दृष्टव्य, प्रदर्शनी, अत्याधिक अनधिकार आदि के स्थान पर क्रमश: गृहीत, द्रष्टव्य, प्रदर्शनी, अत्यधिक, अनाधिकार ही लिखना हिए । जिन तत्सम शब्दों में तीन व्यंजनों के संयोग की स्थिति में एक द्वित्वमूलक व्यंजन लुप्त हो गया हैं, उसे लिखने की छूट है; जैसे- अर्द्ध / अर्द्ध, उल्सवल उज्वल, तत्त्व / तत्व आदि ।

विसर्ग

संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्गो का प्रयोग होता है, वे यदि तत्सम रुप में प्रयुक्त हों, तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाए, जैसे- दुःखानुभूति में यदि उस शब्द के तद्भव रुप में विसर्ग का लोप हो चुका हो तो उस रुप में विसर्ग के बिना भी काम चल जाएगा; जैसे- 'सुख-दुख के साथी आदि ।

(ठ) 'ऐ', 'औ' का प्रयोग

हिंदी में 'ऐ' (')ए, औ (ऐ) का प्रयोग दो प्रकार की ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए होता हैं । पहले प्रकार की ध्वनियाँ है, और आदि में हैं तथा दूसरे प्रकार की गवैया 'कौवा' आदि में । इन दोनों ही प्रकार की ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए इन्ही का प्रयोग किया जाए ।

(ड) पूर्वकालिक प्रत्यय

पूर्वकालिक प्रत्यय 'कर' क्रिया से मिलाकर लिखा जाए; जैसे- मिलाकर, खा-पीकर, रो-धोकर आदि ।

(ढ) अन्य नियम

क. शिरोरेखा का प्रयोग प्रचलित रहेगा ।

ख. फुलस्टॉप को छोडकर शेष विराम चिह्न वही ग्रहण कर लिए जाएँ जो अंग्रेजी में पचलित हैं; यथा (-; :? =) आदि ।

ग. पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई का ही प्रयोग किया जाए ।

15.5 भारतीय अंको का अंतर्राष्ट्रीय रुप

आज विश्वभाषाओं में जो अंक नित्यप्रति के प्रयोग में हैं वे भारतीय अंको का अंतर्राष्ट्रीय रुप हैं । इन्हें अरेबिक अंक भी कहा जाता हैं क्योंकि भारत से ये अंक अरब वालों के माध्यम से यूरोप पहुँचे । इनका प्रारंभ भारत में हुआ लेकिन ये अंक बाहर से भारत में आने वाले लोगों के साथ भारत से बाहर जाकर विश्व भ्रमण करके यतकिचित सुधार के साथ जब भारत में पुन: लौटे तो भारत के लोगों में इनसे किसी विदेशी भाषा के अंक होने का भ्रम भी फैला ।

भारतीय अंको का अंतर्राष्ट्रीय रुप 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10 आदि अपनी अमिट पहचान बना चुका हैं । इन्हें संवैधानिक स्वीकृति भी प्राप्त है ।

कई बार भ्रमवश लोग इन्हें अंग्रेजी के अंक कहने की भारी भूल कर बैठते है लेकिन सभी जानते है कि अंग्रेजी के अंक रोमन अंक है: I,II,III,IV,V,VI,VII,VIII,IX,X आदि । रोमन अंक अक्षर है जिन्हें संख्याओं में परिवर्तित कर लिया गया है । जैसे - V=5, X=10, XX=20, XXX=30 आदि । भारतीय अंको की 0 (शून्य) की संकल्पना में जादुई शीका हैं जिसके प्रति पूरा विश्व मंत्रमुग्ध हैं ।

15.6 वैज्ञानिक व तकनीकी भाषा की जटिलता का प्रश्न

चूंकि हिंदी भाषा के प्रयोग में स्वतंत्रता के बाद क्षेत्र विस्तार हुआ है तथा सौइयों प्रयोजन मूलक रुप हिंदी भाषा के पनपे हैं, साथ ही वैज्ञानिक व तकनीकी क्षेत्र में हिंदी के प्रविष्ट होने के कारण उसका मानकीकरण सरकारी प्रयत्नों के माध्यम से करना हुआ तथा पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग ने इस भाषा की जटिलता बढ़ा दी हैं । विषय सम्मत पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग होने के कारण विशेषज्ञता के क्षेत्र की अभिव्यक्ति की भाषा हिंदी बन गई हैं ।

अगर कोई साहित्य पढ़ा हुआ व्यक्ति हिंदी में कितना ही उच्चशिक्षित क्यों न हो लेकिन विज्ञान के किसी खास क्षेत्र की जानकारी न रखने के कारण उस क्षेत्र की हिंदी माध्यम की पुस्तक पढ़ने पर भी उसे अर्थाभास नहीं होगा ।

इसी तरह सरकारी क्षेत्र की नियमावलियों की भाषा के लम्बे-लम्बे वाक्य भाषागत जटिलता पैदा करते ही हैं । विषय की प्रधानता एवं विशेषज्ञता और सूक्ष्मता के कारण भाषा का जटिल होना लाजिमी हैं ।

15.7 वैज्ञानिक व तकनीकी हिंदी भाषा का महत्त्व

वैज्ञानिक, व तकनीकी भाषा हिंदी में अब सभी विषयों की अभिव्यक्ति होने लगी हैं । इस भाषा में विषय विशेष की पारिभाषिक शब्दावलियाँ तैयार हो चुकी है तथा इनका प्रयोग भी संबंधित क्षेत्रों में बखूबी हो भी रहा हैं । प्रत्येक राष्ट्र की अपनी अस्मिता की भाषा होती है तथा प्रत्येक राष्ट्र की पहचान उसकी भाषा से ही होती हैं । अत: भारत में संवैधानिक मान्यताओं के अनुरूप हिंदी में सभी कामकाज करने आवश्यक हैं । इसलिए हिंदी में धीरे-धीरे सभी कार्य होने लगे है तथा गति पकड़ रहे हैं । अत: हिंदी भाषा का वैज्ञानिक एवं तकनीकी भाषा के रुप में महत्व स्वयं सिद्ध हैं ।

15.8 सारांश

वैज्ञानिक व तकनीकी भाषा हिंदी की प्रकृति एवं स्वरुप उसके विविध क्षेत्रों में प्रयोग के कारण ढला है । हिंदी में उसके उत्तम के साथ ही क्रमश: बोलचाल एवं साहित्य के रुप प्रचलित होने लगे तथा बाद में विशेष रुप से स्वतंत्रता के बाद इसमें प्रयोजनमूलक रुप पनपने लगे तथा आज स्थिति यह है कि हिंदी भाषा सभी सूक्ष्म एवं गहन विषयों की अभिव्यक्ति करने में सक्षम

हो गई है । वैज्ञानिक व तकनीकी प्रकृति इसके स्वभाव में है । भारत सरकार ने इसका मानकीकरण कर ही दिया है तथा पारिभाषिक शब्दावली भी प्रचुर मात्रा में तैयार की जा चुकी हैं । अत: इसका प्रयोग आज विविध प्रयोजनमूलक क्षेत्रों में बखूबी हो रहा हैं ।

15.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वैज्ञानिक व तकनीकी हिंदी भाषा का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके स्वरुप का विश्लेषण कीजिए?
2. स्वर व व्यंजन ध्वनियों का वर्णन कीजिए?
3. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए :-
   (क) संयुक्त वर्ण
   (ख) अनुस्वार व अनुनासिकता
   (ग) भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रुप

15.10 सन्दर्भ ग्रंथ

1. डॉ. रामगोपाल सिंह; **आधुनिक हिंदी व्याकरण 2005,** पार्श्व प्रकाशन, झवेरी वाड, रिलीफ रोड, अहमदाबाद
2. डॉ. रामगोपाल सिंह, **हिंदी व्याकरण और रचना 2009,** साहित्य संस्थान ई- 10/660, उत्तरांचल कॉलोनी, लोनी वार्डर, गाजियाबाद
3. डॉ. रामगोपाल सिंह, **भाषिक स्वरुप, संरचना और कार्य,** 2009, नवभारत प्रकाशन, डी-626, गली न. 1 अशोक नगर, नई दिल्ली
4. डॉ. रामगोपाल सिंह; **प्रयोजनमूलक भाषा और अनुवाद,** 2001, पार्श्व प्रकाशन, झवेरी वाड, रिलीफ रोड अहमदाबाद
5. डॉ. रामगोपाल सिंह, **प्रयोजनमूलक हिंदी,** 2005 पार्श्व प्रकाशन, रिलीफ रोड, अहमदाबाद।

इकाई - 16

जनसंचार माध्यम तथा विज्ञापन में हिंदी

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 जनसंचार माध्यम तथा हिंदी

16.3 विज्ञापन में हिंदी

16.4 सारांश

16.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.6 संदर्भ ग्रंथ

16.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- जनसंचार के विविध माध्यमों में हिन्दी के प्रयोग की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- विज्ञापन में हिन्दी भाषा के बढ़ते प्रभाव को समझ सकेंगे ।
- इस प्रकार हिन्दी भाषा की व्यापकता को जान सकेंगे ।

16.1 प्रस्तावना

'संचार' शब्द किसी बात को आगे बढ़ाने, चलाने या फैलाने के लिए प्रयुक्त होता है । संस्कृत की मूल धातु 'चर' से यह बना है । इसका तात्पर्य है 'चलना । जब हम किसी भाव या जानकारी को दूसरों तक पहुँचाते हैं और यह प्रक्रिया सामूहिक रूप से होती है तो यह संचार कहलाती है ।

मूल रूप से अन्य प्राणियों व इंसान में यही अंतर है कि मनुष्य में सोच-विचार, बोलने, अभिव्यक्ति और विश्लेषण करने की क्षमता है । संसार के सभी जीवों में आहार, निद्रा, भय, मैथुन सामान्य रूप में होता है । मनुष्य में यह सभी क्षमताएँ बेहतर स्वरूप में होती हैं ।

पशु-पक्षियों में भी संचार की व्यवस्था होती है । खतरे के समय वे सामूहिक रूप से शोर मचाना शुरू कर देते हैं । मनुष्य समाज ने प्रारम्भिक जनसंचार के तरीकों चीखना-चिल्लाना, संकेत, मुद्राएँ आदि से वर्तमान तक अपने को परिष्कृत किया है । आज का युग जनसंचार का युग है । इसके बिना वर्तमान समाज का पहिया गति प्राप्त नहीं कर सकता है । जनसंचार के माध्यमों का सम्यक लाभ उठाने लिए सरकारी या गैर सरकारी संस्थाओं में कई विभाग बनाए जाते हैं । ये जनसम्पर्क सूचना या प्रसार विभाग के रूप में जाने जाते हैं । देश में केन्द्र व राज्य सरकारों के स्तर पर जन-सम्पर्क' संगठन होते हैं । प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम जनसंचार की इसी परंपरा और इतिहास के विविध पक्षों को आकलित करने के साथ इनकी प्रस्तुति के रूप में हिंदी के पक्षों की पड़ताल करेंगे साथ ही यह भी जानने का प्रयास

करेंगे कि जनसंचार की इस परंपरा को हिंदी के विविध पक्षों ने किस प्रकार से वर्तमान पक्षों तक पहुँचाया है ।

दूसरी ओर विज्ञापन को देखा जाए तो यह अंग्रेजी के एडवरटाइजमेंट शब्द का हिंदी अनुवाद है । यह किसी वस्तु व तथ्य के बारे में विशेष रूप से जानकारी देने के क्रम में भी प्रयुक्त होता है । व्यवसाय के पक्षों में इसे देखा जाए तो विदित होगा कि यह किसी वस्तु के विक्रय के लिए ग्राहकों का ध्यान भी आकृष्ट करता है । यह विक्रय कला के पक्षों का लिखित अथवा मुद्रित रूप भी है । इसका यह भी उद्देश्य है कि इसके माध्यम से किसी उत्पादित वस्तु का अधिकाधिक बाजार मिले । यह अपने कलेवर के माध्यम से ग्राहकों का ध्यान उस ओर आकृष्ट कर अधिक से अधिक माल की बिक्री करवाता है । साथ ही उत्पादन और उसके पक्षों के प्रति ग्राहक के मन में आकर्षण का भाव पैदा करता है । जाहिर है कि इन सब उपादानो के लिए किसी संचार माध्यम या पक्ष की आवश्यकता होती है और यह पक्ष हिंदी के माध्यम से बखूबी निभाया जा सकता है ।

संचार मनुष्य की एक जन्मजात और सहज प्रवृति है । सभी प्राणी जनसंचार की लम्बी श्रृंखला से जुड़े हुए हैं । हम जीवन की लगभग समस्त गतिविधियों में संचार की क्रिया से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष जुड़े हुए रहते हैं । जिस क्षण संचार की यह क्रिया रुक जाती है उसी क्षण मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । मनुष्य संचार की प्रक्रिया के रूप में विचारों का आदान-प्रदान, मतों-अभिमतों की स्थापना, अनुभूतियों का आदान-प्रदान आदि सम्मिलित हैं । संचार प्रणाली के तीन महत्वपूर्ण घटक हैं :-

(1) स्रोत

(2) संदेश

(3) गन्तव्य

इन तीन घटकों के बीच का आपसी सम्बन्ध ही संचार को महत्वपूर्ण दिशा देता है । इन घटकों के समन्वय के लिए भाषा की अपरिहार्यता से भी सभी परिचित हैं । हिंदी अपने विस्तृत कलेवर से इन पक्षों को समन्वित करती है । वर्तमान समय में विभिन्न माध्यमों द्वारा संचार व जनसंचार को गति व दिशा मिलती है । साथ ही विविध विज्ञापनों ने जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया है इसकी प्रक्रिया को हम हर दिन किसी न किसी रूप में विविध संचार माध्यमों यथा टेलीविजन, रेडियो, अखबारों आदि में घटित होते देख सकते हैं ।

16.2 जनसंचार माध्यम तथा हिंदी

भारत में जनसंचार के आरम्भ के लिए हम इतिहास के ज्ञात-स्रोतों की तरह किसी निश्चित तारीख को निर्धारित नहीं कर सकते हैं । किन्तु माना जा सकता है कि मानव के उद्भव' के साथ ही जनसंचार का उद्भव भी हुआ । मानव सदैव ही समन्वयी प्रवृत्ति का रहा है । उसकी चेष्टा रही है कि परिवेश के अनुरूप उसके कार्य की सराहना की जाए और विरोध को समाप्त किया जाए । इसमें 'जनमत' अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । रामचरितमानस में प्रसंग मिलता है कि श्री राम ने एक धोबी के कहने पर सीता को वाल्मीकि के आश्रम में भेज दिया था । प्राचीन काल में राजा अपना वेश बदल कर जनता के सुख-दुःख की जानकारी

रखते थे । बड़े-बड़े सम्राटों और वंशों में गुप्तचर, दूत आदि जनता से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध बनाए रखते थे ।

प्राचीन काल में पड़ोसी राज्यों से आक्रमण ओर सत्ता हस्तान्तरण का' डर बना ही रहता था । ऐसे में दूर-दूर फैले साम्राज्य में सूचना देना व जनता को विपत्ति का आभास दिलाना जरूरी था । अत: आवाजाही के प्रमुख मार्गों पर बुर्जियाँ होती थीं और घुड़सवार, पैदल या अन्य सैनिक एक बुर्जी से दूसरी तक समाचार पहुँचाते थे । जन-सम्पर्क को अधिक प्रभावी बनाने के लिए शासक जनता की आशाओं का अनुमान भी लगाते थे । ऐसे राजा जो समाज की कल्याणकारी गतिविधियों के लिए जागरूक थे वे अपने महत्वपूर्ण निर्णयों को 'शिला-लेखों' के रूप में राज्य के कई भागों में लगावा देते थे। 'अशोक' का नाम इतिहास में ऐसे जन-सम्पर्क कर्मी के रूप में विख्यात है जिसने जनसंचार को व्यापक आयाम दिया था । इसी प्रकार अन्य शासक भी महत्वपूर्ण धर्मादेशों राजाज्ञाओं व फरमानों को जनता तक पहुँचाते थे । राजाओं ने अपने काल की उपलब्धियों हेतु अपने राज्य में प्रवीण लेखकों व कवियों को श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया हुआ था जिससे उनकी उपलब्धियाँ दूर-दराज तक पहुँचती थी । मुनादी व फरमान द्वारा राजा जन सामान्य तक पहुँचाई जाती थी । प्राचीन भारत में विभिन्न युगों में धर्म ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । हर एक राजा किसी न किसी धर्म का अनुयायी रहा है । इसलिए उसकी इच्छा व प्रकृति के अनुरूप जनसंचार की कार्यवाही ब्राह्मण, ?ऋ-मुनि, मंत्री जैसे वर्ग पर थी । वह समय-समय पर राजा को उचित शिक्षा और मार्गदर्शन भी देता रहता था । चक्रवर्ती सम्राटों ने जनसंचार के ऐसे तरीके अपनाए थे जिससे सामान्य जन उन्हें समर्थन दे और छोटे राजाओं व सामंतों का साथ भी उन्हें मिलता रहे । राजा इसी प्रयोजन हेतु ऐसे दूत रखते थे जो शुद्ध हृदय वाले, चतुर व कुलीन होते थे । वे देश काल की स्थितियों के पारंगत भी होते थे । तत्कालीन समय में जनसंचार का सीधा सा महत्व राजनीतिक भी था । वे अपनी प्रभुता व सम्पन्नता को जनसंचार के माध्यम से निरन्तर विकसित करना चाहते थे ।

राजा-महाराजाओं और गुलामी का युग समाप्त हो जाने के पश्चात् गणतंत्र की घोषणा हुई । प्रजातंत्र में यह माना गया कि इसमें जनता द्वारा चुनी गई सरकार होने के नाते 'जनसंचार' का महत्वपूर्ण स्थान है । आज संसार का कोई भी शासन-तंत्र क्यों न हो वह जनसंचार के बिना भली-भाँति कार्य नहीं कर सकता है । आज के युग में शासन-तंत्र की कठिनाइयों व जटिलता के कारण शासक व शासित के बीच की दूरी को कम करने के लिए 'जनसंचार' पुल का कार्य करता है । लोकतंत्र की प्रणाली तो वैसे भी 'बहुजन-हिताय, बहुजन सुखाय'की अवधारणा पर कार्य करती है । अत: जनसंचार दो बिन्दुओं पर केन्द्रित हो जाता है । प्रथम तो सरकार अपनी नीतियों और कार्यक्रमों के लिए उत्तरदायी होती है और द्वितीय बेहतर प्रशासन के लिए लोगों की सहभागिता और मतदाता के समर्थन की आवश्यकता रहती है ।

संचार व उसके व्यापक पक्ष जनसंचार को देखा जाए तो इनकी विविध परिभाषाएँ नामचीन विद्वानों नें दी हैं जिनके माध्यम से इन दोनों ही पक्षों को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है ।

संचार : परिभाषाएँ

संचार की निम्नांकित परिभाषाएँ महत्वपूर्ण हैं :-

"संचार एक ऐसी क्रिया है जो अपने होने मात्र से ही सामूहिकता को बढ़ाती है" **- लांगमैन**

"केवल व्यक्ति द्वारा दूसरे को सार्थक संदेश प्रेषित करना ही संचार है ।" **-डिनिस मैकक्वेल**

"परस्पर क्रिया का वह रूप जो संकेतों के माध्यम से घटित होता है । '' **- लूंदबेर**

''संचार व्यक्तियों के बीच अर्थ का संप्रेषण है । " **- चार्ल्स आर. राइट**

''संचार एक ऐसा साधन है जिसके जरिए किसी समूह विशेष के प्रतिमान व्यक्त होते हैं तथा जिनके जरिए

उसमें सामाजिक नियन्त्रण स्थापित किया जाता है, भूमिकाएँ बाँटी जाती हैं, प्रयासों में समन्वय स्थापित

किया जाता है, उसकी उम्मीदें जाहिर होती हैं तथा समूची सामाजिक प्रक्रिया चलाई जाती है । " **-मेल्विन एल. दे पिलदेर**

''संचार का मतलब है यह परखना कि किससे किस रास्ते क्या कहना है तथा उसका क्या प्रभाव होता है । "

- हैरॉल्ड डी. लॉसवेल

जन-सम्पर्क. परिभाषाएँ

"जन-सम्पर्क हेतु निम्नांकित विद्वानों की परिभाषाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं :-

"वास्तविक रूप में जन-सम्पर्क दो पक्षों का संप्रेषण है, जिसमें सहमति का आधार सम्पूर्ण सत्य का ज्ञान तथा

पूर्ण सूचनाएँ होती हैं जिनसे तनाव कम होता है तथा आपसी सौहार्द पैदा होता है । इसका मुख्य कार्य जन-मन को प्रभावित करना है । " **- आर्थर रॉलमैन**

"जन सम्पर्क विभिन्न सामाजिक विज्ञानों का सम्मिश्रण है, जो हमें व्यक्ति और समूह की प्रतिक्रिया से अवगत कराता है । यह संप्रेषण का वह विज्ञान है जो तनाव को दूर कर बेहतर सम्बन्ध बनाते हुए सहमति का निर्माण करता है । **सैमे ब्लैक**

"जन-सम्पर्क का कार्य विवेकपूर्वक, योजनाबद्ध तथा सतत् प्रयास द्वारा संगठन और उसकी जनता के बीच परस्पर सहमति बनाए रखना है । **- ग्रेट ब्रिटेन जन-सम्पर्क संस्थान**

"आधुनिक प्रशासन में जन-सम्पर्क तथा प्रसार-प्रचार का सीधा सा अर्थ है : उद्योग में मानवीय दृष्टिकोण का अध्ययन तथा शासन में इसका विस्तार । जन-सम्पर्क के आवश्यक तत्व हैं -

1. जनता की इच्छाओं व भावनाओं का ज्ञान ।
2. अधिकारियों व जनता के बीच संतोषजनक सोच-विचार तथा समन्वय । **- बेबनर**

"जन-सम्पर्क विचारों के संप्रेषण का वह शिल्प है जिसके द्वारा विभिन्न प्रकार का जनता के साथ सम्पर्क कर इच्छित परिणाम की प्राप्ति की जा सकती है । इसे प्रबन्ध का कर्त्तव्य भी कहा जा सकता है जो जनता की रूचियों और अभिमत का ध्यान रखता है, उसका विश्लेषण करता है और उसके अनुरूप इस शिल्प के समाचार अपने संगठन की नीतियों,

प्रक्रियाओं एवं कार्यक्रमों के जन-अभिमुख बनाने व प्रतिष्ठा प्राप्त करने के उद्देश्य से संचालित करता है । " **- भारतीय सम्पर्ककर्मी**

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हम देखें तो जनसंचार के विविध माध्यम हमें निम्नलिखित स्वरूपों में देखने को मिलते हैं । इनसे एक ओर तो आमजन के बीच अपनी बात और भाव को पहुँचाने का कार्य होता है वहीं इनके माध्यम से समाज और संचार की व्यापक अवधारणाओं को बल भी मिलता है । साथ ही समाज में आपसी समन्वय, सूचना व संचार के नवीन पक्षों को बल मिलता है ।

प्रेस (Press):

जनसंचार की यह प्रमुख शाखा समाचार-पत्र के रूप में जानी जाती है । समाचार पत्र दैनिक, साप्ताहिक पाक्षिक, नियतकालिक सभी प्रकार के होते हैं ।

समाचार पत्रों को खबर समाचार एजेन्सियों व संवाददाताओं के माध्यम से मिलती है । जनसम्पर्क के माध्यम के रूप में प्रेस के महत्व को स्वीकार करते हुए सभी जनसम्पर्क विभागों में समाचार पत्रों, रेडियो, दूरदर्शन व अन्य मीडिया के साथ सम्पर्क बनाए रखने के लिए प्रेस अनुभाग बनाया जाता है ।

मुद्रित सामग्री

(Print Material)

समाचार पत्रों के अलावा अन्य छपी हुई सामग्री को इस श्रेणी में लिया जाता है । पोस्टर, पैम्पलैट फोल्डर, पुस्तक, पत्रिका आदि भी जनसंचार का प्रमुख माध्यम होती हैं । भले ही ये देखने में छोटे-छोटे प्रकाशन लगे पर इन्हें वितरित करना आसान होता है । मुद्रित सामग्री की इस विधा में भारतीय भाषाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है क्योंकि जनता इन्हें आसानी से पढ़ सकती है । आम जनता तक पहुँचने के लिए भी यह सामग्री प्रभावी होती है । इस प्रचार माध्यम का प्रयोग आम जनता के लिए होता है अत: इसकी भाषा सर्व सरल और सर्वग्राह्य होनी चाहिए ।

रेडियो (Radio) :

रेडियो जनसम्पर्क का एक प्रबल माध्यम है । इसकी पहुँच अत्यन्त व्यापक है । इस माध्यम से एक ही समय में शहरों से लेकर गाँव तक करोड़ों लोगों से स्पष्ट सम्पर्क साधा जा सकता है । रेडियो में श्रोता को सुनने वाले की ओर से आमने-सामने होने की अनुमति होती है । घर बैठे ही काम करते-करते भी इस पर समाचार, गाने, वार्ता, भाषण, नाटक आदि सुने जा सकते है । रेडियो की सहज उपलब्धता ने उसे दूर-दराज के गाँवों और आम लोगों तक पहुँचा दिया है ।

चलचित्र व टेलीविजन : (Films & Television)

फिल्म व टेलीविजन में देखने के साथ सुनने का आनंद भी लिया जा सकता है । इन्हें देखने से मन में ऐसी अनुभूति होती है कि यह घटना मैंने प्रत्यक्ष देखी है । जनसंचार में वृत्त चित्रों को (जिस विषय का प्रचार चाहा गया है) लेकर प्रदर्शन के वक्त दृश्यों की कलात्मकता, संगीत, नृत्य, संवादों से ऐसा प्रभाव पड़ता है जो लम्बे समय तक जारी रहता है । व्यक्ति व

समूह में यह 'देखे' व सुने की अवधारणा का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है । भाषा ज्ञान भी इसमें आड़े नहीं आता अशिक्षित से लेकर उच्च शिक्षित तक सभी व्यक्ति इसके प्रभावों में बँध जाते है । जनसंख्या नियन्त्रण, साक्षरता, राष्ट्रीय एकता, कृषि, जन-स्वास्थ्य आदि विषयों को जनसंचार के इस माध्यम ने बहुत ही खूबी के साथ उठाया है ।

क्षेत्रीय प्रचार तंत्र :

(Regional publicity Bodies)

क्षेत्रीय प्रचार तंत्र के लिए सरकारी तौर पर हर जिले में जन सम्पर्क अधिकारी (Public Relation Officier) होता है । यह अधिकारी जन-संचार के सभी माध्यमों का उपयोग कर नीतियों, योजनाओं, प्रशासन व चेतना को प्रसारित - प्रचारित करता है । जनसम्पर्क अधिकारी को पत्रकार, प्रखर वक्ता, प्रशासक व मिलनसार बनना पड़ता है । ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में कार्य करते हुए वहाँ की संस्कृति, प्रथाएँ नीतियाँ, शिक्षा व मानसिक स्तर का ध्यान रखना होता है । जनसम्पर्क अधिकारी के साथ निचले स्तर के कर्मचारियों की पूरी टीम एक दृढ़ भावना के साथ सामाजिक विकास को गति देती है ।

बातचीत की कला :

(Communication Skill)

जन-संचार में लगे हर व्यक्ति को बातचीत में माहिर होना चाहिए । घर-परिवार और सामान्य रूप से की जाने वाली बातचीत के अलावा जन-संचार में 'निरर्थक' की कोई जगह नहीं होती है । जनसंचार में बातचीत का कोई लक्ष्य होता है, तौर-तरीके होते हैं । इस 'लक्ष्य' में लिए गए लोगों को समझाने व उन तक अपनी बात पहुँचाना महत्वपूर्ण होता है । बातचीत वही अच्छी कर सकता है जो स्वयं अच्छा श्रोता भी हो एवं जो दूसरों को सुनने में धैर्य से काम ले । जनसंचार हेतु इस तरीके को अपनाने में व्यक्ति को गोष्ठियों, सेमिनार आदि में वार्ता करनी पड़ती है । प्रश्नोत्तर से रूबरू होना पड़ता है लोगों की जिज्ञासा और प्रश्नों के उचित समाधान देने होते हैं । अत: भाषा को सरल, सुबोध व स्पष्ट होना चाहिए । दूसरों की बातों को सुनकर उनकी राय जानना व सम्मति देना महत्वपूर्ण है । तभी लोग आपसे जुड़ेंगे । लोग आपके कथन में रूचि ले आगे बढ़कर प्रश्नोतर करें तभी इसकी सार्थकता है ।

अब बारी आती है इन सभी को सार्थकता के साथ संप्रेषित करने के लिए भाषा की । इस संदर्भ में स्पष्ट मत है कि इन सभी के लिए ऐसी भाषा की आवश्यकता है जो आम जन के बीच लोकप्रिय तो हो ही साथ ही उसकी संप्रेषणीयता भी असंदिग्ध हो, वह ऐसी भी होनी चाहिए जिसे पढ़कर सभी उपर्युक्त घटनाओं के विषय में जानकारी हासिल करने में पूर्णत: समर्थ सिद्ध हो सकें । इसमें किसी भी किस्म का अवरोध व जटिलता होगी तो पाठक तक उसका अर्थ नहीं पहुँच पाएगा । हिंदी अपने प्रयुक्त पक्षों में इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति करती है । जनसंचार माध्यमों को भौगोलिक, शैक्षिक व सामाजिक स्तर पर विविधताओं वाले समाज से जूझना होता है । ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि संचार माध्यमों में भाषा का प्रयोग रचनात्मक ढंग से किया जाए । इसके लिए हिंदी उपयुक्त है क्योंकि वह सहज भी है और सरल भी । इसमें संप्रेषणीयता भी है और साथ ही जनमानस के पक्षों को छूने की क्षमता भी । लोकजीवन भी

इसके पक्षों से अछूता नहीं है, वह जनसंचार के बीच में छिपे भावों को सहज ही इस भाषा में ग्रहण कर लेता है । बात चाहे चेतना की हो या सूचना की । सरकारी योजनाएँ हों या शैक्षिक प्रविधियाँ, मनोरंजन हो या समाचार, या फिर बात समाज या दीन - दुनिया की हो प्रत्येक जगह हिंदी ही अपने फैलाव और प्रयुक्ति पक्षों के कारण इन माध्यमों की उपयोगिता को सहज ही प्रमाणित कर देती है । भारत में जन-संचार के लिए एक पूरा मंत्रालय कार्य कर रहा है जिसे सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय कहा जाता है । इसके अधीन 14 इकाइयाँ, तीन पंजीकृत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम तथा तीन पंजीकृत स्वायत संस्थाएँ है।

ये निम्नांकित हैं -

(1) आकाशवाणी

(2) दूरदर्शन

(3) प्रेस सूचना कार्यालय

(4) फिल्मस् डिवीजन

(5) विज्ञापन तथा दृश्य प्रचार निदेशालय

(6) प्रकाशन विभाग

(7) संगीत तथा नाटक विभाग

(8) क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय

(9) फोटो डिविजन

(10) संदर्भ एवं अनुसंधान निदेशालय

(11) रजिस्ट्रार न्यूज़ पेपर ऑफ इंडिया

(12) फिल्मों से सम्बन्धित बोर्ड

(13) फिल्म उत्सवों का निदेशालय

(14) भारतीय फिल्मों. का राष्ट्रीय संग्रहालय

पंजीकृत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम :- ये निम्नांकित हैं

(1) भारतीय चल-चित्र निर्यात निगम

(2) फिल्मों के विकास का राष्ट्रीय निगम

(3) फिल्म वित्त निगम ।

पंजीकृत स्वायत्त संस्थाएं :-

ये निम्नांकित हैं :

(1) भारतीय जनसंचार संस्थान

(2) फिल्म और टेलीविजन संस्था

(3) चिल्ड्रन फिल्मस् सोसाइटी

ये सभी पक्ष अपने - अपने उद्देश्यों के लिए हिंदी को ही अपना प्रमुख संप्रेषण माध्यम बनाते हैं और साथ ही उसे इस रूप में प्रयुक्त करते है कि वह जन - जन तक संप्रेषणीयता की

दृष्टि से प्रभावी रूप में पहुँच सके । हिंदी के प्रभावी पक्षों की प्रयुक्ति के लिए आवश्यक है कि हम इसकी प्रयुक्ति में निम्नलिखित बिंदुओं पर सावधानी बरतें ।

1. इन माध्यमों में प्रयुक्त होने वाली हिंदी भाषा सरल, सहज और संप्रेषणीयता के पक्षों को लिए हुए हो ।
2. इसका वाक्य विन्यास इस तरह सुनिश्चित किया जाए कि उसमें जटिलता न आने पाए।
3. उच्चारणगत शुद्धता के पक्षों का विशेष ध्यान रखें क्योंकि आमजन में भाषा का फैलाव उच्चारण पक्षों को देख - सुनकर ही किया जाता है ।
4. वर्तनी संबंधी अशुद्धियों से बचना चाहिए क्योंकि आमजन प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में उनसे सीखता भी है ।

सफल जनसंचार वही है जहाँ विभिन्न विरोधी शक्तियों के बीच अपनी बुद्धि व विवेक के बल पर वह आगे बढ़ता जाए । आधुनिक भारत में जनसंचार के विकास हेतु कार्यशील प्रमुख साधन निम्नोक्त हैं जो हिन्दी के विविध स्वरूपों को विविध माध्यमों से बढ़ावा दे रहे हैं ।

दूरदर्शन

सितम्बर, 1959 में दिल्ली से पहली बार शुरू हुआ यह माध्यम आज देश की जनता के 52 प्रतिशत क्षेत्र तक अपने कार्यक्रमों को पहुँचाता है । राष्ट्रीय एकता, वैज्ञानिक जानकारी, परिवार कल्याण, कृषि, पर्यावरण, महिला व बाल विकास, खेलकूद, कला व संस्कृति, इतिहास, साहित्य आदि क्षेत्रों के रोचक कार्यक्रमों की प्रयुक्ति में हिंदी के माध्यम से सरकार एवं उसकी सोच व कार्यक्रम जनता तक पहुँचते हैं, हिंदी में ही जनता की प्रतिक्रिया व मतों के आधार पर उनकी नीतियों व कार्यक्रमों का निर्धारण भी होता है ।

रेडियो

भारत की विशाल जनसंख्या के सर्वाधिक भाग तक पहुँचने का माध्यम रेडियो है । अपने हिंदी समाचार बुलेटिन से लगभग 9० प्रतिशत भारतीय समाज रेडियो से लाभान्वित होता है । रेडियो जिसे आकाशवाणी भी कहा जाता है ने समाचार, लोक-संगीत, व्याख्यान, वार्ताएँ, परिचर्चाऐं बाल व महिला कार्यक्रम, कृषि, सैनिक, गीत-संगीत आदि के जरिए देश के लोगों में हिंदी की व्यापकता को आकार देकर अपनी गहरी पैठ बनाई है इस माध्यम को हिंदी के क्रम में देश की धड़कन भी माना जा सकता है । लोक-कल्याण की योजनाओं और जनता व शासक के मध्य सूचना-तंत्र के लिए यह हिंदी में सेतु का कार्य करता है ।

चलचित्र

इस प्रयोग की स्थापना 1948 में हुई थी इसका मुख्य प्रयोजन फिल्मों के माध्यम से सरकार के कार्यक्रमों का प्रचार करना है । यह माध्यम अपने उद्भव रवे ही हिंदी के विकास पक्षों को आकार देता रहा है । यह दो प्रकार के चित्र तैयार करता है (1) वृत चित्र, (2) समाचार चित्र । देश के विभिन्न सिनेमाघरों में इन्हें यथासमय एवं अवसरानुकूल दिखाया जाता है । यह प्रभाग विभिन्न समारोहों, उत्सवों तथा देश के सांस्कृतिक जनसंचार के स्थानों, स्वतंत्रता संग्राम आदि पर भी फीचर एवं कार्टून फिल्में हिंदी में तैयार करता 'है ।,

पत्र सूचना विभाग

यह कार्यालय सरकारी नीतियों व गतिविधियों की जानकारी हिंदी में जनता को देता है। यह सरकार व संचार माध्यमों के बीच तालमेल का कार्य भी करता है । समाचार एजेन्सियों, देशी-विदेशी पत्र-पत्रिकाओं, दूरदर्शन, आकाशवाणी आदि को भी यह हिंदी में आवश्यक व आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध करवाता है । जनता की राय व प्रतिक्रिया से भी यह सरकार को अवगत कराता है ।

प्रकाशन विभाग

देश-विदेश के लोगों को भारत व उसके सन्दर्भो की सटीक व सही जानकारी देने के लिए महत्वपूर्ण मुद्दों व विषयों पर विभिन्न भाषाओं में पुस्तकें, फोल्डर, पेम्फ़लेट तथा पत्र पत्रिकाएँ हिंदी में प्रकाशित करता है । बाल-साहित्य, रोजगार, ग्रामीण विकास, साहित्य संस्कृति, महत्वपूर्ण व्यक्तियों, सरकारी भाषणों, उपयोगी लेखों आदि के संग्रह भी यह विभाग हिंदी में सराहनीय प्रकाशन करता है ।

18.3 विज्ञापन में हिंदी

विज्ञापन : अर्थ

(Advertisement: Meaning)

विज्ञापन का नाम अन में आते ही एक सतरंगी दुनिया आँखों के सामने तैर जाती है । आज किसी भी वस्तु, सेवा या विचार को आगे बढ़ाने के लिए विज्ञापन को एक सहारा बनाया जाता है । आज का युग विज्ञापन का युग है । हर ओर किताबों से लेकर पत्रिकाओं तक, सड़क से लेकर घर तक और संचार से लेकर तमाम साधनों मे विज्ञापन ही विज्ञापन नजर आते हैं । विज्ञापन की प्रस्तुति में भाव संप्रेषण के लिए हिंदी की प्रयुक्ति भी व्यापक पैमाने पर दिखाई देती है ।

विज्ञापन के व्यापक फैलाव के अनुरूप इसकी व्यापक परिभाषाएँ इस प्रकार हैं:

"जिसके द्वारा कोई बात लोगों को बतलायी जाए, वह सूचना पत्र, इश्तिहार, बिक्री आदि के माध्यम से हो और जो सूचना माध्यमों के द्वारा दी जाए । " **- रामचन्द्र वर्मा**

'समझना, सूचना देना, इश्तहार, निवेदन, प्रार्थना । "

- वृहत् हिन्दी कोष - सम्पादक : कालिका प्रसाद

"एक सीधी कार्यवाही को उकसाने के उद्देश्य से किसी संचार माध्यम में समय या स्थान की खरीद का नाम विज्ञापन है । **- डॉ. एम. बाउस**

"विज्ञापन एक व्यक्ति के मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क में एक विचार को स्थानान्तरित करने का कला है । **- रोजर रीवज**

'विज्ञापन मे उन दृश्यों एवं मौखिक संदेशों को सम्मिलित किया जाता है जो समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, चलचित्र रेडियो, टेलीविजन, परिवहन के साधनो अथवा बाह्य बोर्डों पर दिए

होते हैं और जिनके लिए विज्ञापनकर्ता भुगतान करते हैं और जिनका उद्देश्य उपभोक्ताओं के क्रय आचरण को प्रभावित करना होता है । **- कैनन एवं विचर्ट**

विज्ञापन सूचना का जन-संचार है जिनका उद्देश्य ग्राहकों को समझाना व जीतना होता है ताकि विज्ञापनकर्ता को अधिक से अधिक लाभ मिले । " **- जेग्स ए लिटिलफील्ड**

सभी विज्ञापन मूलत: सूचना पर आधारित होते हैं । हर विज्ञापन का मूलभूत कार्य है सूचना देना या कोई तर्क प्रस्तुत करना । साथ ही वह तात्कालिक रूप से कोई न कोई प्रभाव भी प्रस्तुत करना है । इसके लिए सभी को अपरिहार्य रूप से एक भाषा की आवश्यकता होती है । इसमें महत्त्वपूर्ण यह है कि वह संचार प्रभावी और द्रुत गति से होना चाहिए । साथ ही उसका अर्थ लोगों की समझ में आसानी से आ जाना चाहिए । विज्ञापन समझाने मानने और अन्त तक व्यक्ति का पीछा करने की प्रक्रिया है । यही उसकी प्रकृति भी है । इसलिए विज्ञापन में आवश्यक रूप से यह प्रकृति होनी चाहिए कि वह संभावना और ग्राहक को निरन्तर तलाशता रहे । अपने और अपनी वस्तुओं के बारे में विस्तार से बताना और इस तरह बताना कि उनका दृष्टिकोण और उनकी धारणा विज्ञापनकर्ता के पक्ष में सटीक रूप से प्रभावी हो जाए । इन पक्षों के लिए भाषा की प्रयुक्ति एक प्रभावी मुद्दा है और इसी से विज्ञापन अपनी प्रकृति के अनुसार खरीद के लिए पाठक, श्रोता व दर्शक को उकसाते हैं । विज्ञापन हमेशा ही लाभ के उद्देश्य को लेकर चलते हैं । यूँ तो अधिकांश यह लाभ प्रस्तुतकर्ता को वस्तु के बेचान से होने वाला मुनाफा ही होता है पर कभी-कभी जन-जागरण, माहौल, सेवा के बारे में विचारधारा, सामाजिक बदलाव, वैचारिक उत्थान, सरकारी रीति-नीति का प्रचार, राजनीतिक लाभ आदि वृहद् उद्देश्यों के आधार पर भी विज्ञापन जारी किए जाते हैं । इन पक्षों के लिए हिंदी में भाषा प्रयुक्ति की प्रायिकता भारतीय समाज में क्रम में आसानी से आकलित की जा सकती है । सार रूप में आकलित करें तो विज्ञापन के उद्देश्य इस प्रकार हो सकते हैं -

(1) उस सभी संदेशों का एक अंश प्रस्तुत करना जो उपभोक्ता पर प्रभाव डालें ।

(2) वस्तुओं, कम्पनियों व संस्थाओं के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत होना ।

(3) समाज की एक प्रतिनिधि संस्था के रूप में उद्यम प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग होगा।

(4) वस्तु की बिक्री संवर्धन में एक कुशल हथियार ।

(5) एक प्रभावी विपणन औजार है जो लाभकारी संगठनों और प्रबंधनों को अपना उद्देश्य प्राप्त करने में सहायता करता है ।

(6) समाज की उभरती व्यावसायिक आवश्यकताओं को पूरा करना ।

(7) व्यावसायिक तौर पर जारी संदेश जिसके विभिन्न अंश उपभोक्ताओं को लाभप्रद, सम्बन्धित व निश्चित सूचना प्रदान करता है ।

(8) आर्थिक क्रिया जो विभिन्न नियमों कानूनों के मध्य चले ।

इन उपर्युक्त उद्देश्यों को लेकर चलने वाली प्रक्रिया विज्ञापन उपभोक्ता व निर्माता के मध्य की प्रक्रिया है । हिंदी इस प्रक्रिया को आगे तो बढ़ाती है साथ ही वह यह सुनिश्चित भी करती है कि हर स्थिति में अपने संदेश को उपभोक्ता के मानस पटल पर अंकित कर सके ।

आदिकाल से ही भारत में विभिन्न अवसरों पर विज्ञापन अपने किसी न किसी स्वरूप में उपस्थित रहा है । आध्यात्मिक से लेकर पौराणिक कहानियों में अनेक घटनाओं का उल्लेख

मिलता है जिसमें बड़े आधार पर विज्ञापन के लिए तत्कालीन प्रचार-माध्यमों का प्रयोग किया गया था । ढोल नगाड़ों के साथ मुनादी करवाना या डुगडुगी बजाकर राजाओं के निर्देशों के प्रचार का उल्लेख अनेक जगहों पर मिलता है । महाभारत व रामायण काल में स्वयंवर व यज्ञों आदि के लिए पूर्व-प्रचार के विभिन्न उल्लेख मिलते हैं । मल्ल युद्धों, खेलकूदों, तमाशों. नौटंकी आदि लोक कार्यक्रमों में आमंत्रण के लिए भी प्रचार साधनों का उपयोग किया जाता रहा है । भारत की पूर्व महान सभ्यताओं हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के उत्खनन में मिले अवशेषों में भी जो मोहरे व मुद्राएँ मिली हैं वे आधुनिक 'लोगों' व 'ट्रेड-मार्को' का ही रूप है । विज्ञापनों में वर्तमान में जिस कला व प्रस्तुति के दर्शन होते हैं । वही कला व प्रस्तुति तत्कालीन अवशेषों में भी दिखाई पडती है ।

सम्राट अशोक ने अपने धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अनेक शिलालेख व उत्कीर्णन किए, ये एक प्रकार के विज्ञापन ही थे । सारनाथ की एक ऐसी ही लाट वर्तमान भारत के राष्ट्रीय चिह्न का आधार है भारत के विभिन्न मंदिरों, मठों, गुफाओं आदि में उत्कीर्णित चित्र मूर्तियाँ आदि तत्कालीन समाज के धर्म, अर्थ, काम. मोक्ष के विभिन्न स्वरूपों को विज्ञापित करती हैं ।

समय के आधारभूत तथ्यों के साथ कलाएँ व माध्यम धीरे-धीरे परिष्कृत होकर समाज में अपना स्थान बनाते रहे । आधुनिक विज्ञापन कला के सूत्र भारत में प्रेस के आगमन से शुरू हुआ । यह प्रेस पुर्तगालियों द्वारा सन् 1556 में गोवा में लगाई गई थी । व 877 में हिकी ने कोलकता से अपने प्रेस की बुनियाद रखी । 29 जनवरी 1780 को उसने साप्ताहिक समाचार पत्र प्रारम्भ किया । इसमें विज्ञापन की शुरूआत भी की गई । 1784 से लेकर 19वीं सदी के प्रारम्भ के वर्षा तक इनमें सामाजिक सरोकारों के विज्ञापन प्रकाशित होते थे । ये विज्ञापन न केवल उपभोक्ता वस्तुओं को प्रभावित करते थे बल्कि देश की तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक स्थिति को भी परिलक्षित करते थे । इस समय के पश्चात् छपने वाले विज्ञापनों में स्वदेशी भारत की भूमि के प्रति प्रेम व संस्कृति संबंधी अवयव होते थे । भारत का उत्तर स्वदेशी वस्तुएँ खरीदें जैसी उक्तियां विज्ञापनों की आधार पंक्तियाँ थीं और इसके लिए हिंदी प्रयुक्ति के विलक्षण प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं ।

1906 में धारीवाल मिल ने ऊनी वस्त्रों के एक विज्ञापन में इंगित किया था कि 'भारत के लिए भारत में बना' । इसी प्रकार अनेक विज्ञापनों में स्वदेशी' का उपयोग किया गया । वन्दे-मातरम् और बकिमचन्द्र चटर्जी के चित्र भी कई विज्ञापनों के अंग बने । 1900 में पहली बार जब भारतीय मॉडलों का प्रवेश हुआ तब सर्वप्रथम पुरूषों का ही आगमन हुआ । महाराजाओं की तस्वीरें भी प्राय: छपती थीं । मॉडल के रूप में भारतीय महिलाओं व लड़कियों के चित्र स्वतंत्रता के पश्चात के विज्ञापनों में देखने को मिले । 1931 में भारतीय फिल्म 'आलमआरा' में विज्ञापन प्रकाशित हुए । 1920 में कुछ विदेशी कम्पनियों ने अपने विज्ञापन कार्यालय भारत में खोले, तभी से भारतीय विज्ञापन कला को व्यवसायिक रूप मिला । 1930 में पहली भारतीय एजेन्सी स्थापित हुई जिसका नाम था नेशनल एडवरटाइजिंग सर्विस' । इसके पश्चात मद्रास में मॉडर्न पब्लिसिटी कम्पनी, कलकता में कलकत्ता पब्लिसिटी कम्पनी और त्रिचुरापल्ली में ओराएइंटल एडवरटाइजिंग एजेन्सी की स्थापना हुई । 1939 ई. में इंडियन एण्ड ईस्टर्न न्यूज

पेपर सोसायटी की स्थापना हुई । इसका उद्देश्य समाचार पत्रों के आम व्यावसायिक उद्देश्यों को बढ़ावा देना था । द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सरकारी प्रचार कार्य का बड़े स्तर पर प्रचार हुआ । इससे हिंदी की प्रयुक्ति को बहुत व्यापकता मिली क्योंकि हिंदी के माध्यम से आम से खास तक महत्त्वपूर्ण पक्षों को संप्रेषित किया जा सकता था ।

वर्तमान युग विज्ञापन का ही युग है । हर ओर बिखरे संचार माध्यम में हमें विज्ञापनों का ही बोलबाला दिखाई देता है साथ ही दिखाई देती है हिंदी जो आज विज्ञापनों का अपरिहार्य पक्ष हो गई है । दैनिक जीवन। की कोई भी वस्तु हो हर ओर एक विज्ञापन इंगित करता है । वह उपभोक्ताओं को चयन और कार्य के अनेक पहलुओं से अवगत कराता है । साथ ही सामाजिक जीवन से जुड़े सरोकारों का प्रत्येक पक्ष भी विज्ञापन से जुड़ा है । शिक्षा, नौकरी, बेचना, खरीदना, विवाह, किराया, आवश्यकता आदि अनेक क्षेत्रों के सैकड़ों विज्ञापन हमारी दृष्टि से गुजरते हैं और उनके कथ्य के क्रम में हम हिंदी भाषा और उसकी प्रयुक्ति के विविध पहलुओं से अवगत होते हैं ।

आकाशवाणी, दूरदर्शन, अखबार, फिल्में, मनोरंजन चैनल आदि में हर कहीं विज्ञापनों का ही बोलबाला है । साथ ही आज इनका सामयिक महत्त्व भी है । दुनिया के इतने बड़े विस्तृत परिप्रेक्ष्यों में विज्ञापन की महता अपने आप सिद्ध हो गई है । भारत सरकार का विज्ञापन एवं दृश्य प्रचार निदेशालय सरकारी तौर पर इनकी व्यवस्था एवं नियमन करता है । विज्ञापनों से ही आज की सामाजिक एवं शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण आदि के प्रति समाज के लोगों को जानकारी हिंदी के माध्यम से दी जाती है । साथ ही जनचेतना भी जागत की जाती है । सरकारी योजनाओं, कार्यो व गतिविधियों का ब्यौरा भी इन्हीं से मिलता है । नौकरी की तलाश, पढ़ने के अवसर शादी-सम्बन्ध, उपभोक्ता वस्तुओं के चयन की सुविधा व दैनिक जीवन के सरोकारों से जुडे विभिन्न प्रश्न भी इससे समाहित किए जाते हैं ।

विज्ञापन अपने-आप में एक विविधापूर्ण पक्ष है । अत: इसके किसी भी वर्गीकरण को अन्तिम नहीं कहा जा सकता है । कभी इसका आधार विज्ञापन को प्रभाविता से जुड़े दर्शक होते हैं तो कभी ये माँग के आधार पर हो सकते हैं । कभी यह विभाजन उद्देश्यपूर्ण आधार पर होता है तो कभी भौगोलिक क्षेत्र की सीमाओं के आधार पर, यह विभाजन विषय-वस्तु के आधार पर भी हो सकता है । सार रूप से इन आधारों पर विज्ञापन को बाँटा जा सकता हैं ।

उद्देश्य के आधार पर वर्गीकरण

(Classification on the Basis of Objective)

उद्देश्यों के आधार पर वर्गीकरण निम्नांकित प्रकार से किया जा सकता है ।

(1) वस्तुओं या सेवाओं के विज्ञापन :

इस प्रकार के विज्ञापन किसी वस्तु या सेवा की प्रतिष्ठा या बिक्री बढ़ाने के लिए बनाए जाते है । वर्तमान बाजार में विज्ञापनों का जो वर्चस्व है वह इसी स्वरूप का है । इन विज्ञापनों का यह उद्देश्य होता है कि हर प्रकार की सम्भावना वाले उपभोक्ता वर्ग को आकर्षित किया जाए तो उस वस्तु के खरीददार हो सकते हैं । वे अपने उत्पाद के लिए नवीन उपभोक्ताओं को प्ररित करते हैं । जैसे कोई नया टूथपेस्ट उत्पादक यह अवश्य चाहेगा कि ग्रामीण क्षेत्रों के लोग जो अभी तक दाँतों की सुरक्षा के लिए दंत-मंजन का इस्तेमाल करते हैं वे इस नये टूथपेस्ट के

प्रयोग के लिए प्रेरित हों । साथ ही वे इस कोशिश में भी रहते हैं कि जो लोग अभी तक किसी अन्य प्रोडक्ट को इस्तेमाल कर रहे हों वे भी इस नए उत्पाद को अपनाएँ । इस दृष्टि से वे अपने विज्ञापनों में तुलनात्मक श्रेष्ठता पर बल देते हैं ।

(2) संस्थागत विज्ञापन :

इस प्रकार के विज्ञापनों का उद्देश्य किसी वस्तु अथवा सेवा के बजाए कम्पनी के लिए प्रतिष्ठा व साख बनाना होता है । साथ ही एक ऐसा वातावरण और भावना पैदा करना है जिससे लोग कम्पनी को मित्रवत् स्वरूप में लें । ऐसे विज्ञापनों का लाभ कमाने का उद्देश्य नगण्य होता है । इस प्रकार के विज्ञापनों में विज्ञापन करने वाला अपनी रीति-नीति, अनुसंधान, गतिविधियों व सामाजिक जिम्मेदारियों आदि के बारे में, अपने कार्यक्रमों के ' बारे में इंगित करता है । संस्था के आदर्श व लक्ष्य क्या हैं? उसकी मान्यताएँ एवं धारणाएँ क्या हैं? उसकी स्थापना के लक्ष्यों, आशीर्वादों आदि के बारे में विज्ञापनदाता स्थानीय विज्ञापनों से जानकारी प्रदान करता है ।

ये विज्ञापन जन-सम्पर्क के उद्देश्यों के लिए भी दिये जाते है । इनके माध्यम से संस्था अपने कर्मचारियों, स्टाकिस्टों, सामान्य जनता आदि से सम्पर्क रखती है । लोक-सेवा और मुद्दे से जुड़े विज्ञापन भी संस्थानीय विज्ञापन ही है । आज अनेकानेक संस्थाएँ और मुद्दे हैं जिसके लिए सामाजिक समर्थन आवश्यक है । विषय चाहे एड्स हो या पर्यावरण शिक्षा हो या समाज सुधार, ट्रैफिक रूल्स हों या पेट्रोल बचत हो, एक मुद्दा और उससे जुड़ी संस्था का महत्व सामाजिक दृष्टि से अभिनव है । यह विज्ञापन जहाँ दर्शक को उसके समाज व राष्ट्र के प्रति दायित्व का बोध कराते हैं वहीं उसे अच्छा नागरिक बनने के लिए प्रेरित भी करते हैं । विज्ञापन में कहीं विनय होती हैं तो कही चेतावनी का पुट, कहीं आदेश होते हैं, तो कही निर्देश, लेकिन सम्पूर्ण कार्यवाही के पीछे एक उद्देश्य होता है कि लोग अच्छे नागरिक बनें, समाज में खुशहाली और अमन-चैन रहे ।

माँग के आधार पर विज्ञापन

(Advertisement based on Demand)

मूलत: सभी विज्ञापनों का उद्देश्य किसी वस्तु की माँग को बढ़ाना है जो विज्ञापन यह कार्यवाही करते हैं वे दो प्रकार के होते हैं एक वे विज्ञापन जो वस्तु की प्राथमिक माँग बढ़ाते हैं और दूसरे वे जो चुनिंदा माँग पर केन्द्रित होते हैं :

(1) प्राथमिक माँग पैदा करने वाले विज्ञापन :

इस प्रकार के विज्ञापनों मे; किसी एक ब्रांड की बजाए सकते वर्ग की माँग बढ़ाने पर जोर दिया जाता है । कई निर्माता इकट्ठे होकर ऐसे विज्ञापन जारी करते हैं जिनका उद्देश्य प्राथमिक माँग को बढाना होता है । जैसे प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थो के उपयोग को बढ़ावा देने वाले विज्ञापन या अंडे की प्राथमिक माँग को बढ़ाने वाले विज्ञापन ।

(2) चुनिंदा माँग को उत्पेरित करने वाले विज्ञापन.

ये विज्ञापन एक ब्रॉंड का विज्ञापन होता है । इसका उद्देश्य बाजार में उस ब्रॉंड की प्रतिष्ठा बनाना होता है । ये विज्ञापन प्रतिस्पर्धात्मक होते हैं और अपने उत्पादों का ये लम्बा-चौड़ा विवरण प्रस्तुत करते हैं ।

प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कार्यवाही वाले विज्ञापन

(Advertisement based on Direct & Indirect Action)

ये निम्नांकित प्रकार के होते हैं

(1) प्रत्यक्ष कार्यवाही

(Direct Action) :

इन विज्ञापनों में उपभोक्ता को तुरन्त कार्य रूप में कार्यवाही हेतु कहा जाता है । ये आज ही आजमाएँ, खरीदें, सम्पर्क करें जैसे प्रत्यक्ष स्वरूप पर निर्भर होते है । छूट, निर्धारित तिथि, मेगा-ऑफर जैसे विज्ञापन इस प्रकार के होते है ।

(2) अप्रत्यक्ष कार्यवाही

(Indirect Action)

ये विज्ञापन दीर्घकालीन व स्थायी प्रभाव की अपेक्षा करते हैं । इनमें तुरत-फुरत कार्यवाही पर बल नहीं होता है । इन विज्ञापनों का प्रयास उपभोक्ताओं में एक अनुकूल वातावरण के निर्माण पर बल देना होता है ।

व्यक्तिगत व सहकारी विज्ञापन

(individual & Cooperative advertisement)

एक समान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जब अलग-अलग उत्पादक या संस्थाएँ मिलजुल कर विज्ञापन अभियान चलाती हैं तो वह सहकारी रूप में कहा जाता है । सार्वजनिक क्षेत्रों के बैंकों द्वारा अपनी गुणवत्ता को लेकर चलाए गए अभियान इसी श्रेणी के हैं । अलग-अलग निर्माताओं के स्वतंत्र विज्ञापन भी इसी श्रेणी में आते है

सजावटी और वर्गीकृत विज्ञापन

(Decorative & Classified advertisements)

ये निम्नांकित प्रकार से हैं:

(1) सजावटी विज्ञापन

इस प्रकार के विज्ञापन पत्र-पत्रिकाओं में मिलते हैं । इनमें सजावट हेतु आकर्षक रंग, प्रभावी शीर्षक, लोगों व आलेख चमत्कृत कर देने वाले चित्र व प्रस्तुति होती है । इस प्रकार के विज्ञापन अनायास ही पाठक का ध्यान अपनी ओर खींचते हैं ।

(2) वर्गीकृत विज्ञापन :

इस प्रकार के विज्ञापन मुख्यत: समाचार पत्रों में प्रकाशित होते है और पत्रों के निश्चित पृष्ठ पर एक शीर्षक यथा 'बिकाऊ', खरीदना, आवश्यकता, उपलब्ध आदि के अन्तर्गत प्रकाशित होते हैं । आज के महानगरीय जीवन और भागमभाग की जिन्दगी में इन विज्ञापनों का महत्व अत्याधिक है ।

16.4 सारांश

प्रस्तुत अध्ययन से जहाँ हम एक ओर जनसंचार माध्यमों की परंपरा और इतिहास को समझ सकेंगे वहीं यह भी जान पाएँगे कि जनसंचार प्रविधियों में हिंदी किन उद्देश्यों और सरोकारों को लेकर प्रारंभ की गई थी साथ ही यह भी जाना जा सकेगा कि वर्तमान में हिंदी की यह परंपरा किस स्वरूप और आकार में पहुँच गई है । इसके विविध माध्यमों यथा समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, आकाशवाणी, टेलीविजन, इंटरनेट, मोबाइल आदि ने आज समाज के व्यापक दायरे को भाषिक आधार पर बहुत ही सीमित कर दिया है । आज संसार के किसी भी कोने में बैठा व्यक्ति विविध जनसंचार साधनों की सहायता से अपने सरोकारों को अपनी भाषा हिंदी में सार्थक दिशा में हल कर सकता है और साथ ही अपने भावों की अभिव्यक्ति भी वह समय और परिस्थिति के अनुरूप कर सकता है ।

विज्ञापन में हिंदी के माध्यम से समाज में विविध रूपों में प्रचलित हो रहे विज्ञापनों में हिंदी की अवधारणा के विकास के साथ - साथ यह भी जाना जा सकेगा कि इसके विविध पक्ष किस प्रकार भाषा और सरोकारों को उन्नयन के अवसर प्रदान करते हैं । प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से विद्यार्थी अपने सरोकारों और जनसंचार के पक्षों की व्यापक पड़ताल कर सकेंगे ।

16.5 अभ्यासार्थ प्रशन

1. जनसंचार माध्यमों की परपरा और हिंदी का विवरण दीजिए ।
2. जनसंचार के किन माध्यमों को आप उपयुक्त मानते हैं, और उनमें सार्थक हिंदी का प्रयोग कैसे किया जा सकता है?
3. वर्तमान भारत में हिंदी की दृष्टि से जनसंचार के सबसे प्रभावी माध्यमों का उल्लेख कीजिए।
4. "जनसंचार माध्यमों में हिंदी का इतिहास और वर्तमान" विषय पर एक लेख लिखिए ।
5. विज्ञापन का सकारात्मक पक्ष हिंदी भाषा की दृष्टि से भारत को सार्थक दिशा में ले जा सकता है, इस विषय पर अपने विचार दीजिए ।
6. विज्ञापन में हिंदी प्रयुक्ति से चरित्र और व्यक्तित्व के पहलुओं की भूमिका कैसे प्रभावित होती है?

16.6 संदर्भ ग्रंथ

1. बच्चन सिंह ' **हिंदी पत्रकारिता का नया स्वरूप**
2. डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह; **प्रयोजन मूलक हिंदी और पत्रकारिता. वाणी प्रकाशन,** नई दिल्ली
3. डॉ. अर्जुन तिवारी, **आधुनिक पत्रकारिता**
4. डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा, **देवनागरी विभव,** मालव नागरी लिपि अनुसंधान केंद्र, उज्जैन
5. डॉ. जगदीश शर्मा, **पत्रकारिता प्रशिक्षण,** हरीश प्रकाशन मंदिर, आगरा
6. आलोक मेहता. **भारत में पत्रकारिता,** नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली

7. डॉ. सुशीला जोशी. **हिंदी पत्रकारिता : विकास और विविध आयाम,** राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर
8. डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, **हिंदी पत्रकारिता**
9. डॉ. सुधीर सोनी, **पत्रकारिता और जनसंचार,** विश्वविद्यालय प्रकाशन, जयपुर
10. डॉ. सुधीर सोनी, **नवीन मीडिया प्रविधियाँ,** बुक एनक्लेव, जयपुर

इकाई - 17

वाणिज्य व्यवसाय में हिंदी एवं बैंकिंग प्रणाली में हिंदी

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 वाणिज्य / व्यवसाय में हिंदी

17.3 बैंकिग प्रणाली में हिंदी

17.4 सारांश

17.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

17.0 उद्देश्य

हिंदी भाषा की प्रयुक्ति से संचार के विविध आयामों का विकास समाज में होता है और सूचना, विचार, भाव प्रस्तुति के विविध पक्ष अपने सकारात्मक पक्षों में विकसित होते हैं । किसी सूचना, विचार आदि को जब दूसरों तक पहुँचाने की बात आती है और इस प्रक्रिया को लबें-लंबे अर्थो में गति देनी हो तो भाषा के प्रयोजन को इससे अलग नहीं किया जा सकता है । हिंदी में बड़े जन समूह तक अपनी बात को पहुँचाने की दृष्टि से भाषा और उसके तकनीकी व अन्य पक्षों का संयोजन महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि हमारा विचार उसी से आकार पाता है । 14 सितंबर, 1949 को हिंदी भारत गणराज्य की राष्ट्र भाषा बनी और इसके साथ ही हिंदी में कार्य करने की परंपरा के लिए कई प्रावधान और प्रक्रियाएँ सामने आई । आज वैश्वीकरण का युग है । इस समय में कम्प्यूटर, इंटरनेट जैसे तकनीकी पक्षों का भी व्यापक विकास हुआ है । देश में सामाजिक जीवन के लगभग सभी पक्षों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन के साथ ही इन्होनें समाज में अपनी पैठ के लिए हिंदी भाषा को अपने प्रयुक्ति पक्षों में इस्तेमाल करना शुरू किया है और हिंदी ने भी अपने महत्त्वपूर्ण पक्षों से विश्व को परिचित कराया है । इसी कारण से आज वाणिज्य / व्यवसाय से लेकर बैंकिंग प्रणाली में हमें हिंदी के उन पहलुओं का परिचय मिलता है जिससे इन क्षेत्रों में हिंदी का इस्तेमाल किया जा रहा है ।

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप

- हिंदी की परंपरा और इतिहास के विविध पक्षों को जानने के साथ इनकी प्रयुक्ति के रूप में हिंदी के पक्षों की पड़ताल करेंगे ।
- यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि वाणिज्य / व्यवसाय से लेकर बैंकिंग प्रणाली की इस परंपरा को हिंदी के विविध पक्षों ने किस प्रकार से शुरू कर वर्तमान पक्षों तक पहुँचाया है।
- हालांकि बहुधा यह प्रतीत होता है कि हिंदी को अंग्रेजी के अनुवाद के रूप में ही अपनाया गया है । किंतु इस इकाई के माध्यम से धीरे - धीरे प्रयुक्त पक्षों और

व्यवहारिक स्थितियों के कारण समाज में हिंदी की माँग की व्यापकता और वर्तमान संदर्भों की आवश्यकता पर भी विचार करेंगे ।

- अब हिंदी को किसी वस्तु व तथ्य के बारे में विशेष रूप से जानकारी देने के क्रम में भी प्रयुक्त किया जाता है । व्यवसाय के पक्षों में इसे देखा जाए तो विदित होगा कि यह किसी वस्तु के विक्रय के लिए ग्राहकों का ध्यान भी आकृष्ट करती है । यह विक्रय कला के पक्षों का लिखित अथवा मुद्रित रूप भी है । इसका यह भी उद्देश्य है कि इसके माध्यम से किसी उत्पादित वस्तु का अधिकाधिक बाजार मिले । अपने कलेवर के माध्यम से हिंदी किस प्रकार ग्राहकों का ध्यान उस ओर आकृष्ट कर अधिक से अधिक माल की बिक्री करवा सकती है । यह जानने का प्रयास करेंगे ।

  बैंक भी बाजार व समाज की माँग के अनुरूप अपने आयामों को हिंदी के पक्षों के साथ जोड़ रहे हैं । आज किसी भी विदेशी या देशी बैंक में आम ग्राहकों के लिए हिंदी में वे सभी सुविधाएँ मौजूद हैं जो उसे बैंक से व्यवहार करने के क्रम में काम आती है । बात चाहे बैंक में खाता खोलने की हो या खाते में रूपए जमा करवाने की, चाहे ड्राफ्ट बनवाना हो या पैसे निकलवाने हों, या बैंक की किसी भी सेवा या सहायता के लिए आवेदत्त करना हो, हम देखेंगे कि प्रत्येक जगह हिंदी का प्रयोग अपरिहार्य है । हिंदी के इस पक्ष के विकास के लिए इस चर्चा को भी रखेंगे ।

17.1 प्रस्तावना

भाषा के माध्यम से अपने विचारों को आकार देना जन्मजात और सहज प्रवृति है । समाज के प्रत्येक कार्य में हम सभी अपने कार्यो की आवश्यकता के लिए जनसंचार की अवधारणा से जुड़े हुए हैं । मानव समाज की यह नितांत आवश्यकता है कि वह अपने दैनिक जीवन की सभी गतिविधियों में संचार की क्रिया से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अवश्य जुड़ता है । अगर संचार के प्रत्यक्ष - अप्रत्यक्ष पक्षों की यह किया रूक जाए तो मनुष्य सामाजिक जीवन में जड़ हो जाता है । जबकि अपनी दैनिक संचार प्रक्रिया के रूप में वह अपने विचारों का आदान-प्रदान, मतों-अभिमतों की स्थापना, अनुभूतियों का आदान-प्रदान आदि निरंतर करता रहता है । इन कामों को पूरा करने में हम भाषा की महत्ता और भी उससे जुड़े हुए पहलुओं को नहीं भुला सकते हैं । आज हिंदी की अवधारणा का लोहा पूरा समाज मानता है । कोई भी भाषा जब 'एक से दूसरे तक पहुँचती है तो वह अपने साथ कई स्रोतों को लेती हुई संदेश को गंतव्य तक पहुँचाती है ।

स्रोत से संदेश जब गंतव्य तक पहुँचता है तो इन घटकों के बीच भाषा का रिश्ता उससे जुड़े संचार को महत्त्वपूर्ण दिशा देता है । इन घटकों के उचित समन्वय के लिए उचित भाषा की आवश्यकता से भी सभी परिचित हैं । हिंदी में यह खासियत रची बसी है कि वह अपने विस्तृत कलेवर से इन पक्षों को जोड़ती है । आज के समय में विविध माध्यमों द्वारा इनको गति व दिशा मिली है ।

इसी कारण से हम वाणिज्य व्यवसाय तथा बैंकिंग प्रणाली में हिंदी व इसकी पक्षों को प्रत्येक दिन किसी न किसी रूप में घटित होते देखते हैं ।

17.2 वाणिज्य व्यवसाय में हिंदी

हिंदी को अपने प्रयुक्ति पक्षों, जीवन के सभी क्षेत्रों में पैठ, भावों की अभिव्यक्ति आदि कारणों से देवभाषा होने का गौरव प्राप्त है । अपनी सटीक प्रस्तुति, समृद्ध व्याकरण, उच्चारण एवं भावों की प्रस्तुति के चलते विश्व में हिंदी का स्थान श्रेष्ठ है । विश्व के लगभग 137 देशों में हिंदी की उपस्थिति है । हिंदी बोलने वालों की संख्या पूरे संसार में लगभग सौ करोड़ तक पहुँच गई है । आज संसार में हिंदी की पत्रकारिता, हिंदी का सृजनात्मक लेखन और उसका साहित्य, हिंदी सिनेमा, हिंदी गीत - गजलों आदि की धूम है । संसार भर में शायद ही कोई देश ऐसा होगा जो हिंदी व उसके सृजनात्मक -पक्षों को नहीं जानता होगा । भारत पर विदेशी हमले लंबे समय से होते रहे हैं और ऐसे में यहाँ अपना साम्राज्य जमाने वालों ने कहीं न कहीं अपने व्यक्तित्व में, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भी हिंदी को संस्कार के रूप में अपनाया है और वह संस्कार आज विश्व भर में फल - फूल रहा है । भारत के पड़ौसी देश जैसे नेपाल, तिबत, भूटान, इंडोनेशिया, बाँग्लादेश, मालद्वीव, मॉरीशस आदि में तो हिंदी भाषी परिवार पूर्व परंपराओं से ही बसते आए हैं । -यही कारण है कि आज उनके व्यापार, वाणिज्य व दैनिक जीवन के कामकाज के बड़े हिस्से में हिंदी बसी हुई है । व्यवसाय की यह परिपाटी है कि उसमें बहुत से लोगों से सरोकार रखने होते हैं और विविध सामाजिक परिवेश वाले लोगों से अपना काम करवाना होता है । ऐसे में उन सभी के बीच भाषा का एक सुसंगत माध्यम हो तो एक दूसरे के बीच संवाद बाधा नहीं बनता है । इसीलिए हिंदी को अपनाकर वे अपने कारोबार संबंधी पक्षों को निरंतर विकसित करते रहते हैं । भारतीय टेलीविजन चैनलों, फिल्मों, संचार माध्यमों में भी हिंदी का खासा वर्चस्व है । इनसे प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों से देश - विदेश के असंख्य दर्शक जुड़ते हैं । इतने लोगों तक अपनी बात और व्यापार पहुँचाने के लिए हर व्यवसायी लालायित रहता है और वह अपने उत्पाद या सेवा की बात हिंदी के माध्यम से देश - विदेश के एक लंबे वर्ग तक पहुँचाता है । संसार के अन्य टेलीविजन समूहों ने हिंदी के प्रसार पक्षों को देखते हुए इसे अपनाया है । दुबई से प्रसारित चौबीसों घंटो के चैनलों में हिंदी कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं । नेशलन ज्योग्राफिक, डिस्कवरी जैसे चैनलों ने तो हिंदी व इसके पक्षों को भाँपते हुए अपनी स्थापना के साथ ही भारत में अपने कार्यक्रम हिंदी में प्रसारित किए । बीबीसी. जैसे चैनल ने भी हिंदी की परिपाटी को ही अपनाया और आज उनका हिंदी चैनल बेहद लोकप्रिय है । यही वजह है कि आज हिंदी को व्यवसाय / वाणिज्य के पहलुओं में प्राथमिकता के साथ लिया जाने लगा है । सभी व्यवसायी यह जानते हैं कि किसी भी व्यवसाय की प्राथमिकता विज्ञापन हैं और हिंदी विज्ञापनों के द्वारा मिलने वाले लाभों से पूरा समाज निरंतर परिचित होता रहता है । आज किसी भी संचार माध्यम को देखें तो वाणिज्य व व्यवसाय के क्रम में हमें हिंदी के एक से एक क्रियात्मक विज्ञापन देखने को मिलेंगे । अपनी भाषा, प्रस्तुति, क्रियात्मकता और मन पर गहरी छाप के चलते आज जनमानस में वे बेहद लोकप्रिय हैं ।

किसी भी भाषा को इस स्वरूप तक पहुँचने में महत्वपूर्ण तत्व होता है उस भाषा में एक ऐसी चेतना का होना जिससे वह संपूर्ण विश्व के जनमानस को छू सके । यह हिंदी की ही सहजता है कि यह परिप्रेक्ष्य उसे हर स्तर पर मिलता है ।

वर्तमान में आवश्यकता के अनुरूप यह हुआ है कि हम गर्वपूर्वक हिंदी को वाणिज्य / व्यवसाय में प्रश्रय दे रहे हैं । उसे संचार साधनों जैसे मोबाइल, कंप्यूटर, आदि में भी वैज्ञानिक स्वरूप में स्थान मिल रहा है । व्यवसाय में हिंदी की भारी माँग को देखते हुए ऐसा हो भी रहा है । दिन ब दिन नए हिंदी कंप्यूटर सॉफ्टवेयर, हिंदी में मोबाइल एसएमएस जैसे संसाधन विकसित हो रहे हैं । 21 वीं सदी के साथ वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्यों को संयोजित करते हुए भारत सरकार के विज्ञान एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने सभी तकनीकी एवं वैज्ञानिक विषयों की शब्दावली हिंदी में प्रस्तुत की है ।

आधुनिक प्रचार तंत्र के माध्यम से विश्व में शायद ही कोई ऐसा देश हो जो हिंदी एवं उसके वाणिज्यिक सरोकारों से अनभिज्ञ हो । इस प्रचार तंत्र में आज कंप्यूटर से लेकर इंटरनेट तक जो विविध आयाम विकसित हुए हैं उनसे वाणिज्य व व्यापार को नई ऊँचाईयाँ मिली हैं । इंटरनेट से आज घर बैठे ही हम कोई भी सामान या सेवा का संपादन कर सकते हैं । बात चाहे रेल टिकट की हो या होटल बुकिंग की, या हवाई सेवा का लाभ लेना हो सभी के लिए हम हिंदी में घर बैठे ही सारी जानकारी और सुविधा तो पा ही सकते हैं साथ ही चाहे जाने पर विविध भुगतान माध्यमों को प्रयुक्त कर सेवा या सामान का भुगतान भी कर सकते हैं । साथ ही इनमें हिंदी ने अपने बहुआयामी व्यक्तित्व का परिचय भी दिया है । कोई सोच भी नहीं सकता था कि इंटरनेट जैसे माध्यम पर तुलसी, सूर, कबीर की रचनाएँ आज आसानी से पूरे विश्व में देखी जा सकेंगी । लंदन, यूरोप, दुबई जैसी जगहों पर हिंदी सिनेमा के प्रीमियर होंगे और भारत की ही तरह वहाँ के सिनेमाघरों में हिंदी फिल्मों का स्वागत किया जाएगा । आज प्रचार तंत्र का कोई भी पहलू क्यों न हो, चाहे वह मुद्रित माध्यम हो या दृश्य या श्रव्य या दोनों, प्रत्येक अवसर और जगह पर हम हिंदी की व्यापकता को देख सकते हैं । पहले यह आरोप अक्सर लगाया जाता था कि हिंदी के माध्यम से बहुत आगे नहीं जाया जा सकता है । जबकि आज स्थितियाँ बदल गई हैं अब कहा जाता है कि आपमें क्षमता होनी चाहिए आप हिंदी के माध्यम से अपने व्यवसाय को बहुत आगे तक ले जा सकते हैं । नए सैटेलाइट चैनल्स, एफ. एम. रेडियो, कंप्यूटर, इंटरनेट, पत्र - पत्रिकाओं, धारावाहिकों, नाटकों आदि के माध्यम से आज हिंदी को व्यापक प्रचार - प्रसार तो मिला ही है साथ ही आमजन से लेकर खास व्यक्तित्व तक हिंदी की पैठ और अपनत्व व भावनाओं को समझने लगा है । चूँकि बाजार मुनाफे की भाषा को समझता है और जब उसे यह मुनाफा हिंदी की माध्यम से ज्यादा व्यापकता में मिलने लगा तो उसन आधुनिक प्रचार तंत्र को हिंदी के द्वारा गतिमान किया । इसके उत्साहजनक परिणाम सामने आने पर न केवल उन्होंने इसे अपनाया बल्कि वह हर संभव कोशिश की जिससे इसकी वाणिज्यिक व्यापकता में अभिवृद्धि होती रहे । वाणिज्य व व्यवसाय में आज विज्ञापन एक अपरिहार्य पक्ष है । क्योंकि इसके माध्यम से ही हम अपने व्यवसाय को आम लोगों के बीच ले जाकर उनके बीच अपनी पैठ बनाते हैं और साथ ही सहज रूप से जनमानस में अपने उत्पाद या सेवा को भी स्थापित कर देते हैं । आवश्यकता इस बात की है कि जिस प्रयोजन के लिए

हमने यह प्रक्रिया की थी वह बात मानव मन में सहज रूप में अपना स्थान बना ले और इसके लिए वर्तमान में समग्रता की दृष्टि से हिंदी से बेहतर कोई पक्ष नहीं है । आज किसी भी वस्तु, सेवा या विचार को आगे बढ़ाने के लिए विज्ञापन को एक सहारा बनाया जाता है । आज का युग विज्ञापन का युग है । हर ओर किताबों से लेकर पत्रिकाओं तक, सड़क से लेकर घर तक और संचार से लेकर तमाम साधनों मे विज्ञापन ही विज्ञापन नजर आते है । विज्ञापन की प्रस्तुति में भाव संप्रेषण के लिए हिंदी की प्रयुक्ति भी व्यापक पैमाने पर दिखाई देती है ।

वाणिज्य व व्यवसाय के दृष्टिकोण से देखा जाए तो हिंदी विज्ञापन एक व्यक्ति के मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क तक में एक विचार को स्थानान्तरित करने की कला है । इस तरह के विज्ञापनों मे उन दृश्यों एवं मौखिक संदेशों को सम्मिलित किया जाता है जो समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, चलचित्र, रेडियो, टेलीविजन, परिवहन के साधनों अथवा बाह्य बोर्डों पर दिए होते हैं और जिनका उद्देश्य उपभोक्ताओं के क्रय आचरण को प्रभावित करना होता है । इससे विज्ञापन सूचना का वाहक हो जाता है जिसका उद्देश्य ग्राहकों को समझाना व जीतना होता है इससे विज्ञापनकर्ता को अधिक से अधिक लाभ मिलता है । सभी विज्ञापन मूलत: सूचना पर आधारित होते हैं । हर विज्ञापन का मूलभूत कार्य है सूचना देना या कोई तर्क प्रस्तुत करना । साथ ही वह तात्कालिक रूप से कोई न कोई प्रभाव भी प्रस्तुत करना है । इसके लिए सभी को अपरिहार्य रूप से एक भाषा की आवश्यकता होती है । इसमें महत्त्वपूर्ण यह है कि वह संचार प्रभावी और द्रुत गति से होना चाहिए । साथ ही उसका अर्थ लोगों की समझ में आसानी से आ जाना चाहिए । विज्ञापन समझाने / मानने और अन्त तक व्यक्ति का पीछा करने की प्रक्रिया है । वाणिज्य व व्यवसाय की दृष्टि से यह आवश्यकता भी है और विज्ञापन में आवश्यक रूप से यह प्रकृति होनी चाहिए कि वह संभावना और ग्राहक को निरन्तर तलाशता रहे । अपने और अपनी वस्तुओं के बारे में विस्तार से बताना और इस तरह बताना कि उनका दृष्टिकोण और उनकी धारणा विज्ञापनकर्ता के पक्ष में सटीक रूप से प्रभावी हो जाए । इन पक्षों के लिए भाषा की प्रयुक्ति एक प्रभावी मुद्दा है और इसी से विज्ञापन अपनी प्रकृति के अनुसार खरीद के लिए पाठक, श्रोता व दर्शक को उकसाते है ।

व्यवसायिक उद्देश्यों के विज्ञापन हमेशा ही लाभ के उद्देश्य को लेकर चलते हैं । यूँ तो अधिकांश यह लाभ प्रस्तुतकर्ता को वस्तु के बेचान से होने वाला मुनाफा ही होता है पर कभी-कभी जन-जागरण, माहौल, सेवा के बारे में विचारधारा, सामाजिक बदलाव, वैचारिक कत्थान, सरकारी रीति-नीति का प्रचार, राजनीतिक लाभ आदि वृहद् उद्देश्यों के आधार पर भी विज्ञापन जारी किए जाते हैं । इन पक्षों के लिए हिंदी में भाषा प्रयुक्ति की प्रायिकता भारतीय समाज में क्रम में आसानी से आकलित की जा सकती है ।

17.3 बैंकिंग प्रणाली में हिंदी

भारतीय पक्षों में बैंकिग प्रणाली की महत्ता आज किसी से भी छिपी हुई नहीं है । वाणिज्य व व्यापार के पक्षों के साथ - साथ आम जनजीवन के विविध प्रयोजनों में बैंकिग प्रणाली की भूमिका प्रमुख है । आज बैंक भारतीय जनजीवन की धुरी है । रूपयों के लेन - देन से लेकर अपने वेतन भुगतान तक सभी बैंक से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष संदर्भों में जुड़े हुए हैं ।

संसद के पारित अधिनियम के अनुरूप सभी सरकारी क्षेत्र के बैंक हिंदी के लिए लाग नियमों को प्राथमिकता के साथ लागू करते हैं साथ ही समय - समय पर राजभाषा नीति के अनुरूप अपने कार्यो को व्यवहार में लाते हैं । इसी के साथ निजी व अन्य बैंकिग संदर्भ वाले बैंक भी समय और आम जन की मांग को देखते हुए हिंदी के प्रयोजनों को अपने यहां लागू करते हैं । हिंदी प्रयुक्ति के संदर्भ में बैंकिग प्रणाली के कुछ प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं -

- हिंदी भाषी क्षेत्रों में स्थित बैंक प्रमुखता और दर्शनीयता के हिसाब से यह प्रदर्शित करेंगे कि यह बैंक हिंदी में जारीं किए गए चैकों का आदर करता है और उन्हें स्वीकृत भी करता है ।
- हिंदी में जारी, हस्ताक्षरित और लिखित चैकों को अन्य किसी औपचारिकता के स्वीकृत किया जाएगा ।
- आहरण अधिकारी के हस्ताक्षर बैंक ऑफिस से यदि हिंदी में पंजीकृत हैं तो उन्हें चैक आदि प्रयोजनों के लिए सुगमता से प्रयुक्ति दी जा सकती है ।
- अगर कार्यालयी सामग्री अंग्रेजी में भी है तो उस पर प्राधिकृत अधिकारी के हस्ताक्षर हिंदी में भी किए जा सकते हैं ।
- बैंक के सभी फॉर्म, सूचना पत्र, प्रकिया नोटिस, नाम पट्ट आदि पर अपरिहार्य रूप से हिंदी भाषा की प्रयुक्ति की जाती है । यदि किसी कारण से किसी पत्रक पर अंग्रेजी में सामग्री है तो उसका अनुवाद या मुख्य सूचना हिंदी में अवश्य होती है ।
- बैंक हिंदी में लिखे गए आवेदन पत्रों व प्रक्रियाओं को उचित सम्मान देता है और उन पर बैंक की कार्य प्रणाली के अनुरूप ही काम किया जाता है ।

सरकारी क्षेत्र के बैंक तो समय समय पर हिंदी को बढ़ावा देने के लिए 'हिंदी - पखवाड़ा' जैसे आयोजन भी करते हैं और अपने कार्यालय में हिंदी गोष्ठियों, आयोजनों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों आदि के माध्यम से हिंदी व उसकी प्रयुक्ति पक्षों को बढ़ावा दिया जाता है । कार्यालयी उपकरण जैसे कम्प्यूटर, टाइप आदि में यह ध्यान दिया जाता है कि वे हिंदी में कार्य करने के लिए भी सक्षम हों । साथ ही प्रत्येक सरकारी व सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक में हिंदी अधिकारी होते हैं जो हिंदी व संबंधित क्षेत्रों में कार्य करने की परंपरा को निरंतर आगे बढ़ाने में अपना योगदान देते हैं । साथ ही वे कार्यालयी साथियों की हिंदी प्रयुक्ति की प्रविधियों को आगे बढ़ाने के दृष्टिकोण से निरंतर कार्य करते हैं ।

आज बैंकिंग क्षेत्र में ए.टी.एम. व टेलीफोन व इंटरनेट बैंकिग जैसे पक्षों में बढ़ोतरी हुई है । इनमें भी प्रत्येक बैंक ने यह सुनिश्चित किया है कि चाहे जाने पर हिंदी में कार्य करने की सुविधा अवश्य हो । जब आप टेलीफोन बैंकिग से फोन के माध्यम से जुड़ते हैं तो आई.वी.आर. सिस्टम मे आपसे प्रयुक्ति हेतु भाषा का संदर्भ अवश्य पूछा जाता है और अगर आपने हिंदी का विकल्प दिया है तो अपरिहार्य रूप से आपको सारा संवाद और प्रक्रिया हिंदी में ही उपलब्ध होती है । इसी तरह ए.टी.एम. मशीन पर आप रूपए निकलवाने या बैंक द्वारा उपलब्ध करवायी गई किसी सुविधा को प्रयोग करने हेतु जाते हैं तो वहां भी आपको कंप्यूटर हिंदी भाषा का विकल्प अवश्य सुझाता है ।

साथ ही बैंक अपनी सेवाओं और कार्यो हेतु समय - समय पर जो विज्ञापन, निविदा, कार्यादेश आदि जारी करते हैं उनके लिए वे हिंदी व हिंदी संचार माध्यमों को भरपूर प्रयोग करते हैं । बैंक व उसकी प्रणालियाँ आज आम जन - जीवन का हिस्सा हैं और यही कारण है कि वे अपने संदर्भों में सदैव यही प्रयास करती हैं कि आम आदमी उनके जीवन का हिस्सा निरंतर बना रहे । हिंदी में अपनी प्रयुक्ति से उन्हें एक ओर आम जनजीवन से जुड़ने का मौका मिलता है वहीं हिंदी में की गई प्रयुक्तियों से एक आम आदमी भी सुविधापूर्वक उनके कार्य कलापों से जुड़ सकता है । इसके अलावा बैंकों में राजभाषा पखवाड़ा व हिंदी में कार्य करने हेतु विविध आयोजन निरंतर किए जाते हैं । बैंकों द्वारा हिंदी में चेतना जगाने हेतु एक और महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया जाता है कि उनकी हिंदी विषयक राह पत्रिकाएँ प्रचुर मात्रा में छापी जाती हैं । एक ओर इनमें सृजन और शोध के पहलू होते हैं वहीं इनमें बैंक की कार्य प्रणाली और रोजमर्रा के कामकाज के क्रम में हिंदी प्रयुक्ति के प्रावधान निरंतर सम्मिलित किए जाते हैं । इस चेतना का ही परिणाम है कि बैंकों में हिंदी के प्रति कार्य करने का जच्चा और संसाधन विकसित हुए हैं । भारतीय स्टेट बैंक ने तो हिंदी में कार्य करने हेतु 'कॉर्पोरा' जैसे कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर भी प्रयुक्त किए हैं । इनके माध्यम से हिंदी में कार्य करना तो सुगम है ही साथ ही वे लोग जो हिंदी में कार्य तो करना चाहते हैं पर उनके पास हिंदी टाइप पर काम करने की सुविधा या प्रयुक्ति उपकरण नहीं हैं वे भी ऐसे सॉफ्टवेयर की मदद से अपना कार्य सुचारू रूप में कर सकते हैं । अंग्रेजी से हिंदी में तकनीकी अनुवाद के साथ सामान्य कामकाज की विविध प्रविधियाँ इनके माध्यम से सहज ही हल की जा सकती हैं ।

17.4 सारांश

प्रस्तुत अध्ययन से जहाँ हम एक ओर वाणिज्य / व्यापार व बैंक जैसे माध्यमों की परंपरा और इतिहास को समझ सकें वहाँ यह भी जान गए हैं कि इनकी प्रविधियों में हिंदी किन उद्देश्यों और सरोकारों को लेकर प्रारंभ की गई थी और आज इस प्रकार की प्रयुक्तियाँ किस स्तर पर पहुँच गई हैं । साथ ही यह भी जाना जा सकेगा कि वर्तमान में हिंदी की यह परंपरा किस स्वरूप और आकार में पहुँच गई है । इन पक्षों के विविध माध्यमों से होता हुआ यह दायरा आज समाज के व्यापक दायरे को भाषिक आधार पर एक ओर व्यापकता दे रहा है वहीं वह वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्यों में समाज को बहुत ही सीमित संदर्भो में ले आया है । आज संसार के किसी भी कोने में बैठा व्यक्ति हिंदी के माध्यम से अपने सरोकारों को अपनी भाषा हिंदी में लेकर सार्थक दिशा में हल कर सकता है और साथ ही अपने भावों की अभिव्यक्ति भी वह समय और परिस्थिति के अनुरूप कर सकता है । वाणिज्य / व्यापार के साथ बैंकों में हिंदी के प्रयुक्ति के विविध पक्षों के माध्यम से समाज में विविध रूपों में प्रचलित हो रहे पक्षों में हिंदी की अवधारणा के विकास के साथ - साथ यह भी जाना जा सकेगा कि इसके विविध पक्ष किस प्रकार भाषा और सरोकारों को उन्नयन के अवसर प्रदान करते हैं । प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से विद्यार्थी अपने सरोकारों और प्रस्तुत पक्षों की व्यापक पड़ताल कर सकेंगे ।

17.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वाणिज्यिक माध्यमों की परंपरा और हिंदी का विवरण दीजिए ।

2. व्यापार के किन माध्यमों को आप वर्तमान में उपयुक्त मानते हैं, और उनमें सार्थक हिंदी का प्रयोग कैसे किया जा सकता है ?
3. वर्तमान भारतीय बैंकों में हिंदी की दृष्टि से सबसे प्रभावी माध्यमों का उल्लेख कीजिए।
4. "बैंकिंग माध्यमों में हिंदी का इतिहास और -वर्तमान" विषय पर एक लेख लिखिए ।
5. वाणिज्य / व्यापार का सकारात्मक पक्ष हिंदी भाषा की दृष्टि से भारत को प्रगति पथ पर अग्रसर कर सकता है, इस विषय पर अपने विचार दीजिए ।
6. वाणिज्यिक विज्ञापनों में हिंदी प्रयुक्ति से व्यापार के पहलुओं की भूमिका कैसे प्रभावित होती है?

17.6 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. के. के. रत्तू; **राजभाषा हिंदी,** बुक एनक्लेव, चौड़ा रास्ता, जयपुर ।
2. डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह, **प्रयोजन मूलक हिंदी और पत्रकारिता,** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा (सं.), **देवनागरी विमर्श,** मालव नागरी लिपि अनुसंधान केंद्र, उज्जैन ।
4. आलोक मेहता; **भारत में पत्रकारिता,** नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली ।
5. डॉ. सुशीला जोशी, **हिंदी पत्रकारिता : विकास और विविध आयाम,** राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर
6. डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र; **हिंदी पत्रकारिता**
7. डॉ. सुधीर सोनी; **पत्रकारिता और जनसंचार,** विश्वविद्यालय प्रकाशन, जयपुर ।
8. डॉ. सुधीर सोनी, **नवीन मीडिया प्रविधियाँ,** बुक एनक्लेव, जयपुर ।

इकाई - 18

रक्षा, सेना / विधि / न्याय क्षेत्र एवं रेल विभाग में हिंदी

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 रक्षा व सेना में हिंदी

18.3 विधि और न्याय क्षेत्र में हिंदी

18.4 रेल विभाग में हिंदी

18.5 सारांश

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.7 संदर्भ ग्रंथ

18.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- रक्षा, सेना, विधि, न्याय व रेल विभाग में हिन्दी भाषा के प्रयोग की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- न्याय, रक्षा व संचार के विविध क्षेत्रों में हिन्दी भाषा के व्यापक प्रसार की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

18.1 प्रस्तावना

किसी विचार की प्रयुक्ति के लिए आधार होता है 'शब्द' । यही शब्द जब एक निश्चित प्रक्रिया के माध्यम से अपना आकार लेता है तो वह एक भाषा की संरचना का कारक बन जाता है । हिंदी के माध्यम से यह भाषा की प्रक्रिया ही नहीं बल्कि विचार की प्रक्रिया को गति देने वाला कारण भी बन जाता है । किसी भाव या जानकारी को जब हम दूसरों तक संप्रेषित करते हैं तो उसमें बहुत से प्रभावी कारकों की भूमिका होती है और यह प्रक्रिया जब सामूहिक रूप से होती है तो भाषा इसमें एक विशेष आधार तो होती ही है साथ ही हम उसे एक बड़े प्रयोजन की पूर्ति हेतु कुछ व्याकरणिक परंपराओं व विशिष्ट तरीकों व प्रविधियों से भी संयोजित करते है इन सभी के लिए हमें भाषा रूपी एक माध्यम की आवश्यकता होती है । प्रत्येक जीवंत, संवेदनशील और स्वतंत्र समाज की अपनी एक भाषा होती है । इसे उस राष्ट्र की राष्ट्रभाषा माना जाता है । 14 सितंबर, 1949 को हिंदी को भारत की राष्ट्र भाषा के रूप में अंगीकार किया गया था । इसके साथ ही हिंदी में कार्य करने की परंपरा और उसके विविध उन्नयन पक्षों का सूत्रपात हुआ। यह भी कहा जाता है कि जिस देश की अपनी स्वतंत्र भाषा नहीं होती वह देश निर्जीव की श्रेणी में आता है । भारत के पक्षों में देखा जाए तो देश को उन्नत बनाए रखने की दृष्टि से हिंदी का योगदान अप्रतिम है । हिंदी व उसकी विविध प्रयुक्तियाँ भारत में सर्वमान्य रूप में संचालित की जा रही हैं । वर्तमान दौर में वैश्वीकरण, इंटरनेट, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन

के साथ - साथ ही समाज में इनकी पैठ के लिए व्यापक स्रोतों के क्रम में हिंदी भाषा ने अपने महत्वपूर्ण पक्षों से विश्व को परिचित कराया है । यही वजह है कि आज रक्षा / सेना, विधि / न्याय, तथा रेल विभाग में हमें हिंदी के विविध प्रयुक्ति पहलुओं का परिचय मिलता है ।

दूसरी ओर प्रयुक्ति पक्षों को देखा जाए तो कई बार यह लगता है कि हिंदी को अंग्रेजी के अनुवाद के रूप में ही अपनाया गया है । विशेष रूप से विधि / न्याय के क्षेत्र में हम यही देखते थे कि सारी कार्यवाही का आधार तो अंग्रेजी थी किंतु प्रावधानों के तहत हिंदी को अनुवाद क्रम में ही प्रयुक्ति मिलती थी । किंतु धीरे-धीरे प्रयुक्ति पक्षों और व्यावहारिक स्थितियों के कारण अब समाज में हिंदी की माँग व्यापक हुई है और अब हिंदी को किसी वस्तु व तथ्य के बारे में विशेष रूप से जानकारी देने के क्रम में भी प्रयुक्त किया जाता है । व्यवसाय के पक्षों में इसे देखा जाए तो विदित होगा कि यह किसी वस्तु के विक्रय के लिए ग्राहकों का ध्यान भी आकृष्ट करती है । यह विक्रय कला के पक्षों का लिखित अथवा मुद्रित रूप भी है । इसका यह भी उद्देश्य है कि इसके माध्यम से समाज के उस तबके को अपनी अस्मिता और पहचान का परिचय मिले जो तबका आज भी अपने जीवन यापन के लिए संघर्षरत है । न्याय के किसी न किसी पक्ष से आम आदमी का वास्ता पड़ता ही है । सामान्य से राशन कार्ड या वोटर कार्ड से लेकर बच्चे को स्कूल में प्रवेश दिलाने के लिए मूल निवास प्रमाण पत्र, सत्यापन, पहचान आदि बिंदुओं के लिए विधि समस्त प्रक्रिया की पालना की जाती है और इसके लिए विधि समस्त दस्तावेजों को प्रस्तुत करना ही होता है । ऐसे में उनमें दी गई जानकारी पूरी करने के लिए भाषा एक आवश्यक आधार बनती ही है । किंतु अब हिंदी के माध्यम से सहज रूप से इनकी पूर्ति की जा सकती है । क्योंकि आम आदमी उसमें अपने जानकारी व प्रक्रिया की पूर्ति सहजता से कर सकता है । इसी तरह देश की रक्षा के लिए सैनिकों के योगदान को कौन नकार सकता है । पर एक आम सैनिक के लिए हिंदी ही वह आवश्यक माध्यम है जिसमें वह अपने कार्यालयी संदर्भों के साथ अपनी रोजमर्रा की प्रक्रियाओं को आसानी से पूरा कर सकता है । रेल की अवधारणा को देखें तो भारतीय रेल से भारत का जनजीवन जुड़ा है । टिकट लेने से लेकर गंतव्य स्टेशन के नाम तक सभी संदर्भो में रेल्वे हिंदी की प्रयुक्ति को समुचित रूप से अपनाता है और यही महत्त्वपूर्ण वजह उसे पूरे भारत के मन से जोड़ती है । जाहिर है कि इन सब उपादानो के लिए किसी संचार माध्यम या पक्ष की आवश्यकता होती है और यह पक्ष हिंदी के माध्यम से बखूबी निभाया जा सकता है । आज ये सभी पक्ष समाज की माँग के अनुरूप अपने आयामों को हिंदी के पक्षों के साथ जोड़ रहे हैं ।

भाषिक संचार मनुष्य की सहज प्रवृति है । कहा जाता है कि अपने मन की बात अपने मन से जुड़ी भाषा में ही की जानी चाहिए । समाज में हम सभी अपने अपने कार्यो की आवश्यकता के लिए जनसंचार की लम्बी श्रृंखला से जुड़े हुए हैं, और यह जानना रोचक है कि यह श्रृंखला कहीं न कहीं हिंदी से भी जुड़ी हुई है । जीवन की लगभग समस्त गतिविधियों में संचार की क्रिया से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष जुड़ना अपरिहार्य है । संचार की कड़ी के रूकते ही समाज की स्वाभाविक प्रक्रिया भी रूक जाती है । मनुष्य इस क्रिया के रूप में विचारों का आदान-प्रदान, मतों-अभिमतों की स्थापना, अनुभूतियों का आदान-प्रदान व दैनिक जीवन से जुड़े विविध कार्यो को संपादन आदि करता है । इस पूरी क्रिया में हम भाषा की महत्ता को नहीं नकार सकते हैं

और साथ ही उससे जुड़े हुए पहलुओं को भी । आज हिन्दी की अवधारणा का पक्ष पूरे समाज में प्रबल है । बात जब भाषा के रूप में एक से दूसरे तक पहुँचती है तो उसमें निम्नलिखित तीन पक्षों का समावेश होता है -

(1) स्रोत

(2) संदेश

(3) गन्तव्य

इन तीन घटकों के बीच का आपसी सम्बन्ध ही हिंदी व उससे जुडे संचार को महत्वपूर्ण दिशा देता है । इन घटकों के समन्वय के लिए भाषा की अपरिहार्यता से भी सभी परिचित हैं । हिंदी अपने विस्तृत कलेवर से इन पक्षों को समन्वित करती है । वर्तमान में विभिन्न माध्यमों द्वारा इन्हीं पक्षों को अपनाते हुए रक्षा / सेना, विधि / न्याय, रेल विभाग ने हिंदी को सार्थकता के नए आयाम दिए हैं । यही वजह है कि हम निरंतर इन क्षेत्रों में व इनसे जुड़ी प्रणालियों में हिंदी व इसकी प्रक्रिया को प्रत्येक दिन किसी न किसी रूप में घटित होते देखते हैं ।

18.2 रक्षा और सेना में हिंदी

रक्षा और सेना में हिंदी के पक्ष इनकी स्थापना से ही जुड़े हैं । सेना में सैनिकों, अधिकारियों व कामकाजी पक्षों में हिंदी के पहलुओं को आमजीवन की तरह ही प्रयुक्त किया जाता । क्योंकि भारतीय सेना में देशभर के सैनिक, अधिकारी आदि एक साझे उद्देश्य के लिए एक साथ रहते हैं । अलग - अलग प्रदेशों से आने के कारण उनके सामाजिक पहलुओं में भिन्नता होती है पर यह आवश्यक है कि वे एक ऐसा माध्यम चुनें जिससे सभी के हित समान रूप से साधे जा सकें । हिंदी उन्हें यह पक्ष आसानी से उपलब्ध करवाती है । क्योंकि हिंदी को अपने आरंभिक चरण से ही देवभाषा होने का गौरव प्राप्त है । अपनी सटीक प्रस्तुति, समृद्ध व्याकरण, उच्चारण एवं भावों की प्रस्तुति के चलते विश्व में हिंदी का स्थान श्रेष्ठ है । साथ ही हिंदी को सभी आसानी से समझ और बोल सकते हैं । इसीलिए सेना का राजभाषा क्रियान्वयन विभाग सरकार की ओर से निर्धारित सभी लक्ष्यों को हासिल करने के लिए सजग रहता है । सभी सूचनाओं, कामकाज के सभी प्रपत्रों, आवेदनों, विभागीय सूचनाओं आदि के लिए सेना में हिंदी की प्रयुक्ति व्यापक तौर पर की जाती है । हिंदी टाइप, टिप्पणियों, मसौदों आदि को तैयार करने में आने वाली कठिनाइयों को हल करने के लिए समय - समय पर कार्यशालाएँ आयोजित की जाती हैं और इनके अनुरूप व्यक्तियों को प्रशिक्षित किया जाता है । कार्यालयी कामों में हिंदी में किए गए कामों को प्रोत्साहित किया जाता है और इसके लिए हर प्रकार की सुविधाएँ भी प्रदान की जाती हैं । सेना का राजभाषा क्रियान्वयन विभाग प्रत्येक वर्ष अपने प्रगति प्रतिवेदनों के जरिए हिंदी प्रयुक्तियों की समीक्षा करता है और आने वाली कठिनाइयों के समाधान के उपाय सुझाता है । विविध तकनीकी शब्दों के लिए "विज्ञान और तकनीकी शब्दावली आयोग" और रक्षा अनुसंधान संस्थान के माध्यम से कार्यशाला आदि करके शब्द निर्मित और प्रयुक्ति के पक्षों की व्यवस्था की जाती है । आज रक्षा व सेना से जुड़े किसी भी संचार माध्यम को देखें तो उसके क्रम में हमें हिंदी के क्रियात्मक पहलू अवश्य ही देखने को

मिलेंगे । अपनी भाषा, प्रस्तुति, क्रियात्मकता और मन पर गहरी छाप के चलते आज हिंदी सेना व रक्षा के पक्षों में बेहद लोकप्रिय है ।

किसी भी भाषा को यह स्वरूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण तत्व होता है उस भाषा में "वैश्विक चेतना का संस्पर्श" । यह महत्वपूर्ण है कि हिंदी में यह संस्पर्श प्राचीन से लेकर वर्तमान तक सभी परिप्रेक्ष्यों में मिलता है । सेना व रक्षा क्षेत्र की महत्वपूर्ण आवश्यकता है उनकी एकता और इसके संवर्धन के लिए हिंदी प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावी है । सर्वविदित है कि सैनिकों का जीवन निरंतर चुनौतियों से भरा होता है ऐसे में उनके मनोबल को बनाए रखने के लिए और सदैव सकारात्मक भावों के संचार के लिए हिंदी ने विशेष कार्य किया है । आकाशवाणी तो लंबे अरसे से फौजी भाइयों के लिए हिंदी गीतों का सुमधुर कार्यक्रम लंबे अरसे से प्रस्तुत करती आ रही है । इसमें फौजी भाई अपने पसंदीदा हिंदी गीत को अपने नाम के साथ आकाशवाणी पर सुन सकते हैं । हिंदी फिल्मों और टेलीविजन के हिंदी कार्यक्रमों को सेना व रक्षा क्षेत्रों में व्यापकता के साथ दिखाया जाता है । इसके अलावा गृह पत्रिकाओं और बुलेटिनों में भी हिंदी को निरंतर बनाए रखा जाता है । सेना अपने भर्ती अभियानों को मुद्रित व दृश्य माध्यमों में प्रमुखता से लाती है और इसके लिए भी व्यापक अभियान चलाया जाता है । सेना के अधिकांश विज्ञापन इसमें हिंदी में जारी किए जाते हैं ताकि आमजन तक उनकी बात पहुँच। सके ।

वर्तमान में आवश्यकता के अनुरूप यह हुआ है कि सेना गर्वपूर्वक हिंदी को प्रश्रय दे रही है । उसे संचार साधनों जैसे मोबाइल, कंप्यूटर, आदि में भी वैज्ञानिक स्वरूप में स्थान मिल रहा है । हिंदी की भारी मांग को देखते हुए सेना के लिए नए हिंदी कंप्यूटर सॉफ्टवेयर, हिंदी में मोबाइल, एसएमएस जैसे संसाधन विकसित हो रहे हैं । 21 वीं सदी के साथ वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्यों को संयोजित करते हुए भारत सरकार के विज्ञान एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने सभी तकनीकी एवं वैज्ञानिक विषयों की शब्दावली सेना व उससे जुड़ी प्रयुक्तियों के लिए हिंदी में प्रस्तुत की है ।

18.3 विधि और न्याय क्षेत्र में हिंदी

भारतीय पक्षों में न्याय प्रणाली की महत्ता आज किसी से भी छिपी हुई नहीं है । जीवन का हर पहलू सामाजिक परिप्रेक्ष्य में विधि ' न्याय की अवधारणा से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है । घर में जन्म हो तो जन्म के पंजीकरण के लिए विधि सम्मत प्रक्रिया की आवश्यकता होती है । मृत्यु जैसे दुखद पक्ष के लिए भी मृत्यु पंजीकरण की आवश्यकता होती है । शिक्षा, व्यापार, सामान्य कामकाज, सरकारी नीतियों को लागू करना । चिकित्सा, जीवन यापन आदि किसी भी पक्ष के विधि - प्रक्रिया को पूरा करना आवश्यक होता है । यहीं आती है बात हिंदी प्रयुक्त की । यह जानना सुखद है कि विधि / न्याय के किसी भी पक्ष के लिए आवेदन करने से लेकर, फॉर्म भरना ओर सूचना देना, पहचान व निवास के प्रमाण देना या कानूनी तौर पर शपथ पत्र दाखिल करने के लिए सभी कार्यवाहियाँ हिंदी में की जा सकती है । प्रत्येक प्रकार का आवेदन और निर्धारित फॉर्म वर्तमान में हिंदी में मौजूद है । कानून का कोई भी पहलू क्यों न हो यह जरूरी है कि वह आम आदमी के समझ में आए ताकि वह अपने

दैनिक जीवन में विद्यमान प्रक्रियाओं को अपना सके । इसी की आवश्यकता को महसूस करते हुए आज कानून का प्रत्येक पहलू आमजन के लिए हिंदी में सुलभ है । चाहे जाने पर कोई भी व्यक्ति कानूनी प्रक्रिया का कोई भी कार्य हिंदी में संपादित कर सकता है । अच्छे और महत्त्वपूर्ण समाज के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि उसके दैनिक जीवन कम में जागरूकता के पहलुओं का समावेश हो । हिंदी में यह शक्ति है कि वह अपने माध्यम से सुदूर ग्रामीण जीवन तक जानकारी को आसानी से संप्रेषित कर सकती है । विधि के महत्त्वपूर्ण पक्षों को इसी माध्यम से आज आकार दिया गया है । आज हिंदी में प्रचारित और प्रसारित किए जाने के कारण ही आम आदमी अपने कानूनी अधिकारों को जानता है । हिंदी के कारण ही "सूचना के अधिकार" जैसे महत्त्वपूर्ण पक्ष का प्रचार लोकजीवन के सुदूर तबके तक पहुँचा है । समय - समय पर राजभाषा नीति के अनुरूप अपने कार्यो को विधि के संदर्भ में व्यवहार में लाया गया है । इसी के साथ समय और आम जन की माँग को देखते हुए हिंदी के प्रयोजनों को अपने यहाँ लागू करने के लिए समय - समय पर राजभाषा नीति के अनुरूप कदम उठाए गए हैं । हिंदी प्रयुक्ति के संदर्भ में कुछ प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं -

- हिंदी भाषी क्षेत्रों में स्थित कार्यालयों और न्यायालयों में प्रमुखता और दर्शनीयता के हिसाब से यह प्रदर्शित किया गया है कि हिंदी में हस्ताक्षरित और भरे गए आवेदनों को यही स्वीकृति दी जाती है ।
- हिंदी में जारी, हस्ताक्षरित और लिखित बंध पत्रों, शपथ पत्रों को अन्य किसी औपचारिकता के स्वीकृत किया जाएगा ।
- अधिकारियों के हस्ताक्षर यदि हिंदी में पंजीकृत हैं तो उन्हें विविध प्रयोजनों के लिए सुगमता से प्रयुक्ति दी जा सकती है ।
- अगर कार्यालयी सामग्री अंग्रेजी में भी है तो उस पर प्राधिकृत अधिकारी के हस्ताक्षर हिंदी में भी किए जा सकते हैं ।
- कोर्ट के सभी फॉर्म, सूचना पत्र, प्रक्रियाएँ, नोटिस, नाम पट्ट आदि पर अपरिहार्य रूप से हिंदी भाषा में भी प्रयुक्ति की जानी है । यदि किसी कारण से किसी पत्रक पर अंग्रेजी में सामग्री है तो उसका अनुवाद या मुख्य सूचना हिंदी में अवश्य होगी ।
- हिंदी में लिखे गए आवेदन पत्रों व प्रक्रियाओं को उचित सम्मान देकर कार्य प्रणाली के अनुरूप ही काम किया जाता है ।

चेतना जगाने हेतु एक और महत्वपूर्ण कार्य यह किया जाता है कि विधि में हिंदी विषयक गृह पत्रिकाएँ छापी जाती हैं । एक ओर इनमें सृजन और शोध के पहलू होते हैं वहीं इनमें न्यायिक कार्य प्रणाली और रोजमर्रा के कामकाज के कम में हिंदी प्रयुक्ति के प्रावधान निरंतर सम्मिलित किए जाते है। इस चेतना का ही परिणाम है कि विधि में हिंदी के प्रति कार्य करने का जच्चा और संसाधन विकसित हुए हैं । कुछ न्यायालयों ने तो हिंदी में कार्य करने हेतु 'कॉर्पोरा जैसे कंप्यूटर सॉफ्टवेयर भी प्रयुक्त किए हैं । साथ ही महत्वपूर्ण निर्णय प्रख्यात जजों द्वारा हिंदी में दिए गए हैं ।

18.4 रेल विभाग में हिंदी

भारतीय रेल विश्व के वृहद संगठनों गे से एक महत्त्वपूर्ण संगठन है और रेल विभाग ने अपने दैनिक क्रिया कलापों में हिंदी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है । इनकी कार्यकारी प्रविधियों में हिंदी राजभाषा की प्रयुक्ति के उद्देश्यों और सरोकारों को लेकर प्रारंभ की गई थी और आज इस प्रकार की प्रयुक्तियाँ व्यापक स्तर पर पहुँच गई हैं । कश्मीर से कन्याकुमारी तक प्रत्येक जगह रेलवे स्टेशन पर उद्घोषक की मनमोहक आवाज गाड़ी के आगमन और प्रस्थान के बारे में सूचना प्रसारित करती है । यह उद्घोषणा अपरिहार्य रूप से हिंदी में भी की जाती है । रेल्वे में आरक्षण के लिए अपनी यात्रा तिथि के अनुरूप देश का एक बड़ा यात्री समूह आरक्षण करवाता है । इसके लिए उन्हें एक आवेदन पर अपने बारे में जानकारियाँ अंकित करनी होती हैं । आवेदन फार्म में चाहे जाने पर हिंदी में इन्हें प्रस्तुत करने के लिए हिंदी में सामग्री प्रस्तुति की व्यवस्था होती है । रेलवे के प्रत्येक स्टेशन पर हिंदी में हिदायतें, ट्रेन के आने - जाने का सूचना पत्रक और यात्रियों के आगमन व प्रस्थान से संबंधित सभी जानकारी हिंदी में होती है । रेल विभाग एक देश व्यापी विभाग है और रेल से प्रतिदिन यात्रा करने वालों की संख्या विश्व में सर्वाधिक भारत में ही है । ऐसे में इतने बड़े संगठन के साथ संचार की बड़ी चुनौती भी जुड़ी रहती है । यह महत्वपूर्ण है कि रेल विभाग इन सभी चुनौतियों को हिंदी के माध्यम से आसानी से हल कर पाता है । कार्यालयी प्रयुक्तियों की दृष्टि से रेलवे के हिंदी विषयक कुछ प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं ।

- रेल विभाग के सभी कार्यालयों और स्टेशनों में प्रमुखता और दर्शनीयता के हिसाब से यह प्रदर्शित किया गया है कि हिंदी में हस्ताक्षरित और भरे गए आवेदनों को यहाँ स्वीकृति दी जाती है । साथ ही प्रत्येक प्रकार के आवेदन और सूचनाएँ यहाँ हिंदी में उपलब्ध करवायी गई हैं ।
- हिंदी में जारी चैक, हिंदी में हस्ताक्षरित और लिखित विविध पत्रों, आवेदनों को अन्य किसी औपचारिकता के स्वीकृत किया जाएगा ।
- अधिकारियों के हस्ताक्षर यदि हिंदी में पंजीकृत हैं तो उन्हें विविध प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किया जाएगा ।
- अगर कार्यालयी सामग्री अंग्रेजी में भी है तो उस पर प्राधिकृत अधिकारी के हस्ताक्षर हिंदी में भी किए जा सकते हैं । साथ ही कार्यालयी सामग्री का हिंदी अनुवाद भी उपलब्ध करवाया जाएगा ।
- रेल विभाग के सभी फॉर्म, सूचना पत्र, प्रक्रियाएँ. नोटिस, नाम पट्ट आदि पर अपरिहार्य रूप से हिंदी भाषा में भी प्रयुक्ति की जानी है । यदि किसी कारण से किसी पत्रक पर अंग्रेजी में सामग्री है तो उसका अनुवाद या मुख्य सूचना हिंदी में अवश्य होगी ।
- हिंदी में लिखे गए आवेदन पत्रों व प्रक्रियाओं को उचित सम्मान देकर कार्य प्रणाली के अनुरूप ही काम किया जाता है ।
- इंटरनेट जैसे संसाधनों के विकसित हो जाने के बाद जो यात्री इस माध्यम से अपना आरक्षण करवाते हैं और जब वे यात्रा तिथि को निर्धारित डिबे में अपना आरक्षण

सुनिश्चित करते हैं तो वह सूचना तालिका मशीनी अनुवाद की सहायता से हिंदी में उपलब्ध करवायी जाती है ।

आज रेल विभाग हिंदी प्रयुक्ति के संदर्भो में बहुत आगे है । रेल विभाग की पत्रिकाओं में हिंदी केविविध पक्ष सम्मिलित किए जाते हैं । सभी समय सारणियाँ और यात्रा मार्ग के मानचित्र हिंदी में भी उपलब्ध होते हैं । रेल विभाग के हिंदी अधिकारी और जन संपर्क अधिकारी हिंदी प्रयुक्ति पक्षों हेतु निरंतर संलग्न हैं । हिंदी के माध्यम से अपने सरोकारों को अपनी भाषा हिंदी में लेकर सार्थक दिशा में किस प्रकार हल किया जा सकता है यह रेल विभाग में देखा जा सकता है ।

18.5 सारांश

समाज की प्रत्येक प्रविधि में सोचने - विचारने, बोलने, अभिव्यक्ति और विश्लेषण करने की जरूरत पड़ती है । इन सभी जरूरतों की पूर्ति के लिए हिंदी के विविध पक्षों को संदर्भ के अनुरूप प्रयुक्त भी करना होता है । रक्षा, न्याय, रेल जैसे पक्षों में हिंदी की स्थिति व प्रयुक्ति के पहलुओं को प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हिंदी की परंपरा और इतिहास के विविध पक्षों को आकलित करने के साथ ही इनकी प्रस्तुति के रूप में हिंदी के पक्षों की पड़ताल की गई है । साथ ही यह भी जानने का प्रयास किया गया है कि आज की बदलती जरूरतों के अनुरूप इस परंपरा को हिंदी के विविध पक्षों ने किस प्रकार से वर्तमान पक्षों तक पहुँचाया है ।

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. रक्षा / सेना में हिंदी की परंपरा और हिंदी का विवरण देते हुए बताइए कि इनकी सार्थकता क्या है?
2. सेनाओं के किस माध्यम को आप वर्तमान में उपयुक्त मानते हैं, और उनमें सार्थक हिंदी का प्रयोग कैसे किया जा सकता है?
3. वर्तमान भारतीय न्यायालयों में हिंदी की दृष्टि से सबसे प्रभावी माध्यम का उल्लेख कीजिए ।
4. "विधि में हिंदी का इतिहास और वर्तमान आवश्यकता" विषय पर एक लेख लिखिए ।
5. रेल विभाग हिंदी भाषा की दृष्टि से सकारात्मक पक्ष भारत को प्रगति पथ पर अग्रसर कर सकता है, इस विषय पर अपने विचार दीजिए ।
6. वाणिज्यिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रेल्वे में हिंदी प्रयुक्ति से व्यापार के पहलुओं की भूमिका कैसे प्रभावित होती है?
7. रक्षा, विधि, रेल विभाग में हिंदी के प्रचार - प्रसार के लिए अपने सुझाव दीजिए ।

18.7 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. के. के. रत्तू, **राजभाषा हिंदी :** बुक एनक्लेव, चौड़ा रास्ता, जयपुर ।
2. डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह, **प्रयोजन मूलक हिंदी और पत्रकारिता.** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. आलोक मेहता, **भारत में पत्रकारिता** नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली ।

4. डॉ. सुशीला जोशी, **हिंदी पत्रकारिता. विकास और विविध आयाम :** राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर ।
5. डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, **हिंदी पत्रकारिता ।**
6. डॉ. सुधीर सोनी, **पत्रकारिता और जनसंचार,** विश्वविद्यालय प्रकाशन, जयपुर ।

ISBN : 13/978-81-8496-135-5